'निराला' कृतित्व-कला और दर्शन

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी०फिल उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

लेखिका

सुरेश कुमारी पुरंग

एम०ए०

निर्देशक

डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

हिन्दी विभाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

१९६६

भूमिका

भूमिका

हिन्दी क्षेत्र में महाप्राण `निराला` का व्यक्तित्व हिमालय की गरिमा सागर का गाम्भीर्य एवं उत्कट उद्घोष लेकर अवतरित हुआ । छायावादी बृहत्त्रयी में `निराला` का विशिष्ट स्थान रहा है । इस विशिष्टता की पृष्ठभूमि में उनके काव्य-साहित्य एवं गद्य-साहित्य का मौलिक एवं क्रान्तिकारी आग्रह ही है । भाव, भाषा एवं छन्द तीनों क्षेत्रों में वह नवीनता वादी और क्रान्तिकारी थे, वस्तुत: साहित्य के बाह्य और अंतरंग दोनों क्षेत्रों में उन्होंने अभिनव प्रयोग किए हैं । काव्य और गद्य में उनकी स्वच्छन्दता वादी दृष्टि रही है एवं गद्य-साहित्य में उनका निर्द्वन्द्व रूप ही सर्वप्रमुख आकर्षण का विषय है । निबन्धों में उनकी उद्दाम स्पष्टवादिता, एकान्त ईमानदारी, अप्रतिम सिद्धान्तमयता एवं अभिनव दृढ़ता का उद्घोष परिलक्षित होता है । सृजनात्मक प्रक्रिया में वह नवीनतावादी आग्रह लेकर ही अग्रसर हुए तथा साहित्य में समग्र मुक्ति के समर्थक तथा जड़त्व के निराकरण में प्रयत्नशील रहे । उनके माध्यम से आधुनिक काव्य-भूमि को नवीन दिशा-निर्देशन मिला है , इसमें दो मत नहीं हैं । मुक्त छन्द के तो वह प्रवर्तक ही थे, जिसमें समस्त नियमों तथा बन्धनों को उन्होंने नकारा है । समस्त प्रकार के बन्धनों के राहित्य में ही उन्होंने काव्य में ओज और औदात्य की सृष्टि की ।

`निराला` की भाषा का अवदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं, उनकी भाषा भावानुरूपिणी एवं विषयानुसार रूप परिवर्तित करती चलती है । छायावादी कवियों में समासयुक्त संस्कृतनिष्ठ भाषा का सर्वाधिक आग्रह इन्हीं में दिखाई पड़ता है । स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के साथ घोर संयम `निराला` की अपनी विशिष्टता है, इस एकान्त विरोधी प्रवृत्ति का संकेत भाव, भाषा, छन्द तथा विषय-वस्तु सभी में मिलता है, छन्दों में एक ओर यदि एकान्त उन्मुक्तता है, तो दूसरी ओर मात्रा,वर्णों का नियमन रूपायन । यदि प्रबन्धात्मक प्रौढ़ काव्य की

गम्भीर भाव भूमि है, तो स्वच्छन्द प्रगीत भी है । एक ओर रोमाण्टिक विषय-वस्तु है, तो दूसरी ओर कठोर यथार्थवादी । `निराला` का विरोधी भावभूमियों से पूर्ण ओज, औदात्य एवं दार्शनिकता से भास्वित साहित्य ही मेरे आकर्षण का विषय रहा है । उनके काव्य के सम्बन्ध में आरोपित दुरुहता, क्लिष्टता एवं कठिन काव्य के प्रेत की उक्ति भी मेरे जिज्ञासा का कारण रही है, इन समस्त आकर्षण और जिज्ञासा का प्रतिफलन ही मेरा यह शोध प्रबन्ध है ।

`निराला` साहित्य की पृष्ठभूमि अत्यन्त व्यापक है, साहित्य का साधारणतया कोई भी पक्ष ऐसा नहीं जो उनकी लेखनी द्वारा अछूता रहा हो या जिसका स्पर्श करने का उन्होंने प्रयास न किया हो । काव्य-साहित्य तथा गद्य-साहित्य एवं अनुवाद तीनों क्षेत्रों में उनका व्यापक और प्रशंसनीय कार्य रहा । उनके पूर्ण साहित्य के अवगाहन मन्थन का तो प्रश्न ही भिन्न है, छोटे-छोटे खण्ड-काव्य या प्रबन्धकाव्य किसी को लेकर उन्हें युगद्रष्टा की श्रेणी में माना जा सकता है । लेकिन खेद का विषय है कि अभी तक `निराला` वांगमय पर सम्यक् समीक्षात्मक उपादेय ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो सका, यद्यपि `निराला` : डा० रामविलास शर्मा, `निराला काव्य और व्यक्तित्व` : धनंजय वर्मा, `काव्य का देवता` : विश्वम्भर मानव, `क्रान्तिकारी कवि निराला` : डा० बच्चन सिंह, `महाकवि निराला काव्य कला और कृतियां` : विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, `निराला नवजागरण` डा० रामरतन भटनागर, `कवि निराला` : श्री नन्ददुलारे बाजपेयी तथा `एक व्यक्ति : एक युग` : नागार्जुन प्रभृति आलोचनात्मक साहित्य `निराला` पर उपलब्ध होता है । अधिकांशत: यह आलोचनात्मक सामग्री एकपक्षीय और एकांगी है । इनमें किसी वैज्ञानिक पद्धति या क्रम योजना का आग्रह दिखाई नहीं पड़ता है । नन्ददुलारे बाजपेयी की `कवि निराला` तथा डा० रामरतन भटनागर की `निराला नवजागरण` अच्छी आलोचना पुस्तकें हैं, लेकिन प्रस्तुत ग्रन्थों से भी इन अभावों की पूर्ति नहीं होती । कवि निराला `निराला` काव्य के विभिन्न पक्षों पर तो आंशिक प्रभाव डालती है, पर काव्य के कलात्मक एवं भाव पक्ष के उत्कर्ष की उपेक्षा कर दी गई है । `निराला` नव जागरण में भारतीय नव जागरण के परिप्रेक्ष्य में `निराला` साहित्य पर प्रकाश डाला गया है । `निराला` के गद्य और पद्य साहित्य के कालक्रम निर्धारण का भी इन आलोचनात्मक कृतियों में प्रयास

नहीं दिखाई देता । गद्य-साहित्य भी 'निराला' का एक महान देय है, उसको विस्मरण कर दिया गया है, डा० रामविलास शर्मा ने अवश्य इस दिशा में कुछ प्रयास किया है, लेकिन वह भी पूर्ण परितृप्ति में सहायक नहीं । गद्य-साहित्य 'निराला' का वैचारिक पक्ष है । निबन्धों में उन्होंने बहुत सी साहित्य सम्बन्धी स्थापनायें की हैं, जिनसे उनकी साहित्य सम्बन्धी बहुत सी भ्रान्तियों का निराकरण हो सकता है । नि:सन्देह उनके साहित्य तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कतिपय आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं । किन्तु वे सभी विवेच्य विषय पर अपनी-अपनी दृष्टि से प्रकाश डालती हैं, पर यह निर्विवाद है कि किसी एक ही पुस्तक में उनके व्यक्तित्व, उनके वैचारिक पक्ष, काल क्रमानुसार कृतित्व, काव्य, गद्य तथा दर्शन पर समग्र रूप से विवेचन मूल्यांकन नहीं किया गया है । प्रस्तुत प्रबन्ध इसी दिशा की पूर्ति का आंशिक प्रयास है । वस्तुत: इसमें मेरा विविध पक्षीय विवेचन मूल्यांकन का प्रयास ही रहा है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध च की विषय-सामग्री को तीन खण्डों तथा बारह अध्यायों के अन्तर्गत समेटा गया है । युगीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में ही साहित्य का पूर्ण वैज्ञानिक और सजीव मूल्यांकन सम्भव होता है, क्योंकि साहित्यकार की चेतना युग से प्रभावित होती है , और युग को प्रभावित भी करती है, इसी सन्दर्भ में प्रथम अध्याय में युगीन चेतना, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है । 'निराला' युगीन चित्तवृत्ति के परिप्रेक्ष्य में ही उनके साहित्य का सही मूल्यांकन सम्भव था ।सांस्कृतिक जागरण में विवेकानन्द की भावभूमि पर कतिपय विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है, व वस्तुत: इसका एकमात्र लक्ष्य यही था कि उनका 'निराला' पर अन्यतम प्रभाव रहा था ।

द्वितीय अध्याय में 'निराला' के जीवन वृत्त को लिया गया है । उनके व्यक्तित्व के उन्हीं पक्षों की प्रधानता प्रकाश में लाया गया है , जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनके साहित्य पर प्रभाव पड़ रहा । उनके व्यक्तित्व के विश्लेषण के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं कि उनका साहित्यिक व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत जीवन अभिन्न थे, उसमें अन्तर्विरोधों का एकान्त अभाव है । अतएव उनके साहित्य के सही मूल्यांकन के लिए उनके व्यक्तित्व की सही अवधारणा की कितनी आवश्यकता थी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है ।

तृतीय अध्याय में काव्य-विभाजन तथा काल-क्रमानुसार काव्य और गद्य कृतियों का उल्लेख किया गया है, अधिक स्पष्टता के लिए अन्त में विधाओं के अन्तर्गत भी उनका निर्धारण कर दिया गया है, जिससे उनके साहित्य वैविध्य को ठीक प्रकार से समझा जा सके। कुछ अप्रकाशित सामग्री का भी उल्लेख है। 'निराला' की लगभग समस्त मूल और अनुदित कृतियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है, लेकिन खेद है, अथक प्रयास के पश्चात् भी कतिपय अनुदित ग्रन्थ अभी भी उपलब्ध नहीं हो सके, अतएव उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है। काव्य-विभाजन की पृष्ठभूमि आलोच्य कवि के भाव-परिवर्तन पर आधारित है। वस्तुत: यह विभाजन भावगत वैशिष्ट्य तथा विषयगत अन्तर को स्पष्ट करता है।

अध्याय चार में 'निराला' काव्य साहित्य की प्रवृत्तियों का आकलन है। इस विवेचन के माध्यम से 'निराला' काव्य की भाव-भूमि का विश्लेषण सफलता से हो सका है। किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को लेकर 'निराला' काव्य में अथ से इति तक व्याप्त उस प्रवृत्ति में क्या परिवर्तन, विस्तार और संकोच हुआ, इसका संकेत भी साथ-साथ दिया गया है। कवि की भाव-भूमि की भावकता के लिए स्वयं कवि के वक्तव्यों के सन्दर्भ भी लिए गए हैं, यही कारण है कि समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त रहकर मैं तटस्थ विचारणा में सफल हो सकी हूं। किन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में 'निराला' का काव्य-साहित्य विभिन्न दिशा-परिवर्तन करता गया, इसका भी संकेत दे दिया गया है।

अध्याय पांच में 'निराला' काव्य-साहित्य का रूपात्मक स्वरूप लिया गया है। विभिन्न काव्य-रूपों की स्थापना उस विशिष्ट काव्य-रूप के गुणों के सन्दर्भ में ही की गई है। मूल स्थापना में उक्तियों और विश्लेषण का आश्रय लिया गया है। 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' को महाकाव्यात्मक परिवेश में स्वीकार करते हुए भी शास्त्रीय शैली के अन्तर्गत ही रखा गया है।

काव्य-शिल्प के अन्तर्गत काव्य के कलात्मक उत्कर्ष के साथ-साथ भावगत उत्कर्ष पर भी दृष्टिपात किया गया है। विश्लेषण की निष्पक्षता तथा समग्रता के लिए विशिष्टताओं के साथ-साथ असंगतियों पर भी ध्यान केन्द्रित रहा है। काव्य कला के समस्त बाह्य उपादान भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छन्द तथा प्रकृति का सम्यक् तथा पूर्ण विवेचन करने का प्रयास रहा है।

`निराला` की दार्शनिक भाव-भूमि का अभिलेखन सप्तम अध्याय में हुआ है। उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पूर्णरूप से स्पष्ट हो सके इसलिए उनपर पड़े विभिन्न प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है। उनकी परिवर्तित होती हुई दार्शनिक भाव-भूमि वेदांत का ही व्यापक स्वर है, ऐसी मेरी स्वयं की स्थापना है। `निराला` की भक्ति-भावना तथा मानवतावाद में मैंने उस अद्वैत का ही आभास पाया है, और मैंने निर्विवाद रूप से उनको प्रवृत्तिवादी कर्मयोगी स्वीकार किया है।

अष्टम एवं नवम अध्याय में उनके कथा-साहित्य का विवेचन तथा विश्लेषण किया गया है। कथा-साहित्य की उन्मुक्तता के साथ उसमें व्याप्त विशिष्ट दृष्टिकोण के उद्घाटन का आग्रह भी रहा। कथा-साहित्य के वैचारिक पक्ष के साथ उसके कलात्मक पक्ष पर भी दृष्टिपात किया गया है। उनके कथा-साहित्य में कलापक्ष की अपेक्षा वैचारिक पक्ष की सबलता का आग्रह मुझे अधिक दिखा है, तथा इसकी स्थापना की गयी है। उपन्यास तथा कहानी साहित्य की भाषा में एकरूपता होने के कारण पुनरुक्ति के निराकरण के लिए उस पर एक साथ ही विचारणा की गई है।

अध्याय दस में आलोच्य साहित्यकार की सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक धार्मिक विचार-धारा का विवेचन अभिप्रेत है। `निराला` के स्वयं के वक्तव्य उनकी विचारधारा के स्पष्टीकरण में असाधारण रूप से सहायक हुए हैं।

अन्तिम दोनों अध्यायों में निबन्ध और रेखा-चित्रों का विवेचन है। निबन्धों का आकलन, शैली तथा विषय-वस्तु दोनों आधार भूमियों पर किया गया है। निबन्धों की सामान्य प्रवृत्तियों के उद्घाटन से निबन्धों की हृदय ग्राह्यता में सुगमता हुई है। संग्रहों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों का भी निर्देशन और विवेचन किया गया है। साधारणतया `कुल्ली भाट` तथा `बिल्लेसुर बकरिहा` को समालोचकों ने उपन्यासों के अन्तर्गत ही स्वीकार किया है, लेकिन मैंने इनमें रेखा-चित्र की सार्थकता को मूर्त करने का प्रयास किया है।

मूल्यांकन के अन्तर्गत `निराला` के महत्व-साहित्य उद्भट व्यक्तित्व की अप्रतिमता के पक्ष समर्थन का प्रयास है, वस्तुत: इसमें सत्यांश है। परिशिष्ट रूप में उन विविध काव्य और गद्य संग्रहों की सामग्री का विवरण है, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। अन्त में मौलिक एवं सहायक ग्रन्थों की सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध श्रद्धेय गुरुवर डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के निर्देशन में पूर्ण करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ । उसके अन्तिम रूप तक की समस्त प्रक्रिया उनके स्नेह तथा आशीर्वाद का ही प्रतिफल है । उनके प्रति शिष्टाचार और कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए मेरी लेखनी पूर्णतया अक्षम है और न मैं औपचारिक तथा व्यावहारिक शब्दों के माध्यम से आभार व्यक्त कर परम्परा-पालन का कार्य पूर्ण करना चाहती हूं । मेरी यह हार्दिक आकांक्षा है कि मैं सदैव ही उनके अपार स्नेह एवं सहृदयता की भोक्ता बनी रहूं ।

मैं नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, काशी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग तथा विश्वविद्यालय पुस्तकालय, प्रयाग के प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करती हूं, जहां मुझे अध्ययन सम्बन्धी समस्त सुविधायें उपलब्ध हो सकीं ।

शोध-प्रबन्ध के टंकण का समस्त श्रेय श्री रामहित त्रिपाठी जी को है, जिन्होंने मुझसे अधिक इस कार्य को पूर्ण करने में रुचि प्रदर्शित की । वह मेरे धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त में मैं सब का पुन: एक बार आभार प्रदर्शित करना चाहती हूं, जिनके सद्भाव से यह कार्य पूर्ण हो सका ।

(सुरेश कुमारी सुरंग)
एम०ए०
सुरेश कुमारी सुरंग

दिनांक

-0-

विषयानुक्रमणिका

-0-

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

जीवनी तथा रचनायें

अध्याय -- १ : 'निराला' और उनका युग --

'निराला' युग की पीठिका, सांस्कृतिक आन्दोलन, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द, थियोसोफिकल सोसाइटी, रानाडे, गोखले, प्रवृत्तिवादी कालगंगाधर तिलक, अरविन्द, गांधी, रवीन्द्र, राजनीतिक आन्दोलन, सामाजिक परिस्थिति, साहित्यिक परिस्थिति ।

पृ० सं० 1 33

अध्याय -- २ : 'निराला' का व्यक्तित्व --

जीवनी, दो विरोधी वातावरण : शैशवकाल, विरोधी प्रवृत्तियां, वैवाहिक जीवन, प्रेरक स्रोत, नियति के थपेड़े, आर्थिक संघर्ष, आर्थिक परिस्थितियां तथा सृजन की विवशता, साहित्यिक संघर्ष, प्रकाशक और साहित्यिक बन्धु, राष्ट्रभाषा के पोषक, साहित्य और व्यक्तित्व, निष्कर्ष ।

पृ० सं० ३४ - ५२

अध्याय -- ३ : 'निराला' साहित्य और उसका कालक्रम

काव्य :-

काव्य का विभाजन, काव्य रचनायें-- 'परिमल', 'गीतिका', 'अनामिका', 'तुलसीदास', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत-गुंज', 'अपरा' ।

गद्य :-

गद्य-साहित्य का कार्यकाल, गद्य कृतियां-- 'भक्त ध्रुव', 'भक्त प्रह्लाद', 'भीष्म', 'महाराणा प्रताप', 'हिन्दी-बंगला-शिक्षा', 'रवीन्द्र कविता कानन', 'अप्सरा', 'अलका', 'लिली', 'प्रबन्ध पद्म', 'चतुरी चमार', 'सखी', 'निरुपमा', 'प्रभावती', 'कुल्ली भाट', 'प्रबन्ध प्रतिमा', 'सुकुल की बीवी', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'पंत और पल्लव', 'चोटी की पकड़', 'देवी', 'काले कारनामे', 'चाबुक', चयन', 'संग्रह' ।

अनुदित और रूपान्तरित सामग्री :-

'महाभारत', 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत', 'रामायण', 'भारत में विवेकानन्द' बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों के अनुवाद, अन्य अनुवादित पुस्तकें, अपूर्ण उपन्यास 'कमली' ।

अप्रकाशित सामग्री --

पृ० सं० ५३ - ७५

द्वितीय खण्ड

आलोचना खण्ड : एक, काव्य

अध्याय -- ४ : 'निराला' काव्य साहित्य की प्रवृत्तियां

छायावादी, रहस्यवादी, जिज्ञासा, विरह की स्थिति, मिलन की अवस्था, प्रकृति के माध्यम से रहस्य, प्रिया के रूप में ब्रह्म, जननी के प्रतीक रूप में, भक्ति भावना, भक्ति का स्वर, प्राकृतिक उपादान, प्रार्थनापरक गीत । यथार्थवादी और व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति-- क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, सांस्कृतिक प्रवृत्ति, राष्ट्रीय प्रवृत्ति - निष्कर्ष ।

अध्याय -- ५ : 'निराला' साहित्य में काव्य-रूप और उनका अध्ययन

काव्य-रूप : खण्ड काव्य, तुलसीदास, सांस्कृतिक चेतना, पारिवारिक व्यंजना, चिन्तन और दर्शन, वस्तु-योजना, शिल्पगत प्रौढ़ता ।

लघु आख्यानात्मक कथा : राम की शक्ति पूजा, पौराणिक आधार, नवीन उद्भावनायें, कथागत नवीनता, पात्रगत नवीनता, वस्तु-योजना, शिल्पगत प्रौढ़ता । संबोध गीति, शोक गीति, लोक गीत, गज़ल, पत्र गीति ,चतुर्दश पदी, वृत्त लेखन, व्यंग्य गीतियां, गीत, गीति-नाट्य : पंचवटी प्रसंग ।

पृ० सं० १७३-२२२

अध्याय -- ६ : काव्य-शिल्प

कला का रूप, उपदेश और काव्य, भावों की सम्बद्धता, कलात्मक परिसमाप्ति, कल्पना की अतिशयता । भाषा, बिम्ब योजना, वस्तु बिम्ब, विकृत बिम्ब, भाव बिम्ब, तथा दृश्य बिम्ब, प्रतीक-- प्रकृत प्रतीक, सांस्कृतिक प्रतीक-- अलंकार, पौराणिकता, गीत और संगीत, छन्द, प्रकृति, उद्दीपन रूप, प्रकृति का चेतन स्वरूप, प्रकृति और रहस्य, प्रकृति : राष्ट्रीय भावना, अलंकरण रूप में प्रकृति, प्रकृति का उदात्त चित्र, प्रकृति का यथा तथ्य रूप-- निष्कर्ष ।

पृ० सं०

अध्याय -- ७ : दार्शनिकता

दर्शन, ब्रह्म, जीवात्मा और परमात्मा, ब्रह्म-जीवैक्य, जगत, ईश्वर और प्रेम, मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण, भक्ति भावना, मानवतावाद, निष्कर्ष ।

पृ० सं० २६०-३०८

आलोचना खण्ड : गद्य

✓ अध्याय -- ८ ✓: `निराला` का कथा साहित्य (१) उपन्यास

उपन्यासों का वर्गीकरण, रोमाण्टिक उपन्यास, समस्यायें; उन्मुक्त प्रेम, शिक्षा, शोषक एवं शोषित । कथावस्तु--प्रारम्भ, नाटकीय संयोग तथा चमत्कार , पात्र, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, शैली, उद्देश्य । यथार्थवादी उपन्यास -- समस्यायें, जमींदार, सामंत, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, स्तर भेद : वैवाहिक संबंध, कथावस्तु-- चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, परिस्थिति और वातावरण, शैली, रोमाण्टिक तथा यथार्थवादी उपन्यासों के विभाजन का कारण, निष्कर्ष ।

पृ० सं० ३०९ - ३५५

✓ अध्याय -- ९ ✓: `निराला` का कथा साहित्य (२) कहानी

वर्गीकरण , समस्यायें, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, जातीय अहम्मन्यता, अंध विश्वास, अनमेल विवाह, शोषित वर्ग, कला का स्वरूप, वस्तु योजना, शीर्षक, आरम्भ, विकास, चरम सीमा, और अंत--पात्र चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देश काल, उद्देश्य, शैली कथा साहित्य की भाषा ।

पृ० सं० ३५६ - ३८९

✓ अध्याय -- १० ✓: विचारधारा

सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक ।

पृ० सं० ३९० - ३६९

तृतीय खण्ड

निबन्ध तथा स्फुट गद्य साहित्य

अध्याय -- ११ : 'निराला' का निबन्ध साहित्य

निबन्ध का स्वरूप, 'निराला' निबन्ध की सामान्य प्रवृत्तियां, वर्गीकरण, शैली के आधार पर, विचारात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, तुलनात्मक, वार्तालापात्मक निबन्ध । विषय वस्तु के आधार पर -- साहित्यिक, सामाजिक, दार्शनिक, शैली -- निष्कर्ष ।

पृ० सं० ४००-४२५

अध्याय -- १२ 'निराला' हास्य-व्यंग्यमय रेखा-चित्र

वर्गीकरण, रेखा-चित्र--'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्ली भाट' रेखा-चित्र रूप में -- हास्य-व्यंग्य, शिल्प, चरित्र-चित्रण, वातावरण-- निष्कर्ष ।

पृ० सं० ४२६-४४३

मूल्यांकन पृ० सं० ४४४-४४८

परिशिष्ट पृ० सं० ४४९-४५९

सहायक ग्रन्थ सूची पृ० सं०

-o-

प्रथम खण्ड

जीवनी तथा रचनायें

अध्याय -- १

'निराला' और उनका युग

१. किसी भी साहित्यकार के सृजन के समुचित मूल्यांकन के लिए तत्कालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि का ज्ञान अत्यावश्यक हो जाता है। साहित्यकार का सृजन देशकाल निरपेक्ष नहीं हो सकता। परिस्थितियों का प्रभाव परोक्षरूप से साहित्यकार की चेतना पर पड़ता ही है, यही कारण है कि विभिन्न परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में सृजन के मूल्य भी बदलते हुए दृष्टिगत होते हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं, कि परिस्थितियां साहित्यकार की चेतना का परिचालन करती हैं। युगीन घात-प्रतिघातों के मध्य ही युगान्तरकारी साहित्यका: सृजन होता है। साहित्यकार की चेतना नवीन दिशा का संकेत देती है।

२. 'निराला' का समय सन् १८९६ से प्रारम्भ होता है, तथा सन् १९६१ तक माना जा सकता है। इन ६४-६५ वर्षों के अन्तराल में देश की सामाजिक, राजनैतिक, एवं आर्थिकदशा में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए। इसी बीच में 'निराला' की साहित्यिक साधना भी विभिन्न मोड़ लेती रही थी। इस परिवर्तन की पृष्ठभूमि में युग का कम उत्तरदायित्व नहीं था। निराला-साहित्य के बहुमुखी विकास को समझने के लिए, भावगत तथा विषयगत भावबोध के लिए युगीन परिस्थितियों पर दृष्टिपात कर लेना उपयुक्त होगा। प्रस्तुत अध्याय में 'निराला' युगीन चित्तवृत्ति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। मुख्यत: सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

सांस्कृतिक

३. उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में जाग्रत चेतना के नेतृत्वकर्ता हिन्दी प्रदेश में स्वामी दयानन्द (१८२४-८३ई०), बंगाल में राजाराम मोहनराय (१७७२-१८३३), केशवचन्द्र सेन, रामकृष्ण परमहंस (१८३४-८६ ई०) एवं उनके शिष्य विवेकानन्द (१८६३-१९०२ ई०), महाराष्ट्र में रानाडे, तिलक आदि महानुभावों के द्वारा हुआ।

आश्चर्य की बात है कि पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भारतीय समाज तथा संस्कृति पर प्रभाव विरोधात्मक स्थिति में पड़ा । राजनैतिक तथा आर्थिक पराधीनता से उन्मुक्त होने का प्रयास,पश्चिमी भौतिकवादी सभ्यता के विरुद्ध भारतीय आध्यात्मिक संघर्ष ही वस्तुस्थिति में अव्यक्तरूप से भारतीय नव जागरण और सांस्कृतिक चेतना का मुल बना । यही सांस्कृतिक नव जागरण आगे चलकर राजनैतिक, आर्थिक संघर्ष का जनक भी सिद्ध हुआ ।

४. राजाराम मोहनराय द्वारा स्थापित ब्रह्म-समाज(१८२८-३०) सांस्कृतिक, सामाजिक, एवं राजनैतिक आन्दोलनों का अग्रदूत बना । यद्यपि इस आन्दोलन का सूत्रपात पाश्चात्य संस्कृति के विरोधस्वरूप ही हुआ था, पर जीवन के प्रति इसका दृष्टिकोण ईसाइयत और हिन्दुत्व से भिन्न योरोपियन ही था[१]। परन्तु इसका भी एक कारण था, पाश्चात्य संस्कृति और विज्ञान से प्रभावित आंग्ल शिक्षा में शिक्षित भारतीय नवयुवकों की प्रतिक्रिया अपने रूढ़िबद्ध धर्म और संस्कृति के प्रति घृणा के रूप में प्रकट हुई थी । यह नवयुवक भारतीय कम, पश्चिमी अधिक थे[२]। तत्कालीन शिक्षित वर्ग का धार्मिक रूढ़ मान्यताओं के प्रति असन्तोष बढ़ रहा था, हिन्दू धर्म के प्रति उनकी आस्था उठ चुकी थी । उनके लिए वही वस्तु मान्य,उपादेय और सार्थक थी, जो योरोपियन द्वारा स्वीकृत कर ली जाती थी । ऐसी परिस्थिति में यह आवश्यक था कि सुधारवादी आन्दोलनों का स्वरूप ऐसा हो जो अधिक वैज्ञानिक और समय की मांग के अनुकूल हो । इस प्रवृत्ति का परिष्कार विभिन्न आन्दोलनों के माध्यम से हुआ ।

५. रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के रूप में दो महान् धार्मिक विभूतियों ने समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया था । रामकृष्ण परमहंस धर्म और भक्ति के जीवन्त उदाहरण थे । अखण्ड पौरुष के प्रतीक स्वामी विवेकानन्द इन्हीं

---

1. As a religion Brahmo Samaj was based firmly on the Vedanta of genuine Hindu tradition, but its outlook on life was neither Christian, nor Hindu, but European, and derived its inspiration from the intellectural movements of the eighteenth century. K.M.Pannikkar. The Foundation of New India: 1963, London p. 27.

2. They were no longer Indians in their equipment but English. Subhas Chandra Bose : The Indian struggle: 1948, Calcutta p. 32.

के शिष्य थे । विवेकानन्द ने तत्कालीन परिस्थिति की मार्मिकता का अनुभव कर धर्म की व्याख्या प्रस्तुत की, जिसके द्वारा भारतीय जनता में आत्म-गौरव की भावना जागृत हो सके । वस्तुत: वह सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भावना के संस्थापक थे । उनके लिए धर्म राष्ट्रवाद का प्रेरक था । उन्होंने तत्कालीन उभरती हुई नवपीढ़ी में भारत के अतीत के प्रति आस्था, आत्मविश्वास और आत्माभिमान की भावना का संचार किया । राजनीति के संदेशवाहक न होते हुए भी उनके व्यक्तित्व और साहित्य ने अपूर्व राष्ट्रीयता और देश-भक्ति की भावना का प्रस्फुरण किया[१]। यों तो किसी भी सांस्कृतिक आन्दोलन का आधार राजनीतिक नहीं था, लेकिन अव्यक्त रूप से स्वदेश-भावना और राष्ट्रीयता की भावना का जागरण इन विविध आन्दोलनों से हुआ । विवेकानन्द द्वारा रामकृष्ण मिशन की स्थापना हुई । भारतीय समाज पर उनका प्रभाव अनन्त रूप से पड़ा । नेहरू जी ने उनको निराश और नैतिक दृष्टि से दुर्बल समाज के लिए टॉनिक के रूप में मान्यता दी है[२]। यों तो विवेकानन्द के पूर्ववर्ती आन्दोलनों से हिन्दू धर्म में समाविष्ट हुई बहुत सी व्यर्थ रूढ़ मान्यताओं का खण्डन कर उनका नव संस्कार किया था, लेकिन विवेकानन्द का बौद्धिकता और वैज्ञानिकता से पुष्ट धार्मिक चिन्तन समय की आवश्यकता के सर्वाधिक अनुकूल था । उनके द्वारा समर्पित शक्ति-तप साधना, आत्मबल, कर्मयोग तथा आत्माभिमान ने असामान्य और अदम्य प्रभाव डाला । भारतीय जनता में एक बार पुन: जीने की इच्छा जागृत हो उठी।

६. स्वामी जी का चिन्तन अत्यन्त सूक्ष्म था । उन्होंने भली भांति समझ लिया था कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध असंतोष की भावना का प्रसार करने से ही कार्य नहीं चलेगा,उसके लिए अप्रतिम पौरुष और कर्मनिष्ठा का प्रादुर्भाव भी करना होगा । उनकी दृष्टि में भारतीय जनता की दरिद्रता, दु:ख-दैन्य एवं कष्टों का _

१- With him religion was the inspirer of nationalism, He tried to infuse into the new generation a sense of pride in India's past, of faith in India's future and a spirit of self confidence and self-respect. Though the Swami never gave any political message every one who came into contact with him or his writings developed a spirit of patriotism and political mentality. Subhas Ch. Bose : The Indian struggle: 1948, Calcutta. p. 35.

2.. He came as a tonic to the depressed and demoralised Hindu mind and gave it self-reliance and some roots in the past. J.L.Nehru : Discovery of India: 1946, Calcutta, P. 400.

निवारण तभी सम्भव है जब उनके हृदय में इसके विरुद्ध असंतोष और साथ ही वीरता-पूर्वक उसका सामना करने की भावना उत्पन्न होगी । इसके लिए वह निरन्तर कर्म करते रहने के प्रेरक थे , उन्होंने सर्वप्रथम अपने धर्म के प्रति हीन भावना का उन्मूलन किया, यद्यपि हिन्दू धर्म में बहुत से बाह्याचार बढ़ गए थे, जिसकी चेतना भारतीयों को पाश्चात्य प्रकाश से हुई थी । हिन्दू धर्म की बहुत सी रूढ़ मान्यताओं का खण्डन कर उन्होंने अधिक उन्मुक्त और व्यापक दृष्टिकोण सम्मुख रखा । हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बर के अनुसार समुद्र यात्रा पाप समझी जाती थी , खान-पान में भी बहुत से विधि-निषेध थे, लेकिन इन सब का उन्होंने खुलकर खण्डन किया । भारतीय अपने आत्मगौरव और आत्मबल को पूर्णतया त्याग चुके थे । विवेकानन्द ही ऐसे माध्यम थे, जिनके द्वारा तत्कालीन परिस्थितियों की गम्भीरता का अनुभव किया गया ।

७. रामधारी सिंह दिनकर ने विवेकानन्द को सेतु-बिन्दु स्वीकार किया है, जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं[१] । वस्तुत: परम्परा से प्रचलित धार्मिक मान्यताओं को युगानुरूप व्यावहारिक वैज्ञानिक व्याख्या के माध्यम से ही ऐसा सम्भव हो सका । उनके इस व्यावहारिक वेदांत को सम्पूर्ण योरोप और अमेरिका भी विस्फारित नेत्रों से देखने लगा था । हिन्दू धर्म की व्यापकता का आभास पश्चिम को विवेकानन्द के माध्यम से ही मिला था । सन् १८९३ में शिकागो विश्व-धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने भारतीय हिन्दू धर्म की अपार धनराशि के कपाट खोल दिए । विदेशों में भी हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा और निष्ठा का भाव जागृत हुआ । इस विश्व-धर्म सम्मेलन में उनकी उपस्थिति का भारतीय दृष्टि से अनुपम प्रभाव पड़ा । न केवल मिशनरियों द्वारा हिन्दू-धर्म की निन्दा ही बन्द हुई अपितु भारतीय बौद्धिक वर्ग में भी हिन्दू धर्म के प्रति आस्था और विश्वास की भावना का उदय हुआ, क्योंकि योरोप द्वारा भारतीयों ने हिन्दू-धर्म को प्रशंसित होते देख लिया था । विवेकानन्द की मुख्य देन कर्म-भक्ति और ज्ञान का समन्वय था । जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण होने के कारण ही उन्होंने अखंड आत्मविश्वास, उद्दाम कर्मनिष्ठा, अदम्य निर्भयता,

---

१- रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, १९६५, दिल्ली, पृ० ४९७

अनन्त शान्त भाव, अप्रतिम त्याग, पवित्रता, प्रेम, दृढ़ता, एकात्मभाव एवं देश-भक्ति का अभिनव संदेश देश को दिया । उनकी धार्मिक व्याख्या में मुख्य आग्रह मानव की महत्ता का उद्घोष था । प्राणी मात्र में स्वामी जी ने उसी परम ब्रह्म का साक्षात्कार किया था । उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म में समस्त धर्मों का समाहार हो जाता है । उनकी किसी भी धर्म के प्रति द्वेष-भावना नहीं थी । लेकिन अंध मान्यताओं के प्रति उन्हें रोष अवश्य था ।

८. तत्कालीन समस्त सांस्कृतिक आन्दोलनों ने प्रवृत्ति मार्ग को मान्यता दी थी । स्वामी जी ने परम्परा से स्वीकृत निवृत्ति मार्ग को नकारते हुए प्रवृत्ति मार्ग पर बल दिया । जीवन के प्रति निवृत्तिवादी दृष्टिकोण स्वीकार करने के कारण ही हिन्दू समाज पूर्णतया निष्क्रिय और निस्पन्द होता जा रहा था । तद्युगीन परिस्थिति में जागरण हेतु निवृत्ति-भावना का आमूल उन्मूलन आवश्यक था । एक तो देश-~~विदेशी~~ विदेशियों की पराधीनता के पाश में बंधा हुआ ही था, ऊपर से जीवन के प्रति अनास्थावादी दृष्टिकोण से भारतीय-समाज पूर्णतया निष्क्रिय और जड़ होता जा रहा था । अतः ऐसी विकट जड़ परिस्थिति में एकमात्र प्रवृत्ति मार्ग ही सहायक हो सकता था । विवेकानन्द और 'तिलक' ने गीता की नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय-दर्शन निवृत्ति का नहीं, प्रवृत्ति का प्रतिपादक है । समय के अनुकूल धर्म का स्वरूप भी बदलना चाहिए, ऐसी उनकी मान्यता थी । यही कारण है कि जहां उन्होंने धन, ऐश्वर्य से परिपूर्ण अमरीका के समाज को निवृत्ति का उपदेश दिया, वहां दैन्य-दारिद्र्य से पीड़ित भारतीय समाज को प्रवृत्ति मार्ग और अखण्ड कर्म भावना की ओर प्रेरित किया । वस्तुतः भारत की सुप्त धमनियों में असंतोष की अग्नि प्रज्वलित करने की अत्यधिक आवश्यकता थी । यौरोप और अमेरिका का अत्यधिक धन-ऐश्वर्य जहां असंतोष का कारण था, वहां भारत का अत्यधिक दारिद्र्य उसके लिए अभिशाप बन रहा था । धर्म की उच्च भूमि पर पहुंचने के लिए यह दोनों अतियां बाधक हैं, ऐसा उन्होंने माना था ।

९. स्वामी जी भारत देश को निवृत्ति मार्गी सन्यासियों का जो प्रत्येक स्थिति में निर्द्वन्द्व रह कर एकमात्र अपनी मुक्ति की कामना करते हैं -- देश नहीं बनाना चाहते थे । वह निरन्तर कर्म में संलग्न निर्भय, शक्ति, ओज से दीप्त पौरुषवान व्यक्तियों

का देश देखना चाहते थे । यही कारण है कि उन्होंने शक्ति-साधना पर बल दिया था। वह भारत में लोहे की मांस पेशियां फौलाद की नाड़ी[1] तथा धमनी देखना चाहते थे, क्योंकि उसी के भीतर वह मन निवास करता है जो शंपाओं और वज्रों से निर्मित होता है । शक्ति पौरुष क्षात्रवीर्य और ब्रह्म तेज इनके समन्वय से भारत की मानवता का निर्माण होना चाहिए । विवेकानन्द दुःखी , पीड़ितों एवं निर्बलों के सहायक बने[2] । भारत की दरिद्रता, निर्धनता उनके लिए असह्य थी । मानव मात्र की सेवा ही उनका मूल मंत्र था और यही वास्तविक ईश्वरोपासना । दीन-दुखियों पर कातर लोगों के दुःख निवारण को ही उन्होंने वास्तविक साधना स्वीकार किया था । क्षुधा से पीड़ित दीन-दुःखी जन की अवहेलना कर मंदिर में प्रसाद चढ़ाने को वह पुण्य नहीं पाप समझते थे । इस लोक को ही मानवतावादी आधार देकर वह स्वर्ग बनाने के आकांक्षी रहे । स्वामी जी को ऐसा धर्म ढकोसला लगता, जो परलोक में सुख-सुविधा के विचार से इस लोक में दुःख कष्टों को प्रश्रय देता है । निर्धनता, पुरोहितवाद और धार्मिक अत्याचार सिखाने वाले दर्शनों के प्रति स्वामी जी ने घृणा प्रकट की थी । धनिकों की शोषक वृत्ति के वे विरोधी थे । अत्यधिक धन ऐश्वर्य विलासिता में उच्च विचारों की उद्भावना सम्भव नहीं, ऐसी उनकी धारणा थी । नारी उत्थान तथा जन उन्नति को भारतीय समाज की उन्नति के लिए उन्होंने आवश्यक माना था । भारतीयों में उभरती हुई हीन भावना पर उन्होंने कटु व्यंग्य प्रहार किया । विदेशियों के प्रत्येक कार्य को प्रशंसा की दृष्टि से देखने की दासत्व भावना के वह कटु आलोचक थे । उन्होंने भारतवासियों को मां दुर्गा की उपासना की प्रेरणा दी । दासत्व भावना को त्याग कर स्वयं भारतीयों को शासक रूप धारण करना है ऐसा वह उद्घोष करते थे ।

१०. विवेकानन्द जी ने समन्वयात्मक दार्शनिक विचारधारा की स्थापना की, उनकी भारत के अतीत के प्रति गम्भीर आस्था थी, लेकिन वह पूर्णतया पुराणपंथी नहीं थे । देश कालगत आवश्यकतानुसार जीवन की समस्याओं के प्रति सोचने के लिए वह

---

1. "What our country now wants, are muscles of iron and nerves of steel, gigantic wills which nothing can resist ... " The complete works of Swami Vivekanand, Vol. III, Almora, 1946, P. 190.
2. His direct experience of the appalling misery of the down-trodden masses, the helpless victims of a dreadful system of social iniquity, set his whole being on fire. The cultural Heritage of India: Vol. IV, 1956, p. 705.

नवीन दिशा और प्रवृत्तियों के प्रति भी सजग और जागरूक थे[१]। भौतिकवादी पाश्चात्य सभ्यता का समन्वय भी उनमें मिलता है। वह पाश्चात्य प्रगति को भारत की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि से मिला देना चाहते थे[२]। यही कारण है कि धर्म और वैज्ञानिकता से समन्वित विवेकानन्द के व्यावहारिक सिद्धान्त धर्मान्ध जनता और बौद्धिक वर्ग दोनों को प्रभावित करते थे। शक्ति-साधना के लिए उन्होंने महाकाली तथा शिव की साधना की स्थापना की थी। जिस सार्वभौम धर्म का विवेकानन्द ने विश्व में प्रचार किया, वह वस्तुत: औपनिषदिक ज्ञान से ही प्रभावित था।

११. सांस्कृतिक नव जागरण में थियोसोफिकल सोसाइटी (१८७५ई०) का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा था। भारत में इस संस्था की स्थापना १८८६ ई० में हुई थी। श्रीमती एनिबेसेण्ट के नेतृत्व में जो १९०७ ई० में उसकी अध्यक्षा भी बन गयी थीं, अपूर्व प्रगतिशील कार्य हुए। श्रीमती एनीबेसेण्ट हिन्दुत्व के विरुद्ध समस्त प्रकार के आक्रमणों की ढाल बन गयीं, यहां तक कि हिन्दू धर्म की समस्त विकृतियों की व्याख्या वह अच्छे रूप में करती थीं[३]। हिन्दू धर्म पर मिशनरियों के अनाधिकार आक्षेपों पर इस संस्था द्वारा प्रतिबन्ध लगा। इसका भी मूल उद्देश्य अन्य पूर्ववर्ती धार्मिक आन्दोलनों के सदृश्य भारतीयों के हृदय में हिन्दू धर्म के प्रति आस्था और गौरव की भावना का जागरण था। केवल वेद, उपनिषद् और गीता ही इसके उपदेशों के माध्यम नहीं बने, अपितु स्मृति, पुराण, धर्म शास्त्र आदि समस्त प्राचीन ग्रन्थ इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। इस संस्था द्वारा अवतार पुनर्जन्म, देवता, योग और अनुष्ठान और चौरासी लाख योनियों का भी समर्थन हुआ। इन सब का रूढ़िबांध भारतीय जनता पर बहुत ही वैज्ञानिक प्रभाव पड़ा।

---

1. Rooted in the past and full of pride in India's heritage Vivekanand was yet modern in his approach to life's problems and was a kind of bridge between the past of India and her present. J.L.Nehru: Discovery of India: P. 400.

2. He wanted to combine westers progress with India's spiritial background. J.L.Nehru : Discovery of India: P. 401.

3. Mrs. Besant became the great champion of Hinduism against all attacks, even the errors and abuses of Hinduism she would explain away rather than attack. S.C.Bose : The India's struggle P. 38.

श्रीमती स्नीबेसैण्ट विश्व के समस्त धर्मों में हिन्दू धर्म को महान मानती थीं, उन्होंने सन् १६१४ के एक भाषण में कहा है कि " चालीस वर्षों के सुगम्भीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूं कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण वैज्ञानिक दर्शनयुक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है ।" अन्तर्राष्ट्रीय संस्था होने के कारण विश्व में भारत के पक्ष में इसके द्वारा अच्छा प्रचार हुआ । भारतीय समाज में भी अपने धर्म के प्रति आस्था जागृत हुई।उन्होंने एक बार पुन: अन्वेषक के रूप में अपनी धार्मिक मान्यताओं का निरीक्षण किया । वस्तुत: समस्त धर्मों का समाहार और समन्वयात्मक रूप ही थियोसोफिकल सोसाइटी ने स्वीकार किया था । विश्व बन्धुत्व, तुलनात्मक धर्म और परलोकविधासंधान-- यह त्रिसिद्धांत थियोसोफिकल सोसाइटी के थे ।

१२. महाराष्ट्र में सांस्कृतिक जागरण का नेतृत्व मुख्यतया रानाडे,गोपाल कृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक के द्वारा हुआ। रानाडे मुख्यत: समाज सुधारक थे । तिलक तथा गोखले समाज सुधारक के साथ-साथ राजनीति में भी सक्रिय थे । स्वामी विवेकानन्द तथा लोकमान्य तिलक समसामयिक थे । दोनों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण प्रवृत्तिवादी था, अन्तर केवल इतना था कि जहां स्वामी जी का मुख्य क्षेत्र आध्यात्मिक था,वहां तिलक राजनीति में सक्रिय थे । दोनों ने अखंड कर्मयोग का संदेश दिया । परम्परा से वेदान्त की व्याख्या निवृत्ति में दी जाती रही है, पर विवेकानन्द और तिलक द्वारा उसकी प्रवृत्ति के रूप में नवीन व्याख्या की गई । तिलक द्वारा प्रस्तुत कर्मयोग शास्त्र, तत्कालीन परिस्थिति में वरदान सिद्ध हुआ । इस अभिनव कर्मयोग के द्वारा वह ऐसा भावनात्मक आत्मिक बल स्थापित करना चाहते थे,जिससे भारतीय विपरीत परिस्थिति में भी अपना आत्मबल न खोकर सन्तुलन बनाए रखें ।

१३. तिलक देश के दु:ख-दैन्य और आत्मशक्ति के अभाव को देखकर अत्यधिक पीड़ित थे । भारतीय जनता की जीवन के प्रति उदासीनता और विमुखता उनके लिए असह्य हो रही थी । तिलक ने गीता को अपना आधार बनाकर भारतीयों के सुप्त

१- दिनकर-- संस्कृति के चार अध्याय, १६५६, दिल्ली, पृ० ४७६

आत्म गौरव और आत्मबल को जगाने में असाधारणरूप से कार्य किया । आत्म-रक्षा और न्याय के लिए प्रयुक्त उपादेय साधनों को भी तिलक धर्म के अन्तर्गत ही स्वीकार करते थे । अहिंसा के समर्थक होते हुए भी हिंसा को उन्होंने पूर्णतया नकारा नहीं । आपत्तिकाल में स्वरक्षा हेतु प्रयुक्त हिंसा न्यायोचित है, आततायी को उचित दण्ड मिलना ही चाहिए, ऐसी उनकी धारणा थी । तत्कालीन विषम परिस्थिति में तिलक की आशावादी सक्रिय विचारधारा प्राण संचार करने में, दुःखी निराश भारतीय जनता में आशा की किरण लेकर प्रकट हुई थी । तिलक का विशेष महत्त्व भारतीय जनता में पुनर्जागरण का सन्देश देने में था । उनका आध्यात्म सामाजिक जीवन में बाधक नहीं, साधक बनकर आया था । संसार के प्रति उपेक्षा भाव उन्होंने कभी नहीं रखा । फलत: सुखी, स्वस्थ और स्वाधीन जीवनयापन की भावना का प्रादुर्भाव हुआ । यह तो निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि यदि किसी कार्य को करने की कामना रहेगी तो मार्ग भी स्वत: प्रशस्त होता चलेगा । गार्हस्थ्य जीवन को ही तिलक ने कर्म-योग की संज्ञा प्रदान की तथा उसको पारलौकिक जीवन का पूरक माना जाने लगा ।

१४. सांस्कृतिक उत्थान में अरविन्द (१८७५ ई०) का सहयोग भी कम प्रशंसनीय नहीं । उन्होंने मानवमात्र में दिव्य शक्ति के विकास पर आग्रह प्रकट किया था । अरविन्द ने आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक उन्नति पर भी बल दिया था । वस्तुत: वह पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता और भारतीय आध्यात्मिकता का समन्वयात्मक रूप देखना चाहते थे । मानव जीवन में निरन्तर विकास की प्रक्रिया की स्थापना करते हुए उन्होंने अति-मानस की कल्पना की थी । समस्त मानवता को उसके सभी अंश में दिव्य स्तर पर रूपान्तरित करना ही उनका दार्शनिक लक्ष्य था । उनकी साधना-पद्धति में भक्ति, ज्ञान, कर्म आदि सभी मार्गों का समन्वयात्मक रूप उपलब्ध था । अरविन्द न तो वैयक्तिक उन्नति में विश्वास करते थे और न सामाजिक सेवा में ही इसके विपरीत वह व्यक्ति के स्वभाव में आमूल परिवर्तन चाहते थे ।

१५. भारत भू पर गांधी (सन् १८६९) का अवतरण एक युग प्रवर्तक के रूप में हुआ जिनका मूल मंत्र `अहिंसा` था । शारीरिक बल की अपेक्षा आत्मिक संयम को उन्होंने अधिक श्रेष्ठ घोषित किया । सांस्कृतिक प्रेरणा के साथ-साथ इनका राजनीति में भी कम योग नहीं था, लेकिन राजनीति जैसी कूटनीति में भी उन्होंने अध्यात्म अस्त्र `अहिंसा` का ही पल्ला पकड़े रखा । गांधी जी ने धर्म को जीवन का मुख्य अंग स्वीकार

किया और उसी सिद्धान्त को सामूहिक रूप से समाज पर भी आरोपित करने का प्रयास किया । मानव मात्र की मुक्ति के वह पक्षपाती थे । धर्म को क्रियात्मक रूप देने तथा अधिक से अधिक मानव मात्र से एकाकार होने की भावना से ही उन्होंने राजनीति के सक्रिय जीवन में प्रवेश किया था । वस्तुत: वह राजनीति के लिए धर्म को अनिवार्य मानते थे । जीवन के हर क्षण का, हर गतिविधि का, चाहे वह शिक्षा हो, विज्ञान हो, कला ब हो, संस्कृति हो अथवा व्यापार और उद्योग हो-- सभी का वह आध्यात्मिकरण चाहते थे । राष्ट्रीय-सेवा उनकीआध्यात्मिक साधना थी । उनको निखिल विश्व का साम्राज्य भी आत्मिक मुक्ति के सम्मुख तुच्छ प्रतीत होता था । विश्व-सेवा ही वस्तुत: उनके लिए मोक्ष का पथ था । राजनीति उनके लिए मोक्ष तथा सनातन शान्ति की ओर अग्रसर होने का पथ थी । अत: धर्महीन राजनीति को वह स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे ।

१६. 'सत्य' और 'अहिंसा' का प्रयोग केवल उपयोगितावादी दृष्टिकोण अथवा तत्कालीन परिस्थिति के अनुकूल समझ कर नहीं किया गया था, वरन् अहिंसा को उन्होंने एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया था । उनकी 'अहिंसा' निस्सहायता या दुर्बलता के कारण नहीं उद्भूत हुई थी, अपितु सामर्थ्य से उत्पन्न आत्मिक बल का परिणाम थी । गांधी जी ने किसी भी धर्म को हेय या अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देखा था । सभी धर्म एकमात्र उसी अव्यक्त सत्ता का मार्ग दिखाने वाले हैं , ऐसी उनकी मान्यता थी । नारी जाति और गार्हस्थ्य जीवन के प्रति उनकी प्रगाढ़ निष्ठा और श्रद्धा थी । उनके स्वयं के जीवन में साधक और गार्हस्थ्य का समन्वय था । जीवन के अंतिम समय में अछूतोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यों में उन्होंने अपना सर्वस्व लगा दिया था ।

१७. सांस्कृतिक दृष्टि से रवीन्द्र की देन भी कम नहीं थी । विश्व-साहित्य को तो उनकी अनुपम देनथी ही, स्वदेश में भी सामाजिक क्रान्ति में वह पर्याप्त सफल हुए थे । विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम की अनुगूंज रवीन्द्र-साहित्य में पर्याप्त दिखाई पड़ती है । इनके सृजन का अनुपम प्रभाव बंगला साहित्यकारों पर ब ही नहीं, हिन्दी साहित्यकारों पर भी पड़ा ।

१८. आधुनिक हिन्दी साहित्य पर सांस्कृतिक आन्दोलनों का तात्कालिक प्रभाव पड़ा । बीसवीं शती के साहित्यकारों पर ब्रह्म समाज और आर्य समाज का प्रभाव नगण्य-सा रहा । आधुनिक छायावादी कवियों को मुख्यत: विवेकानन्द की मानवतावादी और व्यावहारिक वेदान्त विचारधारा ने अत्यधिक प्रभावित किया । आलोच्य कवि

'निराला' पर तो उनका अभूतपूर्व प्रभाव था । अध्यात्म चिन्तन, अखण्ड राष्ट्रीय भाव, कर्मठ गार्हस्थ्य जीवन और रहस्य भावना की जो तात्कालिक साहित्य में चेतना दिखाई पड़ती है वह प्रच्छन्न रूप से विवेकानन्द तथा अन्य सांस्कृतिक आन्दोलनों का ही प्रभाव परिलक्षित करती है । छायावादी काव्य एक नवीन मानवतावादी सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित था । गांधी, अरविन्द, रवीन्द्र आदि का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा । भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की स्थापना ही इन सुधारकों और धार्मिक व्यक्तियों ने की और इन सार्वभौम तत्वों को ही छायावादी कवियों ने अपना लक्ष्य बनाया ।

राजनैतिक

१६. सन् १८५७ के स्वाधीनता आन्दोलन की असफलता के पश्चात् वैधानिक रूप से स्वाधीनता प्राप्ति के लिए संघर्ष सन् १८८५ के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् प्रारम्भ होता है । यों तो नव जागरण की पृष्ठभूमि सांस्कृतिक आन्दोलनों द्वारा ही रांधी जा चुकी थी, लेकिन वह मानसिक क्रान्ति तक ही सीमित थी । राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय रूप राष्ट्रीय कांग्रेस से ही प्रारम्भ होता है । १६ वीं शती में कांग्रेस की उपलब्धि शून्य ही रही, क्योंकि एक तो इसकी चेतना का स्फुरण उच्च वर्ग तक ही सीमित था, दूसरे इसकी प्रवृत्ति सुधारवादी थी । कांग्रेस को सरकार की न्याय-नीति पर अपूर्व आस्था थी और भारत पर इनका आधिपत्यवह दैवीय मानते थे[1] । लेकिन दुर्भाग्य वश कांग्रेस की सुधारवादी प्रवृत्ति का उत्तर सदैव सरकार द्वारा प्रतिक्रियात्मक ही रहा । राष्ट्रीय कांग्रेस की वैधानिक मांग के प्रति सरकार की उदासीनता ही बीसवीं सदी में असंतोष के रूप में उभरी थी । वैधानिक आन्दोलन की व्यर्थता का आक्रोश सर्वप्रथम तिलक ने प्रकट किया । कांग्रेस में वैचारिक वैभिन्य के कारण

१- उस समय के कांग्रेस के नेता ब्रिटिश सरकार की नेक-नियती पर विश्वास रखते थे और उनका यह ख्याल था कि ज्यों- ज्यों भारतीय अपने में योग्यता प्रतिपादित करते जायेंगे, त्यों-त्यों सरकार उनके न्यायोचित अधिकार उनको प्रदान करती जायगी । उनका विश्वास था कि भारत में अंग्रेज़ों का आगमन इतिहास की एक आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि भारत के कल्याण के लिए ही ईश्वर की प्रेरणा से इस जाति का यहां आगमन हुआ है । ब्रिटिश शासन उनकी दृष्टि में एक अच्छा शासन था ।...... कांग्रेस के नेताओं को राजभक्त होने का बड़ा गर्व था ।' नरेन्द्र देव --कांग्रेस के प्रस्ताव, १६३१ ई०, बनारस, पृ० २२-२३ ।

दो दलों --नरम और गरम -- की स्थापना हुई ।गरम दल के नेतृत्वकर्त्ता लोकमान्य तिलक,विपन चन्द्रपाल तथा लाला लाजपतराय आदि गणमान्य नेता थे तथा नरम दल के गोखले आदि । गरम दल के नेताओं ने सुधारवादी वैधानिक आस्था को त्याग करके निर्णयात्मक ढंग से संघर्ष करने के लक्ष्य को अपनाया । सरकार की अवहेलनापूर्ण नीति के कारण कांग्रेस को प्रस्तावों की निरर्थकता का प्रमाण मिल ही चुका था, फलत: उनके उभरते हुए आक्रोश की अभिव्यक्ति १६०५ई० के बंग-भंग पर दृष्टिगत होती है । बंग-भंग के साथ ही देश में तीव्र आक्रोश की लहर व्याप्त हो उठी और १६०६ई० में कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस का लक्ष्य `पूर्ण स्वराज्य` घोषित कर दिया गया । `आर्थिक बहिष्कार` की नीति को अपनाकर गरमदलीय नेताओं ने अपनी सक्रिय नीति का प्रमाण प्रस्तुत किया । धीरे-धीरे गरम दलीय लोग भी उसके समर्थक बनते गए ।

२०. राजनीतिक चेतना के विकास में तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां भी पर्याप्त सहायक हुईं । जापान की रूस जारशाही पर विजय ने भारत पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाला । जापान दुर्बल राष्ट्रों का प्रेरक बन गया । अब युरोप और रशिया के लिए अजेय शक्ति नहीं रह गयी थी, दुर्बल राष्ट्रों में भी राष्ट्रीयता और आत्मविश्वास की भावना प्रबल होने लगी थी । सन् १६०६ के कलकत्ता अधिवेशन का `पूर्ण स्वराज्य` का प्रस्ताव इन समस्त राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं को ही प्रतिफलन था । जैसे जैसे देश में स्वतन्त्रता की भावना प्रबल होती जा रही थी, वैसे वैसे सरकार का दमन-चक्र तीव्र होता जा रहा था । सन् १६०७ में राजनीतिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । लाला लाजपतराय, सरदार भगत सिंह का देश से निर्वासन हुआ । १६०८ ई० में तिलक को ६ वर्ष का कठोर कारावास मिला, १६१० ई० में प्रेस ऐक्ट द्वारा प्रेस की स्वतन्त्रता का अंत, तथा राष्ट्रीय गीत के गायन को राजनीतिक अपराध की मान्यता प्रदान की गयी । दमन के अनवरत संघर्ष में भी इस आन्दोलन को आंशिक सफलता मिली । सन् १६११ में बंग-भंग के प्रस्ताव को रद्द कर दिया गया ।

२१. सन् १६१६ में ऐनीबेसेण्ट द्वारा स्थापित `होमरूल लीग` से देश में अपूर्व क्रान्ति हुई । सन् १६१४ के विश्व-युद्ध के फलस्वरूप देश में अपुर्व अशांति का साम्राज्य था । देश में क्रान्तिकारी संगठन भी बनने लगे थे । यह आतंकवादी संगठन हिंसात्मक कृत्यों द्वारा आतंक फैलाकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रयास में सक्रिय थे । भारत में हो

नहीं, विदेशों में भी भारतीयों ने क्रान्तिकारी संगठनों का निर्माण किया था ।इन क्रान्तिकारी संगठनों के दमन के लिए सरकार ने सन् १६१५ में 'डिफेन्स आफ इण्डिया ऐक्ट' पास किया तथा बहुत से विप्लवकारी नजरबन्द कर लिए गए । प्रथम विश्व-युद्ध में देश ने इस आशय से ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया था कि विजित होने पर वह भारतीयों की स्वराज्य की मांग पर सहानुभूति पूर्ण विचार करेगी । महासमर में दिए भारतीयों के अपूर्व सहयोग और बलिदान का प्रतिकार सन् १६१६ के रौलेट बिलों के रूप में प्राप्त हुआ । इन बिलों द्वारा सरकार के हाथ में दमन का असाधारण अधिकार आ गया । रौलेट ऐक्ट के विरोध में गान्धी जी द्वारा सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात हुआ । देशव्यापी हड़ताल में अभूतपूर्व सफलता मिली । १६२०-२२ के असहयोग आंदोलन में 'हिन्दु-मुस्लिम' दोनों ने एक सूत्र में आबद्ध होकर संघर्ष किया । सरकारी पदों, स्कूलों, अदालतों तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की योजना बनी, राष्ट्रीय विद्यालय और पंचायतों की स्थापना की गयी । सन् १६२१ के असहयोग आन्दोलन से देश में नव चेतना, नवस्फूर्ति, नव शक्ति का स्फुरण हुआ । गांधी जी के नेतृत्व में अब यह आन्दोलन जन-आन्दोलन बनता जा रहा था ।

२२. इस अपूर्व जागृति की पृष्ठभूमि में अनेक परिस्थितियां थीं -- जलियां वाला बाग का अमानुषिक हत्याकांड, तुर्की के सम्बन्ध में मुसलमानों के प्रति सरकार का विश्वासघात तथा १६१७ई० की लेनिन के नेतृत्व में हुई समाजवादी रूसी क्रान्ति ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं थीं जिसने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्रतर बनाया । 'रूसी क्रान्ति' का सबसे आकर्षक परिणाम यह हुआ कि साम्यवाद की विचारधारा से एशिया के देश प्रभावित होने लगे । मजदूरों का संगठननवीन दृष्टिकोण को लेकर संगठित होने लगा । मजदूर और किसान राजनीति में अधिक सक्रिय भाग लेने लगे । सन् १६२१ का समय तीव्र संघर्ष का समय था । जन-संघर्ष अत्यधिक उग्र रूप धारण करता जा रहा था । इस तीव्रता का प्रत्यक्ष प्रभाव 'प्रिंस आफ वेल्स' के पूर्ण बहिष्कार के रूप में दिखाई पड़ता है । सरकार कांग्रेस की अकल्पित सफलता को देखकर क्षुब्ध हो उठी । कांग्रेस के सेवादल को अवैध घोषित कर दिया गया । बहुत बड़ी संख्या में स्वयंसेवक पकड़े जाने लगे, लेकिन इस पकड़-धकड़ ने अग्नि में घृत का काम किया । देश के नवयुवक अपने जीवन की आहुति देने के लिए अग्रसर होने लगे । दुर्भाग्य से चौरा चौरी की घटना घटित हो जाने के कारण एकाएक इस आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया ।

२३. 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के एकाएक स्थगित कर दिए जाने से राष्ट्र की बढ़ती हुई शक्ति को बहुत धक्का लगा । इस आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति की कल्पना इसी बात से की जा सकती है कि "बम्बई के तत्कालीन गवर्नर जार्ज लायड ने खानगी तौर पर कहा था कि गांधी जी ने खुद ब खुद इस आन्दोलन को १९२१ में बन्द न कर दिया होता तो वह सफलता स के बिल्कुल नजदीक ही पहुंच गया था[१]।" तत्कालीन आन्दोलन की प्रखरता और दुर्धर्षता को चर्खा, शराब बन्दी, शिक्षा आदि 'रचनात्मक कार्यों' की ओर मोड़ कर समस्त उपलब्धि को कम कर दिया गया, कुछ समय तक देश का भाग्य अनिश्चित स्थिति में झूलता रहा । १९२७ में एक बार पुन: देशव्यापी उत्तेजना की लहर फैली । इसकी पृष्ठभूमि में भी साइमन कमीशन की योजना-- जिसमें एक भी भारतीय नहीं लिया गया था -- । साइमन कमीशन का सर्वदलीय बहिष्कार हुआ, उसका हड़ताल, जलूस और काले झण्डों द्वारा स्वागत किया गया । उधर सरकार ने भी अपना अमानुषिक क्रूर दमन चक्र प्रारम्भ कर दिया, लेकिन इस जन-जागरण को रोक सकना अब सम्भव नहीं था । आक्रोश और उत्तेजना दिन-प्रति-दिन तीव्र होती जा रही थी । मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वतन्त्रता' को अपना लक्ष्य घोषित किया । जन आन्दोलन निरन्तर संघर्ष का सामना करते हुए अग्रसर हो रहा था । २६ जनवरी १९३० को सम्पूर्ण देश में पूर्ण स्वराज्य दिवस उत्साह और उमंग से मनाया गया । विराट सभाएं और प्रदर्शन हुए, व्यवस्थापक सभाओं से सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया । पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष की शपथ ली गई, उस समय के उत्साहपूर्ण वातावरण को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि अब पूर्ण स्वतन्त्रता मिल कर ही रहेगी । नमक कानून विरोधी आन्दोलन भी जोर पकड़ रहा था । नमक सत्याग्रह के साथ-साथ मादक द्रव्य निषेध तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का कार्य भी जोरों से चला । विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना दिया जाने लगा , पुलिस के अत्याचार तथा पकड़-धकड़ से जनता का आवेग और भी तीव्र होता जा रहा था ।

२४. भारत की इस अपूर्व राष्ट्रीय क्रान्ति की ओर विश्व के विचारशील लोग निस्पलक नेत्रों से देख रहे थे । जन-आन्दोलन के बढ़ते हुए वेग से चिन्तित हो अन्त में सरकार ने ५ मई को गांधी जी को बन्दी बना लिया । गांधी जी के पकड़े जाने से देश में हड़तालों एवं सभाओं का वेग और भी तीव्रतर हो गया । सरकार दिन-प्रति-दिन नये-नये अध्यादेश निकाल रही थी । कांग्रेस के समस्त ~~संस्थ~~ संगठनों को अवैध घोषित

१- जावड़ेकर : आधुनिक भारत, पृ० १८९

कर दिया गया था । प्रेस आर्डिनेन्स द्वारा प्रेस की स्वतन्त्रता छीन ली गयी। ये शान्तिमय पिकेटिंग, सरकारी अफसरों के सामाजिक बहिष्कार तथा करबन्दी आन्दोलन को रोकने के लिए भी आर्डिनेन्स पास किए गए । जेलें पूरी भर गई थीं । असीमित लाठी प्रहार हुए । निहत्थी जनता को बुरी तरह पीटा गया । स्त्रियों-बच्चों तक पर अमानुषिक अत्याचार किए गए, लेकिन आन्दोलन दिन-प्रति-दिन प्रगति करता गया । ऐसा दृश्य दिखाई देने लगा मानो कांग्रेस ब्रिटिश राज्य की प्रतिस्पर्द्धी राज-संस्था हो और भारतीय जनता पर ब्रिटिश शासन नहीं, अपितु कांग्रेस की अबाध सत्ता का ही शासन हो । साम्राज्यवादी शक्तियाँ चिन्तित हो, कांग्रेस से समझौता करने को उत्सुक हो उठीं । फलतः गांधी-अरविन समझौता हुआ । गांधी-अरविन समझौता का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दृष्टि से अपूर्व महत्व था -- "आधुनिक भारत के इतिहास में यह अपूर्व बात थी कि कांग्रेस का आन्दोलन बन्द करने के लिए साम्राज्यशाही को कांग्रेस के नेताओं से बराबरी का व्यवहार करना पड़ा[१]।" इस समझौते के साथ ही समस्त अध्यादेश समाप्त कर दिए गए । सत्याग्रहियों को छोड़ने का आदेश दे दिया गया । कांग्रेस ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया । गांधी जी द्वितीय गोलमेज परिषद् के प्रतिनिधि बने, पर भारतीय जनता के समर्थन में कुछ न हो सका । गोल मेज परिषद् का अन्त विफलता में हुआ । शासकीय वर्ग समस्त प्रकार के अवांछनीय कृत्यों का आश्रय ले रहा था । दमन नीति द्वारा आशय की पूर्ति न होते देखकर सरकार ने भेद-नीति का आश्रय लिया -- हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का सूत्रपात हुआ ।

२५. सन् १९३५ में 'गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया' ऐक्ट का विधान बना । सन् १९३५ में केन्द्रीय असेम्बली का निर्वाचन होने वाला था । इस निर्वाचन में कांग्रेस ने भाग लेकर सात प्रान्तों में बहुमत प्राप्त कर मंत्रि मण्डल स्थापित किए । सरकार १९३५ के विधान को भारत में कार्यान्वित करने में सफल न हो सकी । देश में अपूर्व क्रान्तिपूर्ण एवं उत्साहपूर्ण वातावरण था भारतीय जनता अब किसी भी रूप में आंग्ल शासकों की दासता स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं थी । शासक वर्ग की अनाधिकार चेष्टाएं बढ़ती जा रही थीं । सन् १९३९ ई० में द्वितीय महा समर में कांग्रेस की बिना स्वीकृति के ही देश को युद्ध के भयंकर दावानल में झोंक दिया गया । कांग्रेस ने त्यागपत्र दे दिया प्रांतों का शासन गवर्नरों के अधिकार में चला गया । सन् १९४२ ई० में गांधी जी ने अन्तिम

१- जावडेकर : आधुनिक भारत । पृ० २१०

स्वतन्त्रता आन्दोलन का सूत्रपात किया । ८ अगस्त १९४२ को बम्बई में कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक हुई । उसमें 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । भारत स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर सर्वस्व बलिदान करने को उद्यत था । सरकार ने आन्दोलन का दमन करने का निश्चय किया और ९ अगस्त १९४२ के प्रात:काल गांधीजी तथा अन्य कार्यकर्ताओं को बन्दी बना लिया गया । इस घटना से देश में भयंकर उपद्रव प्रारम्भ हो गया । अस्वस्थ होने के कारण सन् १९४४ में गांधी जी छोड़ दिए गए । द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने पर सरकार ने भारत को स्वतन्त्रता देने का निर्णय किया । सन् १९४६ में संघ शासन की नींव पड़ी । सरकार की भेद-नीति कारगर हो चुकी थी । १५ अगस्त १९४७ ई० को -- पाकिस्तान और हिन्दुस्तान-- विभाजन के रूप में देश ने अपने अकथ बलिदान का वरदान पाया । फलस्वरूप देश स्वतन्त्र घोषित कर दिया गया । हिन्दु-मुस्लिम दंगों के रूप में भारतीय जनता ने स्वतन्त्रता देवी का स्वागत किया । इन साम्प्रदायिक झगड़ों से देश को भयंकर विपत्ति का सामना करना पड़ा । देश स्वतन्त्र हो गया लेकिन आंग्ल शासकों द्वारा जो द्वेष का बीजारोपण कर दिया गया था, वह आज तक निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है ।

आर्थिक

२६. भारतीय जनता को प्रथम बार ऐसे शासक वर्ग की अधीनता में रहना पड़ा, जिसका उद्देश्य राजनीतिक न होकर आर्थिक था । व्यापारिक बुद्धि से आए आंग्ल व्यापारी भारतीय धन-धान्य को पाकर शोषक शासक बन बैठे थे । वस्तुत: प्रथम व्यापार का ही आकर्षण था जिसने ब्रिटेन को भारत की ओर आकर्षित किया था । लेकिन शक्ति प्राप्त करने के पश्चात भी बहुत समय तक व्यापार उनकी प्राथमिक आवश्यकता रहा । शासकीय दृष्टि से भी व्यापारिक-बुद्धि का ही प्रयोग किया जाता था[1] । इन पाश्चात्य शासकों की व्यापारिक बुद्धि ने भारतीय अन्तर्देशीय व्यापार को पूर्णतया छिन्न भिन्न कर दिया था । आंग्ल शासकों के साथ प्रकृति ने भी पूर्ण सहयोग किया -- १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी का प्रथम दशक महामारियों तथा दुर्भिक्षों के लिए विशेष उल्लेखनीय है । इसके साथ ही शासक वर्ग

1. It was the lure of trade that brought Britain to India. Even after the assumptionof authority, trade remained for long the first British interest. Administration was long conducted with a view to commercial advantage.
Humayun Kabir : The Indian Heritage : 1955, Bombay, P. 123.

से कोई सहायता या सहानुभूति नहीं मिल रही थी । यदि शासक वर्ग ने आर्थिक पक्ष पर तनिक भी सहिष्णुता पूर्वक सोचा होता या उसकी आवश्यकता से अधिक शोषक वृत्ति न रही होती तो बहुत सम्भव है, जनता में इतना असंतोष न फैल पाता । दुर्भिक्षों से पीड़ित जनता की उपेक्षा कर महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती में संलग्न शासक वर्ग की नीति को सहज ही समझा जा सकता है । उनको अपना स्वार्थ ही प्रधान था ।

२७. इंग्लैण्ड का औद्योगिक विकास बहुत कुछ भारतीय धन पर हुआ था । प्लासी के बाद इंग्लैण्ड का औद्योगिक रूप में विकास भारत की आर्थिक ह्रास की ही प्रतिक्रिया थी[१] । शासक होने के बाद भी उनकी शोषक-वृत्ति किसी-न-किसी रूप में बढ़ती ही गई, वरन् यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि शासक बनने से शोषण के और अधिक माध्यम और अधिकार प्राप्त हो गए ।

२८. सबसे बुरी दशा किसान वर्ग की थी । खेती पर बोझ बढ़ता जा रहा था । उत्पादन की उन्नति का कोई प्रयास दिख नहीं रहा था । भारत का राष्ट्रीय आर्थिक ढांचा कृषि उत्पादन पर ही निर्भर था । किसानों पर कर का बोझ दिन-प्रति-दिन बढ़ता जा रहा था । दिन-प्रति-दिन ऋण के भार से किसान की कमर चरमरा रही थी । किसानों का भूमि पर से आधिपत्य उठता जा रहा था । वह लगान देकर दूसरे की भूमि पर खेती करने वाले काश्तकार बनते जा रहे थे । स्थिति यहां तक बढ़ जाती थी कि कुछ किसानों की स्थिति भूमिहीन किसान के रूप में परिणत हो जाती थी । फलत: खेती पर निर्भर करने वाला आबादी का एक तिहाई से अधिक भाग खेत मज़दूर बन गया । भारत की आर्थिक स्थिति को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए

---

1. The drain of wealth from India was a contributory factor in the industrial development of England ...... the magnificent industrial structure of England which began to rise after Plassey was largely built upon the ruins of Indian manufacture. There was according to the British historians themselves, a close relation between the Industrial Revolution in England and the establishment of British rule in India.
Dr. Tarachand : History of the Freedom movement in India. Volume I, 1961, Delhi : Page 388.

आंग्ल शासकों ने ज़मींदार के रूप में अपनी शोषण शक्ति का प्रयोग किया । ~~औपनिवेस~~ औपनिवेशिक देश में साम्राज्यवाद की जो निर्मम हरकतें रहती हैं, वह सब विकृतियां ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भारत में आ गई थी । ज़मींदार वर्ग शासक वर्ग का सबसे बड़ा सहायक सिद्ध हुआ । आंग्ल शासकों ने छुट पुट प्रलोभन और नाम मात्र का अधिकार देकर ज़मींदारों के माध्यम से अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने में असाधारण सफलता प्राप्त की थी । ज़मींदार वर्ग ~~के~~ आंग्ल शासकों का इसलिए समर्थक था, ; क्योंकि उसे अपने हितों की सुरक्षा उनके शासन-काल में ही दिखती थी । यही कारण है कि "जब भारत की जनता स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रही थी और किसानों के संघर्ष राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य प्रेरक शक्ति बने हुए थे, तब हर प्रांत में ज़मींदार-संघ,ज़मींदार एसोसिएशन या ऐसे ही दूसरी संस्थाएं अंग्रेज़ी राज की वफादारी की कसमें खाया करती थीं ।"[१]

२६. शिकमीदार शिकमी की व्यवस्था हो जाने के कारण किसानों के बहुत से शोषक हो जाया करते थे । इन मुफ़्तखोरों के अतिरिक्त किसान को लगान भी देना पड़ता था । लगान तथा इन मुफ़्तखोरों को भरने के लिए किसान कर्ज लेता था और उससे जीवन पर्यन्त ~~व~~ उऋण नहीं हो पाता था । महाजन उस पर हर प्रकार का अत्याचार कर सकता था यहां तक कि उसकी प्राण प्रिय भूमि भी उससे छीनी जा सकती थी । पाश्चात्य शासन से पूर्व भूमि को गिरवी रखने की प्रथा नहीं थी लेकिन नये कानून और अदालतों के अनुसार भूमि अब गिरवी रखी जा सकती थी । और कर्ज निश्चित समय पर अदा न होने पर वह महाजन की सम्पत्ति हो जाती ~~व~~ थी[२] । यह

१- भारत : वर्तमान और भावी -- रजनी पामदत्त, पृ० ८६ ।

2 - Moreover, where as previously it had not been customary for a creditor to seize the land of his debter, under the new laws and the systematic execution of the decrees of the courts land could now be mortgaged, and if not redeemed at the appointed time became the property of the creditor.
Vera Anstley: The Economic Development of India : 1936, P. 186.

महाजन वर्ग एक तानाशाह के रूप में ही कार्य करता था । सरकार,ज़मींदार और महाजन का भुगतान करते-करते किसान अंत में खाली का खाली रह जाता था । ज़मींदारों के अत्याचारों को इन किसान-वर्ग को मूक पशु के सदृश्य सहन करना पड़ता था ।

३०. उद्योग-धन्धों का भी ह्रास हो रहा था । विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाज़ार पर अधिकार कर लिया । घरेलू उद्योग धन्धे समाप्तप्राय थे । पतन होते हुए घरेलू उद्योग-धंधों की स्थिति का अनुभव कर गान्धी जी एवं अन्य नेताओं द्वारा स्वदेशी-आन्दोलन जिसमें ग्रामोद्योग, कुटीर उद्योग की योजना थी --का सूत्रपात किया गया था लेकिन देश को घोर दारिद्र्य से मुक्त करने की इन छुट पुट योजनाओं में सामर्थ्य नहीं थी । गांधी जी ने सर्वप्रथम ग्रामों के विकास पर बल दिया क्योंकि वह समझते थे कि भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए ग्रामों पर ध्यान देना ही आर्थिक दृष्टि से अधिक फलप्रद होगा । गांधी जी की राजनीति उस निर्धन शोषित किसान पर केन्द्रित थी, जो अज्ञानता में डूबा, अनियमित मानसून पर निर्भर करता था,तथा महाजनों की मुट्ठी में रहता था । प्रथम महायुद्ध के प्रारम्भ तक औद्योगिक दृष्टि से सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया था । प्रथम महायुद्ध के बाद जो थोड़ा-बहुत इस दृष्टि से सोचा गया, उसमें भी एकतरफा नीति का अनुसरण किया गया । भारतीयों को सरकारी व्यापार में छोटा-मोटा भागीदार बनाने का उद्योग होने लगा था, इस पृष्ठभूमि में भी शासक वर्ग का एक स्वार्थ था, वह यह कि भारतीय व्यापारियों का हित जुड़ जाने से ब्रिटिश व्यापारियों की सुरक्षा स्वत: रहेगी । निस्सन्देह भारत सरकार ने अपनी आर्थिक नीति में ब्रिटेन के वाणिज्य और व्यवसाय के हितों का सदैव ध्यान रखा था[१] ।

३१. यौरोपीय युद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार को भारत को कृषि प्रधान देश बनाए रखने की नीति में परिवर्तन करना पड़ा था, क्योंकि युद्ध कालीन संकट की स्थिति में भारत,साम्राज्य की रक्षा में तभी सहायक हो सकता था जब उद्योग-व्यवसाय की काफी उन्नति की जाती । दूसरा इंग्लैण्ड के पूंजीपतियों के लाभ के लिए भी भारत के उद्योगों का विकास आवश्यक सा प्रतीत होने लगा था । युद्ध की समाप्ति के साथ

१- There is no doubt that the economic policy of the British adminstration in India never seriously lost sight of the permanent interests of British industry and commerce. K.M.Panikkar: The Foundations of New India P. 87.

ही लोहे और फौलाद के कारखानों की स्थापना हुई साथ ही संरक्षण की नीति को भी सरकार ने कुछ प्रश्रय दिया । सन् १९२४ में लोहे तथा फौलाद के व्यवसाय को संरक्षण मिला ।युद्ध की सबसे बड़ी प्रतिक्रिया यह हुई कि अत्यधिक आर्थिक संकट के कारण अपने अधिकारों से अनभिज्ञ जनता में भी विद्रोह का-सा भाव बढ़ने लगा ।धनी वर्ग तथा पुंजीपति वर्ग सरकार का समर्थक था । सरकार का घोर विरोधी अभी तक केवल मध्यम वर्ग ही था पर युद्ध के बाद साधारण जनता में भी विद्रोह और जागृति का भाव आया । सरकार को अपने हितों की चिन्ता हुई । मध्यम वर्ग का सहयोग सरकार के लिए आवश्यक हो गया, इसके लिए सरकार ने कूटनीति का प्रयोग किया । उसने देशी व्यवसाय और उद्योग की उन्नति को लक्ष्य में रखकर संरक्षण की नीति, जो कि मध्यम वर्ग की विशेष मांग थी, उसे अपना कर मध्यम वर्ग को भी सन्तुष्ट कर लिया । शासकीय दृष्टि से कुछ अधिकार देकर नरम दल को भी कांग्रेस से अलग करके अपना सहयोगी बनाने में वह सफल हो गई । लेकिन इन समस्त योजना की पृष्ठभूमि में ब्रिटिश लोगों का स्वार्थ छिपा हुआ था । साम्राज्यवाद की नव आवश्यकताओं के विचार से ही भारत सरकार की नीति में परिवर्तन हुआ था, जिससे देश को विशेष लाभ नहीं हुआ किन्तु सरकार के पक्ष को अवश्य लाभ हुआ । 'असहयोग आन्दोलन' के समय भारत के बड़े बड़े व्यापारी, व्यवसायी और नरम दल के लोग केवल आन्दोलन से पृथक ही नहीं रहे, वरन् आन्दोलन के दबाने में सरकार की सहायता भी करते रहे ।

३२. सरकार की शोषण की ~~नीति~~ प्रवृत्ति आवश्यकतानुसार नये-नये मोड़ लेती रही । १९ वीं शती में भारत पर ब्रिटेन की औद्योगिक पुंजी का आधिपत्य था । २० वीं शती में यह शोषण बैंक- पुंजी के माध्यम से प्रारम्भ हुआ । द्वितीय महायुद्ध के पूर्व साम्राज्यवाद के विरुद्ध उभरते हुए विद्रोहात्मक स्वरूप की पृष्ठभूमि में शोषण का आधिक्य ही था[१] । सन् १९२९ के आर्थिक संकट का उग्र रूप भारत में ही प्रत्यक्ष हुआ, क्योंकि भारत प्राथमिक उत्पादन पर बहुत अधिक निर्भर करता था ।द्वितीय महायुद्ध

१- "... इस काल में भारत में राजनीतिक संकट जो इतना गहरा हो गया और साम्राज्यवाद के खिलाफ भारत में विद्रोह ने जो इतना ज़ोर पकड़ लिया उसका मूल कारण शोषण की अत्यधिक बढ़ती थी ।"
भारत वर्तमान और भावी : रजनीपामदत्त, पृ० ६२

के काल में भारत का भयंकर शोषण हुआ और औद्योगिक दृष्टि से नाम मात्र भी प्रगति नहीं हुई । १६३६ ई० के आर्थिक समझौते में जिन मदों के व्यय को भारत की सैनिक रक्षा का व्यय माना गया था, वह अत्यधिक बढ़ गया । युद्ध का व्यय उस पीड़ित जनता को वहन करना पड़ा, जो पहले ही क्षुधा से पीड़ित थी । भारत का आर्थिक आधार पूर्णतया चरमरा उठा । देशव्यापी मंहगाई से जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं पूर्ण करना भी कठिन हो गया ।

३३. द्वितीय महायुद्ध भारत देश के लिए तो घातक सिद्ध हुआ ही, ब्रिटिश पूंजीवाद को भी उससे अत्यधिक आघात पहुंचा था । उसको एक बार पुन: नवीन नीति की स्थापना करनी पड़ी और वह भारतीय पूंजीपतियों के साथ संधि के रूप में प्रकट हुई । लेकिन विशेष आधिपत्य विदेशी व्यापारियों का ही था । युद्ध की चक्की में जहां जनता की स्थिति अत्यधिक पतन के गर्त में चली गयी थी, वहां पूंजीपतियों के हितों में लाभ ही हुआ था , लेकिन यह लाभ औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि में नहीं हुआ । भारतीय पूंजीपति वर्ग का औद्योगिक विकास की ओर आग्रह बढ़ने लगा । साम्राज्यवाद ने परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपने को बदला । भारत को विदेशी उत्पादन के खपत के रूप में सुरक्षित रखने के लिए भारत के बड़े बड़े पूंजीपतियों के साथ उसने समझौता किया ।

३४. खाद्यान्न की दृष्टि से देश की स्थिति और भी सोचनीय थी । द्वितीय महायुद्ध के पूर्व से ही भारत प्रति वर्ष एकयादो मिलियन के लगभग चावल विदेशों से लेता था । सन् १६४३ का बंगाल का दुर्भिक्ष बर्मा चावल के अभाव का ही परिणाम था । इसके अतिरिक्त दिन-प्रति-दिन जनसंख्या की वृद्धि से यह समस्या और भी विकट रूप धारण करती जा रही थी । सन् १६४७ में ८६ करोड़ रुपया विदेशों से खाद्यान्न सामग्री मंगाने के लिए व्यय किया गया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी । आर्थिक दृष्टि से १६४७ का वर्ष आर्थिक मन्दी का समय था[१] । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों को सर्वप्रथम खाद्यान्न की समस्या का सामना करना पड़ा। आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएं

१- "..... 1947 has rightly been described as a ' bleak economic year in India' Sir Percival Griffiths: Modern India: 1957 London, Page 187.

--निर्धारित की गयीं, जिससे देश को पर्याप्त लाभ भी हुआ परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के लगभग अठारह वर्ष व्यतीत होने पर भी भारत का विदेशों से खाद्यान्न लेने की समस्या का निवारण पूर्णतया नहीं हो सका। बहुत सी दृष्टियों से भारत ने असाधारण रूप से प्रगति की है पर खाद्यान्न समस्या पर विजय पाना अभी शेष है।

सामाजिक

३५. सामाजिक परिस्थितियाँ भी तीव्रता से परिवर्तित हो रही थीं। पुरानी मान्यताओं और मूल्यों का विघटन हो रहा था। पाश्चात्य संस्कृति के प्रकाश में नवीन मान्यताएं जन्म ले रही थीं। सामाजिक स्तर पर विभिन्न सुधारवादी आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप तथा पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के सम्पर्क से परम्परा से बन्दिनी नारी के शृंखला-पाश क्रमशः ढीले पड़ते जा रहे थे। विभिन्न सांस्कृतिक आन्दोलनों में नारी स्वतन्त्रता का स्वर सर्व प्रमुख मुखर था। नारी जाति के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव जागृत हुआ। अब नारी वर्ग किसी भी क्षेत्र में पुरुष वर्ग से पीछे नहीं समझी जाती था। स्वतन्त्रता-संग्राम में स्त्रियों ने भी सक्रिय योगदान दिया। नारी समाज में भी अपूर्व क्रान्ति और जागरण दिखायी पड़ने लगा था। पाश्चात्य नारी का उन्मुक्त व्यवहार तथा समाज में पुरुष वर्ग के सदृश्य सहयोग भारतीय समाज के लिए नवीन वस्तु थी। २० वीं शती के साहित्य में नारी जाति के प्रति अपूर्व आदर, श्रद्धा और पुनीत भावों की अभिव्यक्ति दी गयी। छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति में नारी जाति के प्रति दैवी भावना का स्फुरण दर्शनीय है। आलोच्य कवि ने नारी जाति की उपासना मात्र शक्ति के रूप में की थी तथा वह नारी स्वतन्त्रता के स्पष्ट उद्गायक थे।

३६. प्राचीन काल में नारी की स्थिति बहुत ही सम्माननीय थी लेकिन क्रमशः उसका यह सम्माननीय पद क्षीण होता गया। १६ वीं शताब्दी में उनकी पतनावस्था में सुधार लाने का स्वर मुखर होता है। राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द तथा गांधी जी प्रभृति सांस्कृतिक उत्पादन के प्रेरकों ने नारी स्वाधीनता पर बल देते हुए उन्हें धार्मिक, सामाजिक स्तर पर पुरुष जाति के समकक्ष स्वीकार किया। स्त्री-शिक्षा पर आग्रह प्रकट किया जाने लगा था। बाल विवाह, पर्दा-प्रथा के निराकरण का प्रयास होने लगा था। विवेकानन्द और गांधी जी ने इस बात को स्पष्टरूप से अनुभव किया था कि देश की उन्नति के लिए नारी जाति की मुक्ति आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। उन्होंने नारी स्वाधीनता का समर्थन ही नहीं किया, वरन्

अपने राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों में उनका मुक्त आह्वान् भी किया । यह निस्सन्देह रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि उनके द्वारा किए गए आन्दोलनों में महिला वर्ग का सहयोग अद्वितीय रहा था । राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रत्येक क्षेत्र में महिला जाग्रति ने असाधारण, प्रतिभा-शक्ति और साहस का परिचय दिया था । सभी सामाजिक बन्धनों और शारीरिक दु:खों का त्याग करने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी का सहयोग आवश्यक-सा प्रतीत होता जा रहा था । आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती ने स्त्री और पुरुष दोनों की समान शिक्षा पर ज़ोर दिया था और साथ ही दोनों के लिए स्कूल और कालेजों की व्यवस्था भी की थी । २० वीं सदी आते-आते सह शिक्षा का प्रचार भी होने लगा , अब स्त्री-पुरुष अधिक स्वतन्त्रता पूर्वक मिल सकते थे । वस्तुत: नारी-स्वतन्त्रता आधुनिक सामाजिक स्थिति की मुख्य देन है ।

३७. पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता तथा संस्कृति के प्रकाश में तथा उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जो सांस्कृतिक आन्दोलनों का सूत्र पात हुआ, उससे भारतीय समाज अपनी सुप्तावस्था से नेत्रोन्मिलन करने लगा था । परम्परा से मान्य रूढ़ मान्यताओं,विधि-निषेधों तथा अवैज्ञानिक रीति-रिवाजों और प्रथाओं के प्रति घृणा का भाव जागृत हुआ ।सामाजिक जीवन के इन गत्यावरोधों को उखाड़ फेंकने के लिए अब शिक्षित समाज व्याकुल और कृत संकल्प प्रतीत होता था । ब्रिटेन की आधुनिक समाज की सबसे मुख्य देन आलोचनात्मक दृष्टिकोण था[१] । हिन्दु समाज का वह वर्ग जो आंग्ल-शिक्षा और समाज के सम्पर्क में आ चुका था, वह प्रत्येक कार्य को आलोचना की तुला पर तौलने लगा , जहां बुद्धि उनका समर्थन नहीं करती थी , वह उनके लिए अमान्य हो जाता था। भावना के स्थान पर बौद्धिकता पर बल दिया जाने लगा । भारतीय समाज का दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक होता जा रहा था । विधि-निषेधों के पाश से मुक्त होने की भावना को प्रश्रय देने के कारण भारतीय दृष्टिकोण अधिक उदार होने लगा था । जो प्रथाएं तथा कार्य पूर्व अमान्य और पाप समझी जाती थीं, वही समयानुकूल मान्य होने लगीं । विदेश यात्रा भी स्वीकार की गयी, जाति-पांत,खान-पान

१- The critical outlook has indeed become a dominant feature of India and it is one of the basic contributions of Britain to modern India.
K.M.Panikkar: The Foundation of New India: Page 64.

के कड़े बन्धनों में भी अब उतना कसाव नहीं था। जाति के आधार पर पेशे की अनिवार्यता समाप्त होती जा रही थी । सम्मिलित कुटुम्ब जो कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ थी, वह भी बीसवीं सदी में चरमराने लगी । उच्च और निम्न वर्ग का भेद कम होता जा रहा था । अछूतोद्धार की दृष्टि से गांधी जी का प्रयास सक्रिय रहा । यद्यपि १६ वीं-२० वीं शती के सांस्कृतिक आन्दोलनों को, मानव-मानव के भेद को दूर करने का बहुत श्रेय है ।

३८. पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति के सम्पर्क से जहां कतिपय सामाजिक स्थितियों में सुधार हुआ वहां बहुत सी विकृतियां भी आयीं । शिक्षा का स्तर बहुत कुछ गिरा । आंग्ल शासकों के नवीन शिक्षा का भारत में समावेश करने का उद्देश्य भारत का अधिक से अधिक शोषण करना था[१]। जनता में जागृति लाने के दृष्टिकोण से शिक्षा की उपादेयता को नहीं अनुभव किया गया था, वरन् शासकीय सुविधा के आधार पर इसका समावेश किया गया था । यदि भारतीय समाज की उन्नति और विकास का आधार रहता तो भारतीयों की आवश्यकतानुसार शिक्षा की व्यवस्था की जाती । वस्तुत: यह शिक्षा भारतीय समाज पर आरोपित की गयी थी । शिक्षा मानव-विकास की कुंजी है, मानवतावादी विचारधारा का पोषण ही इसका मूल उद्देश्य होता है । लेकिन इसके विपरीत आंग्ल शासकों द्वारा स्थापित शिक्षा का मुख्य आधार आंग्ल-भाषा में दक्षता प्राप्त करना मात्र था[२]। भाषा के मात्र वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया गया था ।

३६. पाश्चात्य शिक्षा से भारतीय युवक समाज पर युगान्तरकारी प्रभाव पड़ा था, जो भारतीय समाज के लिए अधिक उपयोगी नहीं सिद्ध हुआ । इस शिक्षा की छत्र-छाया में एक ऐसे मध्यमवर्ग की सृष्टि हो रही थी जो श्रम की दृष्टि से पूर्णतया पंगु था । पाश्चात्य सम्पर्क में आने के कारण उनके जीवन की आवश्यकताएं भी दिन-

---

1. The majority of British administrators, however, designed a system of education that would serve best their purpose of exploiting India's resources. Humayun Kabir: The Indian Heritage, P. 123.
2. Instead of development of human personality, the chief aim of education became the attainment of linguistic proficiency in English. Humayun Kabir: The Indian Heritage, P. 124.

प्रति दिन सुरसा के मुख की तरह बढ़ती जा रही थीं । भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए इस शिक्षा का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा । यों भी अंग्रेज़ी दक्षता पाना कृषि वाणिज्य की दृष्टि से आवश्यक नहीं, साधारणतया होता यह था कि जहां अंग्रेज़ी के ढाई अक्षर पढ़े, वहां वह व्यक्ति कृषि और वाणिज्य से घृणा करने लगता था । उसको फिर कुर्सी की नौकरी आवश्यक प्रतीत होने लगती थी । परन्तु सीमित नौकरियां सब की इच्छा पूर्ति करने में असमर्थ थीं । आधुनिक शिक्षा से शासक वर्ग को अवश्य लाभ हुआ । उसका उद्देश्य एक ऐसे वर्ग का सृजन करना था जो सरकार के शासन तथा वाणिज्य में सहायक हो सके । इसकी पूर्ति इस शिक्षित मध्यम वर्ग ने पूर्णरूप से की । यह वर्ग पश्चिम से अपने विचारों का पोषण करता था और उनको जीविका के साधन भी वही लोग थे । दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए मध्यम वर्ग के लिए जीविका का आश्वासन सम्भव नहीं था । नौकरियां सीमित थीं तथा उनको चाहने वालों की जैसी अधिक प्रतिक्रिया होनी चाहिए, मध्यम वर्ग में घोर निराशा और बेचैनी का प्रादुर्भाव हुआ । यह शिक्षित वर्ग अपने को असहाय, साधनहीन तथा असुरक्षित अनुभव करता था । इसकी स्थिति बहुत दयनीय थी । आर्थिक दृष्टि से न तो यह निम्न स्तर को स्वीकार कर सकते थे और पूंजीवाद का मार्ग उनके लिए अनेक कारणों से अवरुद्ध था[१] । बेकारी दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी साथ ही असंतोष भी बढ़ने लगा । भारतीय मध्यम वर्ग विचित्र कुहासे में जी रहा था । बीसवीं सदी के साहित्यकार अधिकतर मध्यमवर्गीय थे । आर्थिक और सामाजिक स्तर की घुटन ही वस्तु स्थिति में छायावाद की पृष्ठभूमि बनी । सब तरफ से अपने प्राप्य से निराश यह कवि कल्पना की उड़ान में रहने लगे थे ।

साहित्यिक

४०. हिन्दी साहित्य में नव जागरण तथा युगान्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा हुआ था । यद्यपि साहित्य का सर्वांगीण विकास उस समय न हो सका, केवल भाव क्रांति या विषयगत परिवर्तन ही इस युग की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी । शैलीगत

१- " ..... Its members refuse to go back to a lower level of economic competence. And yet their march forward to capitalism is hampered in a thousand ways. Humayun Kabir: The Indian Heritage. P. 137-138.

परिवर्तन, नवीन विधानों का शोध तथा नव अभिव्यंजना प्रणालियों की कल्पना का तत्कालीन उभरती हुई नव जागरण की पृष्ठभूमि में न तो अवकाश ही था और न सम्भावना ही। भारतेन्दु युगीन कवियों का ध्यान तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं पर ही अधिकाधिक केन्द्रित था, यही कारण था कि तत्कालीन कवि और लेखक पत्रकार और सुधारक के रूप में दृष्टिगत होते हैं। एक विशिष्ट ~~का~~ उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर ही कविता की जाती थी और वह लक्ष्य था तत्कालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति।

४१. काव्य का सृजन परम्परानुगत रीति पर ही हो रहा था लेकिन परम्परागत रीतिकालीन प्रणाली पर अग्रसर होते हुए भी विषय की दृष्टि से काव्य रीति परम्परा के बन्धन युक्त वातावरण से निकल आया था, उसमें समकालीन समस्याएं मुखरित होने लगी थीं, कविता अधिकाधिक जन-जीवन के सम्पर्क में आने लगी थी। भारतेन्दु-काल में हिन्दी काव्य धारा नवीन विषय तथा भाव भूमि लेकर तो अवतरित हुई, पर उनमें कलात्मकता का एकांत अभाव रहा। तत्कालीन साहित्य में नवीन और प्राचीन भाव भूमियों का संसरण भी हो रहा था। तत्कालीन साहित्यकार न तो अतीत परम्परा से पूर्णतया विच्छेद ही कर पाये थे और न वे नवीनता का मोह ही त्याग सकते थे। वस्तुत: यह समय नवीनता और प्राचीनता का संधिस्थल था।

४२. भारतेन्दु जी ने सर्वप्रथम खड़ी बोली को गद्य रूप में स्वीकार किया। उन्होंने नये-नये विषयों के साथ-साथ गद्य को संवारने और ~~अ~~ सुधारने का भी प्रशंसनीय कार्य किया था। आधुनिक गद्य परम्परा का सूत्रपात नाटकों के माध्यम से हुआ था। पद्य में अभी ब्रजभाषा का ही प्रयोग चल रहा था। जीवन चरित्र तथा ऐतिहासिक विषय वस्तु को लेकर भी लेखन-कार्य हुआ। लेख तथा निबन्धों का क्रम तो अबाध रूप से चला ~~निबन्धों की~~ निबन्धों की विषयवस्तु कुछ भी हो सकती थी, ऐतिहासिक प्रसंग, राजनीति, ऋतु संहार, त्योहार, जीवन चरित्र आदि विषयों पर उन्मुक्त रूप से लिखा गया। विषय की दृष्टि से कोई बन्धन या सीमा नहीं थी। अनेक मौलिक तथा अनुवादित उपन्यासों की भी सृष्टि हो रही थी। प्रश्न साहित्य को सुन्दर कलापूर्ण बनाने का नहीं, उद्देश्य की सिद्धि का था। यही कारण है कि भाषा की शुद्धता और परिष्कार का प्रयास नहीं हुआ और न व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों पर ही दृष्टिपात हुआ। जिसको जिस दिशा में सुविधा अनुभव हुई, उसने उसी क्षेत्र को अपनाकर

लिखना प्रारम्भ किया । भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि उनके जीवन-काल में ही लेखकों का अच्छा संगठन बन गया था । प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय, बद्रीनारायण च चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट प्रभृति लेखकों ने साहित्य की अन्यतम सेवा की । भारतेन्दु जी भावात्मक क्रांति का ही व्यावहारिक विकसित रूप बीसवीं सदी में द्विवेदी जी ये के उत्थान के साथ ही दृष्टिगत होता है ।

४३. बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों में हिन्दी भाषा को सुसंस्कृत, और परिष्कृत करने का असाधारण कार्य हुआ । गद्य और पद्य दोनों साहित्य-धारा में एक ही भाषा रूप को स्वीकृत कर लिया गया । द्विवेदी जी द्वारा प्रकाशित `सरस्वती' (१९००) पत्रिका जो हिन्दी भाषा के परिष्कार की अन्यतम माध्यम बनी, इस युग की महान उपलब्धि थी । इस पत्रिका के माध्यम द्वारा द्विवेदी जी लेखकों का दिशा-निर्देश किया करते थे । `सरस्वती' पत्रिका का प्रत्येक अंक हिन्दी कविता की प्रगति, उन्नति और विकास का प्रमाणपत्र है । विषय-विस्तार की दृष्टि से द्विवेदी जी का कार्य प्रशंसनीय था, उनकी दृष्टि में अखिल विश्व की लघु से लघु और महान से महान विषय-वस्तु कविता का उपादान बन सकती थी, उनका कहना था कि चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु , भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी सभी पर कविता हो सकती है । अब कविता का विशेष क्षेत्र शृंगार तक ही सीमित नहीं था । सामाजिक, प्राकृतिक, आदि स्वतन्त्र विषयों पर फुटकर कविताएं तथा आदर्श चरित्रों को लेकर प्रबन्ध काव्य की सृजना भी प्रारम्भ हो गई थी । शृंगार का एकान्त अभाव था । उसमें प्रेम सम्बन्धी कोई विषयवस्तु ली भी गई तो उसमें अपूर्व संयम और शिष्टता का समावेश किया गया ।

४४.नायक-नायिका में राष्ट्रनायक, देशसेवक-सेविका का आदर्श पूर्ण किया जाने लगा । पौराणिक चरित्रों की अवतारणा अवतार के रूप में न होकर श्रेष्ठ मानव रूप में होने लगी थी । बाल्मीकि और व्यास का अनुकरण करते हुए तत्कालीन कवियों ने राम और कृष्ण को श्रेष्ठ महापुरुष के रूप में चित्रित किया है ताकि जन-साधारण के सम्मुख अनुकरणीय आदर्श उपस्थित हो सके । `प्रियप्रवास' में कृष्ण

एक श्रेष्ठ लोक-नायक के रूप में तथा `राधा` लोक-सेविका` के रूप में ही प्रतिष्ठित गई हैं । `जयद्रथ-वध` प्रबन्ध में एक देशभक्त वीर का चित्रण है । विश्व-कल्याण और लोक-सेवा का स्वर तत्कालीन कवियों में पर्याप्त दिखायी पड़ता है । आलोच्य काल में जीवन की प्रत्येक समस्या तथा पहलू पर कविता हुई । जीवन को यथार्थ रूप में ग्रहण करने के कारण तथा तत्कालीन समस्याओं के प्रति असाधारण रूप से जागरूक रहने के कारण ही इस युग की कविता में इतिवृत्तात्मकता का दुराग्रह परिलक्षित होने लगा था । ऐसा होना स्वाभाविक ही था, यह युग खड़ी बोली के भवन-निर्माण का युग था , उसको सजाने संवारने का नहीं । पूर्ण कलात्मक सजा-संवरा रूप छायावादी युग में ही दृष्टिगत होता है । शुक्ल जी के वक्तव्य में सत्यांश है कि --" .... अधिकतर कविताएं इतिवृत्तात्मक (matter of fact) हुई । उनमें वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वह वक्रता बहुत कम आ पाई जो रस-संचार की गति को तीव्र और मन को आकर्षित करती ।"[१]

४५. वर्णनात्मक द्विवेदी-युग के कवियों का सामान्य गुण था । निस्सन्देह नवीन विषयों का आग्रह, रीतिकालीन रूढ़ियों का बहिष्कार, भाषा का परिष्कृत शुद्ध रूप आदि ऐसी विशेषताएं हैं , जिस पर दुर्लक्ष्य नहीं किया जा सकता पर यह भी कटु सत्य है कि इस युग की कला उपदेश और उपयोगिता के दुराग्रह के कारण वर्णनात्मक, विवरणात्मक पद्यवत् होने के कारण नीरस भी हो गई थी । कल्पना प्रवणता तथा संवेदनशीलता का पूर्णतया अभाव ही रहा । लेकिन इतना होते हुए भी द्विवेदी युगीन कविता विभिन्न अन्तरालों को पार करती हुई निरन्तर विकासोन्मुख रही । चमत्कारिक, इतिवृत्तात्मक, उपदेशात्मक स्थितियों को पार करती हुई अन्त में वह भावात्मक श्रेणी में भी प्रवेश करती है । इतना निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कविता भारतेन्दु ~~युगीन-कविता~~ से विषयवस्तु तथा शैली की दृष्टि से बहुत अधिक विस्तृत धरातल पर आ गई थी । द्विवेदी-युग में सभी काव्य-रूपों, काव्य-विधाओं-- मुक्तक, प्रबन्ध और गीति काव्य -- का प्रयोग हुआ । छन्द विधान की दृष्टि से भी नवीनता का समावेश हो रहा था । संस्कृत वृत्तों के प्रयोग का आदेश भी द्विवेदी जी ने दिया था । संस्कृत के प्राय: सभी प्रसिद्ध

१- रामचन्द्र शुक्ल -- हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००३ वि०, काशी, पृ०६१२

छन्दों का प्रयोग द्विवेदी जी द्वारा हुआ, मराठी काव्य का प्रभाव भी इन पर था । एक ओर साहित्यकार संस्कृत-साहित्य से प्रेरणा ले रहे थे तो दूसरी तरफ अंग्रेजी साहित्य से भी प्रभावित हो रहे थे । राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति भी विभिन्न रूपों में हो रही थी । हिन्दी में राष्ट्रीय कविता के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे । श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न एवं मैथिलीशरण गुप्त आदि ने भारतेन्दु जी के पश्चात् राष्ट्रीय स्वर को बल दिया ।

४६. इस काल में साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता जा रहा था । अब कविता कुछ शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं रह गयी थी , उसमें जन-मानस को स्पर्श करने की अपूर्व शक्ति भी आती जा रही थी । द्विवेदी जी के अथक प्रयास से ही साहित्यिक क्षेत्र में अनेक महारथी अवतरित हुए जिन्होंने परोक्ष-अपरोक्ष रूप से द्विवेदी जी से प्रेरणा ग्रहण की । द्विवेदी-युग में कविता के क्षेत्र में ही युगान्तर नहीं हुआ, वरन् गद्य-क्षेत्र में भी उनके स्पर्श से अनेक उल्लेखनीय कार्य हुए । द्विवेदी जी के आविर्भाव के समय गद्य-साहित्य एक अनिश्चित स्थिति में था न तो उसकी कोई निश्चित साहित्यिक भाषा ही थी और न अथाह शब्द-भण्डार एवं न तो व्याकरण का निश्चित आधार ही था । गद्य एक अनिश्चित अराजकता की क्रोड़ में सांस ले रहा था । द्विवेदी जी ने `सरस्वती` के माध्यम से गद्य को संवारने एवं सुगठित करने में अपूर्व परिश्रम किया, नये लेखकों की भाषा-व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों का संकेत भी वह देते थे । गद्य के विविध रूपों का निर्देशन हुआ , विषय और उपादान भी सीमित मार्ग को छोड़कर विस्तृत धरातल पर अग्रसर हुए और सबसे मुख्य बात तो यह थी कि पाठकों तथा लेखकों की संख्या में अभिवृद्धि हुई । मौलिक सृजन के साथ-साथ द्विवेदी जी सफल अनुवादक भी थे ।

४७. इस काल में मौलिक साहित्यिक उपन्यासों के साथ ही साथ बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों का अनुवाद-कार्य भी प्रारम्भ हुआ । बीसवीं सदी के प्रथम दशक में अनेक बंगला उपन्यास हिन्दी में अनुवादित हुए । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री द्वारा भी हिन्दी का प्रचार यथेष्ट रूप में हो रहा था । निबन्ध के क्षेत्र में भी प्रगति हुई । समालोचना के क्षेत्र में भी कार्य प्रारम्भ हो गया था लेकिन अभी कृति की आत्मा का स्पर्श करने की प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती । केवल बहिरंग तत्वों के आधार पर ही कृति की समालोचना की जाती थी । साहित्यिक मूल्य रखने

वाले कतिपय जीवन चरित्रों का सृजन भी हुआ । आधुनिक लघु कहानी की जननी भी 'सरस्वती' पत्रिका ही थी । इन्दुमती, गुल बहार, ग्यारह वर्ष, दुलाई वाली आदि हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानियों का सृजन उसी काल में हुआ था । जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, राधिकारमण प्रसाद सिंह, चतुरसेन शास्त्री, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी , प्रेमचन्द आदि ने भी कहानियों के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलानी प्रारम्भ कर दी थी । लेकिन इनका पूर्ण प्रकाश छायावादी युग में ही हुआ था । हिन्दी साहित्य बंगला साहित्य से भी प्रभावित हो रहा था । हिन्दी शब्द-विकास में अंग्रेज़ी के साथ बंगला का भी पर्याप्त सहयोग रहा । बंगला के उपन्यासों के अनुवाद के कारण बंगला भाषा की कोमल कांत पदावली से लेखक गण प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । नये-नये शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे थे । संस्कृत और मराठी ने भी हिन्दी शब्द-भंडार की श्रीवृद्धि की थी ।

४८. हिन्दी कविता का सर्वाधिक उत्कृष्ट काल द्विवेदी-युग की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुए छायावादी युग को मान सकते हैं । प्रत्येक कार्य या भावना की अति का अंत प्रतिक्रियात्मक होता है , यह मनुष्य-प्रकृति का स्वभाव है । द्विवेदी कालीन कविता यदि रीतिकालीन अत्यधिक शृंगारिकता और घोर रूढ़िवादिता के विरोध स्वरूप उभरी थी तो छायावादी, स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन द्विवेदी युगीन अत्यधिक इतिवृत्तात्मकता के विरोध स्वरूप उत्पन्न हुआ था । रूढ़िबद्ध मान्यताओं को तोड़ फेंकने के लिए एक अजीब आकुलता और छटपटाहट दृष्टिगत होने लगी थी । यह स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का आधार मात्र इतिवृत्तात्मकता ही नहीं था, वरन् तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी इसके लिए उत्तरदायी थीं । इस स्वच्छन्दतावादी कविता में विषय,भाव, भाषा शैली तथा काव्य-रूपों की दृष्टि से अपूर्व परिवर्तन होता जा रहा था । साहित्य के सभी प्रतिमान परिवर्तित होते से दिख रहे थे । यों तो द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में ही कविता में नव-कल्पना तथा सूक्ष्मता का समावेश होने लगा था । लेकिन स्वच्छन्दतावाद का वास्तविक उत्कर्ष और विकास निराला, पन्त आदि की कविताओं से हुआ । रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएं बहुत पूर्व ही नवीनता रहस्यात्मकता और सूक्ष्मता के कारण प्रसिद्धि पा चुकी थीं । उन पर पाश्चात्य साहित्य का अन्यतम प्रभाव था । छायावादी कविता में इसका पर्याप्त प्रभाव देखा जा सकता है ।

४६. गद्य और पद्य दोनों साहित्य-धाराओं में कलात्मकता का आग्रह बढ़ता जा रहा था । कविता के समान गद्य-साहित्य में भी अत्यधिक चित्र विधायकता और व्यंजनात्मकता के साथ मनोवैज्ञानिकता पर भी बल दिया जाने लगा था । वस्तुत: छायावादी कविता की प्रधान विशेषता शैली की कलात्मकता, भावों की रहस्यात्मकता तथा स्वाधीन मनोवृत्ति ही थी ।यह काल समष्टि का नहीं,व्यष्टि का था, व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रहा था, लेकिन परिस्थितियां उसके पूर्णतया विपरीत थीं । देश पराधीन था । ऐसी स्थिति में व्यक्ति के अधिकार की घोषणा कर सकना पूर्णतया असम्भव था । प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी कवि अन्तर्मुखी और निराशावादी होता गया । इस अन्तर्मुखता और वेदना की क्रोड़ में ही गीतिवाद का स्वर प्रस्फुटित हुआ था । कवि व्यक्तिगत वेदना ह को अभिव्यक्ति देने लगा था । गीत, शोक-गीति,पत्र-गीति, सम्बोधि गीत तथा व्यंग्य गीति आदि विभिन्न शैलियों का गीति-परम्परा में विकास हुआ ।

५०. छन्दों की दृष्टि से युगान्तर आया आया समस्त रूढ़ मान्यताओं को बहिष्कृत कर दिया गया । यों तो द्विवेदी - युग में ही नवीन छन्दों का प्रयोग तथा तुक का बहिष्कार होने लगा था लेकिन इस काल में नियमों की एकांत उपेक्षा की गई । विषय और भाव के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया गया । अब छन्द के अंतर्गत वर्ण,मात्रा का निश्चित नियम नहीं रह गया था ।'निराला'की प्रवृत्ति सर्वाधिक विद्रोही थी । उन्होंने मुक्त छन्द में कविता करके युगान्तर ला दिया । मुक्त छन्द की कविता का प्रणयन उन्होंने १६१६ में ही किया था । वस्तु-विधान तथा अभिव्यंजन शैली में अनेक प्रकार के परिवर्तन इस काल में हुए । भाषा-शैली में कलात्मक सौन्दर्य का ध्यान दिया जाने लगा था । संस्कृत तत्सम, ध्वनि मूलक, अर्थ व्यंजक चित्रात्मक शब्दों की अवतारणा की जाने लगी थी । नाद व्यंजना एवं ध्वन्यात्मक सौन्दर्य इस युग की कविता का प्राण बना । शब्द ऐसे चुन-चुन कर प्रयुक्त किए जाते थे, जिनमें चित्र मूर्त करने की स्वत: क्षमता रहती थी । छायावादी युग में वस्तु-विधान की अपेक्षाकृत अभिव्यक्ति की कलात्मकता पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया । 'निराला' का अ काव्य अवश्य वस्तु विधान की दृष्टि से अधिक व्यापक और वैविध्यपूर्ण रहा ।

५१. विश्व के समस्त उपादानों में रहस्यात्मकता का संकेत पाना तथा ससीम का असीम में पर्यावसान ही इस समय की कविता का मुख्य आधार बनता जा रहा था । कवि अखिल सृष्टि में पशु-पक्षी से लेकर जड़ पदार्थ तक में उसी अव्यक्त सत्ता का आभास

अनुभव करने लगा था , कण-कण में उसी अलक्षित शक्ति का स्पर्श उसे व्याप्त दिखाई पड़ता था । प्रकृति एक चेतन सप्राण सत्ता के रूप में स्वीकृत की गयी । प्रकृति के उपमानों के माध्यम से आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों का प्रतीकात्मक संकेत दिया जाने लगा । `जुही की कली` एवं `शेफालिका` में वासनात्मक चित्रण के साथ-साथ दार्शनिकता का झीना आवरण भी स्वत: परिलक्षित होता है । यमुना की कल कल ध्वनि में कवि अतीत के गौरव-गान को सुनने लगा । `बादल` क्रांति का प्रेरक बन जाता है । कवि-गण स्वयं की मानसिक स्थिति के अनुसार प्रकृति के विभिन्न चित्र मूर्त करने लगे थे ।

५२. कलात्मक उत्कर्ष के साथ-साथ कविता के विषय और प उपादानों में भी परिवर्तन हो रहा था । पाश्चात्य प्रभाव का ही फल था कि भारतीय साहित्यकार यथार्थवाद की ओर अग्रसर हो रहे थे । कल्पना के झुलावे में जीवन की यथार्थता को भुला सकना अधिक दिन सम्भव न हो सका और पुन: साहित्य को हम एक भिन्न मोड़ पर प्रश्न चिह्न के रूप में खड़ा क पाते हैं । छायावाद का वैयक्तिक दुराग्रह तथा ~~अभिव्यंजना~~ अभिव्यंजना की अतिशय लाक्षणिकता की प्रतिक्रिया उत्तर छायावादी कविता के निर्माण में सहायक हुई । अब वैयक्तिक अनुभूतियों पर सामाजिक चेतना प्रबल होती जा रही थी । जीवन के निरन्तर वृद्धि पाते हुए संघर्षों से उपेक्षित भाव रखते हुए काल्पनिक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति में मन आनंदित नहीं हो सकताथा । पराधीनता, शोषण , उत्पीड़न और दमन का आतंक देश व्यापी असंतोष और पीड़ा का कारण बना हुआ था ।

५३. छायावादी कविता में जन-चेतना का एकांत अभाव था । जीवन की परिवर्तित होती हुई मान्यताओं और मानव-मूल्यों के कारण साहित्य में भी कठोर यथार्थवादी प्रवृत्तियां उभरने लगती हैं, फलत: यथार्थता के कारण कलात्मक सौन्दर्य के स्तर का निर्वाह नहीं हो सका । काव्य की भाषा जन-भाषा का रूप धारण करती जा रही थी । कवि निजी भावनाओं, प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापारों को अभिव्यक्ति देने के स्थान पर जन-मानस में उभरती हुई विकलता , दैन्य, पीड़ा को स्वर देने लगा । साहित्य के माध्यम से शोषण, उत्पीड़न और जन-जन के जीवन की आशा -आकांक्षा को अभिव्यक्ति मिलने लगी ।

५४. 'निराला' का साहित्य शाश्वत मानव-मूल्यों पर आधारित रहा है -- जीवन और परिस्थिति से वह कभी भी असंपृक्त नहीं रहे, उन्होंने एक-एक क्षण को जिया है, यही कारण है कि उनका साहित्य अपने युग का सच्चा दर्पण कहलाने का अधिकारी है। वह अपने युग के समस्त आयामों को समेट कर चले थे। 'निराला' के साहित्य के साक्षात्कार के लिए तत्कालीन सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवेश का अवलोकन आवश्यक था क्योंकि युगीन परिप्रेक्ष्य में ही किसी भी संवेदनशील सृजनकर्ता के सृजन का मूल्यांकन किया जा सकता है। वस्तुतः इसी आधार को लक्ष्य में रखकर उपर्युक्त विवेचन में 'निराला' युगीन परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

-0-

अध्याय - २

'निराला' का व्यक्तित्व

१. प्रथम अध्याय में उल्लिखित भारतीय जीवन की परिस्थितियों के बीच तथा बैसवाड़े के ग्रामांचल में एक साधारण परिवार में सन् १८९६ को बसंत पंचमी को सूर्यकान्त का जन्म हुआ था । उनका प्रारम्भिक नाम 'सूर्यकुमार' था , पर बाद में स्वेच्छा से कवि ने परिवर्तित कर 'सूर्यकान्त त्रिपाठी ' कर लिया था तथा 'निराला' उपनाम 'मतवाला' के प्रकाशन के साथ अस्तित्व में आया । तीन वर्ष की अल्प आयु में ही उनको माँ के वात्सल्य से वंचित होना पड़ा था । माँ का नाम रुक्मिणी देवी था तथा यह द्वितीय पत्नी से उत्पन्न रामसहाय की एकमात्र सन्तान थे । बैसवाड़े के ग्रामांचल में ही 'निराला' के पूर्वजों की थोड़ी-सी अचल सम्पत्ति थी ।

२. सूर्यकान्त कुल से ब्राह्मण थे, लेकिन सामाजिक मान्यताओं के अनुसार यह निम्न श्रेणी के ब्राह्मणों की जाति में माने जाते थे । ब्राह्मण जाति में अपनी जाति के प्रति यह उपेक्षणीय भाव उनको असह्य था । कान्य-कुब्ज जाति से सम्बन्धित होने के कारण परिवार में रूढ़ मान्यताओं, खान पान, विधि-निषेधों का कठोर रीति से पालन होता था । सूर्यकान्त के उन्मुक्त स्वभाव के अनुरूप यह बन्धन और निषेध संगति नहीं पाते थे, लेकिन पिता के कठोर शासन के कारण सशंकित मन से उनको सब स्वीकार करना पड़ता था । ६ वर्ष की अवस्था में 'निराला ' का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ फलत: विधि-निषेधों की मान्यता और भी कठोर हो गई ।

दो विरोधी वातावरण : शैशवकाल

३. 'निराला' के पिता श्री रामसहाय त्रिपाठी महिषा दल स्टेट में जीविकोपार्जन करते थे । वहीं उस सामंती वातावरण में कवि का जन्म हुआ था ।

साधारण एवं सामान्य परिवार में जन्म होने पर भी `निराला` को महिषादल के राजपरिवार में शैशव व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मनुष्य जन्म से ही अनेक संस्कारों से आबद्ध होकर आता है, फिर वह उस वातावरण , समाज और परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है जिसमें वह पालित एवं पोषित होता है । ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण `निराला` शुद्धता, पवित्रता, निर्भीकता तथा त्यागमय भावनाओं को जन्म से ही लेकर उत्पन्न हुए थे । उनको महिषादल के राज-परिवार काउन्मुक्त वातावरण मिला । एक और राज परिवार का ऐश्वर्यशाली, सुरुचिपूर्ण तथा सुसंस्कृत वातावरण था तो दूसरी ओर बैसवाड़े के सामान्य, सरल, विधि निषेधों और रूढ़ियों से आबद्ध ग्रामीण परिवार का संस्कार । `निराला` स्वस्थ, सुन्दर और प्रतिभावान् होने के कारण राज परिवार से अभिन्न प्रतीत होते थे । महिषा दल के वातावरण में ही उनकी संगीत, घुड़सवारी तथा अन्य शिक्षेत्तर अभिरुचियां अंकुरित और पल्लवित हो सकीं । क्रिकेट और फुटबाल में भी वह दक्ष थे । सात-आठ वर्ष की अवस्था से ही यह बुद्धिजीवी बालक अपनी कल्पना को बंगला भाषा में ही साकार करने लगा था । दुर्भाग्यवश, इस समय उनके बाल-प्रयास की कोई भी कविता उपलब्ध नहीं, क्योंकि उनके परिवार का वातावरण और परिजन ऐसे थे, जिनको उनकी कलात्मक अभिरुचियों से कोई सरोकार न था ।

४. `निराला` के पिता प्रवृत्ति के अत्यधिक कठोर और क्रोधी थे साथ ही समाज को रूढ़ मान्यताओं और जातिवाद की अहमन्यताओं पर विश्वास करने वाले थे । `निराला` को अपनी स्वाधीन प्रवृत्ति के कारण , पिता की ताड़न क्रिया का प्रहार सहन करना पड़ता था । उन्होंने स्वयं लिखा है --" मारते वक्त पिता जो इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाए हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं । मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था । चार-पांच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहार की हद भी मालूम हो गई थी ।"[१] मातृहीन कोमल हृदय बालक पर

१- निराला : कुल्ली भाट, १९५३ ई०, लखनऊ, पृ० ४१

पिता के कठोर क्रोधी स्वभाव की क्या प्रतिक्रिया होती होगी, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है । बाल्यकाल से ही कवि की स्वाधीन प्रवृत्ति ऐसा कुछ भी स्वीकार करने को उद्यत नहीं होती थी, जिसका समर्थन उनका मन नहीं करता था, इसकी पुष्टि `कुल्ली भाट`. में स्वयं उनके वक्तव्य से हो जाती है --`मैं बचपन से ही आजादी पसन्द
दवाव नहीं सह सकता था ।
था । खास तौर से वह दबाव जिसकी वजह न मिलती हो ।.... मैं आठ साल का था, पिता जी जनेऊ करने गांव आए थे । गांव के ताल्लुकेदार पं० भगवानदीन दुबे थे । उन्होंने एक पतुरिया बैठायी थी ।..... जनेऊ हो जाने के दूसरे रोज पिता जी ने एकान्त में मुझे बुलाकर मुझसे कहा --` अब आज से खबरदार पतुरिया के घर कुछ खाना पीना मत ।` मैंने कहा --` पतुरिया का छुआ तो उनके लड़के भी नहीं खाते पीते ।` पिता जी ने कुछ समझा कर कहा होता तो मेरी समझ में बात आयी होती , उन्होंने डांट कर कहा --` उनके हाथ का भी मत खाना ।` मैंने पूछा --` जब ताल्लुकेदार थे तब आप लोग इनका छुआ खाते थे ?` पिता जी ने होंठ दबाकर कहा --`हम जैसा कहते हैं कर ` यहीं मैं कमज़ोर था ।" बालक `निराला` की तर्कशील बुद्धि यह समझ नहीं पाई कि जनेऊ से पूर्व जिसके यहां खान-पान उचित है, वही यज्ञोपवीत के धागे धारण करने मात्र से कैसे अछूत हो गया ? यही कारण है कि वह अपने पिता के कठोर अनुशासन की उपेक्षा करते हुए अपने मन की संतुष्टि के लिए पतुरिया के यहां का जल ग्रहण कर लेते हैं ।

५. दो विरोधी संस्कारों का प्रभाव `निराला` पर विभिन्न रूप से पड़ा । उनके व्यक्तित्व में विरोधात्मक वृत्तियों का अनायास ही पोषण हो सका --कोमलता और पौरुषता, भावुकता और चिन्तनात्मकता,शृंगारिकता और वीरता, सहनशीलता और विद्रोह, साहस और संकोच एवं दरिद्रता और सम्पन्नता का उनके व्यक्तित्व में अभूतपूर्व समन्वय था । सामन्तवादी स्वच्छन्दता एवं उन्मुक्तता का जहां एक ओर मूर्त रूप है, वहां दीन-दुखियों को देखकर एकाएक द्रवीभूत होने की संवेदनात्मक प्रवृत्ति भी कम प्रखर रूप से अभिव्यक्त नहीं हुई । वस्तुत: `निराला` का व्यक्तित्व कबीर के समान ही विरोधी गुणों का समन्वय था । कबीर के समान ही वह फक्कड़, क्रान्तिकारी एवं रूढ़ियों पर प्रहार करने वाले थे ।

शिक्षा-दीक्षा

६. `निराला` की शिक्षा-दीक्षा महिषादल राज्य की संरक्षणता में हुई थी । उनकी पुस्तकीय ज्ञान में अभिरुचि न होने के कारण ही वह हाईस्कूल की परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो सके थे । ऐसी बात न थी कि उनमें प्रतिभा का अभाव था, बल्कि उनको ऐसा अध्ययन नीरस प्रतीत होता था । स्वयं अपनी मन:स्थिति के सम्बन्ध में वह लिखते हैं --"मैं कवि हो चला था फलत: पढ़ने की आवश्यकता न थी । प्रकृति की शोभा देखता था.... कितनी बड़ी किताब सामने पड़ी है[1]।" पिता के क्रोधी स्वभाव का स्मरण कर वह बाध्य होकर हाईस्कूल की परीक्षा में बैठे थे और गणित की नीरस कापी को पद्माकरके चुलबुलाते कवित्तों से सरस कर आये थे । इस झूठ पर आवरण डालने के लिए भी उसकी दूरदर्शी प्रकृति ने एक युक्ति खोज निकाली थी, "परीक्षा समुद्र तट से लौटते समय दूसरे तो रिक्त हस्त लौटे मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया, घर में पिता, माता, पुरजन सब के लिए आवश्यकतानुसार उनका उपयोग किया[2]।" पिता को प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का आश्वासन देकर तथाकथित समय में उसने अपना बचाव कर लिया था । सूर्यकांत के हृदय में इस बात का विश्वास था कि कवि या विद्वान् बनने के लिए किसी प्रकार की उपाधि की आवश्यकता नहीं । उनको बहुत से ऐसे साहित्यकारों का स्मरण था जो उद्भट कोटि के साहित्यिक थे पर उपाधि के नाम पर शून्य ।

विरोधी प्रवृत्तियां : वैवाहिक जीवन

७. सन् १६११ में `निराला` का विवाह रायबरेली जिले के एक ग्राम डलमऊ निवासी श्री रामदयाल दुबे की पुत्री मनोहरा देवी से सम्पन्न हुआ । मनोहरा देवी धार्मिक प्रवृत्ति की, संगीत में रुचि रखने वाली, सुन्दर और प्रतिभावान् थीं । कवि को अपनी पत्नी से अटूट प्यार था । पति-पत्नी की प्रकृति में बहुत बड़ा वैषम्य था," वह

१- निराला : `कुल्ली की बीवी` (?), पृ० १४ ।

२- वही०, पृ० १५

अखंड भारतीय थी और मैं प्रत्यक्ष राक्षस, रोज मांस खाता था । उन्होंने मुझे विश्राम सागर, पद्म पुराण, शिव पुराण और न जाने कौन कौन से ग्रन्थ, गुटके और पाद टिप्पणियां दिखाकर कहा इससे बड़ा पाप होता है , तुम मांस खाना छोड़ दो । तब मैं कुछ मूर्ख था और वह मुझसे हिन्दी में ज्यादा पंडिता थीं । मांस से कितनी भयंकर सजा मिलती है, उसके जो चित्र उन्होंने दिखाए उनके स्मरण मात्र से मेरे प्राण सूख गए । कुछ दिनों तक मैंने मांस खाना छोड़ दिया .... मेरी पत्नी को मेरे स्वास्थ्य का भय न था, जितनी प्रसन्नता मेरे मांस छोड़कर भारतीय बन जाने की[1]।" दुर्भाग्य से वह स्वभाववश इस प्रण पर अडिग न रह सके और उनका मांस भक्षण पुन: प्रारम्भ हो गया । मनोहरा देवी उनको इस प्रवृत्ति से सहयोग न कर सकीं, उनका अधिकांश समय मायके में व्यतीत होने लगा और वहीं इन्फ्लुएंजा से उनका स्वर्गवास हो गया । पत्नी के महा प्रयाण के समय भी वह उनके पास न थे और पत्नी के पार्थिव शरीर से उसकी भेंट श्मशान घाट पर होती है । पत्नी का असमय वियोग उनके भावुक हृदय को झकझोर कर रख देता है, उनके हृदय की गहन पीड़ा और वेदना को सहज ही अनुभूत किया जा सकता है, युवावस्था में पत्नी का वियोग गुरुतर अभाव था जो उन्हें जीवनपर्यन्त सालता रहा है --" इस दिव्य भावना ने यदि कुछ भी मेरे साथ सहयोग किया होता तो शायद यह अकाल मृत्यु न हुई होती और जीवन भी सुखमय रहता[2]।" पति और पत्नी दोनों में अपनी-अपनी आस्था पर अटूट रहने की असाधारण दृढ़ता थी ।

८. 'निराला' का वैवाहिक जीवन बहुत अल्पकाल का रहा, इनकी दो सन्तान थीं -- पुत्र रामकृष्ण (१९१४ ई०) तथा पुत्री सरोज (१९१६ ई०) । अल्पकाल में ही मनोहरा देवी अपने पति की प्रेरक शक्ति बन गयी थीं । हिन्दी की ओर उनका झुकाव पत्नी की प्रेरणा से ही हुआ था । मृत्यु के पश्चात् भी वह उनकी प्रेरक शक्ति रही, 'गीतिका' के समर्पण में कवि ने उसके असाधारण प्रभाव का उल्लेख किया है," जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आंखें नहीं

१- निराला : चाबुक (?) इलाहाबाद, पृ० ४९-५० ।

२- वही०, पृ० ५१ ।

मिला सका -- लजा कर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से.....हिन्दी हीन प्रान्त में बिना शिक्षक के `सरस्वती` की प्रतियां लेकर पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी , जिसका स्वर गृहजन, परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे (संगीत) स्वर को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षण मात्र में मेरी रुक्षता को देखकर मुस्करा देती थी, जिसने अन्त में अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिल कर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की ।[१] निस्सन्देह `निराला` को निराला बनाने में उनकी पत्नी का कम सहयोग नहीं रहा ।

प्रेरक स्रोत

६. बंगला के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से `निराला` की कलात्मक और दार्शनिक भावधारा परिपुष्ट हुई थी, जो उनके साहित्यिक जीवन की मूल धारा बनी । `निराला` बंगला साहित्य से अत्यधिक प्रभावित थे । वस्तुत: वह उनके लिए मातृभाषा के समान ही थी और सर्वप्रथम उनकी शैशव कालीन कल्पनाएं और भावनाएं बंगला-भाषा में ही मूर्त हुई थीं । उन पर रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ का अन्यतम प्रभाव था । विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ के सम्पूर्ण साहित्य का उन्होंने मन्थन कर लिया था । रामकृष्ण तथा विवेकानन्द से `निराला` को जहां भावात्मक और दार्शनिक परिपुष्टता मिली , वहां रवीन्द्रनाथ से काव्यात्मक सौन्दर्य, मार्मिकता,कल्पना- वैविध्य एवं गीतात्मक काव्य भूमि प्राप्त हुई थी । संघर्षशील जीवन में निश्शंक कर्मरत रहने का अमोघ साहस, अपराजेय, अप्रतिम-पौरुष, दीन दु:ख कातरता, निष्काम कर्मनिष्ठा, राष्ट्र के प्रति अन्यतम अनुराग उन पर विवेकानन्द का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित करता है । अद्वैतवाद की पृष्ठभूमि में उनकी मानवतावादी विचारधारा को पोषण मिला । दीन-दुखियों के प्रति करुणा समस्त धर्मों के प्रति ~~समा~~ समान श्रद्धा भाव उनके मानवतावादी आधार का ही व्यावहारिक पक्ष है । विवेकानन्द की समस्त शिक्षाओं का पूर्ण पर्यवसान `निराला` के साहित्य में हुआ । उनके साहित्य तथा व्यक्तित्व में विवेकानन्द पूर्णतया साकार हो उठे थे ।

१- निराला : गीतिका (समर्पण), पंचम संस्करण, १९६१ ई०,इलाहाबाद

गीता का कर्मयोग तथा वेदांत का पुरुषार्थ उनकी अनेक कविताओं में घुल मिलकर समरस हो गया था ।

१०. रामकृष्ण देव की भावात्मक साधना का प्रभाव `निराला` की अन्तर्मुखता, चिन्तन-मनन की प्रवृत्ति में सहज ही प्रकट होता है । रामकृष्ण मिशन के परिचय ने उनको दार्शनिक आधार-भूमि प्रदान की थी, इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता । `समन्वय` काल में रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द से सम्बन्धित पुस्तकों के अनुवाद तथा उन पर लिखे दार्शनिक निबन्ध कवि पर उनके अन्यतम प्रभाव की उद्घोषणा करते हैं । `निराला` के व्यक्तित्व और साहित्य में जो मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ-साथ उच्चकोटि की दार्शनिक तटस्थता परिलक्षित होती है, वह विवेकानन्द और परमहंस की ही देन थी । भारतीय संस्कृति के अन्यतम पोषक तुलसीदास `निराला` के आदर्श रहे थे । उसका जीवन्त प्रमाण उनके द्वारा रचित `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य है तथा उन पर लिखे कतिपय लेख हैं । तुलसीदास का जीवन `निराला` के साहित्यिक जीवन के संघर्षों, सामाजिक रूढ़ मान्यताओं के विध्वंस में, निर्लिप्तता में, आस्था में विरोधियों की उपेक्षाओं की अवहेलना में प्रेरक रहा था । तुलसीदास ने निरन्तर संघर्ष रत रहते हुए भारतीय संस्कृति के गौरव की स्थापना की थी । आलोच्य कवि भी अथ से इति तक मानवतावादी धरातल की स्थापना में व्यस्त रहा था । कबीर की फक्कड़ता से भी यह कम प्रभावित नहीं थे । इनकी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति बहुत कुछ कबीर का ही प्रभाव परिलक्षित करती है । `निराला` की भाव भूमिका एक निस्पृह तथा अक्खड़ की है । कबीर की एवं तुलसी की परम्परा में वह भी अपने ही में मस्त स्वान्तः सुखाय के परिपोषक हैं । तुलसी ने जिस निर्भीकता से कहा --" काहु की बेटी से बेटा न बियाहनों है --" उसी निर्भीक परम्परा का परिपालन आधुनिक काल में `निराला` में परिलक्षित होता है । जीवन के एवं काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में ` न दैन्यं न पलायनं " की उक्ति का परिपालन इनका वैशिष्ट है । वैसे महापुरुष तुलना से परे होते हैं० ` तो` भी महाप्राण `निराला` अपनी इस अदैन्य प्रवृत्ति में लोक नायक तुलसी की परम्परा में एकमेव कड़ी हैं । आंग्ल भाषा के टी०एस० इलियट, ब्राउनिंग, भास्कर वाइल्ड और शा का अध्ययन भी इनका गम्भीर था । उर्दू और संस्कृत साहित्य का भी यह पर्याप्त ज्ञान रखते थे । यही नहीं चंडी दास, विद्यापति और गोविन्ददास के पद रवीन्द्रनाथ के गीत भी `निराला` को पर्याप्त संख्या में कण्ठस्थ थे ।

नियति के थपेड़े

११. युवावस्था के प्रथम चरण से ही `निराला` को विपत्तियों का सामना करना पड़ा था । एक माह के अन्तराल में ही क्रमशः पिता(१६१७ई०), पत्नी(१६१८ई०) की मृत्यु के साथ ही साथ अपने बड़े भाई, दादा, भाभी तथा शिशु भतीजी की दुःखद मृत्यु का उनको मूक द्रष्टा बनना पड़ा था । युवक `निराला` का हृदय वेदना और दुःख से विदीर्ण हो उठा । नियति के इस वज्रापात को वह मूक और तटस्थ भाव से स्वीकार कर घंटों डलमऊ में नदी के किनारे टीले पर बैठकर लाशों का बहना देखा करते थे ।

आर्थिक-संघर्ष

१२. प्रियजनों के वियोग की असहनीय वेदना से वह अभी सम्हल भी न पाये थे कि परिवार के आर्थिक पोषण की चिन्ता विकट रूप धारण कर उनके सम्मुख आ उपस्थित हुई । उनके सम्मुख छः प्राणियों के भरण-पोषण का प्रश्न था-- चार भतीजे तथा दो स्वयं के बच्चे-- रामकृष्ण और सरोज । केवल उपार्जन मात्र की ही चिन्ता नहीं, वरन् घर की व्यवस्था भी उनको स्वयं ही देखनी पड़ती थी । पिता की मृत्यु के बाद महिषादल में उनकी जीविका की व्यवस्था हुई थी, परन्तु उनकी स्वाभिमानी प्रवृत्ति के अनुकूल कार्य न होने के कारण वहां अधिक दिन उनका निर्वाह न हो सका , तहसील वसूल, आय-व्यय, पत्र व्यवहार, अदालत मुकदमा आदि कार्य उनके रुचि के अनुकूल नहीं थे ," राजा के कार्य प्रतिक्षण सर्पदंशवत् तीक्ष्ण ज्वालामय हो रहे थे ....मन में भी घृणा हो गयी । राजा कितना निर्दय और कितना कठोर होता है , प्रजा का रक्त शोषण ही उसका धर्म है । नौकरी छोड़ने का निश्चय कर लिया ।"[१] कवि के संवेदन शील भावुक हृदय पर इसका असाधारण प्रभाव पड़ा था । घोर आर्थिक विषमता की स्थिति में भी वह उस अमानवीय जीविका का परित्याग कर चले आए थे । `निराला` के हृदय में सामंत विरोधी प्रवृत्ति का अंकुर प्रारम्भ से ही प्रस्फुटित हो गया था । जो उनके मानवतावादी संस्कारों तथा स्वयं के संघर्षयुक्त

१- निराला : चतुरी चमार, (?) , इलाहाबाद, पृ० ७८-७६ ।

जीवन को फलस्वरूप निरन्तर घनीभूत होता गया । उन्होंने कतिपय गद्य-कृतियों में सामंतवादी अहम्मन्यता पर कुठाराघात किया है ।

१३. कवि की आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक विपन्नावस्था का समय वह था जब वह धनाभाव के कारण अपनी मृत प्राय: पुत्री की चिकित्सा की उचित व्यवस्था भी न करवा सका था । धन से वह कभी भी आसक्त नहीं रहे । यदि धन से उनका लगाव अथवा आसक्ति होती तो वह कभी भी इतने उदार और अवढरदानी नहीं हो सकते थे । और न स्वयं की आवश्यकताओं की उपेक्षा कर सब दूसरों की आवश्यकताओं को महत्व ही दे सकते थे । उनके जीवन से बहुत से ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जहां उन्होंने दूसरों की आवश्यकताओं को श्रेष्टत्व प्रदान किया था । `अपरा` का इक्कीस सौ का पुरस्कार स्वयं के उपयोग में न ला कर मुंशी नव जादिक लाल की विधवा पत्नी के सहायतार्थ अर्पण कर दिया गया था । धनाढ्य परिवार में निश्चित हुए रामकृष्ण के विवाह का सम्बन्ध तोड़ कर एक निर्धन परिवार की कन्या से इसलिए जोड़ दिया गया था कि कन्या पक्ष के लोग धनाभाव के कारण कन्या का विवाह कर सकने में असमर्थ थे । यही नहीं, कन्या पक्ष का समस्त व्यय भी उन्होंने स्वयं ही वहन किया था । वह स्वयं भुक्तभोगी थे, यही कारण है कि वह मानव मात्र की पीड़ा और विवशता की सहज ही कल्पना और अनुभूति कर लेते थे । उनको स्वयं के संघर्षों और कठिनाइयों का इतना खेद नहीं था क्योंकि उन्होंने संघर्ष को ही जीवन मान लिया था, लेकिन उनको इस बात की अवश्य हार्दिक पीड़ा थी कि --

> शुचि ते, पहना कर चीनांशुक
> रख सका न तुझे अत: दधि-मुख ।[१]

उनके अबोध बच्चों को अनायास ही अपने पिता के दु:ख,कष्टों और संघर्षों का भागीदार बनना पड़ा था । धनाभाव के कारण ही वह सरोज के विवाह में आवश्यक व्यय भी न कर सके थे ।

आर्थिक परिस्थिति : सृजन की विवशता

१४. आर्थिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ही विवश होकर `निराला` को कथा-साहित्य की ओर उन्मुख होना पड़ा था, कविता और लेखों से वह इतना

१- निराला : अनामिका , सरोज स्मृति , १६६३ ई०, इलाहाबाद,पृ० १२२ ।

धन नहीं जुटा पाते थे कि वह परिवार की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें । आर्थिक विवशता, जनरुचि का आग्रह तथा प्रकाशकों की मांग के कारण अनिच्छा से वह कथा साहित्य की ओर उन्मुख हुए थे । लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जिधर भी उनका झुकाव हुआ, उनको असाधारण सफलता मिली । कथा-साहित्य की ओर उन्मुख होने पर उन्होंने कतिपय सुन्दर उपन्यास और कहानियां हिन्दी-साहित्य को प्रदान कीं । आर्थिक विवशता के कारण ही अनुवाद का कार्य भी उनको करना पड़ा था । यही नहीं, उनको विज्ञापन तैयार करने तथा पैम्फलेट लिखने में भी मौलिक सृजन-शक्ति का दुरुपयोग करना पड़ा था ।

१५. `निराला` का पौरुषदीप्त व्यक्तित्व विवशताओं और संघर्षों से टूटा नहीं, झुका नहीं, बिखरा नहीं । लेकिन ऐसा अवश्य आभासित होता है कि इस अनिच्छित कार्य को करते समय `निराला` को अवश्य ही हार्दिक पीड़ा होती रही होगी तथा जीवन के सांध्यकाल में उद्भूत मानसिक तनाव तथा विक्षेप में अवश्य इन विवशताओं ने सहयोग दिया होगा । लेकिन इससे उनकी साहित्य-साधना में विशेष अन्तर नहीं पड़ा , पर इतना विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उन्होंने ऐसे अनिच्छित कार्य में अपना समय न लगाया होता तो वह अवश्य और भी कोई महत्वपूर्ण मौलिक कृति देने में सफल होते । जीवन के अन्तिम समय तक उनकी जीविका का कोई निश्चित साधन या आधार नहीं बन सका था, यहां तक कि वह एक स्थान पर स्थिर होकर रह भी न सके थे -- कलकत्ता, लखनऊ, उन्नाव,बनारस में प्रवासी जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में प्रयाग को उन्होंने अपना स्थायी निवास-स्थान बनाया । स्थिति यहां तक गम्भीर हो जाती थी कि वह निजी आवास लेकर रहने में भी असमर्थ हो जाया करते थे और उनका मित्रों और सहयोगियों के यहां आश्रय लेना पड़ता था । सृजन की प्रक्रिया में जितना अधिक सृजनकर्ता को निर्द्वन्द्व और उन्मुक्त रहना चाहिए, `निराला` को उतना ही सामाजिक, साहित्यिक और आर्थिक संघर्ष करना पड़ा । वस्तुत: जीवनपर्यन्त वह जीने की प्राथमिक आवश्यकताओं से भी मुक्त न हो सके ।

साहित्यिक-संघर्ष

१६. साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित होते ही `निराला` को अनन्त विरोधों का सामना करना पड़ा था । स्वभाव से ही स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति होने के कारण

वह साहित्यिक क्षेत्र में भी परम्परावादी लीक का अनुसरण न कर सके । `निराला` द्वारा आविष्कृत मुक्त-छन्द का सृजन साहित्यिक क्षेत्र में पूर्णतया नवीन वस्तु थी । परम्परानुमोदित साहित्य क्षेत्र में भाव, छन्द और विषय की दृष्टि से उन्मुक्त प्रकृति की कविता को रक्षात्मक कैसे समर्थन प्राप्त हो सकता था । उनकी प्रारम्भिक कविताओं का पर्याप्त विरोध हुआ । यही कारण है कि उचित समय पर वह पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी न हो सकीं । `निराला` हिन्दी वांगमय में मुक्त छन्द, मुक्त भावधारा तथा मुक्त चिन्तना के साथ अवतरित हुए थे । प्राचीन रीति और परम्पराओं पर चलने वाले साहित्यकारों तथा आलोचकों के लिए यह पूर्णतया नवीन वस्तु थी । फलत: न तो उनकी कृतियों का सहानुभूतिपूर्ण अध्ययन ही हुआ और न सराहना ही । `निराला ` के मुक्त छन्द के क्रांतिकारी पक्ष को `केंचुआ छन्द` और `रबड़ छन्द` के नाम से अभिहित किया गया । यह निरन्तर उपेक्षाओं और लांछनाओं का ही परिणाम था कि उन्होंने परिपाटीबद्ध नियमों के अन्तर्गत कविता नहीं की । उनका विद्रोही स्वर निरन्तर विद्रोहात्मक होता गया । `निराला` न केवल कवि ही थे, वरन् वह युग स्रष्टा भी थे । उन्होंने समय की मांग के अनुकूल शृंखलाबद्ध कविता कामिनी के बन्धन पाश को छिन्न-भिन्न किया । परम्परा से चली आई लीक से जीवन-दिशा को नवीन मोड़ प्रदान किया । वह नवीन पीढ़ी के लिए विद्रोह की प्रेरणा के प्रतीक थे ।

१७. सन् १६२१ में इनको द्विवेदी जी के समर्थन पर `समन्वय` नामक दार्शनिक पत्रिका का सम्पादकत्व प्राप्त हुआ । यह अद्वैत दर्शन का पत्र था तथा कलकत्ता से प्रकाशित होता था । इस पत्र के में `निराला` के अद्वैत दर्शन, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द एवं सारदानन्द जी आदि महापुरुषों पर लिखे लेख प्रकाशित होते थे । साधु-सन्यासियों का साथ, आध्यात्मिक चर्चा, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द आदि के साहित्य के अध्ययन, मनन और चिन्तन से उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पुष्ट हुई थी । महादेव प्रसाद सेठ `निराला` की प्रज्ञा और प्रतिभा के बहुत प्रशंसक थे । उनके द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक `मतवाला` (१६२३ई०) के वह बाद में सम्पादक भी हुए थे । वस्तुत: `मतवाला` में ही यह वास्तविक रूप से प्रकाश में आये थे । १६२६ ई० के पश्चात् कवि ने लखनऊ को अपनी कर्म-भूमि बनाया । लखनऊ रहते समय उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त उन्होंने `गीतिका` (१६३६ई०), `अनामिका` (१६३७ई०), `तुलसीदास` (१६३८ ई०) आदि

का सृजन किया । सन् १६४० के बाद उनका प्रवासी का जीवन दिखायी पड़ता है । लखनऊ छोड़ने के बाद उनके व्यंग्य साहित्य `कुकुर मुत्ता` (१६४२ई०), `नये पत्ते` (१६४६ई० तथा `बेला` (१६४६ ई०) का सृजन हुआ । सन् १६४७ के पश्चात् प्रयाग को स्थायी रूप से `निराला` ने अपना आवास स्थान बनाया और भक्ति-स्वर से आप्लावित `अर्चना` (१६५०ई०), `आराधना` (१६५३ ई०), `गीत-गुंज` का सृजन किया ।

प्रकाशक और साहित्यिक बन्धु

१८. `निराला` को सम्पादकों और आलोचकों की अवज्ञा निरन्तर सहन करनी पड़ी थी । उनके आलोचकों ने सदा ही उनके साथ कटुता का व्यवहार रखा था । तत्कालीन मान्य आलोचक रामचन्द्र शुक्ल `निराला` को बहु-वस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा के कवि स्वीकार करते हुए भी उनके कटु आलोचक रहे थे । आलोच्य कवि को अपने सृजन से प्रकाशकों द्वारा धन तो मिला ही नहीं , पुस्तकों के सुन्दर संस्करण भी नहीं मिले । पुस्तकों की रायल्टी भी नहीं मिलती थी । प्राय: सभी पुस्तकों का स्वत्व वह प्रकाशकों के हाथ बेच दिया करते थे , लेकिन उन्होंने इसकी कभी चिन्ता नहीं की । वह स्वच्छ, सरल, निर्मल हृदय थे , यही कारण है कि उनके शत्रु - मित्र समानरूप से आदर पाते थे । `निराला` के कतिपय सम-सामयिक विचारकों ने उनकी विशिष्टता को तो समझने का प्रयास किया ही नहीं, वरन् मात्र विरोध के लिए ही विरोध करते रहे । `वर्तमान धर्म` शीर्षक लेख जिसमें लेखक ने अत्यधिक वैचारिक और विश्लेषणात्मक ढंग से पौराणिक रूपों में अन्तर्निहित प्रतीकात्मकता का विवेचन किया था, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि गण्यमान्य व्यक्तियों के लिए वह `साहित्यिक सन्निपात` का प्रतीक बन गया । `निराला` ने इस लेख के सूक्ष्म और वैचारिक पक्ष को समझाने का पर्याप्त प्रयास किया था, पर स्थूल-बुद्धि व्यक्तियों में इतना धैर्य कहां ? जो उसकी महत्ता को समझते ? अन्त में स्वयं लेखक को ही `साहित्यिकों तथा साहित्यप्रेमियों से नम्र निवेदन` नामक लेख लिखकर अनुचित आक्षेपों को शान्त करना पड़ा था । परन्तु इससे भी रूढ़िवादी साहित्यकारों का क्षोभ शान्त नहीं हुआ था । प्रशंसनीय विषय तो यह है कि निरन्तर विरोधों और अवहेलनाओं में भी उनके सृजन में न तो गत्यावरोध ही आया और न किसी प्रकार की कुण्ठा का ही जन्म हुआ । वह अपने आलोचकों के प्रति सदैव ही सहृदय रहे,उनका

एकमात्र आत्मविश्वास ही था, जो उन्हें टूटने या बिखरने नहीं देता था, और इस आत्मविश्वास की दृढ़ता के कारण ही वह जीवनपर्यन्त सृजन में नवीन प्रयोग करते रहे । उनके व्यक्तित्व की यही महानता है कि उन्होंने हारना तो सीखा ही नहीं ।

राष्ट्रभाषा के पोषक

१६. `निराला` साहित्य को राजनीति से ऊपर मानते थे । देश के राजनीतिज्ञों की हिन्दी साहित्य के प्रति उपेक्षणीय दृष्टि उनके स्वाभिमानी दर्पपूर्ण स्वभाव के लिए असह्य थी और उनकी बहुधा ऐसे साहित्यिक सम्मेलनों में नोंक-झोंक हो जाया करती थी जिसमें राजनीतिज्ञों को साहित्यिकों की अपेक्षा ऊपर स्थान मिलता था । `फैजाबाद साहित्य सम्मेलन` में राजनीतिक नेताओं द्वारा साहित्य की अवमानना होते देख वह एकाएक भड़क उठे थे और सभास्थल में तनाव की-सी स्थिति उत्पन्न हो गई थी । उनकी यह मान्यता थी कि सद्-साहित्य सदैव ही देशकाल रहित होता है । अत: निश्चित रूप से साहित्यकार शीर्ष स्थान का भागी है । `निराला` का उन गण्य मान्य साहित्यकारों के प्रति भी कम आक्रोश नहीं प्रकट हुआ, जो स्वार्थवश धनीमानी राजनीतिज्ञों की चाटुकारिता में कवितायें लिखते हैं । हिन्दी के प्रश्न को लेकर भी उन्होंने पर्याप्त संघर्ष किया था । हिन्दी का हिन्दुस्तानी रूप स्वीकार करने को वह प्रस्तुत नहीं थे । देश के गण्य मान्य नेता गांधी तथा नेहरू से हिन्दी के प्रश्न को लेकर ही उन्होंने तर्क और विवाद किया था । सैद्धान्तिक प्रश्नों पर उनका रूप वज्र से भी अधिक कठोर हो जाया करता था । उस समय बड़े से बड़ा प्रलोभन भी उनको विचलित नहीं कर सकता था । रेडियो सम्बन्धी नीति का ऐसा ही प्रसंग था, सर्वाधिक पारिश्रमिक मिलने पर भी उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं किया क्योंकि वह उनकी हिन्दी सम्बन्धी नीति से सहमत नहीं थे ।

संघर्ष और प्रतिक्रिया

२०. सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के फलस्वरूप `निराला` में स्थैर्य का अभाव रहा । वह कभी भी ~~सम्यक~~ समतल मार्ग का अवलम्बन नहीं ग्रहण कर सके थे, उनको प्रतिक्षण संघर्षमय जीवन की ऊंची-नीची अपत्यकाओं पर अग्रसर होते रहना पड़ा । सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्षों के फलस्वरूप कवि

की मानसिक स्थिति में भी विक्षेप और परिवर्तन होते रहे, उसी के आधार पर उनके साहित्यिक मूल्य, मान्यतायें तथा मानदण्ड भी परिवर्तित होते गए, एक तरफ `परिमल` की स्वच्छन्द प्रवृत्ति है, दूसरी तरफ `गीतिका` के राग-रागनियों से युक्त, नियमों से आबद्ध, सुन्दर परिष्कृत सुरुचि पूर्ण गीत । एक तरफ `राम की शक्ति पूजा` और `तुलसीदास` का प्रौढ़काव्य है तो दूसरी तरफ `कुकुर मुत्ता` `नये पत्ते` के प्रतिमानों से अग्रसर होता हुआ `अर्चना` `आराधना` का भक्तिपूर्ण स्वर भी मुखरित होता सुनाई पड़ता है । सृजन सम्बन्धी विभिन्न मोड़ `निराला` की परिस्थितिवश हुई विभिन्न मानसिक स्थितियों का प्रभाव भी परिलक्षित करती हैं । सुखद शांतपूर्ण वातावरण में ही `गीतिका` के राग-रागनियों से युक्त सुसंस्कृत गीतों का सृजन हो सकता था, वस्तुत: उस समय कवि की परिस्थिति अपेक्षाकृत सुखद थी । यदि परिस्थितियों को प्रधानता न भी दी जाय तो भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि परोक्ष या अपरोक्ष रूप से देशकाल परिस्थितियां और वातावरण कवि के संवेदनशील स्वभाव और प्रकृति को प्रभावित किए बिना नहीं रहते ।

२१. कवि देशकाल परिस्थितियों से असम्पृक्त नहीं रहता । साहित्य तत्कालीन समाज तथा परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराता है । साहित्यकार सदैव ही उन परिस्थितियों और समस्याओं को अपने व्यक्तित्व के माध्यम द्वारा अपनी चिंता धारा के अनुरूप अभिव्यक्ति देता है । यदि `निराला` का जन्म सुसंस्कृत एवं सम्पन्न परिवार में हुआ होता उन्हें पल-पल उन्हें अपने अभावों के लिए चिंतित न होना पड़ता या नियति के वज्रापातों का उनपर आघात न हुआ होता एवं हिन्दी क्षेत्र के साहित्यिक समुदाय ने उन्हें मुक्त हस्त से भेंटा होता, उनके अकाथ कार्य की प्रशंसा अथवा सराहना की होती या हिन्दी के प्रति राष्ट्र के कर्णधारों का अनुदार दृष्टिकोण न रहा होता, प्रकाशन मण्डलों ने उनकी श्रम निष्ठा के प्रति सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार रखकर उपयुक्त प्रतिदान दिया होता या उसे प्रकाशकों की अनाधिकार इच्छाओं की पूर्ति न करनी पड़ती तो निस्सन्देह आज उनका दूसरा ही रूप होता, उनकी प्रतिभा का अजस्र स्रोत और भी अबाध गति से प्रवाहित हुआ होता । वैयक्तिक जीवन सम्बन्धी कठिनाइयों, सामाजिक उपेक्षाओं तथा साहित्यिक वात्याचक्रों ने उनको संघर्षशील बनाया । `निराला` की शैशवकालीन -

विद्रोही प्रवृत्ति निरन्तर संघर्षों से और भी घनीभूत होती गई । यह विद्रोही स्वर उनके सम्पूर्ण साहित्य में व्याप्त देखा जा सकता है ।

साहित्य : व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब

२२. साहित्यिक क्षेत्र में `निराला` का व्यक्तित्व विवादास्पद रहा । उनके व्यक्तित्व की गलत प्रतिक्रिया से उनके साहित्य के मुल्यांकन में भी पर्याप्त बाधा उपस्थित होती रही, वस्तुत: उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की आशंकायें उत्पन्न होनी ही नहीं चाहिए क्योंकि उनका व्यक्तित्व पारदर्शी शीशे के सदृश्य उनके सम्पूर्ण साहित्य-- काव्य,उपन्यास, कहानी और निबन्ध आदि से फलकता है । उनके साहित्य की भांति उनका व्यक्तित्व भी ऊपर से कठोर किन्तु भीतर से मृदुल रहा । यों तो किसी भी साहित्यकार के व्यक्तित्व का उचित मुल्यांकन कर पाना अत्यधिक कठिन और विकट कार्य है । प्रत्येक साहित्यकार के व्यक्तित्व के दो पहलू हुआ करते हैं --

(१) साहित्यिक व्यक्तित्व ।

(२) दैनिक क्रिया-कलापों से सम्बन्धित व्यक्तित्व ।

साधारणतया बाह्य क्रिया-कलापों के आधार पर किसी के साहित्यिक व्यक्तित्व की धारणा बना सकना सम्भव नहीं, लेकिन `निराला` के व्यक्तित्व की तो यही विशेषता है कि उनका साहित्य और व्यक्तित्व दोनों अभिन्न थे, उनके व्यक्तित्व में कहीं भी दुराव और छिपाव के लिए अवकाश नहीं था । वस्तुत: उनकी साहित्य-धारा उनके जीवन से अनुप्रेरित होने के कारण सुनिर्दिष्ट और स्पष्ट सी है । उन्होंने जीवन में जो भोगा था, वही साहित्य में लिखा है, वह मन,वाणी,कर्म से एक थे । अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में कहीं भी विरोध नहीं दृष्टिगोचर होता ।यही कारण है कि उनके साहित्य का उचित मन्थन करने के लिए उनके व्यक्तित्व-सागर का अवगाहन सर्वप्रथम आवश्यक हो जाता है ।

२३. `निराला` के व्यक्तित्व की प्रामाणिकता उनका साहित्य है । साहित्यकार की ईमानदारी साहित्यिक के लिए एक ग्राहणीय तत्व होता है । ईमानदारी अर्थात् अभिव्यक्ति की ईमानदारी और बाह्य साहित्यिक जीवन के व्यवहार की ईमानदारी । साहित्यिक अपनी अभिव्यक्ति में जितना ही अधिक

ईमानदार होगा उसकी कृति उतनी ही मार्मिक और प्रेषणीय होगी, कहना नहीं होगा कि `निराला` के ने जो कुछ भी लिखा, अपने अनुभव के स्तर पर भोग कर लिखा था, उसमें उन्होंने किसी भी प्रकार की कृत्रिमता का समावेश नहीं किया। फलत: उनके स्वच्छन्द , संघर्षशील , विद्रोही व्यक्तित्व का स्पष्ट आभास उनके सृजन से हो जाता है। जीवन के संघर्षों और उपेक्षाओं ने `निराला` को संवेदनशील बनाया। जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं के लिए उन्हें निरन्तर संघर्ष करना पड़ता था। जिसका आभास उनके सृजन से परिलक्षित होता है। `सरोज स्मृति` में कवि के सारे जीवन की नैराश्य-वेदना पृष्ठभूमि बनकर उपस्थित हुई है। एकमात्र `सरोज स्मृति` कविता से ही उनके सामाजिक, साहित्यिक एवं पारिवारिक संघर्षों की कल्पना सहज ही की जा सकती है। स्वयं के सृजन के सम्बन्ध में हुई अवज्ञा का उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है। --

कवि जीवन में व्यर्थ व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादकगण निरानन्द
वापिस कर देते पढ़ सत्वर
रो एक पंक्ति दो में उत्तर
लौटी लेकर रचना उदास
ताकता हुआ मैं दिशा काश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन गुन कर[१]
सम्पादक के गुण........

२४. युग प्रवर्तक होते हुए भी साहित्यिक क्षेत्र में उसे मान्यता प्राप्त न हो सकी वह सदैव ही पृष्ठभूमि में रहा जब कि अन्य समसामयिक साहित्यकार सहज ढंग से अपने प्राप्य को प्राप्त करते गए। कवि की श्रम निष्ठा का प्रतिदान उसे न प्राप्त हो सका परन्तु उनको इसका तनिक भी खेद नहीं कि वह सदैव ही

१- निराला : अनामिका (सरोज स्मृति), १९६३, पृ० १२६

पृष्ठभूमि में रहा इसके विपरीत उनमें निरन्तर साहस, दृढ़ता और आत्मविश्वास की वृद्धि होती गई । वह इन उपेक्षाओं की बहुत ही व्यंग्यात्मक रूप से स्थापना करता है :-

मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन
मैं हूं केवल पद तल आसन
तुम सहज विराजे महाराज
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्व छवि ।[१]

साहित्यिक क्षेत्र में सबसे अधिक क्रान्तिकारी और नवीन प्रयोगों के संस्थापक होते हुए भी उनके महत्व को नकार दिया गया । लेकिन वह अपने महान देय से पूर्णतया अवगत था । साहित्य तथा समाज दोनों क्षेत्रों में ही उन्होंने क्रान्ति का तुमुल नाद किया था । `निराला` की क्रान्ति मानेता जगत तक ही सीमित न थी ।व्यक्तिगत जीवन में तो वे विद्रोही थे ही, साहित्य में भी उनका तेजोदीप्त उदात्त स्वर मुखर हुआ । कवि का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों एवं विपत्तियों से घनीभूत रहा, उनका विद्रोही व्यक्तित्व ही उन्हें अनवरत संघर्षों की ओर ठेल देता था । उनका जीवन और साहित्य दोनों ही विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों से पूर्ण रहे ।

२५. आलोच्य कवि की सर्व मंगलकांक्षिणी भावना उनके साहित्य में अथ से इति तक व्याप्त है । उनके साहित्य तथा व्यक्तित्व में करुणा का अजस्र स्रोत प्रवाहित होता रहा है । दीन-दुखियों, पददलितों की करुण स्थिति को देखकर उनका हृदय करुणा से विदीर्ण हो उठता था । समाज से उपेक्षित, `भिक्षुक`, `पगली`, `बिल्लेसुर`, `कुल्ली भाट`, `चतुरी चमार`, `पथ पर पत्थर तोड़ने वाली` प्रभृति पात्र उनकी संवेदना का स्पर्श पाते रहे थे । परम्परा से दबाए गए इस उपेक्षित वर्ग के प्रति कितनी वेदनामय उक्ति है --`इनकी और कभी

१- निराला : अनामिका (हिन्दी के सुमनों के प्रति), १९६३ ई०, पृ० ११८

किसी ने नहीं देखा । ये पुश्त- दर-पुश्त सम्मान देकर नतमस्तक हो समाज से चले गए । संसार की सभ्यता के इतिहास में उनका स्थान नहीं । यह नहीं कह सकते हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे, रामायण, महाभारत इनकी कृतियां हैं, अर्थ-शास्त्र, काम-सूत्र, इन्होंने लिखे हैं, ये नहीं कह सकते अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन,पृथ्वीराज इनके वंश के हैं । फिर भी ये थे और हैं ।'[1]
यह है मानवतावादी कवि-हृदय की मार्मिक अभिव्यक्ति ।

२६. आलोच्य कवि रूढ़ियों से ग्रस्त समाज से निरन्तर लोहा लेता रहा । स्थान-स्थान पर परोक्ष या अपरोक्ष रूप से इसकी अभिव्यंजना मिल जाती है । अपनी पुत्री सरोज के विवाह पर उन्होंने उन अमानवीय परम्पराओं तथा मान्यताओं को तोड़ा था, जिसके असह्य बोझ ने मध्यम वर्ग की रीढ़ ही तोड़ डाली है । उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों तथा खोखली मान्यताओं का खुलकर विद्रोह किया । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की अमानुषिकता पर भी व्यंग्य प्रहार किया । उनकी कहीं `कुलांगार खाकर पत्तल में करे छेद' की उपमा प्रदान की है तो कहीं इनका चमरौंधे जूते से सादृश्य स्थापित किया गया है। उनका सबसे क्रांतिकारी कृत्य `कुल्ली' का श्राद्ध सम्पन्न कराना था, कोई भी ब्राह्मण के `कुल्ली' का श्राद्ध करवाने को प्रस्तुत नहीं था क्योंकि उसने एक मुस्लिम नारी को पत्नी के रूप में वरण किया था । तत्कालीन जीर्ण-शीर्ण समाज से लोहा लेने का साहस `निराला' में ही था । व्यक्तिगत जीवन में ही ऐसी रूढ़ियों का भंजन नहीं किया गया वरन् साहित्य में भी वह नवीन प्रयोग करते हुए अग्रसर होते रहे । उनके समसामयिक किसी भी कवि में इतने विरोधी स्वरों का आलाप नहीं मिलता , यही कारण है कि दूसरों की अपेक्षाकृत इनको ही अधिक विरोधों का सामना करना पड़ा था । `निराला' को छोड़कर शेष सभी कवि रूढ़ियों का विरोध करते हुए भी किसी ठोस क्रांतिकारी भूमि का संकेत न दे सके थे । लेकिन यह जीवन, समाज, तथा काव्य तीनों में ही क्रान्तिकारी रहे । उनका अदम्य पौरुष भाग्य अंक तक को खण्डित करने का अपूर्व साहस रखता था । निरन्तर संघर्षों तथा विरोधों ने उनकी गति का मार्ग अवरुद्ध अवरुद्ध नहीं किया वरन् उनको नई दिशा, विकास एवं गति प्रदान की जितना अधिक उनको सहना पड़ा , उतना ही अधिक उनका परिष्कार होता गया । शत-शत विरोधों तथा आलोचनाओं के मध्य ही `निराला'

१- निराला : कुल्ली भाट : १९५३, लखनऊ, पृ० १०६

के काव्य ने औदात्य और अप्रतिमता का वरदान पाया था ।

२७. 'निराला' में अदम्य आत्मविश्वास था, किसी भी प्रकार का अवरोध या कंटक उनके मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकता था । जिसने भी हठवश उनका विरोध किया, अन्त में उसको उनके सम्मुख झुकना ही पड़ा । अन्याय को उन्होंने कभी भी प्रश्रय नहीं दिया । 'धारा' नामक कविता उनके पौरुष दीप्त व्यक्तित्व की झलक देती है :-

बहने दो रोक टोक से नहीं रुकती है
यौवन मद की बाढ़ ~~नहीं-की~~ नदी की
किसे देख झुकती है
गरज गरज वह क्या कहती है कहने दो
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो । [१]

'बादल राग' में संकीर्ण, अवरुद्ध तथा रूढ़ि बद्ध जीवन में परिवर्तन तथा परिष्कृति लाने के हेतु ही उसके विप्लवकारी रूप का आवाहन किया गया है । सामुहिक मुक्ति ही इस विप्लवकारी 'बादलराग' की मूलभूत प्रेरणा है । 'निराला' के 'बादलराग' में उनके विराट एवं ओजपूर्ण व्यक्तित्व का चित्र परिलक्षित होता है । उनके काव्य में वीर रस की सृष्टि उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही हुई है ।

२८. आलोच्य कवि की प्रतिभा बहुमुखी थी । वे श्रेष्ठ कवि, संवेदनशील कहानीकार, उपन्यासकार, चिन्तनशील निबन्धकार, उत्कृष्ट कोटि के संगीतकार, ओजस्वी वक्ता, पहलवान, तैराक, याचक, खिलाड़ी, वीतराग तथा साधक थे । उनके व्यक्तित्व में एक साथ ही अनेक गुणों का अपूर्व सामन्जस्य दृष्टिगत होता है । उनमें भारतीय संस्कृति का पूर्ण समाहार हो पाता है । 'निराला' को जीवन के अंतिम दिनों में जिस मानसिक विक्षेप का सामना करना पड़ा उसको पागलपन जैसे हल्के शब्द की संज्ञा प्रदान की जाती है । ऐसे उत्तरदायित्वहीन आलोचकों के लिए क्या कहा जा सकता है । सृजनात्मक 'अहं' तो हर स्थिति में ग्राहणीय है । 'निराला' का दम्भ भी सृजनात्मक था, मानवी था । वह मानव थे -- महामानव । इसीलिए उनका सृजन भी महान है क्योंकि वह उनके उस महान व्यक्तित्व की सच्ची अभिव्यक्ति है । माँ भारती का यह वरद पुत्र 'निराला' १५ अक्टूबर १९६१ को हिन्दी साहित्य क्षेत्र में कभी न पूर्ण होने वाले अभाव की सृष्टि कर सदैव के लिए पंचतत्वों में विलीन हो गया ।

अध्याय - ३

`निराला` - साहित्य और उसका कालक्रम

काव्य

१. `निराला` का साहित्यिक वाङ्मय में प्रवेश `जुही की कली` (१९१६ई०) से स्वीकार किया जाता है , तब से अनवरत अध्यवसाय से वह साहित्य-साधना में लगे रहे । `निराला` के सृजन की पृष्ठभूमि विस्तृत है, जिसमें समय की परिवर्तित होती हुई गतिविधियों के साथ उनका काव्य भी अनेक मोड़ लेता रहा । एक जागरूक कलाकार के सृजन में अनेकरूपता और वैविध्य रहना स्वाभाविक ही है । कवि सबसे अधिक प्रगतिशील और स्पन्दनशील होता है, वह इतिहासवेत्ता भी है और भविष्य वेत्ता भी । सुविधा की दृष्टि से `निराला` के काव्य-साहित्य का विभाजन दो भागों में किया जा सकता है -- (१) प्रारम्भ से १९३८ ई०(तुलसीदास) तक की रचनायें एवं (२) १९३८ ई० के बाद की रचनायें ।

१९३८ ई० तक की रचनायें

इसके अन्तर्गत १९१६ से १९३८ ई० तक की रचनाओं को स्वीकृत किया गया है, `परिमल` (१९२९ई०), `गीतिका` (१९३६ई०), `अनामिका` (१९३७ई०) तथा `तुलसीदास` (१९३८ई०) का कार्यकाल ।

१९३८ई० के बाद की रचनायें

इसमें १९४० से मृत्युपर्यन्त तक की रचनायें आ जाती हैं-- `कुकुरमुत्ता` (१९४२ई०), `अणिमा` (१९४३ई०), `बेला` (१९४३ई०), `नये पत्ते` (१९४६ई०), `अर्चना` (१९५०ई०), `आराधना` (१९५३ई०) तथा `गीत गुंज` (१९५४ ई०) ।

१९३८ ई० तक की कविताओं को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है --

(१) १९१९ से १९३४ ई० तक

(२) १९३४ से १९३८ ई० तक

सन् १९३४ से ३८ तक के काल को संधिकाल की संज्ञा दी जा सकती है, और इसके अन्तर्गत `सरोज स्मृति` (१९३५ई०), `दान` (१९३५ ई०), `प्रेयसी` (१९३५ई०), `राम की शक्ति पूजा` (१९३६ई०), `वन बेला` (१९३७ई०), `हिन्दी सुमनों के प्रति` (१९३७ई०) तथा `तुलसीदास` (१९३८ई०) इत्यादि रचनाओं को स्वीकार किया जा सकता है। संधिकाल कहने का कारण यह है कि इसमें दोनों युगों की संधि है। इसमें औदात्यमूलक और व्यंग्यमूलक दोनों भाव स्तरों का संक्रमण स्पष्ट दिखाई पड़ता है -- एक तरफ `राम की शक्ति पूजा` और `तुलसीदास` का औदात्यपूर्ण काव्य है, दूसरी तरफ `वन बेला` का व्यंग्यपूर्ण स्वर जो जनसाधारण की चेतना का भी स्पर्श करता है। `प्रेयसी` का स्वर जहां छायावादी स्वच्छन्दता का प्रतीक है, वहां `दान` तथा `वह तोड़ती पत्थर` का स्वर व्यंग्य और यथार्थवादिता का। अत: १९३८ तथा उसके बाद की कवितायें दोनों युगों की चेतना का संधि स्थल है।

२. यों तो किसी भी कवि के सृजन को समय की निश्चित परिधि या तिथि में नहीं बांधा जा सकता, देशकाल और परिस्थिति के अनुसार कवि की विचारधारा में विस्तार, संकोच क्रिया-प्रतिक्रिया होती ही रहती है, लेकिन कहीं न कहीं शैली या विषय में ऐसा वैविध्य होता है कि सुविधा के लिए वहां विभाजन रेखा खींची ही जा सकती है, यद्यपि वैविध्य और अनेकरूपता में निश्चित सीमा-रेखा बना सकना अत्यधिक कठिन कार्य है, परन्तु मूल्यांकन की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। `निराला` के साहित्य को भी इसी आधार पर दो भागों में विभक्त किया गया है। यों तो दोनों अन्तरालों में एक-सी भाव भूमियों का आभास मिल जाता है। १९३८ ई० तक के काव्य में आत्मनिष्ठ वृत्तियां मुखर हुई हैं, और १९३८ के बाद के काव्य में सामाजिक वृत्तियां। जहां प्रथम महायुद्ध ने कवि को दार्शनिकता की ओर प्रेरित किया था, वहां द्वितीय महायुद्ध की परिस्थितियों ने उनको सामाजिकता की ओर उन्मुख कर दिया। १९३८ ई० तक की कविताओं की उदात्त भावभूमि को कवि बाद की कविताओं में स्थापित न कर सका। विषय, शैली और भावों में परिवर्तन के साथ उन्होंने अनेक नवीन प्रयोग भी

किए और अन्त में भक्ति की स्निग्ध धारा में अपने को बहा दिया । १६३८ ई० तक की कविताओं का काल कवि का उदयकाल था, जो कि सम्पूर्ण प्रकाश और क्रांति के साथ भास्वित हुआ था । १६३८ के बाद की कविताओं का समय उसका सान्ध्य काल था, जिसमें कवि की शक्ति और ओज अवसान पर था, इन्द्रियां शिथिल होती हुई अन्तर्मुखी होती जा रही थीं । प्रारम्भिक काव्य-साधना में भाव, भाषा तथा छन्द का जैसा परिष्कार और निर्वाचन है, वह साधारणतया बाद की कविताओं में उपलब्ध नहीं होता । विषय-विस्तार तो हुआ ही, भाषा भी सामान्य स्तर की होती गई, पर यह परिवर्तन स्कात्मक नहीं हुआ, भाषा का सारल्य, वस्तु-विषय की नवीनता, हास्य-व्यंग्य की उक्तियां उनकी १६३८ तक की रचनाओं में भी यदा-कदा दृष्टिगत हो जाती थीं । परन्तु हास्य-व्यंग्य का उन्मुक्त व्यवहार १६३६ के बाद की कविताओं में ही प्रचुररूप से मिलता है । यथार्थ की अनुभूति अधिक निजत्व और तीव्रता में उत्तरकाल में ही प्रकट हुई । इसमें संयम और व्यवस्था का अभाव स्पष्ट देखा जा सकता है ।

३. १६३८ ई० तक की रचनाओं में कवि का दृष्टिकोण अधिक समाजोन्मुख नहीं हो पाया था । यद्यपि वह `तोड़ती पत्थर` , `भिक्षुक` तथा `दीन` इत्यादि कविताओं का प्रणयन कर चुका था । वस्तुत: उस समय की रचनाओं में कवि का स्वर अपूर्व तटस्थता से पूर्ण रहा था । सन् १६३६-४० तक आते-आते परिस्थितियां काफी परिवर्तित हो गई थीं, राजनीतिक हलचलें खूब जोरों पर थीं, जनता अपने अधिकारों के लिए जागरूक हो रही थी । स्वतन्त्रता के बाद भी जनता का शोषण और आर्थिक अभाव निरन्तर बढ़ता जा रहा था । तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार कवियों का स्वर भी बदला, काव्य में शोषितों की व गाथाएं भी गाई जाने लगीं, यथार्थ का आग्रह दिखने लगा । स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में `निराला` यथार्थ का धरातल पूर्णतया पकड़े रहते हैं । जन-मानस को सिक्त करने की क्षमता उनके इस काव्य में है । जीवन की विषमताओं, दैन्य और कष्टों को उन्होंने झेला था, निरन्तर संघर्षों के आघातों से उनका आक्रोश विद्रोह व्यंग्य और विद्रूप में परिवर्तित होता गया । `निराला` काव्य की स्थूलरूप से विभाजन रेखायें निर्धारित कर लेने के बाद उनकी रचनाओं के कालक्रमादि पर विचार कर लेना समीचीन होगा । उनकी रचनाओं का क्रम से उल्लेख नीचे किया जायगा । पहले उनकी काव्य-रचनाओं पर विचार किया जायगा, तत्पश्चात

गद्य-रचनाओं पर ।

काव्य रचनायें

`परिमल`

४. यह सन् १९२९ में प्रकाशित `निराला` का प्रथम काव्य-संग्रह है । तीन खण्डों में विभाजित इस संग्रह में १९१६ से १९२८ तक की रचनाओं का समावेश हुआ है --

(क) प्रथम खण्ड में सममात्रिक अन्त्यानुप्रास कवितायें हैं ।

(ख) द्वितीय खण्ड में विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें हैं । तथा

(ग) तृतीय खण्ड के अन्तर्गत स्वच्छन्द छन्द की कविताओं का समावेश किया गया है ।

इस तृतीय खण्ड की कविताओं के कारण ही `निराला` को साहित्य-प्रांगण में अपार विरोध और संघर्ष का सामना करना पड़ा था । उनकी प्रारम्भिक कविता `जुही की कली` (१९१६ई०) का सृजन बीस वर्ष की अवस्था में हुआ था, किन्तु विषय, भाव और शैली की अत्यधिक उन्मुक्तता के कारण वह द्विवेदी जी की `सरस्वती` में स्थान न पा सकी थी । रूप-विधान एवं भावबोध की स्वच्छन्दता से द्विवेदी कालीन स्थूल विचारधारा से उसका सामंजस्य स्थापित न हो सका, क्योंकि तब तक खड़ी बोली काव्य में छन्दबद्ध पद्य-रचना का ही आग्रह था । आदर्श,मर्यादा तथा नीतिमत्ता के आग्रह से पूर्ण इतिवृत्तात्मक काव्य में `जुही की कली` का उन्मुक्त सृजन कैसे स्वीकार्य हो सकता था । वह तत्कालीन मानसिक स्तर से पूर्णतया विपरीत थी । यही कारण है कि सन् १९१६ में प्रणीत यह कविता सात वर्ष के पश्चात् २२ दिसम्बर १९२३ ई के `मतवाला` में प्रकाशित हो सकी । कवि का यह ग्रन्थ विषय,भाव और शैली की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण है । छायावाद की उत्कृष्ट रचनाओं के साथ-साथ इसमें राष्ट्रीयता ,सामाजिकता, क्रान्तिकारिता तथा रहस्यवादिता का स्वर भी मुखरित हुआ है । वस्तुत: `परिमल` `निराला` की क्रान्ति और विद्रोह का जीवन्त प्रतीक है । `परिमल` संग्रह की अधिकांश कवितायें `मतवाला` , `समन्वय` , `सुधा` , `प्रभा` पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं ।[१]
सम्पूर्ण रचना संख्या -- ७८ है ।

१- देखिये : परिशिष्ट

`गीतिका'

५. इस संग्रह की प्रकाशन तिथि सन् १९३६ `समीक्षा और समर्पण` के आधार पर निर्धारित की गयी है । जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह `निराला` के उत्कृष्ट गीतों का संग्रह है । गेयत्व की दृष्टि से `गीतिका` के गीत अभिनव हैं । इसके गीतों में शुद्ध गीति-सौन्दर्य का उन्मेष हुआ है । गीति-योजना के अनुरूप स्वर और शब्द का समन्वय करने में वह पर्याप्त सफल रहा है ।सांकेतिक अभिव्यंजना और संगीतमयता की इसके गीतों में प्रधानता है ।`गीतिका` के अधिकतर गीत दार्शनिकता के झीने आवरण से आच्छादित हैं, चित्रात्मकता, भास्वरता, अलंकृतता तथा ओजस्विता कवि के लगभग समस्त गीतों में परिलक्षित होती है । शृंगारिक भावना के साथ राष्ट्रीय भावना का स्वर भी मुखर हुआ है । `गीतिका` के गीतों की प्रधान विशेषता काव्य और संगीत का समन्वय है । भाषा शुद्ध-संस्कृत-निष्ठ है । `गीतिका` के प्रधान गीतों में --`वर दे वीणावादिनी वर दे`, `प्रिय यामिनी जागी`,`सखि बसन्त आया`,`मौन रही हार`,`वह चली अब अलि शिशिर समीर`,`अपलक आप खड़ी`,`छोड़ दो जीवन यों न मलो`,`सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी`,` जागो जीवन धनि के`, `दृगों की कलियां नवल खुली` `सखि धीरे बहरी`,` लिखती सब कहते`,`जग का एक देखा तार,`स्पर्श से लाज लगी`, `एक ही आशा में सब प्राण`,`नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे`,`तुम्हीं गाती हो अपना गान`,`मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा` ,`भारति जय विजय करे`,`बन्दू पद सुन्दर तव`,`हुआ प्रात प्रियतम तुम जावगो चले`,` दे मैं करूं वरण`,`प्रात तव द्वार पर`,`रही आगमन में`,`अस्ताचल रवि,`जल छल छल छवि` इत्यादि उल्लेखनीय हैं । इस ग्रन्थ के अधिकांश गीत विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं --`चांद`,`सुधा`,`माधुरी`, `वीणा`,`हंस`,`सरस्वती`आदि में प्रकाशित हुए थे[१]।

गीतिका की सम्पूर्ण गीत संख्या -- १०१ है ।

`अनामिका'

६. इस संग्रह की प्रकाशन तिथि सन् १९३७ प्राक्कथन के आधार पर है । इसमें कुछ कवितायें रवीन्द्र और विवेकानन्द की कविताओं का अनुवाद या भावानुवाद है । `राम की शक्ति पूजा` तथा `सरोज-स्मृति` इसी संग्रह की विशिष्टता है ।-

---

१- देखिये परिशिष्ट

`सरोज-स्मृति` कवि के स्वयं के जीवन का एक ऐतिहासिक पृष्ठ है । यह उसके वेदना दग्ध हृदय की निश्छल अभिव्यक्ति है, वस्तुत: यह उसके संघर्षमय जीवन का ऐसा खुला हुआ चित्र है, जिसमें कुछ भी ढंका-मुंदा नहीं है । प्रस्तुत ग्रन्थ में सभी स्वरों का समाहार एक साथ देखने को मिलता है --`प्रेयसी` का उन्मुक्त प्रणय है, `वह तोड़ती पत्थर` का यथार्थवादी चित्र है ,`खंडहर, `दिल्ली`,`राम की शक्ति पूजा` के सांस्कृतिक स्वर के साथ उद्बोधन जैसे जागरण गीत भी इसमें उपलब्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रधान कविताओं के अन्तर्गत

`रेखा`,`प्रेयसी`,`दान`,`बन बेला`,`वह तोड़ती पत्थर`,`सरोज स्मृति` `मित्र के प्रति` ,`सम्राट एडवर्ड के प्रति`,`किसान की नई बहू की आंखें` ,`हिन्दी के सुमनों के प्रति`,`सेवा आरम्भ` ,`कविता के प्रति`,`दिल्ली`,`खंडहर`,`राम की शक्ति पूजा` आदि को ले सकते हैं । इस संग्रह की भी अधिकांश कवितायें `मतवाला` `समन्वय` ,`सरस्वती`,`सुधा` ,`माधुरी`,`वीणा` आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं [1] । एक-दो कवितायें ऐसी भी हैं जिनका एक ही समय में `मतवाला` और `समन्वय` में प्रकाशन हुआ था । इसकी सम्पूर्ण रचना संख्या ५६ है ।

`तुलसीदास`

७. सन् १९३८ में प्रकाशित `तुलसीदास` उच्चकोटि का अन्तर्मुख प्रबन्ध काव्य है । ऐतिहासिक पात्र `तुलसीदास के मानसिक द्वन्द्व का आलेखन ही इस ग्रन्थ में हुआ है । रहस्यात्मक आधार और मनोवैज्ञानिक चित्रण ही इस प्रबन्ध की अन्यतम सफलता का बहुत बड़ा कारण है । केवल १०० छन्दों में इस प्रबन्ध का कलेवर आबद्ध है । ६०० पंक्तियों के इस लघु प्रबन्ध काव्य में लेखक महाकाव्यत्व के औदात्य का स समावेश कर सका है ।

`कुकुरमुत्ता`

८. सन् १९४२ में इसका प्रकाशन हुआ था । इसमें आठ कविताओं का समावेश हुआ है --`कुकुर मुत्ता`,`गर्म पकौड़ी`,`प्रेम संगीत`,`रानी और कानी`, `खजोहरा`,` मास्को डायलाग्स`,`स्फटिक शिला`।`कुकुर मुत्ता` के अतिरिक्त अन्य सातों कविताओं का `नये पत्ते` संग्रह में समावेश कर दिया गया है ।`कुकुर मुत्ता`

१-पूर्ण विवरण परिशिष्ट में दिया जायगा ।

हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविता है । ४३६ पंक्तियों की यह कविता दो खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड में २०६ पंक्तियों तथा द्वितीय खण्ड में २२७ पंक्तियां हैं ।

`अणिमा`

९. इस संग्रह की प्रकाशन तिथि १९४३ है । इसमें भी विभिन्न स्वरों का समन्वय एक साथ मिलता है , प्रधानता व्यंग्य, विषाद, भक्ति और रहस्य की है । कतिपय वृत्त लेख भी है । नयी शैली की व्यंग्यात्मक कविताओं के अन्तर्गत -- `सड़क के किनारे दुकान है`, `यह है बाजार सौदा करते हैं सब यार` , `चूंकि यहां दाना है`, आदि उल्लेखनीय हैं । `सहस्राब्दि` इस संकलन की सबसे सुन्दर सांस्कृतिक कविता है । प्रस्तुत संग्रह की भी अधिकांश कवितायें `समन्वय`, `संगम`, `माधुरी` `सुधा`, `सरस्वती` आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थी[१] । इसकी सम्पूर्ण रचना ४५ है ।

`बेला`

१०. यह रचना १९४३ ई० में प्रकाशित हुई । इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता अलग अलग बहरों की गज़लें हैं, जिनमें फारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह करने का प्रयास है । इसमें आलोच्य कवि का प्रयोगशील रूप दृष्टिगत होता है । विषय का वैविध्य है -- पर प्रधान दो ही स्वर हैं -- दार्शनिक और राष्ट्रीय । इस संग्रह की कतिपय रचनायें `हंस`, `वीणा`, `कादम्बिनी` आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थीं[२] । इसकी सम्पूर्ण रचना संख्या १०१ है ।

`नये पत्ते`

११. प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रकाशन तिथि मार्च १९४६ है । यह स्फुट हास्य-व्यंग्यपूर्ण कविताओं का संग्रह है । `हास्य-व्यंग्य` के अतिरिक्त `तिलांजलि` नेहरू जी के बहनोई पर लिखी गयी कविता है । `कैलाश में शरत` कवि का अप्रतिम दिवास्वप्न है,

---

१- देखिये परिशिष्ट

२- वही०

जिसमें असम्बद्ध कल्पनायें ही मूर्त की गयी हैं । `काली` और `परमहंस रामकृष्ण` पर भी छोटी छोटी कवितायें हैं । इस संग्रह में भी `निराला` की दृष्टि प्रयोगों की ओर ही अधिक रही है,तथा काव्यात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा यथार्थोन्मुखी आधार ही अधिक लिया गया है ।`ग्रामीण-प्रकृति` पर आधारित `देवी सरस्वती` `नये पत्ते` की कविताओं में सबसे सुन्दर कविता है । इस संग्रह की भी कतिपय कवितायें `हंस` पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं[१] । इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण रचना-संख्या २८ है ।

`अर्चना`

१२. इस संग्रह का प्रकाशन सन् १९५० में हुआ । यों प्रत्येक गीत के अंत में भी रचना-तिथि दी गयी है, उसके आधार पर भी इसके प्रकाशन की तिथि यही निश्चित है । इस संग्रह के अधिकांश गीत आत्म निवेदनात्मक हैं, पर शृंगारिक, जनवादी स्वर भी मुखर हुआ है । वस्तुत: `अर्चना` आधुनिक कवि की `विनय-पत्रिका` है । प्रयोगात्मक प्रवृत्ति यहां पर भी परिलक्षित होती है । कतिपय गीत `संगम` पत्रिका आदि में भी प्रकाशित हुए थे[१] । सम्पूर्ण रचना संख्या --१२८ है ।

`आराधना`

१३. यह सन् १९५३ में प्रकाशित स्फुट गीतों का संग्रह है । वस्तुत: यह `अर्चना` की परम्परा में ही स्वीकार किया जा सकता है । विषादात्मक, सामाजिक चेतना, भक्तिमूलक, तथा शृंगारिक भावना के साथ `ऊंट-बैल का साथ हुआ है`,`मानव जहां बैल घोड़ा है` आदि व्यंग्ययुक्त प्रयोगात्मक गीतों को भी इसमें देखा जा सकता है । `संगम`,`नई धारा`, सरस्वती`,`कल्पना` आदि पत्रिकाओं में इसकी सामग्री प्रकाशित हुई[२] । इसकी सम्पूर्ण रचना संख्या ९६ है ।

`गीत-गुंज`

१४. यह १९५४ में प्रकाशित स्फुट कविताओं का काव्य-संग्रह है । कतिपय `अर्चना`,`आराधना` के गीत भी इसमें समाविष्ट कर दिए गए हैं । प्रकृति

१- देखिये परिशिष्ट

२- वही०

के प्रति अंतरंग आस्था से समन्वित गीत सृष्टि है । `कल्पना` पत्रिका में इसके कुछ गीत प्रकाशित हुए थे[1] । इसकी सम्पूर्ण रचना-संख्या २६ है ।

`अपरा`

१५. सन् १६५६ में `अपरा` का तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ । साहित्यकार संसद द्वारा प्रकाशित इस संग्रह में सभी संग्रहों की मुख्य-मुख्य कविताओं का समावेश किया गया है । ` परिमल` की २६, `अनामिका` की १३, `गीतिका` की १८, `अणिमा की १५, `नये पत्ते की १ तथा `अर्चना` की ५ रचनाओं के साथ-साथ `तुलसीदास` के १८ छन्दों का समावेश किया गया है ।

गद्य रचनायें

१६. सन् १६२०-२१ से ही गद्यकार के रूप में `निराला` प्रकाश में आने लगे थे[2] । गद्य के क्षेत्र में इनका प्रयास प्रशंसनीय रहा । `मतवाला` पत्र में यह गद्य और पद्य दोनों क्षेत्रों में समानरूप से लिखते रहे । कतिपय कहानियों के अतिरिक्त भिन्न नाम से यह समालोचनायें भी लिखते थे । इन समालोचनाओं में `निराला` जी का कल्पित नाम `गरगज सिंह वर्मा` रहता था । इस कथन की पुष्टि `शिवपूजन रचनावली` के चतुर्थ खण्ड में इस सम्बन्ध में उल्लिखित प्रसंग से हो जाती है[3] । `समन्वय` पत्रिका में भी `एकदार्शनिक` छद्मनाम से यह लेख लिखा करते थे[4] । `मतवाला` काल की अधिकांश समालोचनायें `चाबुक` निबन्ध संग्रह में समाविष्ट की गयी हैं । लेखक ने स्वयं `निवेदन` में इसका समर्थन किया है -- ` चाबुक मेरे लेखों का तीसरा संग्रह है । अधिकांश लेख सन् १६२३-२४ के लिखे हुए हैं । `चाबुक` शीर्षक से मैं एक दूसरे नाम से `मतवाला` में व्याकरण पर आलोचनायें लिखा करता था[5] ।`

१- देखिये परिशिष्ट

२- सूर्यकांत त्रिपाठी :हिन्दी और बंगला में अंतर `सरस्वती`, १६२१, पृ०१२५

३- `मतवाला` में `निराला` जी की कविता तो बराबर छपती ही थी, समालोचना भी वही लिखते थे, पर उसमें अपना कल्पित नाम देते थे `गरगज सिंह वर्मा` । शिवपूजन रचनावली : चतुर्थखण्ड, पृ०२७७, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ।

४- `निराला` : संग्रह, प्राक्कथन : रामकृष्ण त्रिपाठी, १६६३, प्रयाग, पृ० ७ ।

५- `निराला` `चाबुक` : निवेदन (?)

पुस्तकाकार प्रकाशन की दृष्टि से 'चाबुक' बाद का संग्रह होते हुए भी रचनाओं की दृष्टि से उनका प्रारम्भिक गद्य-प्रयास है । उसके अधिकांश लेख 'मतवाला' काल के हैं, लेकिन यहां पर प्रकाशन के आधार पर ही कृतियों का कालक्रम निर्धारित किया जायगा । कहानी, निबन्ध, उपन्यास एवं आलोचना आदि के क्षेत्र में ही उनका कार्य प्रशंसनीय ही नहीं रहा, वरन् अनुवादक के रूप में भी इन्होंने असाधारण सफलता प्राप्त की थी । कतिपय पुस्तक-परिचय भी यत्र-तत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं[१] । कालक्रमानुसार गद्य रचनाओं की परिचयात्मक सूचना नीचे दी जायगी ।

'भक्त ध्रुव'

१७. यह पौराणिक आख्यान पर आधारित जीवन चरित है, जिसका प्रथम प्रकाशन सन् १६२६ में हुआ था । राष्ट्र के बालकों का आदर्श श्रेष्ठ चरित्र-निर्माण हो सके, इस उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर ध्रुव के साधना रत जीवन का आख्यान किया गया है । 'ध्रुव' जैसे श्रेष्ठ आदर्श चरित्रों की प्रेरणा से देश के बालवृन्द शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से बल और प्रेरणा प्राप्त कर सकें । इस जीवनी की भाषा सरल है । नवम परिच्छेदों के अन्तर्गत कथावस्तु का संगठन हुआ है,--जैसे पूर्वाभास, सुनीति का निर्वासन, पुनर्मिलन, ध्रुव का जन्म और बाल्य-काल, भक्ति पथ के पथिक ध्रुव, नारद जी का उपदेश, राजा उत्तानपाद का पश्चात्ताप, ध्रुव की घोर तपस्या तथा भक्ति की विचित्र महिमा । सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या ६४ है ।

'भक्त प्रह्लाद'

१८. प्रस्तुत जीवन चरित्र भी पौराणिक उपाख्यान है, तथा सन् १६२६ में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था । सरल, सुबोध भाषा में लिखे इस जीवन चरित में

१- निराला : (क) होमियोपैथिक चारु चिकित्सा: माधुरी, सितम्बर १६३६ ।
(ख) कामायनी महाकाव्य परीक्षा। सुधा । अक्टूबर १६३७ ।
(ग) 'बोल चाल' सुधा । दिसम्बर १६२६ ।
(घ) श्री रामकृष्ण आश्रम घतोली की पुस्तकें--
(१) श्री रामकृष्ण ~~वचन~~ लीलामृत
(२) प्राच्य और पाश्चात्य
माधुरी, जनवरी १६४० ।

लेखक ने साधना और सिद्धि सम्बन्धी उच्च तत्वों को भी प्रकाश में लाने का प्रयास किया है । धर्मनिष्ठ, सरल दृढ़ व्रत बालक प्रह्लाद के जीवन चरित्र लिखने का लक्ष्य भी राष्ट्र के नव विकसित बालकों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करना ही है । चतुर्दश परिच्छेदों में उस कथा का प्रसार हुआ है -- परिचय, हिरण्य कश्यपु अत्याचार, तपस्या लड़ाई, वर प्राप्ति और गृहागमन, विजय और प्रह्लाद जन्म, बाल्य काल और गुरुकुल, प्रह्लाद श की शिक्षा, प्रह्लाद की परीक्षाएं, विषपान, द्विरद -पद-तल, सर्प दंश चेष्टा, पर्वत शिखर, अग्नि- परीक्षा,सागर-गर्भ में, नरसिंह । सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या ११२ है ।

`भीष्म`

१६. यह भी पौराणिक कथा को लेकर लिखा गया जीवन चरित है । इसका प्रकाशन सन् १६२६ में हुआ । एक श्रेष्ठ महापुरुष के समस्त गुण भीष्म के चरित्र में पुंजीभूत हुए दिखते हैं । भीष्म के चरित्र से सब प्रकार की शिक्षाएं एक साथ मिल जाती हैं, पिता के प्रति पुत्र की अपार भक्ति, माता और विमाता के प्रति कर्तव्य-भावना, मनुष्यता का उच्चकोटि का आदर्श , शास्त्र अध्ययन , ब्रह्मचर्य की अपार महिमा और तेज , समर क्षेत्र में क्षत्रियों का क क्या आदर्श हो, यथार्थ वीरता का स्वरूप -- इन सभी महत् गुणों का समन्वय, भीष्म के चरित्र में साकार हो जाता है । `भीष्म` जैसे श्रेष्ठ महापुरुष का आदर्श चरित्र बालकों का आदर्श बनने योग्य है । इस जीवनी को लिखने के लिए `निराला ने भीष्म` पर लिखी अंग्रेज़ी, बंगला पुस्तकों को भी आधार स्वरूप लिया था । द्वादश परिच्छेद में यह कथा पूर्ण विकास पा सकी है-- भीष्म का बाल्यकाल, भीष्म की भीषण भीष्म प्रतिज्ञा, प्रतिज्ञा-पालन महाभारत का सूत्र पात,कौरवों का षड्यन्त्र, दुर्योधन का हठ , भीष्म की सत्यनिष्ठा, महाभारत के युद्ध में, भीष्म का अमित पराक्रम, ब्रह्मचर्य का अखण्ड तेज, शरशय्या पर तथा परलोक प्रस्थान । इसकी सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या१११ है ।

`महाराणा प्रताप`

२०.प्रस्तुत ऐतिहासिक जीवन चरित्र का प्रकाशन सन् १६२७ में हुआ । महाराणा प्रताप के ऐतिहासिक वृत्त को लेकर ही इस कथा का निर्माण किया

गया है । चरित्रों के उद्घाटन में मनोवैज्ञानिकता का आश्रय लिया गया है । ज्ञानसिंह तथा महाराणा प्रताप का चरित्र सुन्दर और स्वाभाविक है । कथानक में यत्र तत्र नाटकीयता की भी अवतारणा हो सकी है । ओजस्वी भाषा में लिखित इस पुस्तक के कतिपय स्थल जैसे महारानी तथा बच्चों की कष्ट गाथा -- अत्यधिक करुण बन गए हैं । तत्कालीन परिस्थितियां भी उभर सकी हैं ।भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रधानता है, लेकिन प्रचलित उर्दू शब्दों का समावेश भी हुआ है ।

`हिन्दी-बंगला-शिक्षा`

२१. इस पुस्तक की प्रकाशन तिथि १६२८ है । इस पुस्तक में वर्ण-परिचय से लेकर संधि ज्ञान, शब्द रूपावली, धातुओं के रूप तद्भव, समास एवं कृदन्त आदि व्याकरण के समस्त आवश्यक विषयों का सन्निवेश कर दिया गया है ।बंगला शब्दों की प्रचुरता और अनुवाद-विधि का निर्देशन इस प्रकार भली भांति प्रस्तुत किया गया है कि अच्छी हिन्दी और साधारण संस्कृत का ज्ञान रखने वाले पाठक सरलता से बिना शिक्षक से इससे पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं ।इसकी सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या १५८ है ।

`रवीन्द्र कविता कानन`

२२. प्रथम प्रकाशन सन् १६२८ में हुआ । जैसा कि पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है लेखक द्वारा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व प्रसिद्ध कतिपय कविताओं की समालोचना प्रस्तुत की गयी है । बंगला भाषा का अप्रतिम ज्ञान तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य का गहन अध्ययन होने के कारण `निराला` रवीन्द्रनाथ की कविता में निहित भावों का उद्घाटन, विश्लेषण मार्मिकतापूर्वक कर सके हैं । पहले रवीन्द्र की कविता को प्रस्तुत कर उसका अर्थ करते हुए कविता में निहित विशिष्ट भावस्थिति का भी उद्घाटन किया गया है, परिणामत: भिन्न प्रांतीय पाठक गण भी रवीन्द्रनाथ की कविता का रसास्वादन सहजरूप से कर सकता है । `निराला` ने कालक्रम से उनकी कृतियों का उल्लेख करते हुए कविता में विकसित हुई विभिन्न प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी किया है।स्वदेश-प्रेम सम्बन्धी, शृंगार संबंधी, शिशु मनोविज्ञान सम्बन्धी कविताओं का भी विवेचन किया गया है । संगीत काव्य का भी विश्लेषण अन्यतम बन सका है । इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या १७५ है ।

`अप्सरा`

२३. इस उपन्यास की प्रकाशन तिथि १६३१ है । `निराला` का प्रथम मौलिक एवं सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास की पृष्ठभूमि रोमाण्टिक है । यह सुसम्पन्न, सुसंस्कृत एवं विदुषी वेश्या-पुत्री कनक और मध्यवर्गीय स्वस्थ सुन्दर युवक राजकुमार का प्रणय आख्यान है । तत्कालीन परिस्थितियां मी पर्याप्त रूप से उभर कर सम्मुख आयी हैं । नाटकीय संयोगों से कथा अग्रसर होती है । माषा अधिकांशत: काव्यात्मक है, जो उपन्यासोचित नहीं प्रतीत होती । सम्पूर्ण पृष्ठसंख्या २३८ है ।

`अलका`

२४. `निराला` का यह द्वितीय सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास की प्रकाशन तिथि `वेदना` के आधार पर सन् १६३३ है । रोमांस का पर्याप्त संचय इस उपन्यास में मी हुआ है । लेखक ने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर मी प्रकाश डाला है । ज़मींदार महाजनों के हथकंडे मी खोल कर रख दिए गए हैं । कृषक-वर्ग की समस्याएं मुख्य रूप से उभरी हैं । इस उपन्यास की कतिपय घटनायें सत्य हैं , ऐसा संकेत `निराला` ने दिया है , अत: स्थानों के नामों का उल्लेख नहीं किया गया है । माषा काव्योचित रूपकों से मंडित है । कथा-संगठन की दृष्टि से इस उपन्यास में शैथिल्य दोष है । प्रधान विशेषता यह है कि लेखक की चिंताधारा अबाध रूप से प्रमावित हुई है । उद्देश्य की दृष्टि से यह उपन्यास अवश्य ही सफल कहा जा सकता है । इसकी सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या २११ है ।

`लिली`

२५. इस कहानीसंग्रह की प्रकाशन तिथि १६३३ है । इसमें आठ कहानियां संकलित हैं --(१) लिली (२) ज्योतिर्मयी, (३) कमला, (४) श्यामा, (५) अर्थ , (६) प्रेमिका-परिचय, (७)परिवर्तन एवं (८) हिरनी । प्रस्तुत संग्रह की कतिपय कहानियां यत्र-तत्र `सुधा`, `सरस्वती` प्र पत्रिकाओं में मी प्रकाशित हुई थीं ।[1]

१- देखिए परिशिष्ट ।

`प्रबन्ध पद्म`

२६. सन् १६३४ में प्रकाशित `निराला` का प्रथम निबन्ध संग्रह है । इस संग्रह में अधिकतर साहित्यिक और दार्शनिक एवं कलात्मक निबन्धों का संकलन किया गया है । इस संकलन में दस निबन्ध हैं -- (१) शून्य और शक्ति, (२) साहित्य और भाषा , (३) मुसलमान और हिन्दू कवियों में साम्य, (४) एक बात, (५) पंत जी और पल्लव, (६) राष्ट्र और नारी, (७) रूप और नारी, (८) हमारे साहित्य का ध्येय, (६) काव्य में रूप और अरूप तथा (१०) साहित्य का कुल अपने ही वृंत पर । शैली की दृष्टि से यह सब निबन्ध विचारात्मक कोटि के हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ के अधिकांशतः निबन्ध `सुधा`, `माधुरी` आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे[1] ।

`चतुरी चमार`

२७. प्रस्तुत कहानी संग्रह की प्रकाशन तिथि १६३४ है । यह आठ मौलिक कहानियों का संग्रह है -- (१) `चतुरी चमार`, (२) `सखी`, (३) `न्याय`, (४) राजा साहब को ठेंगा दिखाया`, (५) `देवी`, (६) `स्वामी सारदानन्द जी महाराज, (७) सफलता, (८) भक्त और भगवान । इस संग्रह की अधिकांश कहानियां `सुधा` आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं[2] ।

`सखी`

२८. इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १६३५ में हुआ था, तथा इसमें समाविष्ट सभी कहानियां `चतुरी चमार` संग्रह की ही हैं ।

`निरुपमा`

२६. सन् १६३६ में प्रकाशित `निराला` का तृतीय उपन्यास है । प्रस्तुत उपन्यास का धरातल पूर्वोक्त दोनों उपन्यासों की अपेक्षा यथार्थ का अधिक स्पर्श

१- देखिए परिशिष्ट

२- वही०

करता है । अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को प्रधान रूप से उठाया गया है । उस उपन्यास की नायिका `निरूपमा` अपने से भिन्न जाति के `कुमार` से प्रेम करती है । अन्य समस्यायें भी प्रकाश में आयी हैं । धर्म के नाम पर मान्य रूढ़ मान्यताओं पर कुठाराघात किया गया है । ज़मींदार वर्ग की शोषक वृत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है । सामाजिक विषयवस्तु को लेकर लिखा गया यह उपन्यास उद्देश्य सिद्धि में पूर्ण सफल है ।

`प्रभावती`

३०. सन् १९३६ में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ था । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित इस रोमाण्टिक उपन्यास की कथावस्तु जयचन्द कान्य कुब्जेश्वर सम्राट के समय की है । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को उपन्यास का आधार बनाने का `निराला` का प्रयास सराहनीय है । राजनीति, समाज और धर्म भी उभर कर आया तथा इसकी सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या १८० है ।

`कुल्ली भाट`

३१. यह सन् १९३९ में प्रकाशित हास्य रस पूर्ण रेखा चित्र है । समाज से उपेक्षित प्रताड़ित `कुल्लीभाट` जैसे नायक को इसका चरित नायक बनाया गया है । इसका धरातल सम्पूर्णतया यथार्थवादी है । सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या १४६ है ।

`प्रबन्ध प्रतिमा`

३२. सन् १९४० में प्रकाशित `निराला` का द्वितीय निबन्ध संग्रह है । इस संग्रह के निबन्धों में विषय और शैली की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य दृष्टिगत होता है । अधिकांश निबन्ध चिन्तन प्रधान है । साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों का प्रकटीकरण इन निबन्धों के माध्यम से हुआ है । कतिपय साहित्यिक और राजनीतिक व्यक्ति भी आलोचित हैं । इसमें इक्कीस निबन्ध संकलित हैं --(१) चरखा,(२) गांधी जी से दो बातें, (३) महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर , (४) नेहरू जी से दो बातें, (५) नाटक समस्या, (६) अधिकार समस्या, (७)`साहित्यिक सन्निपात` या वर्तमान धर्म, (८) रचना-सौष्ठव, (९) भाषा-विज्ञान,(१०) बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां,(११) सामाजिक पराधीनता,

(१२) विद्यापति और चंडीदास, (१३) कविवर श्री चंडीदास, (१४) कवि गोविंददास की कुछ कविता, (१५) कला के विरह में जोशी बंधु, (१६) हिन्दी साहित्य में उपन्यास, (१७) वर्तमान हिन्दू समाज, (१८) प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, (१९) मेरे गीत और कला, (२०) बंगाल के वैष्णव कवियों का श्रृंगार वर्णन तथा (२१) हमारा समाज। प्रस्तुत ग्रन्थ के अधिकांश निबन्ध विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे[१]।

'सुकुल की बीवी'

३३. इस कहानी-संग्रह की प्रकाशन तिथि १९४१ है। इसमें चार कहानियां संकलित हैं--(१) सुकुल की बीवी, (२) गजानन्द शास्त्रिणी, (३) कला की रूपरेखा तथा (४) क्या देखा। इस कहानी-संग्रह की कतिपय कहानियां विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं[२]।

'बिल्लेसुर बकरिहा'

३४. यह १९४२ ई० में प्रकाशित यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आधारित हास्य-व्यंग्यपूर्ण रेखाचित्र है। ग्रामीण वातावरण इस ग्रन्थ का प्राण है। भाषा सरल और सुबोध है। सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या ८४ है।

'पंत और पल्लव'

३५. इस ग्रन्थ की प्रकाशन तिथि सन् १९४९ है। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, कविवर पंत की काव्य-आलोचना बहुत ही वैज्ञानिक ढंग से उद्धरण सहित प्रस्तुत की गयी है। यों तो इसका संकलन 'प्रबन्ध पद्म' निबन्ध संग्रह में हो चुका है, पर यह पुस्तकाकार रूप में भी प्रकाशित हुआ है। यह साहित्यिक कोटि की समीक्षा है तथा बंगला और आंग्ल साहित्य के उद्धरण सहित लेखक ने अपने सत्य की पुष्टि की है।

'चोटी की पकड़'

३६. इस उपन्यास की प्रकाशन तिथि सन् १९४६ है। इस यथार्थवादी उपन्यास में सामन्तशाही के विरोध में उभरी हुई लोक-चेतना का चित्रण है। इसकी

१- दे० परिशिष्ट

२- वही०

ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में भी स्वीकार किया जा सकता है ।

`देवी`

३७. इस कहानी-संग्रह की प्रकाशन तिथि सन् १९४८ है । इस संग्रह की समस्त कहानियां अन्य कहानी-संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं । अत: इसकी अपने में मौलिकता नहीं है ।

`काले कारनामे`

३८. यह १९५० ई० में प्रकाशित `निराला` का अधूरा उपन्यास है । इसका कथानक व्यक्ति और समाज की ढोंगी और अवांछित प्रवृत्तियों को दृष्टि में रख कर लिखा गया है । सम्पूर्ण पृष्ठ संख्या ८० है ।

`चाबुक`

३९. सन् १९५१ में प्रकाशित तृतीय निबन्ध संग्रह है । इसमें ९ निबन्धों का संकलन हुआ है । (१) मौन कवि, (२) कविवर विहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र, (३) श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, (४) काव्य साहित्य, (५) कला और देवियां, (६) वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति, (७) बहता हुआ फूल, ~~चरित्र~~(८) चरित्रहीन (९) चाबुक[1] । इसके अधिकांश लेख सन् १९२३, २४ के `मतवाला` काल के संकलित हैं[2] ।

`चयन`

४०. इस निबन्ध संग्रह की प्रकाशन तिथि सन् १९५७ है । इस संग्रह के अन्तर्गत `निराला` के सन् १९२० से १९५६ तक के मध्य लिखे गए लेखों का संकलन है । निबन्धों के साथ कतिपय पुस्तक परिचय भी इसमें समाविष्ट कर दिए गए हैं । सम्पूर्ण रचना-संख्या तेईस है --(१) भाषा की गति और हिन्दी की शैली, (२) खड़ी बोली के कवि और कविता, (३) काव्य साहित्य, (४) हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति, (५) हिन्दी के आदि प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, (६) कवि अंचल ,

---

१- `चाबुक` शीर्षक के अन्तर्गत `मतवाला` में प्रकाशित व्याकरण सम्बन्धी आलोचना का संकलन है ।

२- सूचना के लिए परिशिष्ट देखिए ।

(७) साहित्य की समतल भूमि, (८) महाकवि रवीन्द्र की कविता,(९) ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास,(१०) तुलसीदास के प्रति श्रद्धांजलि,(११) अर्थ-अर्थान्तर,(१२) महादेवी के जन्म दिवस पर ,(१३) शक्ति परिचय,(१४) पं० बनारसीदास का अंग्रेज़ी ज्ञान,(१५) बंग भाषा का उच्चारण ,(१६) कानपुर में तीन सप्ताह,(१७) मनमुखा के उत्तर ,(१८) कामायनी महाकाव्य परीक्षा,(१९) चौलचाल,(२०) श्री रामकृष्ण आश्रम धंतोली की पुस्तकें,(२१) प्राच्य और पाश्चात्य,(२२) श्री श्री भुवनेश्वर की तारीफ,(२३) शुद्धि-पत्र ।संकलनकर्ता ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित निबन्धों की सूचना निबन्ध के अन्त में दे दी है । अत: उसका उल्लेख अनावश्यक होगा ।

`संग्रह`

४१.यह सन् १९६३ में प्रकाशित `निराला` का पंचम निबन्ध संग्रह है । इसमें सन् १९२२ से लेकर १९३४ ई० तक १२ वर्षों में लिखे गये १३ निबन्ध संकलित हैं । `समन्वय` में `एक दार्शनिक` छद्म नाम से लिखे दो निबन्ध --`प्रवाह` और `बाहर और भीतर` भी इसमें समाविष्ट कर दिए गए हैं । (१) बाहर और भीतर, (२) प्रवाह, (३) तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व,(४) विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास,(५) श्री देव रामकृष्ण परमहंस,(६) युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण, (७) भारत में श्री रामकृष्णावतार,(८) वेदान्त केशरी स्वामी विवेकानन्द,(९) अर्थ,(१०) भक्त जो और प्रकृति निरीक्षण ,(११) श्री `चकोरी` जी की कविता, (१२) साहित्यिकों तथा साहित्य-प्रेमियों से निवेदन तथा (१३) दो महाकवि । प्रस्तुत लेखों के अन्त में संकलनकर्ता ने पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख कर दिया है अत: यहां पर उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक होगी ।

अनूदित और रूपान्तरित सामग्री

`महाभारत`

४२. इस ग्रन्थ की प्रकाशन तिथि १९३९ है । संस्कृत , बंगला और हिन्दी की पुस्तकों के आधार पर महाभारत का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है । इसकी भाषा सरल और सुबोध है । इस ग्रन्थ के लिखने का आशय महाभारत को

जन सुलभ बनाना ही था, उन्होंने स्वयं भूमिका में इसका समर्थन किया है, --`यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों गृहदेवियों और बालकों के लिए लिखी गई है। इससे उन्हें महाभारत की कथाओं का सारांश मालूम हो जायगा।` विभिन्न पर्वों के अन्तर्गत कथा को समेटा गया है, जैसे-- आदि पर्व,सभा पर्व, वनपर्व,विराटपर्व, उद्योग पर्व, भीष्म पर्व इत्यादि।

`श्रीरामकृष्ण वचनामृत`

४३. प्रथम संस्करण उपलब्ध न होने के कारण निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इसका प्रथम प्रकाशन कब हुआ। द्वितीय संस्करण की प्रकाशन तिथि सन् १९४७ (प्रथम भाग फरवरी १९४७, द्वितीय भाग अप्रैल १९४७ और तृतीय भाग सितम्बर १९४७) है। यह तीन भागों में प्रकाशित हुआ तथा `श्रीरामकृष्ण - कथामृत` बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इस बंगला पुस्तक में `रामकृष्ण परम हंस` के वार्तालाप और शिक्षाएं लिपिबद्ध हैं। अनुवाद वार्तालाप शैली में है। भाषा, भाव और विषय के अनुकूल ही प्रयुक्त हुई है। `निराला` का बंगला भाषा पर असाधारण अधिकार था, अत: मूल ग्रन्थ की आत्मा तक वह सहज रूप से पहुंच सके हैं तथा अपेक्षित भावों की स्थापना अनुवाद में भी सरलतापूर्वक हो सकी है। भाषा अधिकांशत: संस्कृत बहुला है।

`रामायण`

४४. इस ग्रन्थ की प्रकाशन तिथि सन् १९४८ है। यह तुलसीकृत `रामचरितमानस` अवधी का खड़ी बोली हिन्दी में रूपान्तर किया गया है। केवल `रामचरितमानस` के विनय-खण्ड को ही लेखक ने लिया है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि रूपान्तर करते समय तुलसी के भावों को ही पूरा-पूरा उतार दिया गया है। रूपान्तर में मूल भाव पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है। अहिन्दी भाषा-प्रान्तों में भी `रामचरितमानस` का प्रचार हो सके, इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर सम्भवत: उन्होंने यह `खड़ी बोली हिन्दी रूपान्तर` किया था।

`भारत में विवेकानन्द`

४५. इस अनुवाद की प्रकाशन तिथि सन् १९४८ है। `भारत में

विवेकानन्द' 'इण्डियन लेक्चर्स' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है । 'इण्डियन लेक्चर्स' में १८९७ में कोलम्बो से लेकर अल्मोड़ा तक की यात्रा में विवेकानन्द को जो स्थान-स्थान पर मानपत्र दिए गए थे,तथा उनके प्रतिउत्तर में उन्होंने जो अभिभाषण दिये थे,उन्हीं का संकलन है । इसका हिन्दी अनुवाद 'निराला' की समर्थ लेखनी द्वारा हुआ । गम्भीर सशक्त गद्य-शैली का प्रयोग किया गया है । अभिप्रेत आशय को प्रकट करने में इनकी शैली पूर्ण समर्थ है । 'स्वाधीन भारत अपने महापुरुषों के सदुपदेशों से लाभान्वित हों, यही इस पुस्तक-प्रकाशन का उद्देश्य है ।' (वक्तव्य)

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों के अनुवाद

४६. बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के ग्यारह उपन्यासों का अनुवाद भी लेखक ने किया है --

(१) कृष्णकांत का विल(सन् १९४०), (२) 'रजनी' (१९४०ई०), (३) आनन्द मठ, (४) कपाल कुण्डला ,(५) चन्द्रशेखर, (६) दुर्गेशनन्दिनी, (७) देवी चौधरानी, (८) युगलांगुलीय, (९) राधारानी, (१०) राज सिंह और (११) विष वृक्ष । इन ग्यारह उपन्यासों के अतिरिक्त निम्न पुस्तकों के अनुवाद का भी उल्लेख मिलता है :-

रस अलंकार, वात्स्यायन कामसूत्र, वैदिक साहित्य । ये पुस्तकें दुर्भाग्यवश उपलब्ध न हो सकीं ।

'चमेली'

४७. प्रस्तुत उपन्यास अधूरा है । इसका पुस्तक रूप में प्रकाशन नहीं हुआ । कुछ अंश 'नया- साहित्य' पत्रिका के 'निराला अंक' में उपलब्ध होता है । इस अल्पांश को पढ़कर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह हिन्दुस्तानी भाषा में लिखा गया यथार्थवादी उपन्यास है । कथावस्तु ग्रामीण और यथार्थवादी है । ग्रामीण-जनता किस प्रकार तथाकथित ज़मींदार, पटवारी तथा पंडितों के चंगुल में फंसी रहती है उसका पर्दाफाश किया गया है ।

४८. 'निराला' के कतिपय लेख तथा कहानियाँ अभी भी ऐसे शेष हैं, जिनका समावेश किसी संग्रह में नहीं हो सका । 'निराला' के सम्पूर्ण साहित्य-ज्ञान के लिए इनका प्रकाश में लाना अति आवश्यक है । अन्यथा यत्र-तत्र बिखरी

सामग्री पाठकों के लिए अनचीन्हीं ही रह जाती है । नीचे उन सामग्री का उल्लेख किया जायगा जो किसी भी संग्रह में समाविष्ट नहीं की गई,-- यथा `श्रीमत स्वा० सारदानन्द जी से वार्तालाप`[1], `हिन्दी और बंगला में अन्तर` (`सरस्वती, फरवरी १९२१,पृ०१२५), `जातीय जीवन और रामकृष्ण` (`समन्वय`,१९२३,पृ०१२०), `तुलसीकृत रामायण का आदर्श`, ( माधुरी अगस्त, १९२३,पृ०४९), `कविवर श्री सुमित्रानंदन पंत` (मतवाला,३ म ई १९२४ई०,पृ० ६५६) `सौन्दर्य दर्शन और कवि-कौशल` (`सरोज.. . १९२८, पृ० ७४), `समाज-सुधार` (`सुधा` जनवरी १९३०,पृ० ६६६), `स्वकीया` (माधुरी.... १९३५, पृ० ११२), `रामकृष्ण मिशन` (लखनऊ) (माधुरी, अक्टूबर १९३५ ई०,पृ० ३८३) ,`भारत की देवियाँ` (चांद नवम्बर १९३४,पृ० ३१),` कलमद्र दीक्षित` (`माधुरी`, फरवरी १९४३, पृ० १३), `विधा` (सरस्वती` सितम्बर, १९५८ ई०, पृ० १५९)। गत पृष्ठों में कालक्रम के अनुसार `निराला` की रचनाओं पर विचार किया गया है । यहां पर संक्षेप में विधानुसार रचनाओं की सूची दी जाती है ।

काव्य

परिमल : १९२९ ई०
गीतिका : १९३६ ई०
अनामिका : १९३७ ई०
तुलसीदास : १९३८ ई०
कुकुरमुत्ता : १९४२ ई०
अणिमा : १९४३ ई०
बेला : १९४३ ई०
अपरा : १९४६ ई० (संकलन)
नये पत्ते : १९४६ ई०
अर्चना : १९५० ई०
आराधना : १९५३ ई०
गीत गुंज : १९५४ ई०
कवि श्री : १९५५ ई० (संकलन)

१- प्रस्तुत लेख `समन्वय` का पत्र की सूची में है पर पृष्ठों के अभाव में मिल न सका ।

प्रबन्ध और निबन्ध

रवीन्द्र कविता कानन	: १९२८ ई०
प्रबन्ध पद्म	: १९३४ ई०
प्रबन्ध प्रतिमा	: १९४० ई०
पंत और पल्लव	: १९४६ ई०
चाबुक	: १९५१ ई०
चयन	: १९५७ ई०
संग्रह	: १९६३ ई०

आख्यान

अप्सरा	: १९३१ ई०
अलका	: १९३३ ई०
लिली	: १९३३ ई०
चतुरी चमार	: १९३४ ई०
सखी	: १९३५ ई०
निरुपमा	: १९३६ ई०
प्रभावती	: १९३६ ई०
सुकुल की बीवी	: १९४१ ई०
चमेली	: (?)
चोटी की पकड़	: १९४६ ई०
देवी	: १९४८ ई० (संकलन)
काले कारनामे	: १९५० ई०

जीवनी

भक्त ध्रुव	: १९२६ ई०
भक्त प्रह्लाद	: १९२६ ई०
भीष्म	: १९२६ ई०
महाराणा प्रताप	: १९२७ ई०

अनुवाद : रूपान्तर

महाभारत : १६३६ (महाभारत का संक्षिप्त रूप)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत : १६४७ (द्वितीय संस्करण)

रामायण (विनय खण्ड):१६४८ (तुलसीकृत अवधी से खड़ी बोली में रूपांतर)

भारत में विवेकानन्द :१६४८ ।

आनन्द मठ, कपाल कुंडल, कृष्ण कांत का विल, चन्द्रशेखर,दुर्गेशनन्दिनी , देवी चौधरानी, युगलांगुलीय, रजनी, राजा-रानी,राज सिंह, विष-वृक्ष, (प्रस्तुत प्रकाशित प्रतियां प्रयास करने पर भी उपलब्ध न हो सकीं, केवल `रजनी` और कृष्णकांत का विल` ही प्राप्त हो सके हैं ,अतएव यह कहना कठिन है कि अधिकांश अनुवाद पूरे हुए या नहीं , छपे अथवा नहीं, इसका पता नहीं ।)

रस अलंकार : अज्ञात, अप्राप्य

वात्स्यायन कामसूत्र : अज्ञात, अप्राप्य

वैदिक-साहित्य : अज्ञात, अप्राप्य

भाषा-शिक्षा

हिन्दी-बंगला-शिक्षा : १६२८ ई०

अप्रकाशित पुस्तकों की सूची

नाटक :

समाज, शकुन्तला, ऊषा-अनिरुद्ध, राजयोग ।

उपन्यास : फुलवारी-लीला, सरकार की आंखें, उच्छृंखल ब्रजभाषा आदि

(यह सूची `गीत गुंज` से प्राप्त हुई है)

-o-

द्वितीय खण्ड

आलोचना खण्ड: काव्य

अध्याय -- ४

`निराला` काव्य-साहित्य की प्रवृत्तियां

१. किसी भी साहित्यकार के सृजन का प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में किया गया मुल्यांकन अधिक वैज्ञानिक, पूर्ण और समीचीन हुआ करता है । वस्तुत: इस दृष्टि से किया गया प्रयास साहित्यकार के भावगत उत्कर्ष पर ही केन्द्रित रहता है । अतएव कतिपय भ्रांतियों और अस्पष्टता का कम अवकाश रहता है । प्रस्तुत परिच्छेद में `निराला` के काव्य का विवेचन मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में ही आकलित किया जायगा ।

छायावादी

२.छायावादी सृजन की पृष्ठभूमि में `निराला` का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । अपने स्वभाव एवं गतिविधियों के कारण वे एकाकी ही दृष्टिगत हो जाते हैं । छायावादी कवि अधिकतर मध्यवर्गीय थे, जिनको सृजन के साथ जीवन की आवश्यकताओं की भी चिन्ता करनी पड़ती थी । इसके अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक एवं साहित्यिक स्थिति भी ऐसी थी जिसने कवियों को परिवर्तन हेतु सोचने के लिए बाध्य किया था । देश की राजनीतिक संघर्षरत परिस्थितियां, जिसमें आश्वासन अधिक,प्राप्य कम, साहित्य की निश्चित परम्परागत बन्धनयुक्त मान्यतायें एवं आर्थिक कठिनाइयों ने छायावादी कवियों को एक तरफ अत्यधिक अन्तर्मुखी बना दिया दूसरी तरफ विद्रोही भी । वर्तमान युग के कवियों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का मुक्त उद्घोष किया था, देश की समस्याओं से पीड़ित होते हुए भी

वह उन समस्याओं को अपने वृत में ही लेकर घूमते रहे, उनके विद्रोह के स्वर में 'स्व' का आग्रह होने के कारण स्वातन्त्र्य का केन्द्र समाज न होकर, स्वयं को परम्परागत रूढ़ियों और मान्यताओं से मुक्त करने का हो गया था । कवियों में विद्रोह था पर कोई निश्चित लक्ष्य या धरातल न होने के कारण निराश हो, वह अत्यधिक व्यक्तिनिष्ठ होते गये । इस अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप वे अधिकाधिक मानसपरक, कल्पना-प्रवण, स्वप्निल एवं आदर्शवादी होते गए । वे अपनी कामनाओं, आकांक्षाओं और सूक्ष्म भावात्मक स्वप्नों को, आशा के वायवी रंगीन चित्रों को, कल्पना के माध्यम द्वारा पूर्ण करने लगे ।

३. हिन्दी साहित्य में वैयक्तिकता का इतना आग्रह कभी नहीं दिखाई दिया था । अभी तक साहित्य में समाज तथा देश ही उभर कर आता रहा, साहित्यिक का व्यक्तित्व गौण था, लेकिन प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते-होते वैयक्तिक चेतना मुखर होती दिखाई पड़ने लगती है । छायावाद में द्विवेदी युगीन वस्तुपरकता तथा विषय की प्रधानता के प्रति असंतोष स्पष्ट है । फलत: मध्यवर्गीय चेतना का स्वर छायावाद, अत्यधिक व्यक्तिवादी और 'स्व' चेतना के प्रति जागरूक हो उठा । प्रकृति छायावादी कवियों की सुरम्य उन्मुक्त क्रीड़ास्थली थी ।छायावादी कवि ने प्रकृति पर अपनी मानसिक स्थितियों, संवेदनाओं तथा भावनाओं का आरोप किया । स्वयं की अनुभूतियों को साकार रूप देने के लिए प्रकृति में चेतना का स्वरूप स्वीकार किया । कवियों ने अपनी दमित भावनाओं को एवं प्रणय सम्बन्धों को कल्पना द्वारा मूर्त रूप दिया और प्रकृति के ही माध्यम से वे अपने भावों को उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्त करने का अवसर पा सके । प्रकृति मानसिक छवियों के सौन्दर्य-बोध के रूप में स्वीकृत रही ।

४. नारी और प्रेम छायावादी कवियों के दो प्रधान विषय थे । द्विवेदी युगीन कविता में नारी का आदर्शमय स्थूल चित्रण मात्र हुआ था ।उसके क्रिया-कलाप एक विशिष्ट मर्यादा के अन्तर्गत आबद्ध कर दिए गए थे, यों तो मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा, सीता और उर्मिला को स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है,फिर भी उनका व्यक्तित्व तत्कालीन लक्ष्मण-रेखा में ही पूर्णता पा सका है । छायावादी नारी का रूप इससे पूर्णतया भिन्न है, वह स्वतन्त्र,सूक्ष्म,

सहचरी, प्राण के रूप में ही अवतरित हुई है । वह क्रमश: सूक्ष्म, वायवी और रहस्यात्मक होती गई । प्रेम का क्षेत्र भी अत्यधिक संकुचित हो चुका था । अत्यधिक नैतिकता, आदर्श तथा मर्यादा के आग्रह से प्रेम की वासना कुंठित और दमित रह गई । इसी भावना की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में हुई । यह आक्षेप किसी सीमा तक सत्य है कि द्विवेदी युगीन अत्यधिक वस्तुपरकता की प्रतिक्रिया ही छायावाद है । वस्तुत: द्विवेदी युगीन अभावों की पूर्ति ही छायावाद में हुई । प्रकृति, प्रेम, और नारी का स्वच्छन्दतावादी रूप ही छायावाद के मुख्य विषय रहे इससे पूर्व उनका स्वतन्त्र अस्तित्व दिखाई नहीं पड़ता है ।

५. विषय-विस्तार की दृष्टि से छायावादी युग संकुचित माना जाता रहा है । वरिष्ठ आलोचक रामचन्द्र शुक्ल का छायावादी विषय संकुचन पर आक्षेप है --` नाना अर्थ भूमियों पर काव्य का प्रसार रुक-सा गया । प्रेम क्षेत्र (कहीं आध्यात्मिक, कहीं लौकिक) के भीतर ही कल्पना की चित्र विधायिनी क्रीड़ा के साथ प्रकाण्ड वेदना औत्सुक्य, उन्माद आदि की व्यंजना तथा क्रीड़ा से दौड़ी हुई प्रिय के कपोलों पर की ललाई,हाव-भाव, मधुस्राव तथा अश्रु पात इत्यादि के रंगीले वर्णन करके ही अनेक कवि अब तक पूर्ण तृप्त दिखायी देते हैं । जगत और जीवन के नाना मार्मिक पक्षों की ओर उनकी दृष्टि नहीं है[१]।` विषय-संकोच `निराला` काव्य में नहीं मिलता, उनका विषय-क्षेत्र प्रारम्भ से ही तथाकथित छायावादी कवियों से अधिक विस्तृत रहा, जीवन के विविध मार्मिक पक्षों का इन्होंने सूक्ष्म आकलन किया । दीन,हीन,पीड़ित, निर्बल, भिक्षुक, विधवा उनकी सहानुभूति का स्पर्श पाते रहे हैं । रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है --`....`निराला` जी की रचना का क्षेत्र तो पहले से ही कुछ विस्तृत रहा उन्होंने जिस प्रकार `तुम और मैं` उस रहस्यमय `नाद वेद ओंकार सार` का गान किया, `जूही की कली` और `शेफालिका` में उन्मद प्रणय चेष्टाओं के मुख्य चित्र खड़े किए, उसी प्रकारण `जागरण` वीणा बजाई, इस जगत के बीच `विधवा` की विधुर और करुण मूर्ति खड़ी की और इधर आकर `इलाहाबाद के पथ पर` एक पत्थर तोड़ती दीन स्त्री के माथे पर श्रम सीकर दिखाए[२]।`

१- रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास,संवत् २००३ पृ० ६५४

२- वही०, पृ० ६५७

६. विषय-परिवर्तन के साथ - साथ अभिव्यंजना-पद्धति में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था । कोमल, माधुर्य और लालित्यपूर्ण अभिव्यंजना शैली का सर्वत्र बोलबाला था , अत: अभिव्यंजना शैली अमूर्त लाक्षणिक, नवीन उपमानों तथा उपमाओं से मंडित हो उठी । शैली और विषय की सूक्ष्मता के कारण छायावादी काव्य अत्यधिक मार्मिक और सम्मोहक हो गया था । मानव मन के भावों का ही मुख्यतया चित्रण रहता था । अतएव प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक गीतों की ही प्रधानता रही । छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में ही आलोच्य कवि 'निराला' की छायावादी कविताओं का मूल्यांकन किया जायगा ।

७ 'निराला' का काव्य 'स्व' की अनुभूति से मंडित है, जिसे कवि ने स्वयं स्वीकार किया है, -- "काव्य के भीतर से अपने जीवन के सुख-दु:खमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूर्णता में होगी[1] ।" आत्म कथात्मक शैली के माध्यम से व्यक्तिगत राग-विराग, सुख-दु:ख विरह,मिलन, हर्ष-विषाद की अभिव्यक्ति 'निराला' काव्य में मिलती है । जिसका स्पष्टीकरण उनकी 'अधिवास' नामक कविता से स्वयमेव हो जाता है । उन्होंने स्पष्टरूप से उद्घोषणा की है -- 'मैंने मैं शैली अपनायी[2] ।' समस्त छायावादी काव्य का सृजन उत्तम पुरुष में हुआ । 'स्व' ही कविता का केन्द्रबिन्दु बना । 'निराला' की छायावादी समस्त कविताओं में आत्म-निष्ठा, आत्मानुभाव, आत्मानुराग की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है । उन्होंने आत्माभिव्यक्ति के लिए उन समस्त परम्परागत मान्यताओं का उल्लंघन किया जिससे वैयक्तिक,स्वातन्त्र्य में बाधा होती थी ।

८. 'निराला' का काव्य विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय है । एक तरफ उद्दाम वैयक्तिकता है तो दूसरी तरफ विद्रोह लेकिन कवि ने स्वयं इस समस्या का समाधान कर दिया है, --"काव्य में यदि कोई कवि अपने व्यक्तित्व पर खास तौर से ज़ोर देता हो, तो इसे उसका अक्षम्य अहंकार न समझ, मेरे विचार से , उसकी विशाल व्याप्ति का साधन समझना निरुपद्रव होगा[3] ।" इस व्यक्तिनिष्ठता ने

१- निराला : प्रबन्ध काव्य में रूप और ह[illegible], १९६०ई०, लखनऊ,पृ० १७३
२- निराला : परिमल , १९६३ई०, लखनऊ , पृ० ११७ ।
३- निराला : चयन, १९५७ ई०, वाराणसी, पृ० ४९ ।

कवि को स्वस्थ बहं दिया । ओज और औदात्य का समावेश जितना उनकी छायावादी कविताओं में है, उतना किसी भी कवि में नहीं मिलता । व्यक्तिवाद का विकसित रूप अद्वैतवाद के रूप में `निराला` काव्य में प्रतिफलित हुआ । कवि अपना ही स्वरूप चराचर में देखता है --

वहां कहा कोई अपना ? सब
सत्य नीलिमा में लयमान
केवल मैं, केवल मैं, केवल
मैं, केवल मैं , केवल ज्ञान ।[1]

`निराला` का काव्य `अहम् ब्रह्मास्मि` के सिद्धान्त से पूर्ण है । इस `अहम्` के कारण ही दीनता, कातरता, का स्वर उनके काव्य में नहीं मिलता है, कहीं भी निरीह होकर गिड़गिड़ाते या अपने को असमर्थ मानते हुए वह दिखायी नहीं देते । क्षणिक अवसाद की अभिव्यक्ति अवश्य कहीं-कहीं दिख जाती है --

`धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक साधन जिसके लिए सदा ही किए शोध ।`[2]
दु:ख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं आज, जो नहीं कही ।[3]

\+ + +

हो गया व्यर्थ जीवन मैं रण में गया हार ।[4]

लेकिन इसको कवि का नित्य रूप नहीं स्वीकार किया जा सकता । वस्तुत: यह उनकी आवेगात्मक क्षणों की प्रतिक्रिया ही मानी जायगी । `निराला` का स्वर आस्था और निष्ठा का स्वर है । वह अस्पष्ट रूप से उद्घोषणा करते हैं --

अभी न होगा मेरा अंत
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत--
अभी न होगा मेरा अन्त ।[5]

१- निराला - परिमल , पृ० ८५ ।
२- निराला : अनामिका, १९६३ ई०, इलाहाबाद, पृ० १६७ ।
३- निराला : अनामिका, १९६३ ई०, इलाहाबाद, पृ० १३७ ।
४- वही०, पृ० ८६
५- निराला : परिमल, १९६३ ई०, लखनऊ, पृ० ११३

यों वेदना का आग्रह छायावाद युग की देन है । महादेवी का तो समस्त काव्य ही वेदनात्मक है, `प्रसाद` का `आंसू` इसी वेदना का प्रतिफलन माना जाता है । वेदनाजनित भावना `निराला` में भी आभासित होती है, परन्तु इनकी वेदना की पृष्ठभूमि ही भिन्न है, इसके लिए उनकी आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियां भी उत्तरदायी हैं । लेकिन इसका परिणाम अच्छा ही हुआ । संघर्षमय जीवन की प्रतिक्रिया स्वरूप ओज और शक्ति का उनके काव्य में समावेश हो सका ।

९. `सरोज स्मृति` कवि के निश्छल हृदय की अभिव्यक्ति है । वस्तुत: कवि की यह ईमानदारी ही उसके साहित्य को चिरन्तन और शाश्वत बनाती है । अपनी पुत्री की, आर्थिक अभावों के कारण समुचित व्यवस्था कवि से सम्भव न हो सकी थी । सरोज की असमय मृत्यु पर ही उसको अपनी आर्थिक असफलता का खेद और वेदना होती है । साहित्यिक क्षेत्र में समर्थवान होते हुए भी वह इसका उचित प्रतिदान न प्राप्त कर सका था --

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरा हित कर न सका
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय [१]
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादक गण निरानंद
लौटा रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश । [२]

१०. `सरोज स्मृति` में कवि अपनी जीवनगत बहुत सी घटनाओं का सहज ही उल्लेख कर देता है । `बन बेला` (३७) `हिन्दी के सुमनों के प्रति` (३७) प्रभृति कविताओं में वैयक्तिक विद्रोह उभर कर आया है । `बनवेला` में वह अपने जीवन की असमर्थता का कारण खोजता-सा दिखता है और बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से उन कारणों पर प्रकाश डालता है जिसके कारण वह सामाजिक और आर्थिक दृष्टि

१- अनामिका, पृ० १२२ ।

२- वही०, पृ० १२६ ।

से इतना विपन्न रहा --

लगा सोचने यथा पुत्र मैं भी होता
यदि राजपुत्र -- मैं क्यों न सदा कलंक ढोता
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर
मेरे प्रसाद के लिए विनत -शिर उद्यत कर
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
जीवन चरित्र
लिख अग्र लेख छापते विशाल चित्र
इतना ही नहीं लखपति का भी यदि कुमार
होता मैं शिक्षा पाता अरब समुद्र पार
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते धन पर अविचल
चित होते उग्रतर साम्यवादी करते प्रचार
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार
.... मैं पाता खबर तार से त्वरित समुद्र पार
लार्ड के लाडलों को देता दावत विहार
इस तरह खर्च केवल सहस्र षट मास
पूरा कर आता लौट योग्य निज पिता पास
वायुयान, भारत पर रखता चरणकमल ।[१]

प्रस्तुत कविता का व्यंग्य स्पष्ट है । `निराला` न तो राजपुत्र थे, और न किसी लखपति इत्यादि के ही सुपुत्र थे, जो विद्याधर तथा समाचार पत्र उनकी चाटुकारिता करते । इन परिस्थितियों को `निराला` ने स्वयं भोगा था, इसलिए अनुभूति की मार्मिकता वेदना का गाम्भीर्य एवं व्यंग्य की कटुता स्वतः स्फुरित हुई है । धन ही वस्तुतः सब योग्यताओं का मूल है । धन के अभाव में `निराला` का जीवन अभावग्रस्त अवश्य रहा लेकिन इन भौतिक असुविधाओं से उसने अपने लक्ष्य को नहीं त्यागा ।

१- अनामिका, पृ० ८७-८८

`हिन्दी के सुमनों के प्रति` कविता में `निराला` ने अपनी सामर्थ्य का व्यंग्यात्मक ढंग से आलेखन किया है --

`मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज
तुम सदल सुरंग सुवास सुमन
मैं हूं केवल पद तल आसन
तुम सहज विराजे महाराज ।` [1]

११. `निराला` ने जो कुछ भी लिखा, चाहे वह प्रकृति सम्बन्धी हो, आध्यात्मिक हो अथवा लौकिक प्रेम सम्बन्धी-- उसमें उनकी मनसा का आरोपण अवश्य मिल जाता है । छायावादी कवि अपने विषय को स्वयं से तदाकार करके देखता है, `प्रिया के प्रति` ,`स्नेह निर्झर बह गया` ,`ठूंठ` , `जीवन चिरकालिक क्रन्दन` इत्यादि कविताओं से इस उक्ति का विश्लेषण हो जाता है । `कवि` में जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है एक सच्चे कवि की एकाग्र तपस्या और त्याग की ओर संकेत है, यह कवि अन्य कोई नहीं स्वयं `निराला` का स्वरूप है --`कवि` मानव मात्र की पीड़ा का अनुभव करता है, उसका हृदय इतना कोमल और स्पन्दनशील होता है कि वह मानवमात्र की पीड़ा से उद्विग्न हो उठता है --

.... कवि तुम एक तुम्हीं
बार बार झेलते सहस्रों बार
निर्मम संसार के
.... जीवों में देते हो
जीवन ही जीवन जोड़
मोड़ निज दु:ख से मुख
.... भरते हो केवल बास प्यास
अभिलाष नव शून्य निज हृदय में
झोली में दैन्य की
प्रकृति का दान बहु
रिक्त तत्काल कर
रहते हो रिक्त ही
चिर प्रसन्न चिरकालिक पतझड़ बने हुए । [2]

१- अनामिका, पृ० ११८
२- परिमल, पृ० १८४-८५ ।

`प्रिया के प्रति` कविता पत्नी के प्रति `निराला` की भावांजलि है । इसी प्रकार `बादल-राग` उनकी वैयक्तिक विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के ही प्रतीक हैं । `निराला` ने अपने जीवन के पीड़ा, दु:ख-क्रन्दन को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है --

`तरणि तार दो
अपर पार को
खे खे कर थके हाथ
कोई भी नहीं साथ
+ +
पड़ी भंवर बीच नाव
भूले हैं सभी दांव
रुकता है नहीं राव
सलिल सार हो ।`[1]

जीवन-नौका के रूपक द्वारा वह स्वयं की श्रांत क्लान्त स्थिति को अभिव्यक्त करता है और प्रभु से जीवन रूपी तरी को भवसागर से पार लगाने की प्रार्थना ।

१२. छायावादी कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान किया है, प्रकृति को चेतना सत्ता के रूप में छायावादी कवियों ने ही सर्वप्रथम स्वीकारा है,द्विवेदी युगीन निषेधात्मक स्थिति से निकल कर कवि एकाएक अपनी लौकिक प्रणयानुभूतियाँ एवं दमित इच्छाओं को अभिव्यक्त नहीं कर सकता था, इसके लिए प्रकृति उनका अपूर्व सहारा बन गई । वहीं उनकी कल्पना को मूर्त रूप मिल सकता था । अतएव प्रकृति उनके लिए प्रिया, उनके सुख-दु:ख में सहायक होने वाली सखा, सहचरि प्राण बन गई । यहां तक कि उस विराट परमतत्त्व की भलक भी वह उसमें देखने लगा । प्रकृति का प्रेम विश्वात्मा के दर्शन कराता है । प्रकृति के व्यापारों द्वारा विस्मय एवं जिज्ञासा की उत्पत्ति होती है --

किस अनंत का नीला अंचल
हिला-हिला कर आती हो
सजी मण्डलाकार

इतना ही नहीं, अनन्त विश्व के नियन्ता को जानने की उत्सुकता और व्याकुलता

१- निराला : अर्चना, १९६२ ई०, प्रयाग, पृ० ८८ ।

बढ़ती है --

चंचल चरण बढ़ाती हो
किससे मिलने जाती हो [1]

और अन्त में कवि उस असीम से साक्षात्कार कराने के लिए तरंगों से आग्रह करता है हुआ भी देखा जा सकता है --

उस असीम में ले जाओ
मुझको तुम दे जाओ । [2]

१३. छायावादी काव्य में प्रकृति स्पन्दनशील, चेतन एवं जीवित है, उसमें मानवीय नाना रूप व्यापारों का आरोपण करके कवि ने विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यंजना की है । प्रकृति के सम्बन्ध में इतना वैविध्यपूर्ण दृष्टिकोण स्वीकार ~~की है~~ करने पर ही छायावादी काव्य में विषयों का विपुल विस्तार हुआ । `वासंती`, `तरंगों के प्रति`, `कण`, `जलद के प्रति`, `वसंत समीर`, `सन्ध्या सुन्दरी`, `बादल राग`, `वन बेला`, `खुला आसमान`, `ठूंठ`, `प्रकाश`, `नर्गिस` `यमुना के प्रति`, `भ्रमरगीत` आदि नवीन विषय काव्य के विषय क्षेत्र में आ सके । `निराला` ने प्रकृति और कवि के सम्बन्ध में कहा है --"जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृति के हर एक कमरे में प्रवेश करने का जन्म सिद्ध अधिकार लेकर आते हैं ।.... यही कारण है कि जड़ और चेतन, सब की प्रकृति कवि को अपना स्वरूप दिखाती है । वे दर्पण हैं और प्रकृति का प्रत्येक विषय उन पर पड़ने वाला सच्चा बिम्ब है [3] ।"

१४. छायावाद के उदय-काल में द्विवेदी-युग की नैतिकता का इतना आग्रह था कि तत्कालीन युवक कवि प्रत्यक्ष रूप से अपनी प्रणय या शृंगारिक भावना को अभिव्यक्त नहीं कर सकते थे । इसके लिए उन्हें प्रकृति के माध्यम से अध्यात्म का सहारा लेना पड़ा । उदाहरण के लिए `जुही की कली` को ले सकते हैं --प्रकृति का मानवीकरण प्रेयसी के रूप में किया गया है, साथ ही अलौकिक रति का समावेश करके प्रस्तुत कविता का पर्यवसान रहस्यवाद में भी होता है । `निराला` प्रकृति के

१- परिमल : तरंगों के प्रति , पृ० ७६

२- वही०, पृ० ७७

३- निराला : रवीन्द्र कविता-कानन, पृ० ६७

साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं, प्रकृति उनके लिए जड़ नहीं , वह कवि की प्रेरक भी है -- `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य इसका ज्वलन्त उदाहरण है । प्रकृति ही कवि `तुलसीदास` को जड़ से चेतन की ओर अग्रसर होने का सन्देश देती है, प्रकृति के माध्यम से ही कवि स्वदेश की सुप्तावस्था से अवगत होता है और भारतीय संस्कृति को इस मुस्लिम संस्कृति के राहु से मुक्त करने के लिए सत्य के आलोकमय द्वार का संकेत पाता है । प्रकृति का अपूर्व सौन्दर्य कवि को अभिभूत कर देता है, `सन्ध्या सुन्दरी` का मंद मंद शुभागमन, `जुही की कली` का उन्मद विहार ,` शरतपूर्णिमा की विदाई` , `शेफालिका के यौवन का उभार` , बादल का क्रान्तिकारी रूप, `प्रपात के प्रति` का उन्मुक्त स्वच्छन्द जीवन तथा रहस्यात्मक संकेत प्रभृति कविताओं में मानवीय रूप व्यापारों से पूर्ण प्रकृति के दर्शन होते हैं । `निराला` ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसके हास्य रुदन, क्रीड़ा विलास तथा उसके कोमल हृदय की धड़कनों को सुना है । `जुही की कली` छायावाद की उत्कृष्ट रचना है ।`जुही की कली` को कवि तरुणी प्रेमिका के रूप में देखता है । विरह विधुरा`जुही की कली` का रूपमय प्रतीकात्मक चित्रण है, रूप तथा भाव-सौन्दर्य के लिए जितने भी विशेषण प्रयुक्त हुए हैं वह सब एक तरुणी प्रेमिका पर घटित हो सकते हैं ।`जुही की कली` नायिका है और प्रेमी नायक`पवन` । प्रेमी तथा प्रेमिका की रति का वर्णन अत्यन्त तटस्थ भाव से हुआ है । लौकिक प्रेम का अलौकिक रति में पर्यवसान किया गया है ।

१५.`जुही की कली` में यौवन की समस्त उन्मुक्तता और उद्दामता प्रतिपादित है । यौवन का स्वस्थ उदात्त चित्र, यौवन, प्रेम और सौन्दर्य का सुन्दर परिपाक है । `विरह-विधुर-प्रिया संग छोड़` से वियोग के भाव चित्र द्वारा शृंगार को पुष्ट किया गया है , दर्शन गौण हो गया है । वियोग के समय अतीत के मिलन क्षणों का स्मरण --

आयी याद बिछुड़ने से मिलन की वह मधुर बातें
आयी याद चांदनी की धुली हुई आधी रात
आयी याद कांता की कम्पित कमनीय गात ।

होते ही पवन अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए आकुल हो उपवन सरसरित गहन गिरि कानन को पार करता हुआकलि के समीप पहुंच जाता है लेकिन सुप्तावस्था में होने के कारण प्रेयसी प्रिय के आगमन को समझ नहीं पाती --

निर्दय नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिए गोरे कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती-
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्र मुख हंसी खिली
खेल रंग प्यारे संग । [१]

'जुही की कली' सुप्त आत्मविस्मृति से मन के अंधकार के बाद है ; जागरण-आत्म परिचय - प्रिय साक्षात्कार मन का प्रकाश खिलना । कली सोते से जगी हुई प्रिय से मिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप में सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या-सी सामने आती है । लेकिन लौकिक श्रृंगार की प्रधानता होने के कारण रहस्यात्मक पर्यवसान होते हुए भी यह छायावाद की श्रृंगार रस की उत्कृष्ट रचना मानी जायगी ।रूप-विधान छन्द-विधान और भावों की उन्मुक्तता के कारण प्रस्तुत कविता छायावाद की अनुपम कृति है । प्रकृति का कोमल आलम्बन रूप चित्रण परम्परागत प्रेम के स्थान पर मुक्त प्रणय का समर्थन लौकिक रति का अलौकिक में पर्यवसान रसानुकूल सौंदर्यमयी चित्रात्मक भाषा और मुक्त छन्द का प्रयोग -- यह सब प्रवृत्तियां इसे छायावादी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान दिलाती हैं ।

१६. प्रकृति अपने अनुपम सौन्दर्य और क्रिया-कलाप से कवि का हृदय आकर्षित और मोहित करती है --'सन्ध्या सुन्दरी' का आकाश मार्ग से परी के सदृश मंद-मंथर गति से उतरना कवि को सौन्दर्याभिभूत कर देता है । सन्ध्या का शान्त गम्भीर गत्यात्मक चित्र तथा मंद मृदुगति से आगमन, वातावरण की निस्तब्धता दर्शनीय है --

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी धीरे धीरे
+ + +

१- परिमल : 'जुही की कली' पृ० १७१-१७२

...... कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बांह
छांह सी अम्बर पथ से चली

+ + +

नूपुरों में भी रुन झुन रुन झुन रुन झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा `चुप चुप चुप`
है गुंज रहा सब कहीं --

+ + +

मदिरा की वह नदी बहाती
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला वह एक पिलाती
सुलाती उन्हें अंक पर अपने
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने[१]।

`सन्ध्या` जैसे अमूर्त सौन्दर्य का मूर्तिकरण किया है, सन्ध्या स्नेह-दान करती है, भावुकता का संचार करती है और मीठे स्वप्नों की थपकी द्वारा सृष्टि को निद्रामय कर देती है। `निराला` के प्रगीतों की यह विशेषता है कि उनका सौन्दर्य खण्ड चित्रों में नहीं मूर्त होता वरन् सम्पूर्ण कविता का आकलन करना पड़ता है। साधारणतया अल्प पंक्तियां उद्धृत करके भाव को मूर्त कर सकना सम्भव नहीं।

१७. छायावादी स्वर रागात्मक स्वर है। `निराला` छायावाद युग के अद्वैतवादी कलाकार हैं। छायावादी स्वर `स्व` के आग्रह के कारण सर्वात्मवाद के रूप में मुखर हो उठा। एक ही सूक्ष्म चेतना का आभास छायावादी कवि चराचर में पाता है। छायावाद का व्यापक स्वर सर्वात्मवादी है। सम्पूर्ण जड़, चेतन, जगत को स्वयं से तदाकार देखना ही वस्तुत: सर्वात्मवाद है। छायावादी कविता मुख्यत: शृंगारिक कविता है। स्थूल मांसल चित्रण भी उपलब्ध है और सूक्ष्म अतीन्द्रिय भी। `निराला` में यह दोनों रूप मिलते हैं। जहां कहीं भी मांसलता या

१- परिमल : `सन्ध्या सुन्दरी`, पृ० १२६-१२७

वासनात्मक चित्रण हुआ है । वहां उसने रहस्यात्मक आवरण भी डाल दिया है । अतस्व उनके द्वारा प्रयुक्त शृंगार वासनात्मक न होकर स्वस्थ सूक्ष्म और अतीन्द्रिय शृंगार की संज्ञा पाने का अधिकारी है `शेफालिका` `जागृति में सुप्ति थी`, शुद्ध शृंगारिक कवितायें हैं । वासनापूर्ण चित्रांकन में अपूर्व रहस्यावरण के कारण औदात्य का समावेश हो सका है ।

१८. छायावादी प्रणय और सौन्दर्यानुभूति में मानसिक पक्ष प्रधान और शारीरिक पक्ष गौण है । `निराला` ने लौकिक प्रणयानुभूति को उतना औदात्य दे दिया है कि वह अतीन्द्रिय सूक्ष्म अपार्थिव आभासित होता है । प्रणय का आलम्बन सूक्ष्म और वायवी होने से उसकी अभिव्यक्ति उतनी ही सूक्ष्म ढंग से की गयी है । नारी का मुख्यत: कामिनी, सहचरि, स्वरूप ही अधिक दिखाई पड़ता है और इसके लिए माध्यम बनी प्रकृति -- `जुही की कली`, `सन्ध्या सुन्दरी` `शेफालिका` `यामिनी जागी`, `शरतपूर्णिमा की विदाई`, `वन कुसुमों की शैय्या`, `सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी`, `रेखा` आदि कविताओं में नारी-भावना का आरोपण कर भावनाओं को मूर्त किया गया है । कवि के लौकिक प्रणय के उदात्तीकरण का एक उदाहरण प्रस्तुत करना असंगत न होगा --

दोनों हम भिन्न वर्ण
भिन्न जाति, भिन्न रूप
भिन्न धर्म भाव पर
केवल अपनाव से
प्राणों से एक थे ।
किन्तु दिन रात का
जल और पृथ्वी का
भिन्न सौन्दर्य से बन्धन स्वर्गीय है ।[१]

`प्रिय यामिनी जागी` शृंगारिक कविता है पर दार्शनिक तटस्थता और संयम भी पर्याप्त दिखायी पड़ता है । इसमें निद्रा से जगी तन्द्रिल नारी का चित्रण है, नायिका के सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यापारों का अंकन हुआ पर कहीं भी वासनात्मक पुट नहीं मिलता । नायिका का गत्यात्मक चित्र ही मूर्त किया गया है । सद्य: जागृत

१- अनामिका, प्रेयसी , पृ० ८

नारी का अपनी अव्यवस्थित स्थिति अनुभव कर (हेर हर पट, फेर मुख के बाल) आशंकित स्थिति में इधर-उधर देखते हुए अग्रसर होना बहुत ही मनोवैज्ञानिक है । रूप-सौन्दर्य नायिका का अपूर्व है, अन्त में अध्यात्म का आवरण डाल कवि उसे `वासना की मुक्ति मुक्ता त्याग में तागी` का स्वरूप प्रदान कर देता है । रात्रि भर जागरण के पश्चात् वासना की परिणति मुक्ति में दिखाई गई है । `निराला` की शृंगार की उद्दामता से पुष्ट कविताओं में कहीं भी मानसिक दौर्बल्य का संकेत नहीं मिलता ।

१६. `उन्मुक्त-प्रेम` छायावाद का प्रधान विषय रहा । `निराला` द्वारा प्रयुक्त प्रेम अत्यन्त संयमित उदात्त और मानस-परक है । `सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति`, `निवेदन`, `रेखा`, `प्रेम के प्रति` , `प्रेयसी`, इत्यादि कविताओं में `निराला` ने उन्मुक्त प्रेम का समर्थन किया है । उन्होंने पश्चिम के स्वच्छन्द प्रेम का समर्थन किया है, --" पश्चिम के लिए जिस तरह यहां के भावों की गहनता, त्याग, सतीत्व की शिक्षा आवश्यक है, उसी तरह वहां के प्रेम, स्वच्छन्दता, तरलता, उच्छ्वसित वेग यहां वालों के लिए जरूरी है । इस समय वहां वालों का खुनी प्रेम भी शक्ति संचार के लिए यहां आवश्यक-सा हो गया है ।" `निराला` ने उन्मुक्त प्रेम के समर्थन में सामाजिक समस्त रूढ़ियों का विरोध भी अवांछनीय नहीं माना, इसका उदाहरण उनकी `प्रेयसी` नामक कविता है । सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक बन्धनों और रूढ़ियों से विद्रोह छायावादी कविता का प्रधान लक्षण है । `निराला` के छायावादी कविता में विद्रोही प्रवृत्तियां सर्वाधिक हैं, उनका `बादल राग` विद्रोही प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करता , वरन् वह छायावादी कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है । व्यक्तिवाद के आधिक्य ने छायावादी कवियों को संवेदनशील और भावुक बना दिया,कल्पना की नवीन उद्भावनायें होने लगीं, `निराला` अत्यधिक कल्पना प्रवण होते हुए भी पूर्णतया आकाशचारी नहीं हुए, वह धरती का छोर बराबर पकड़े रहे । छायावादी कविताओं के साथ-साथ वह ~~सम्~~ सामाजिक कवितायें भी बराबर देते रहे । लेकिन अभिव्यक्ति में छायावादी धुंधला मूर्तता, लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता का ही प्रयोग हुआ । उदाहरण के लिए इनकी `भिक्षुक` नामक कविता को लिया जा सकता है ।`भिक्षुक` का ~~क~~ गत्यात्मक मूर्त चित्रण प्रस्तुत करने में `निराला` पूर्ण सफल हुए हैं ।

२०.भावों की सूक्ष्मता के साथ अभिव्यंजना प्रणाली में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था । छायावादी कवियों को हृदयस्थ सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए नवीन प्रतीकों, नवीन उपमानों और नवीन शब्दों की सृजना भी करनी पड़ी । आलोच्य कवि की छायावादी कविताओं में यह पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है । सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूति और संवेदना को मूर्त करने में `निराला` की भाषा पूर्ण सक्षम है । सूक्ष्म अभ्यान्तर भावों के लिए तथाकथित प्रचलित भाषा पूर्णतया प्रभावशून्य, जड़ और अपूर्ण थी । इस जड़त्व को दूर करने के लिए ही `निराला` ने आमूल परिवर्तन की कामना की --

आज नहीं मुझे और कुछ चाह
अर्ध विकच इस हृदय कमल में आ तू
प्रिय छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह
गजगामिनी, वह पथ तेरा संकीर्ण
कंटकाकीर्ण ।[१]

केवल छन्दों के बन्धन से ही वह कविता को मुक्त नहीं करना चाहते वरन् वीणा वादिनी की वन्दना, आराधना, करते समय नव गति, नवलय, ताल, छन्द नव की प्राप्ति की ही याचना करते हैं[२] । छन्दों के बन्धन को त्याग कर कवि ने हिन्दी वाङ्मय को अनुपम, ओजपूर्ण और उदात्त कवितायें प्रदान की -- `जुही की कली` `जागो फिर एक बार`, `बादल राग`, `पंचवटी प्रसंग`, `कवि`, `जागरण` इत्यादि इसका प्रमाण हैं । `निराला` की आलोचित कविताओं में छायावादी अनेक मुखी प्रवृत्तियां --उदात्त अंत: स्वर, संयम भावों के सूक्ष्म सौन्दर्य एवं दार्शनिक गहराई, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, लाक्षणिकता, मूर्तता -- आदि की उदात्त झलक मिलती है ।

१- अनामिका, `प्रगल्भ प्रेम`, पृ० ३४ ।
२- वर दे, वीणा वादिनी वर दे ।
नव गति, नव लय, तालछन्द-नव
नव कंठ, नव जलद मन्द्र रव,

`निराला` : गीतिका, गीत १,१९३६, इलाहाबाद, पृ० ३

रहस्यवादी

२१. अंत:स्फुरित अपरोक्ष अनुभूति द्वारा निखिल विश्व के स्रष्टा का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति को रहस्यवाद की संज्ञा दी जाती है । मनुष्य का अपने मूल उत्स के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्याकुलता और जिज्ञासा होना स्वाभाविक है । वस्तुत: यह मनुष्य की विलक्षण प्रवृत्ति है । रहस्यानुभूति में ज्ञाता और ज्ञेय एकाकार हो जाते हैं, उनका परस्पर तादात्म्य स्थापित हो जाता है । सांसारिकता से तटस्थ रहकर जब किसी अज्ञात, अव्यक्त, रहस्यमय अलौकिक शक्ति के प्रति रागात्मकता, उत्सुकता, विस्मय, जिज्ञासा, अभिलाषा एवं मिलनानुभव की अभिव्यक्ति की जाती है, उस अनुभूति की स्थिति को रहस्यानुभूति की संज्ञा दी जा सकती है । काव्य में इस प्रकार की अभिव्यक्ति रहस्यवाद से अभिहित की जाती है । `निराला` के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है । सम्पूर्ण काव्य रहस्यानुभूति से मंडित है । वह चिन्तनप्रधान रहस्यवादी कवि हैं । तथा निराकार ब्रह्म के उपासक हैं । अतएव स्वभावत: उस अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा और कुतूहल है और उससे सम्बन्धित समस्त अभिव्यक्ति और धारणायें रहस्यात्मक हैं । अव्यक्त या निराकार की अनुभूति ही की जा सकती है । उसकी मूर्त कल्पना कर सकना सम्भव नहीं । जहां उसकी मूर्त कल्पना सम्भव हुई वहां वह निराकार न रह कर साकार हो जाएगा और रहस्य की समस्त शृंखलायें टूट जायेंगी । `निराला` की कविता में रहस्यवाद की समस्त स्थितियों का आकलन किया जा सकता है । यहां पर उसका विश्लेषण ही अभिप्रेत है ।

जिज्ञासा

२२. जिज्ञासा की स्थिति रहस्यवाद का प्रथम सोपान है । सर्वप्रथम उस अव्यक्त अगोचर चेतन शक्ति को जानने की उत्सुकता, व्याकुलता का भाव उत्पन्न होता है । अन्तत: इस संसार के परे कौन सी ऐसी शक्ति है जो सम्पूर्ण प्रकृति को परिचालित करती है -- `निराला` उस अपरोक्ष को जानने के लिए उत्सुक हैं -- संसार के तम के पार` क्या है ? यह वह जानना चाहते हैं --

कौन तम के पार (रे कह)
अखिल पल के स्रोत, जल जग
गगन घन घन धार ? (रे कह)[1]

+ + +

मृत्यु निर्माण प्राण नश्वर
कौन देता प्याला भर भर[2]

केवल कुतूहल के शमन मात्र का भाव नहीं है, वरन् वहां जाकर वेदना के संसार का साक्षात्कार करने का भाव भी प्रकट दिखायी पड़ता है --

मां मुझे वहां तू ले चल
देखूंगा वह द्वार
दिवस का पार
मुर्च्छित हुआ पड़ा है जहां वेदना का संसार[3] ।

उस `परमतत्व` की जिज्ञासा के साथ क्रमश: उससे मिलन की भावना तीव्रतर होती जाती है । उस भावना का घनीभूत भाव ही विरह की स्थिति उत्पन्न करता है ।

विरह की स्थिति

२३. द्वितीयावस्था में साधक अपने आराध्य को पाने के लिए आकुल व्याकुल होकर आंसू बहाता है --

प्राण धन को स्मरण करते
नयन झरते नयन झरते

+ + +

दु:ख योग,धरा
विकल होती जब दिवस वश
हीन ताप करा
गगन नयनों के शिशिर झर
प्रेयसी के अधर झरते[4] ।

१- निराला : गीतिका, १९६१ ई०, इलाहाबाद, गीत १२, पृ०१४ ।
२- निराला : अनामिका, चतुर्थ संस्करण, १९६३,इलाहाबाद, पृ०९५ ।
३- ,, परिमल, पृ० १५८
४- ,, गीतिका, गीत ४७, पृ० ५२ ।

साधक विरह द्वारा प्रिय अथवा अपने आराध्य के दर्शन साक्षात्कार की कामना भी करता है । साधक केवल अश्रु धारा ही नहीं बहाता, वह प्रियतम के द्वार तक पहुंचने में सफल भी हो जाता है । लेकिन साधना-पथ का श्रांत क्लांत पथिक बार-बार पुकारने पर भी कृपा-कपाट खुलवाने में सफल नहीं हो पाता --

कितने बार पुकारा
खोल दो द्वार केवारा [1]
+ + +
बन्द तुम्हारा द्वार
मेरे सुहाग शृंगार ।

'प्रेमिका' प्रियतम के कृपा-कपाट खुलने पर अपना सर्वस्व अर्पित करने को प्रस्तुत है वह अपने आराध्य से पूछती है --

विश्व मनोरथ पथ का मेरे प्रियतम
बन्द किया क्यों द्वार ? [2]

२४. आत्मा सदैव ही उस परोक्ष सत्ता की ओर उन्मुख रहती है, इस आशय की अभिव्यक्ति 'अनामिका' की 'संतप्त' कविता में स्पष्ट मिलती है --

मेरा आकुल क्रन्दन
आकुल वह स्वर सरित हिलोर
वायु में भरती करुण मरोर
बढ़ती है तेरी ओर
मेरे ही क्रन्दन से उमड़ रहा यह तेरा सागर
सदा अधीर
मेरे ही बन्धनसे निश्चल
नन्दन कुसुम सुरभि मधु मदिर समीर । [3]

१- गीतिका, गीत ५८, पृ० ६३ ।

२- परिमल, १९६३, लखनऊ, पृ० १३०-१३१ ।

३- अनामिका, १९६३, इलाहाबाद, पृ० ४५ ।

आत्मा को अब वियोग दुःख असह्य हो गया है, अत्यधिक दुःख के कारण अब और अधिक बढ़ने का साहस उसमें शेष नहीं है , वह उस अव्यक्त शक्ति का स्पर्श पाकर इस जीवनरूपी महा भार को सह ले जाना चाहता है --

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा
स्तब्ध, दग्ध, मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर खिल न सकेगा ।

\+ \+ \+

मेरे दुःख का भार झुक रहा
इसीलिए प्रति चरण रुक रहा
स्पर्श तुम्हारा मिलने पर
क्या महाभार यह झिल न सकेगा ।[१]

प्रिया एकनिष्ठ होकर प्रियतम का पथ निहार रही है लेकिन उसकी अथक प्रतीक्षा का कुछ भी प्रभाव उसके प्रियतम के हृदय पर नहीं पड़ता --

कब से मैं पथ देख रही प्रिय
डर न तुम्हारे रेख रही, प्रिय ।

प्रियतम की प्राप्ति की आशा में प्रिया ने समस्त अवरोधों को तोड़ फेंका है--

तोड़ दिए जब सब अवगुण्ठन
रहा एक केवल सुख-लुण्ठन
तब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन
असमय समय न करो, खड़ो, प्रिय ।[२]

साधक को यदि उसका आराध्य मिल जाए तो वह संसार की समस्त सुख-श्री को त्याग सकता है, तब उसको सांसारिक सुख तृण तुल्य प्रतीत होगा । उस अनंत की प्राप्ति की महत्ता में संसार की बहुमूल्य उपलब्धियां भी मूल्यहीन सिद्ध होती हैं ।

कुछ न हुआ न हो
मुझे विश्व का सुख श्री, यदि केवल
पास तुम रहो

१- गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ४०, पृ० ४५
२- वही०, गीत ३६, पृ० ४१

नभ के बादल यदि न फटें
चन्द्र रह गया ढका
तिमिर रात को तिर कर यदि न अटे
लेश गगन भासका
रहेंगे अधर हंसते पथ पर, तुम
हाथ यदि गहो ।

मिलन की अवस्था

२५. लेकिन अनन्त प्रतीक्षा और विरह की अग्नि में तपने के पश्चात् साधक या साधिका की मिलन की अवस्था भी आ ही जाती है । इस मिलनावस्था को लौकिक रूपकों द्वारा अलौकिकता प्रदान की गयी है । भावों का अतीव उदात्तीकरण `निराला` के काव्य में मिलता है । `प्रेमिका` (आत्मा) पूर्ण शृंगार करके अपने प्रियतम (परमात्मा) के साथ अभिसार के लिए निकल पड़ती है लेकिन उसका एक-एक आभूषण उसके इन कार्यों को अपनी अपनी ध्वनि में मुखरित करने लगता है --

मौन रही हार
प्रिय पथ पर चलती
सब कहते शृंगार
कण कण कर कंकण, प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर, उर लाज
लौट रंकिणी ।
और मुखर पायल स्वर को बार बार
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार[१]

नायिका को इन आभूषणों की मुखरता से संकोच होता है (यह उक्ति लौकिक दृष्टि से भी बहुत मनोवैज्ञानिक है । अभिसार के लिए जाती हुई नायिका को किसी भी प्रकार की आहट, लज्जा और भय का कारण बन जाती है) साथ ही

१- गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ६, पृ० ८

स्नेह के सरोवर में अवगाहन कर पवित्र हो (श्वेत वसन) नेत्र अलक्षित सत्ता के ध्यान में मग्न है । यह भावनात्मक मूर्त चित्र है ।

२६. एक बार उस रहस्य शक्ति का आभास पा लेने के बाद फिर आराधक को उसके समान कोई दिखाई नहीं पड़ता --

आँखें वे देखी हैं जब से
और नहीं देखा कुछ तब से ।[1]

+ + +

नयन नहाए
जब से उसकी छवि में रूप बहार ।

+ + +

बदल गयी आंख, विश्व
रूप वह खुला
मिथ्या के भाव सभी
कहां समाये ।[2]

'जीव' और 'परमात्मा' के सम्बन्ध की अभिव्यक्ति काव्यात्मक रूप से प्रकट की गई है --

जीवन प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा [3]

कितने अल्प शब्दों में कवि ने इतना रहस्योद्घाटन कर दिया है । आत्मा-परमात्मा के मधुर मिलन की झलकियों को प्रकट करने के लिए प्रकृति माध्यम बनी है --

तुम आए
अमा निशा थी
शशधर से नभ में छाए

+ + +

१- निराला : बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ३, पृ० १९
२- निराला : अर्चना १९६२, प्रयाग, गीत २३, पृ० ३९
३- निराला : बेला , गीत २६, पृ० ४२ ।

करती है स्तवन मंद पवन से
गन्ध कुसुम कलिकाएँ भवन से
किंचन के रस से सिंचन से तुम लहराये ।[1]

२७. 'ब्रह्म' का ज्ञान पाने पर सम्पूर्ण विश्व ही भवन के सदृश्य प्रतीत होने लगता है और सब दुःख-संताप समाप्त सा होता प्रतीत होता है । उस ब्रह्म का ज्ञान पाने पर सर्वत्र उसी की चेतना का प्रकाश दिखाई पड़ता है जो स्वयं उस जीव में भी प्रकाशित रहता है --

भवन भुवन हो गया
दुःख ताप सो गया ।
+ +
अपना अपना रहा
सत्य कल्पना रहा
ज्ञान वही खो गया ।[2]

प्रकृति के माध्यम से रहस्य

२८. 'निराला' ने प्रकृति को प्रेयसी का रूप देकर रहस्यात्मक संकेत दिए हैं और प्रकृति में भी अनन्त प्रिया के दर्शन किए हैं । प्रकृति के विविध रूप-व्यापारों के माध्यम से जीव (आत्मा) और उस परोक्ष सत्ता के तादात्म्य की अभिव्यक्ति भी रहस्यवादी कवि करता है । वह प्रकृति के पदार्थों में चेतना का आरोप कर उन्हें आत्मवत् देखता है और उनके साथ तादात्म्य सुख का अनुभव करता है । वस्तुतः प्रकृति में उसे अपना ही स्वरूप दृष्टिगत होता है --

ज्योतिर्मय चारों ओर परिचय सब अपना ही ।[3]

प्रकृति के प्रति रहस्यानुभूति मनुष्य की प्रारम्भ से ही रही है । वैदिक काल में अरण्य निवासी ऋषिगण प्रकृति के विभिन्न रूपों का विराट या सूक्ष्म सभी का गुणगान

१- निराला : अणिमा, १९४३, उन्नाव, पृ० ५४
२- निराला : आराधना, १९६१, प्रयाग, पृ० ६२
३- निराला : परिमल , पृ० २३८

किया करते थे । ईश्वर का गुणगान प्रकृति के प्रतीकों द्वारा कोई नवीन बात नहीं है । `निराला` ने भी प्रकृति का आश्रय लिया है और पर ब्रह्म निराकार अव्यक्त की अभिव्यक्ति की है । `निराला` ने प्रकृति को पावन उदार गृहिणी के रूप में भी देखा है --

यह श्री पावन गृहणी उदार
गिरिवर उरोज, सरि पयोधर
कर वन तरु, फैला फल निहारती देखी
सब जीवों पर है एक दृष्टि
तृण तृण पर उसकी सुधा दृष्टि
प्रेयसी, बदलती, वसन दृष्टि नव लेती ।[1]

प्रकृति सदैव से ही मानव की प्रेरणा स्रोत रही है उसको देखकर कवि का मन स्वभावत: ऊर्ध्व गमन करने लगता है । प्रकृति के रहस्यात्मक संकेतों का परिचय `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य में स्पष्ट देखने को मिलता है । प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर कवि `तुलसीदास` को एक नवीन प्रकाश का भाव होता है । प्रकृति उनको अस्पष्ट भाषा में सन्देश देती हुई प्रतीत होती है --

देखा पावन वन, नव प्रकाश मन आया
वह भाषा छिपती कवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा में रंग कर
वह भाव कुरल कुहरे सा भर कर आया[2] ।

प्रकृति के इस रूप को देखकर `तुलसीदास` विस्मित रह गए --

केवल विस्मित मन चिन्त्य नयन
परिचित कुछ भूला ज्यों प्रियजन

कभी उसे प्रकृति के कण-कण में हास्य दिखता है तो कभी प्रत्येक जड़ जंगम संदेश देता हुआ दिखायी पड़ता है --

तरन तरु, ~~विस्फ~~ वीरुध वीरुध, तृण तृण
जाने क्या हंसते मसृण मसृण
\+ -+ +

१- निराला : तुलसीदास , १९५७, इलाहाबाद, पृ० ३१
२- वही० पृष्ठ १८

कहता प्रति जड़ जंगम जीवन ।
भूले थे अब तक बन्धु प्रमन ।[1]

रहस्यवादी कवि को प्रकृति के सारे तत्व उस अव्यक्त प्रियतम के प्रणय सन्देश सुनाते प्रतीत होते हैं । अत: रहस्यवाद को उस अपरोक्ष के प्रति प्रणय-निवेदन मान सकते हैं ।

प्रिया के रूप में ब्रह्म

२६. 'ब्रह्म' को प्रेयसी के प्रतीक रूप में भी 'निराला' ने अभिव्यक्ति दी है , प्रेयसी (ब्रह्म) के प्रति कवि की उक्ति है --

एक दिन थम जायगा रोदन
तुम्हारे प्रेम आंचल में[2]

कवि का उस परोक्ष सत्ता के प्रति आत्म निवेदन है । एक दिन परम सत्ता के अंचल में जीव का समस्त दु:ख, कष्ट एवं क्लेश समाप्त हो जायगा । 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में अपरोक्ष सत्ता के प्रति आत्मीय सम्बन्ध स्थापित किया गया है --

तुम पथिक दूर के श्रांत
और मैं बाट जोहती आशा
+ + +
तुम आशा के मधु मास
और मैं पिक कल कूजन - तान
तुम मदन पंच शर हस्त
और मैं हूं मुग्धा अनजान ।[3]

'तुलसीदास' प्रबन्ध काव्य में कवि ने रत्नावली के परिचित प्रेयसी रूप में विश्व को आश्रय देने वाली, गौरवमयी चेतना के रूप में भी देखा है --

---

१- निराला : तुलसीदास , पृ० १६

२- परिमल : १९६३, लखनऊ , पृ० ३२ ।

३- वही०, पृ० ८१-८२ ।

जागी विश्वाश्रम महिमाधर, फिर देखा
संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला, तिरती सुख जल
प्राची-दिगन्त उर में पुष्कल रवि रेखा ।[१]

जननी के प्रतीक रूप में

३०. `निराला` ने अव्यक्त शक्ति को माता जननी देवी` कह कर भी पुकारा है, वात्सल्य मूर्ति मां के सम्मुख सब अपराध क्षम्य हैं, यही मां विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस की भी आराध्या थीं । `निराला` पर इसका अन्यतम प्रभाव परिलक्षित होता है --`पंचवटी प्रसंग` में लक्ष्मण सीता को `आदि शक्ति-रूपिणी` कहा है --

जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव, विष्णु अज
कोटि कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा ग्रह--
कोटि इन्द्र सुरासुर
जड़ चेतन मिले हुए जीव जग
बनते पलते हैं नष्ट होते हैं अंत में
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है
माता है मेरी वे ।[२]

इसी मां की भक्ति और आराधना की कवि कामना करता है किन्तु मां की स्तुति के लिए तथा समर्पण के लिए उसे कुछ दिखता नहीं --

क्या गाऊं ? मां क्या गाऊं[३]

\+ + +

देवि तुम्हें क्या दूं ।[४]

ब्रह्मरूपिणी मां से कवि प्रार्थना करता है कि तन्त्री के तारों के समान हे मां, समस्त प्राणी जगत के प्राण एक ही आशा के तन्तुओं में बांध दो । अनेकता में एकत्व लाने का भी कवि का आग्रह है और ज्योतिर्मय जग दिखाने की इच्छा--

वन्य कर दे मां, वन्य प्रसून
दिखा जग ज्योतिर्मय, मुख चूम ।[1]

तो कहीं जीर्ण-शीर्ण प्राचीन को जला कर भारत-भू पर रूपमय माया तन धारण कर उतरने का अनुरोध[2]। 'निराला' केवल भारत के ही सुख-समृद्धि की कामना नहीं करते, वह विश्व की चिन्ता से भी व्याकुल हैं[3]। कवि केवल कोरी भावना में ही नहीं, बल्कि वह उसके लिए अपना जीवन भी प्रस्तुत कर रखता है[4]। लेकिन उस दिव्य शक्ति मां तक पहुंचने के लिए जीव को मार्ग के अनेक कंटकों को पार करना पड़ता है, परन्तु कवि को उसका खेद नहीं --

प्रात तव द्वार पर
आया जननि, नैश अन्ध पथ पार कर ।
लगे जो उपल पद हुए उत्पल ज्ञात
कंटक चुभे जागरण बने अवदात
स्मृति में रहा पार करता हुआ रात
अवसन्न भी हूं प्रसन्न मैं प्राप्तवर[5]

१- गीतिका : १९६१, इलाहाबाद, गीत ३१, पृ० ३६

२- जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तन जीवन हीन
मां, तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूप मय ....
-- गीतिका, गीत ३४, पृ० ३९ ।

३- सार्थक करो प्राण
जननि, दु:ख अवनि को दुरित से दो त्राण
-- गीतिका, गीत ५३, पृ० ५८

४- दे मैं करूं वरण
जननि, दु:खहरण पदराग रंजित मरण
-- गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ९२, पृ० ९७ ।

५- वही०, गीत ९५, पृ० १०० ।

कभी-कभी कवि मानव की यन्त्रणा से इतना द्रवीभुत हो उठता है कि वह वेदना से विह्वल होकर कहता है --

मां अपने आलोक निखारो
नर को नरक त्रास से वारो ।[1]

यहां पर ईश्वर की प्रतिष्ठा नारी रूप में की गयी है । मातृ-रूप का आग्रह कवि में अधिक दिखता है । अधिकतर रहस्यवादी कविताओं में आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का चित्रण प्रेमी-प्रेमिका के माध्यम द्वारा ही चित्रित होता आया है । विराट मां के प्रति आत्म समर्पण का भाव व्यक्त किया गया है । मां का ब्रह्म रूप स्वीकार करने से ही `निराला` ने जगन्माता को द्वेष, द्रोह, अहंकार आदि से रहित अनन्त शक्तिशालिनी एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पुर्ण करने वाली बताया है ।

भक्ति-भावना

२१. अद्वैत वेदान्ती `निराला` का स्वर क्रमश: भक्ति की स्निग्धता से आर्द्र होता गया लेकिन भक्ति-प्रधान गीतों का विश्लेषण करने से पुर्व इस भाव-भुमि के परिवर्तन की परिस्थिति का अवलोकन उनकी भक्ति-भावना को समझने में अधिक सहायक होगा । जहां से `निराला` का सृजन नवीन मोड़ लेता है, वह उनकी मानसिक दिग्भ्रम की अवस्था थी, देश की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ वह स्वयं के संघर्षों से ऊब चुका था । सन् १९३९-४२ तक का समय कवि की आर्थिक विपन्नता का काल था । द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका सामने दिखायी पड़ रही थी, आर्थिक अभावों के कारण उसके जीवन में स्थैर्य नहीं आ पा रहा था, उसको स्थान-स्थान पर भटकना पड़ रहा था । उसके निकट सम्बन्धी-- पत्नी,पुत्री पहले ही साथ छोड़ चुके थे । ऐसी स्थिति में दो प्रकार की ही प्रतिक्रियायें हुआ करती हैं -- या तो कवि अपनी खीज को व्यंग्य और विद्रूप के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगता है या सम्पूर्ण वेदना, क्षोभ, रोष को समेट कर भगवान की शांतिमयी गोद

१- निराला : अर्चना, १९६२, प्रयाग, गीत १०८, पृ० १२४ ।

में अवलम्ब खोजने लगता है । `निराला` में यह दोनों प्रतिक्रियायें हुईं, उनकी कविता में यह दोनों प्रवृत्तियां मुखरित हुईं । `कुकुरमुत्ता` , नये पत्ते`, `बेला` आदि कृतियां व्यंग्य एवं विद्रूप से पूर्ण हैं तथा `अर्चना`, `आराधना`, `गीत गुंज` , भक्ति-भावना से मुखरित रचनाएं हैं ।

३२. `अर्चना` , `आराधना` की भक्ति सम्बन्धी पृष्ठभूमि 'अणिमा' से ही पुष्ट हो रही थी । `निराला` की भक्ति-भावना में भक्त का आत्म निवेदन है, दास्य-भाव की अभिव्यक्ति और अपने को प्रभु के चरणों में उत्सर्ग करने की हार्दिक इच्छा । शरणागत से आश्रय के लिए निवेदन करता हुआ `निराला` का स्वर आर्द्र हो उठता है --

उन चरणों में मुझे दो शरण
इस जीवन को करो हे मरण
बोलूं अल्प न करूं जल्पना
सत्य रहे मिट जाय कल्पना ।[१]

`निराला` केवल अपनी ही एकांत मुक्ति नहीं चाहते वह तो --

दलित जन पर करो करुणा
दीनता पर उतर आए
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा[२] ।

का प्रार्थी है । कवि का अहं पूर्णतया समाप्त हो गया है, वह अपने को पतित और भिखारी की भी संज्ञा देने से नहीं हिचकता --

भव भिखारी , विश्व भरणा
सदा अशरण- शरण शरणा ।[३]

+ + +

१- निराला : अणिमा, १६४३, उन्नाव, पृ० १२
२- वही०, पृ० १४
३- निराला : अर्चना, १६५२, प्रयाग, गीत ३, पृ० १६ ।

पतित हुआ हूं भव से तार
दुस्तर दव से कर उद्धार[1]

वस्तुत: `अर्चना` को आज के तुलसीदास की ~~`विनयपत्रिका`~~ `विनय गीतिका` कहा जा सकता है । कवि का दैन्य उसे भक्त कवि की श्रेणी में बैठाने में सहायक होता है । इस संसार से बार-बार उद्धार करने की उसकी प्रार्थना है । संसार से न जाने उसे इतनी वितृष्णा क्यों है ? `भवसागर से पार करो हे` , `सागर से उत्तीर्ण तरी हो` , `पार करो यह सागर` , `तरणि तार दो` , `कठिन यह संसार कैसे विनिस्तार` आदि गीत `निराला` की इस संसार से हट जाने की व्याकुलता को प्रकट करते हैं ।

३३. वैष्णव कवियों की निश्छल तन्मयता भी यत्र-तत्र दिखायी पड़ जाती है, `हरिण नयन हरि ने छीने हैं` गीत में भ्रमरगीत की गोपियों का स्वर मुखरित होता हुआ दिखता है । `अर्चना` , `आराधना` और `गीतगुंज` में भक्ति का स्वर स्पष्ट दिखाई पड़ जाता है, भजन,कीर्तन एवं सत्संग में भी उनकी आस्था स्पष्ट दिखायी पड़ती है यथा -- `हरि भजन करो भू भार हरो , ` रहते दिन दीन शरण भजले` , `भजन कर हरि के चरण मन` , ` दो सदा सत्संग मुझको` , `हरि का मन से गुणगान करो` , ` लो रूप लो नाम` , `कामरूप हरो काम` `दुख का दिन डूबे डूब जाय` कवि की भक्ति-भावना का ही संकेत है । कुछ स्थलों पर भक्ति-भाव इतना प्रधान हो गया है कि उनका कवि दब गया है , भक्त उभर कर आया है , यथा -- `पतित पावनि गंगे` , `हरि का मन से गुणगान करो` इत्यादि । लेकिन आश्चर्य की बात है कि भक्त कवि की समस्त विशेषताओं के होते हुए भी ~~`निराला` में भक्त कवि की तन्मयता दृष्टिगोचर नहीं होती~~ । इसके लिए आलोचक नरेश मेहता ने तत्कालीन परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया है । उनका कहना है कि " प्रत्येक युग की एक विशेष मांग हुआ करती है, इसलिए `अर्चना` के भक्ति-पदों में भक्ति की तन्मयता नहीं, वरन् सच्चे कवि का आक्रोश है । इसलिए वह भक्ति-काव्य के अन्तर्गत नहीं ।"[2] आलोचक की बात में बहुत कुछ सत्यता है । देश-

---

१- निराला : अर्चना,१९६२, प्रयाग, गीत ९५, पृ०१११।

२- नरेश कुमार मेहता अर्चना का कवि , आलोचना, जनवरी १९५३, पृ०८३ ।

काल और परिस्थितियों की प्रति छवि प्रत्येक सजग कवि के सृजन में प्रतिभासित होती है तो `निराला` कैसे अपवाद हो सकते हैं ? वस्तुत: वह देश की समस्याओं परिस्थितियों के जीवंत प्रतीक थे । उन्होंने देश के साथ बहुत कुछ किया और भोगा था तथा स्वाधीनता का उद्घोष उन्मुक्त रूप से किया था , जिसके उदाहरण उनकी १६३८ तक की रचनाओं में प्रत्यक्षरूप से देखे जा सकते हैं । ऐसे कवि के लिए जिसको देश की परतन्त्रता के समय में भी भय,आशंका का नाम का लेश नहीं था, वह स्वातन्त्र्योत्तर काव्य में अपने आक्रोश को भक्ति की प्रच्छन्न धारा में व्यक्त करेगा ? जो कुछ नियति, समाज और परिस्थितियों से उसे भोगना था, वह पहले ही भोग चुके थे । अब तो वह निस्संग एकाकी थे । मोह बन्धन पहले ही नियति ने उनके काट दिए थे, देश स्वतन्त्र हो ही चुका था,यद्यपि देश में व्याप्त विकृतियों का अंत नहीं था । ऐसी परिस्थिति में उनका स्वर और भी दर्प पूर्ण, ओजस्वी और पौरुषमय होना चाहिए था ।

३४.`निराला` ने देश की परिस्थितियों को समझा था । वह अपने ओजस्वी स्वर द्वारा देश को बहुत कुछ दे चुके थे और दे सकते थे ।`कुकुरमुत्ता`, `बेला`,`नये पत्ते` में व्यंग्यात्मक और विद्रोही स्वर रखते हुए वह `अर्चना`, `आराधना`, `गीत-गुंज` में एकदम भक्ति की तरफ कैसे उन्मुख हो गये ? वह चाहते तो उस प्रवृत्ति को और अधिक प्रसार दे सकते थे । लेकिन इस प्रश्न को बाह्य परिस्थितियों के आधार पर ही नहीं सुलझाना होगा । इसकी अन्तर्मुखता पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है । यह न भुलाना चाहिए कि यह `निराला` का सान्ध्यकाल था उनकी इन्द्रियां निरन्तर संघर्ष के कारण शिथिल हो गयी थीं । उनको अपने अंत का आभास मिलने लगा था । चारों तरफ निराशाएं ही उनको दिख रही थीं । अत: उनके लिए भगवान का ही एकमात्र अवलम्ब ऐसा था जो उनको कुछ शांति और सुख दे सकता था । भक्ति का स्वर केवल उनका आक्रोश मात्र नहीं वरन् उनके वेदान्त का ही व्यापक रूप है । `निराला` में वृद्धावस्था में भक्ति का प्रवाह अद्वैतवाद का परिवर्तन नहीं है, भारतीय परम्परा के अनुसार अद्वैतवादी वेदांत उपासक सगुण की उपासना में कहीं विरोध नहीं पाते , स्वयं उनके प्रेरणा स्रोत विवेकानन्द भी वेदांतवादी होकर भी मां काली अध्यात्म गुरु रामकृष्ण के समक्ष दैन्यभाव से भक्ति प्रकट करने में अपने जीवन का चरम साफल्य समझते थे । इसको निपट आक्रोश की संज्ञा देना असंगत होगा । यह

स्वीकार किया जा सकता है कि `निराला` के गीतों में सूर, तुलसी, मीरा की भाव-विह्वलता नहीं पाई जाती, पर भक्ति का स्वर, `निराला` के प्रारम्भिक काव्य से ही देखने को मिलता है, वयस् के साथ उसमें आधिक्य और विस्तार हुआ। १९३८ तक की कविताओं में भक्ति-स्वर में जितनी भास्वरता और दीप्ति है, वह १९३८ के बाद की कविताओं में विषाद में परिवर्तित हो गई। वस्तुत: यह भक्ति का स्वर प्रारम्भ से ही स्पन्दित होने वाली चिरन्तन चेतना है। `निराला` के १९३८ के बाद के काव्य --`अर्चना`, `आराधना` तथा `गीत-गुंज` में भक्ति भावना पूर्ण गीतों का आधिक्य है।

भक्ति का स्वर : प्राकृतिक उपादान

३५. प्रकृति के उपादानों के साथ कवि ने अपनी पूजा- अर्चना का साम्य बैठाकर सुन्दर अभिव्यक्तियां की हैं। कवि ने अपनी साधना के ~~करण~~ आख्यान का भाव प्रकृति के माध्यम से प्रकट किया --

`बादल छाए
ये मेरे अपने सपने
आंखों से निकले, मंडलाए
गरजे सावन के घन घिर घिर
नाचे मोर वनों में फिर फिर
जितनी बार
चढ़े मेरे भी तार
छन्द से तरह तरह तिर
तुम्हें सुनाने को मैंने भी
नहीं कहीं कम गाने गाए।[1]

जितनी बार सावन के बादल घिर घिर कर गरजे और मोरों ने वन में नृत्य किया उतनी ही बार कवि के के तार भी छन्दों के वैचित्र्य के साथ चढ़े -- अन्तिम पंक्तियों में कवि का दर्प है, उसकी उक्ति है कि सावनों के बादल और मोरों के नृत्य से उसके गानों की उपलब्धि कम नहीं है।

१- निराला: अणिमा, १९४३, उन्नाव, पृ०१०

प्रार्थनापरक गीत

३६. उस परम शक्ति का ही आभास कवि सर्वत्र पाता है --

तुम्हीं हो शक्ति समुदाय की
तुम्हारी अनुरक्ति संचय की
+ + +
कथा के प्रोत का उत्थान
तुमसे है, पतन तुमसे
विषय स्पष्टीकरण तुमसे
प्रलम्बित आहरण तुमसे
तरंगों का चिताङ्कित भाव
अर्थन्यास धन तुमसे ।[१]

यथार्थवादी और व्यंग्यात्मक

३७. सन् १९१६ में लिखित `अधिवास` कविता से ही `निराला` के काव्य में जनवादी प्रवृत्ति दृष्टिगत होने लगती है --

मैंने मैं शैली अपनाई
देखा दुःखी एक निज भाई
दुःख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई ।
उसके निकट गया मैं धाय
लगाया उसे गले से हाय ।[२]

प्रस्तुत कविता में मानव मात्र के प्रति वेदना कवि की संवेदनशील प्रवृत्ति का द्योतक है । छायावादी घोर वैयक्तिकता के आवरण में यह यथार्थवादी चित्र सहसा ध्यान आकर्षित कर लेता है । देश की तत्कालीन स्थिति से निराश और विवश छायावादी

१- निराला : अणिमा , प्र०ति० १९४३, उन्नाव, पृ० ६४
२- परिमल : अधिवास , पृ० ११७

कवि अत्यधिक अन्तर्मुखी होता गया और वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति-कल्पना की उड़ान में करने लगा । यथार्थ से एक तरह से उनका नाता टूट गया लेकिन तत्कालीन कवियों में एक `निराला` ही ऐसे दिखते हैं जिन्होंने कठोर धरातल पर अपने पैर जमाए रखे । वह देश-काल से असंपृक्त होकर कभी नहीं रहे । अपने सम-सामयिक कवियों में उन्होंने ही तथाकथित दीन-दु:खियों के प्रति सर्वप्रथम सहानुभूति पूर्ण स्वर मुखर किया । लेकिन उनकी सहानुभूति कोरी सहानुभूति ही नहीं थी । यह `निराला` के मानवतावादी हृदय का आर्द्र स्वर था ।

३८. `निराला` की १९३८ तक की सामाजिक कविताओं में व्यंग्य का उतना अक्खड़पन या तीव्रता नहीं है जितनी करुण , मार्मिक एवं भेदकता है । `निराला` द्वारा प्रस्तुत करुण-वेदनापूर्ण चित्र मात्र कोरी कल्पना की उड़ान ही नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है उसने स्वयं उन क्षणों को जिया है । कमेण्टेटरों के सदृश्य उसने उनका वर्णन नहीं किया वरन् अपने को पूर्णरूपेण उसमें सराबोर करते हुए उन करुणापूर्ण क्षणों को जिया है ।`विधवा`,`भिक्षुक`,`वह तोड़ती पत्थर`, `दीन` इत्यादि ऐसी ही कवितायें हैं । `निराला` के काव्य में अथ से इति तक दीन पर कातरता का स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है । लेकिन सन् १९३८ के बाद की उनकी व्यंग्यात्मक कविताओं का विषयगत और भावगत अन्तर स्पष्ट है -- उसमें व्यंग्य की तीव्रता और कटुता है जो १९३८ ई० के पहले के काव्य में साधारणतया नहीं दिखती । इनमें कारुण्य का आधिक्य है तो बाद के काव्य में व्यंग्य विद्रूप का ।

३९. `परिमल` की `विधवा` करुण रस की अनुपम उपलब्धि है । विधवा का ऐसा करुण और हृदय द्रावक सजीव चित्र अन्यत्र दुर्लभ है । भारतीय नारी के वैधव्य के कष्टों का चित्रण `निराला` ने अत्यधिक अनुतप्त होकर किया है । अप्रत्यक्षरूप से वह इस सामाजिक व्यवस्था के प्रति रोष प्रकट करता हुआ दिखता है । दैव की विडम्बना, वैधव्य के कठोर नियन्त्रण में जीवन भर उसे तिल-तिल कर जलना होगा । वह टूटे तरु की लता-सी दीन जीवन की अंतिम घड़ी तक सम्बलहीन होकर जीती है । `विधवा` की करुण दशा से तो वह दु:खित है ही, लेकिन उससे भी अधिक वह उस कठोर सामाजिक व्यवस्था के प्रति क्षुब्ध है जो उस सम्बलहीन विधवा के लिए कुछ भी जीने को अधिकार शेष नहीं छोड़ता --

दु:ख रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन की
वह दुनिया की नज़रों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में
दु:ख सुनता है आकाश धीर
निश्चल समीर
सरिता की वे लहरें भी ठहर कर
कौन उसको धीरज दे सके ?
दु:ख का भार कौन ले सके ? [१]

विधवा का संसार की दृष्टि को बचाकर अश्रुपात करना स्पष्ट ही समाज की निर्ममता की घोषणा करता है । 'विधवा' को जो कुछ भी सहानुभूति प्राप्त होती है, वह 'सरिता' की 'लहरों' तथा 'गम्भीर-आकाश' से यदि वे कुछ कर नहीं सकते, यदि उसके दु:ख वेदना को कम नहीं कर सकते तो कम से कम धैर्य के साथ उसकी वेदनापूर्ण कहानी को सुन तो लेते हैं । अन्त में कवि अपने आक्रोश को भगवान पर आरोपित कर देता है --

यह दु:ख वह जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है ।

एकाएक उसका स्वर तिक्त हो उठता है --

क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु जल ?
या किया करते रहे सब को विकल ? [२]

प्रस्तुत पंक्तियां मनोवैज्ञानिक हैं, यह मानव-स्वभाव है कि जब मनुष्य समाज या अपने से किसी बड़ी शक्ति का प्रतिकार नहीं कर पाता तो स्वभावत: उसकी प्रतिक्रिया उस ईश्वर के प्रति आक्रोश में निकलती है ।

४०. 'भिक्षुक' कविता में स्वरभेद की अस्वीकृति का संकेत मिलता है । सामाजिक विकृतियों के प्रति कवि ने जो क्षोभ प्रकट किया है, वह किसी उत्तेजना

१- परिमल : 'विधवा', पृ० १२०
२- वही०, पृ० १२० ।

या आवेग में आकर नहीं किया है , वरन् उनका दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही मानवतावादी रहा है । कुछ लोग इसको `निराला` की स्वयं सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति की प्रतिक्रिया स्वीकार करते हैं , परन्तु यह सोचना उनके प्रति अन्याय होगा । निस्सन्देह जीवन की परिस्थितियों से मनुष्य किसी सीमा तक प्रभावित होता है , लेकिन `निराला` जैसे दृढ़ आसक्तिहीन कवि के सम्बन्ध में इस धारणा को लेकर उनके काव्य विचारधारा का मन्थन निष्पक्ष समालोचना में बाधा उत्पन्न करेगा । `भिक्षुक` का `मुट्ठी भर दाने के लिए फोली फैलाना` वर्ग विषमता का आख्यान करता है --

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।[१]

अंतिम पंक्तियां मन और मस्तिष्क दोनों को झकझोर देती हैं, मनुष्य की स्थिति पशु से तुलनीय हो गई है , यह पतन की पराकाष्ठा है । समाज में अभाववश मानवीय स्तर पर भिक्षुक रह नहीं सकता या रहने में असमर्थ है । उधर कुत्ते भी अपना प्राप्य उनको लेते देख कर झपट पड़ने को प्रस्तुत है -- कितनी करुण स्थिति है `निराला` ने सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ भाग्य विधाता पर भी व्यंग्य किया है --

भूख से सूख ओंठ जब जाते ?
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते ? --
घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते ?[२]

`दीन` कविता में भी `निराला` की करुणा प्रस्फुटित हुई है । दीन का उत्पीड़न कवि को असह्य हो जाता है --

यहां कभी मत आना
उत्पीड़न का राज्य, दु:ख ही दु:ख
यहां है सदा उठाना
क्रूर यहां पर कहलाता है शूर
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर
स्वार्थ सदा रहता पदार्थ से दूर
यहां पदार्थ वही जो रहे
स्वार्थ से ही भरपूर ।[३]

१- परिमल : `भिक्षुक` , पृ० १२५
२- वही०, पृ० १२५ ।

यहां पर पुन: कवि परार्थ के रूप में भगवान पर आक्षेप-सा करता दिखता है, अंतिम तीनों पंक्तियों की व्यंजना गूढ़ार्थ पूर्ण है। `दीन` का हृदय दु:ख और क्षोभ त्याग कर सब कुछ सहना कवि की करुणा को उद्वेलित कर देता है, उस पर नैराश्य भावना का आवरण छाने लगता है और वह दार्शनिक उक्तियों में अपने को भुला देना चाहता है --

> यही मेरा, इनका, उनका सब का स्पन्दन
> हास्य से मिला हुआ क्रन्दन
> यही मेरा, इनका, उनका , सब का जीवन [१]

कहकर वह अपनी मानसिक स्थिति को प्रबोध देना चाहता है ।

४१. `कण` के माध्यम से भी `निराला` ने दलितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है साथ ही उनके अत्यधिक झुकने पर रोष भी प्रकट किया है । सदियों से प्रहारों को सहते रहना और बदले में और भी अधिक कोमलता लाने की प्रवृत्ति `निराला` के लिए असह्य है, क्योंकि इस पर भी ` कण` के महत्त्व त्याग को नीच ही समझा जाता है । `निराला` की व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति `परिमल` से होती हुई `अनामिका` में भी अपनी झलक दिखाती है । `परिमल` की यथार्थवादी कविताओं का व्यंग्य इतना तीक्ष्ण और कटु नहीं है, जितना `अनामिका` का `मित्र के प्रति`,`दान`, `वह तोड़ती पत्थर` तथा `बन बेला` प्रभृति कविताओं का है ।

४२. `दान` कविता में धार्मिक वितण्डावाद पर व्यंग्य किया गया है, धार्मिकता के नाम पर कितना अन्याय है, ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव की मानव द्वारा अवहेलना -- राम भक्त ब्राह्मण विप्रवर, बन्दरों को पुए खिलाना अधिक पुण्यप्रद समझते हैं अपेक्षाकृत एक क्षुधा से मरते हुए मानव के । वह विप्रवर रामभक्त हैं , रामायण का पारायण करते हैं, व्यंग्य स्पष्ट है -- ऐसे आराध्य जिन्होंने भील, विराध, वानरों आदि को गले लगाया उसका भक्त एक कंकाल शेष नर मृत्यु प्राय: को एक पुआ नहीं दे सकते । वह कैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम के भक्त हैं ? `दान` स्वयं अपने में एक व्यंग्य बन गया है । इस दान के पीछे भी महान स्वार्थ की गंध है --

---

१- परिमल , पृ० १३३ ।

दुःख पाते जब होते अनाथ
कहते कवियों से जोड़ हाथ [1]

धार्मिक अंधविश्वास की क्रोड़ में अकर्मण्यता बढ़ती जा रही है । मनुष्य की स्थिति पशु से भी इतर हो रही है --

एक ओर पथ के, कृष्णकाय
कंकाल शेष नर मृत्यु प्राय:
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल
अति क्षीण कंठ है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास
ढोता ज्ञ जो वह कौन सा शाप ?
भोगता कठिन कौन सा पाप ? [2]

प्रस्तुत कविता में भी `निराला` कुछ भाग्यवाद का संकेत देते हैं --

विश्व का नियम निश्चल
जो जैसा उसको वैसा फल
देती यह प्रकृति स्वयं सदया
सोचने को न कुछ रहा नया । [3]

इनका व्यंग्य सम्पूर्ण धार्मिक रूढ़ियों पर है । धन्य श्रेष्ठ मानव की मान्यता अब हास्यास्पद-सी प्रतीत होती है । `निराला`का व्यंग्य सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करता है ।

४३. चिलचिलाती धूप में बिना किसी छाया या आश्रय के नीचे बैठी हुई `पत्थर तोड़ने वाली` का चित्र हृदय की करुणा को उद्वेलित कर देती है । अट्टालिका का तरु लताओं से पूर्ण होना और मजदूरनी का झुलसती धूप में बैठना, व्यंग्य को घनीभूत करता है । यह कविता इतनी करुण और संवेदनात्मक है कि स्वभावत: मन में विचित्र-सी करुणा और वेदना का आविर्भाव हो जाता है ।

१- निराला `अनामिका` : `दान` ,१९६३, इलाहाबाद, पृ० २५
२- वही०, पृ० २४
३- वही०, पृ० २३

`निराला' ने सायास सहानुभूति या करुणा उभारने का प्रयास नहीं किया है --

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्यामतन, भर बंधा यौवन
नत नयन, प्रिय- कर्म-रत मन ।
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार बार प्रहार
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार ।
\+ \+ \+
सजा सहज सितार
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार ।[१]

बदलते हुए मानव-मूल्यों की तरफ भी संकेत किया है, काव्य के नवीन भाव-बोध का आभास है, जिसका सर्वप्रथम प्रारम्भ `निराला' से ही होता है । उनकी प्रारम्भिक रचना `अधिवास' में ही यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है जो क्रमशः `परिमल' ,`अनामिका' से होते हुए `कुकुरमुत्ता' ,`नये पत्ते' ,`बेला',`अणिमा' इत्यादि में परिलक्षित होती है ।

४४. `वन बेला' का व्यंग्य युग-सापेक्ष है , सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक प्रवंचनाओं पर तीव्र प्रहार हुआ है । अपनी सांसारिक जीवन की असफलताओं की वेदना में `निराला' सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश का परिवीक्षण करते हैं --

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार
\+ \+
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी ।[२]

१- निराला : अनामिका पृ० ८१-८२
२- वही०, पृ० ८६-८७ ।

अपनी स्वयं की स्थिति का परिचय दे देता है । लेकिन ऐसा अवसाद क्षणिक ही होता है , सामाजिक विषमता पर वह कटु व्यंग्य करता है । वह उन धनी मानी राज-पुत्रों पर व्यंग्य करता है जो धन के माध्यम द्वारा समस्त प्रकार की सुविधायें प्राप्त कर लेते हैं । उन विद्याधरों पर भी प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य है जो चन्द रुपयों में अपनी मान-प्रतिष्ठा को दांव पर लगा देते हैं -- समाचारपत्रों में उनकी कीर्ति का अग्रलेख छपना और चित्र का छपना सामाजिक अहम्मन्यता पर व्यंग्य है । नारेबाज साम्यवादियों पर भी आक्षेप है जो स्वयं तो असंख्य धन का संग्रह किये हैं किन्तु दूसरी ओर साम्यवाद का नारा लगाते हैं । भोली जनता उनको अपना राष्ट्रपति चुनती है (अशिक्षित भारतीय समाज में प्रजातांत्रिक व्यवस्था स्वयं में एक व्यंग्य बन गई है) साहित्यकारों तथा साहित्यिक संस्थाओं की प्रवृत्ति जिन्होंने स्वार्थ और धन लोलुपता में अपनी आत्मा को बेच दिया है --

पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रच कर ऊपर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ मर्दन स्वर
हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता की अटल साहित्य कहीं वह हो डगमग[१] ।

पत्रकारों की ठकुर सुहाती, भारतीय लोगों की हीन भावना तथा विदेशी संस्कृति पर अंधविश्वास -- क तथाकथित प्रवृत्ति आज भी जब कि अपना देश विदेशी जुए से मुक्त है, देखने को मिलती है । 'निराला' द्रष्टा कवि हैं , तभी १९३७ ई० में इस कविता का व्यंग्य वर्तमान व्यवस्था पर भी कैसा घटित होता है --

फिर देता दृढ़ सन्देश देश को मर्मान्तिक
भाषा के बिना न रहती अन्य गध प्रान्तिक
जितने रस के भाव में बह जाता अस्थिर
समझते विचक्षण ही जब वे छपते फिर फिर
फिर पिता संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग
करता प्रचार
मंच पर खड़ा हो साम्यवाद कितना उदार ।[२]

मंच पर खड़े होकर भाषण देना और बात है, स्वयं जीवन में उसको साकार कर सकना कठिन है । एक उद्योगपति के मुख से साम्यवाद का नारा स्वयं में हास्यास्पद है, अपने देश की समस्याओं के सुलझाने के लिए बाह्य देशों का मुंह जोहना उनके तथाकथित विचारों और योजनाओं को कार्यान्वित करना दासत्व का सूचक है । यह सत्य है कि आज के प्रगतिशील समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बनाये रखना बिना प्रगति कर सकना सम्भव नहीं, लेकिन अपनी संस्कृति को विस्मृत कर अन्य देशों की विचारधारा के अनुसार, चाहे वह देश की स्थिति के तदनुकूल न हो , अपने देश का संचालन करना घातक होगा । साम्यवाद के उपदेशक स्वयं साम्यवाद का वास्तविक अर्थ समझते नहीं हैं । `बेला` के रूप में `निराला` ने स्वस्थ निस्वार्थ जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है `भेद कर कर्म-जीवन के दुस्तर क्लेश` मानो परम सिद्धि के रूप में वह खिलती है । कवि `बेला` के एकाकी वन में खिलने की असार्थकता पर संकेत करता है । `बेला` उसकी अपने प्रति की गई अवहेलना के कारण उसके स्पर्श को अपवित्र कहती है -- साथ ही --

यह जीवन का मेला
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर
त्यों त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर
बिकती ज्यों कौड़ी मोल ?
यहां होगी कोई इस निर्जन में
खोजो यदि हो समतोल
वहां कोई विश्व के नगर धन में ।
है वहां मान
इसलिए बड़ा है एक शेष छोटे अजान
पर ज्ञान जहां
देखना-- बड़े छोटे असमान वहां
सब सुहृदय वर्ग
उनकी आंखों की आभा से दिग्देश स्वर्ग । [१]

१- निराला : `अनामिका` , पृ० ९२ ।

४५. `मित्र के प्रति` , `ठूंठ` तथा `हिन्दी के सुमनों के प्रति` कविताओं में व्यंग्य की अभिव्यक्ति प्रच्छन्न रूप से हुई है --

मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज
तुम सदल सुरंग सुवास सुमन
मैं हूं केवल पदतल आसन
तुम सहज विराजे महाराज ।[1]

कवि ने इसमें व्याज-निन्दा का प्रयोग किया है । इसका व्यंग्य अति क्षीण है, पर वह व्यंजित है । `सरोज स्मृति` में सामाजिक व्यवस्था पर कुठाराघात किया गया है । अपनी पुत्री सरोज के विवाह में धनाभाव के कारण `निराला` को बहुत कष्ट उठाना पड़ा था, धन के अभाव में उनको सुपात्र नहीं मिल पा रहा था, इसके लिए उन्होंने कान्यकुब्जों की खूब खबर ली है --

ये कान्यकुब्ज-कुल -कुलांगार
खा कर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या अर्थ खेद
इस विषय बेलि में विष ही फल

\+ \+ \+

वे जो यमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरौधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर गन्ध ।[2]

`गीतिका` और `तुलसीदास` में भी यत्र-तत्र व्यंग्यात्मक अभिव्यक्तियां हुई हैं । `गीतिका` का एक-आध गीत ही ऐसा है, जिसमें व्यंग्य का आभास प्रच्छन्न रूप से मिलता है --

छोड़ दो जीवन यों न मलो
ऐंठ अकड़ उसके पथ से तुम
रथ पर यों न चलो ।[3]

१- निराला : `अनामिका` , पृ० ११८
२- वही०, पृ० १३२-३३ ।

`निराला` का दृष्टिकोण मानवतावादी था अत: वह धन के आधार पर किसी को महानता या पवित्रता का मानदण्ड स्वीकार नहीं करते ।

मानव मानव से नहीं भिन्न
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा[1]
वह नहीं क्लिन्न

`तुलसीदास` प्रबन्धकाव्य में जहां `निराला` निम्न वर्ग तथा धनी वर्ग की स्थिति का विश्लेषण करते हैं , वहां उनकी शैली एवं अभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक हो गई है --

वह रंक , जहां जो हुआ भूप, निश्चय रे
चाहिए उसे और भी और
फिर साधारण को कहां ठौर
जीवन के जग के, यही तौर हैं जब के ।[2]

४६. सन् १६३८-३६ तक की कविताओं में जो व्यंग्य विद्रूप और सामाजिकता मिलती है, वह अधिक नग्न और कटु नहीं हो पाई है, कवि बहुत कुछ अपनी कटुता, रोष और क्षोभ को भाग्य और भगवान पर निकालता रहा था । क्रमश: व्यंग्य में कटुता का समावेश होता गया । सन् १६३८ के बाद की कविताओं में तथाकथित विषमताओं पर कवि ने कटु व्यंग्य प्रहार किया था । देश के स्वतन्त्र होने पर जनता विदेशी जुए के स्थान पर देशी जुए का भार वहन करती जाय,यह कवि को स्वीकार्य नहीं था, उनकी अधिकांश कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं और तथाकथित उनको जन्म देने वाले नेताओं पर व्यंग्य प्रहार किया गया है । व्यंग्य की तीक्ष्ण धार `कुकुरमुत्ता` और उसके बाद की कविताओं में दृष्टिगत होती है । व्यंग्य का जितना अनगढ़ रूप `कुकुरमुत्ता` में है उससे भिन्न परिष्कृत रूप `बेला` और `नये पत्ते` में दिखाई पड़ता है । भाव-बोध की दृष्टि से `कुकुरमुत्ता` का प्रणयन एक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया है । `निराला` काव्य का अध्येता एकाएक `कुकुरमुत्ता` के रूप में वस्तु-विषय का इतना परिवर्तन पाकर आश्चर्यान्वित हो जाता है । `वस्तुत: `निराला` वाङ्मय में यह महत्वपूर्ण

१- अनामिका, पृ० १६

२- निराला : तुलसीदास :१६५७, इलाहाबाद, छन्द ३४,पृ० २८ ।

परिवर्तन था । व्यंग्य विद्रूप के साथ-साथ भाषा-शैली में भी परिवर्तन दिखा । `कुकुरमुत्ता` कवि के काव्य की ऐसी विभाजन-रेखा है, जिसको नकारा नहीं जा सकता । यह परिवर्तन लाने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व कवि की वैयक्तिक मन:स्थिति के साथ राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थिति को भी था । युद्ध से उद्भूत तथाकथित परिस्थितियों से परम्परागत मानव-मूल्यों और मान्यताओं का छिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक ही था । यह संक्रमण-काल नये संदर्भों की मांग कर रहा था , पुराने के मोह का त्याग करने की मांग की और नये के प्रति शंका की भावना । छायायुगीन कुहासे से निकल कर यथार्थ का आंचल पकड़ना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हो उठा था । परम्परागत साहित्यिक विषयों की उपेक्षा भी की जा सकती थी , गुलाब का स्थान `कुकुरमुत्ता जैसा उपेक्षणीय विषय भी लेने का साहस करने लगा था ।

४७. तत्कालीन परिस्थितियों में सौन्दर्य के प्रतिमान बदल रहे थे, जाति वर्ग, स्वार्थ आत्म दर्शन के माध्यम बदल रहे थे । इन सब को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखा जाने लगा , इस बदलते मानव-मूल्यों और सन्दर्भों में कवि का छायायुगीन विषय-शैली से चिपके रहना सम्भव ही नहीं था -- जीवन की यथार्थता के प्रति उसे सम्पर्क स्थापित करना ही था , सत्य के यथार्थ को झुठलाना सम्भव नहीं था , इसी की प्रतिक्रियास्वरूप संक्रमण-काल के नवीन भाव-बोध के रूप में `कुकुरमुत्ता` हमारे सम्मुख आता है , यह कोई अनहोनी बात नहीं-- तत्कालीन परिस्थिति में यह होना था और यह हुआ, समय बदलता है, मान्यतायें बदलती हैं, और उसका स्थान नये मूल्य और स्थापनायें लेती चलती हैं ।

कुकुरमुत्ता

४८. व्यंग्य काव्य का अन्यतम उदाहरण `कुकुरमुत्ता` है । इसमें व्यंग्य विद्रूप का अनगढ़ प्रयोग ही हुआ है । कुकुरमुत्ता का व्यंग्य प्रतीकात्मक है , `गुलाब` और `कुकुरमुत्ता` के माध्यम से `निराला` ने समाज की वर्ग विषमता का चित्र खींचते हैं । `कुकुरमुत्ता` निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो गुलाब अभिजात्य वर्ग का । `गुलाब` और `कुकुरमुत्ते` के प्रतीक द्वारा शोषक और शोषित का रूपक बांधा गया है । दो खण्डों में विभक्त इस कविता के प्रथम खण्ड में नवाब द्वारा फारस के गुलाब

लगाये जाने का वर्णन है और बाग की शोभा नवाब के बड़प्पन का संकेत दे रही थी--

बीच में आराम गाह
दे रहा बड़प्पन की थाह[1]।

गुलाब के पोषण के लिए नवाब ने सब प्रकार की व्यवस्था कर रखी थी। अत: बाग पर उसका `जमा था रोब दाब`। इसके विपरीत वहीं पर एक गन्दे स्थल पर कुकुरमुत्ता भी विकसित हो रहा था, वह बड़े दम्भ से अपनी महत्ता को स्थापित करता है --उसकी प्रगल्भता और मुखरता शिष्टाचार की सीमालंघन कर जाती है --

अबे सुन बे गुलाब
भूलमत गर पाई खुशबू रंगोआब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपटलिष्ट
+ + +
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम
+ + +
रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी।[2]

`कुकुरमुत्ता` अपने वर्ग की महत्ता को स्थापित करता है। यह जन-सामान्य और मजदूर वर्ग की पूंजीवादी व्यवस्था का बहिष्कार कर संकेत देता है। इसके अतिरिक्त `कुकुरमुत्ता` सभी में अपनी व्याप्ति मानता है--`कुकुरमुत्ता` असंस्कृत निम्न वर्ग का प्रतीक है, जो स्वयं अपने पौरुष और स्वाभाविक प्राकृत वातावरण से बल लेकर विकास को प्राप्त होता है। जिस प्रकार निम्न वर्ग के लिए किसी प्रकार का कृत्रिम सुख-सुविधा की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार `कुकुरमुत्ता` की न तो कलम लगाई जाती है और न उसके पोषण के लिए माली को श्रमसीकर ही टपकाने पड़ते हैं और न उसको खाद का खून चूसने की आवश्यकता ही रहती है। इसके विपरीत गुलाब के

१- निराला : कुकुरमुत्ता, १९४२, उन्नाव, पृ० ३
२- वही०, पृ० ३-४।

लिए जब तक उन सुविधाओं की व्यवस्था नहीं होगी, वह पनप नहीं सकता । यह शोषक वर्ग सदैव ही निम्न वर्ग के रक्त को चूसकर फूला-फला है । निम्न वर्ग के दु:ख एवं कष्टों को अभिजात्य वर्ग अनुभव नहीं कर सकता । धनी वर्ग ने सदैव निम्न वर्ग का शोषण किया है लेकिन हर अति की प्रतिक्रिया अवश्य होती है । यह प्रतिक्रिया `कुकुरमुत्ते` के माध्यम से प्रकट होती है ।

४९. `निराला` ने शोषक तथा शोषित की समस्या को उठाया है । व्यंग्य इस पूंजीवादी व्यवस्था पर है जो श्रमिक वर्ग पर घोर अत्याचार कर, उनका खून चूसकर अपने विलास की सामग्री एकत्रित कर वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करता है, मानव-मानव में इतना भेद ही कवि की पीड़ा का कारण था । शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है । कतिपय विद्वानों ने स्थापना की है कि `कुकुरमुत्ता` स्वयं `निराला` के जीवन का प्रतीक है, अपनी एवं समाज के अनेक साहित्यकारों की विषम स्थिति पर मार्मिक व्यंग्य है, किन्तु इसमें आंशिक सत्य ही सकता है, वस्तुत: कवि ने `कुकुरमुत्ता` की रचना समाज के दो वर्गों के प्रतीक के रूप में की है और प्रतीकवाद का एक सफल प्रयोग अपने काव्य में किया है । तथाकथित प्रयोगवादी कवियों पर भी व्यंग्य आक्षेप किया गया है जो प्रयोगवाद को ही काव्य का एकमेव रूप मान लेते हैं, कवियों की अंधानुकरण वृत्ति पर भी परिहास है --

कहीं का रोड़ा कहीं का पत्थर
टी०एस इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने जिगर पर रखकर
हाथ कहा लिख दिया संसार सारा [१]

५०. `कुकुरमुत्ता` का व्यंग्य युग-सापेक्ष है । प्रच्छन्न रूप से `कुकुरमुत्ता` में साम्यवादी व्यवस्था का भी समर्थन हुआ लेकिन यह समर्थन उन धनी मानी लोगों का है जो अपने स्वार्थवश सब सिद्धान्तों की हां में हां मिलाते रहते हैं । साम्यवाद का समर्थन एक फैशन-सा हो गया । एक तरफ धनी वर्ग सर्वहारा का शोषण कर ढेरों धन-संग्रह करके रखते हैं तो दूसरी तरफ साम्यवाद का समर्थन भी करते हैं, ऐसे साम्यवादियों पर सन् १९३७ की `वनबेला` (`अनामिका`) में भी व्यंग्य प्रहार किया था, यह वस्तुस्थिति में शोषितों के समर्थक नहीं होते पर जैसा अवसर

१- निराला : कुकुरमुत्ता , १९४२, उन्नाव, पृ० ११

देखा वैसा नारा लगाने वाले अवसरवादी लोग होते हैं । उनकी कोई निश्चित मान्यता नहीं, अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए सैद्धान्तिक दृष्टि से कुछ भी कह सकते हैं । `कुकुरमुत्ते` में नवाब द्वारा `कुकुरमुत्ते` का समर्थन ऐसे ही अवसरवादी वर्ग पर व्यंग्य है जो अपने स्वार्थवश सब की हां में हां मिलाए रहते हैं । अपनी बेटी बहार के मुख से `कुकुरमुत्ते` की प्रशंसा सुनकर वह भी उसकी प्रशंसा करने लगते हैं और अपने माली को गुलाब के स्थान पर `कुकुरमुत्ता` लगाने की आज्ञा देते हैं--

..... ` चल गुलाब जहां थे, उगा
हम भी सब के साथ चाहते हैं
अब कुकुरमुत्ता ।`[1]

सब के साथ `कुकुरमुत्ता` को चाहना इस व्यंग्य को और स्पष्ट कर देता है, लेकिन धनी वर्ग की इस मौखिक सहानुभूति से सर्वहारा वर्ग की स्थिति कभी भी सुधर नहीं सकती और न सर्वहारा वर्ग के अनर्गल प्रलाप और बक बक से भी कोई ठोस परिवर्तन ला सकना सम्भव है । `कुकुरमुत्ता` उन साम्यवादी नेताओं का प्रतीक है, जो सब में अपनी व्याप्ति का दम्भ भरते हैं और अपने समर्थन के लिए वेदों से लेकर वैज्ञानिक युग तक उसी साम्यवाद का आभास पाते हैं । `कुकुरमुत्ता` का अनर्गल प्रलाप स्वयं में हास्यास्पद बन गया है । इस तरह के अनगढ़ प्रलाप से किसी भी महत्वपूर्ण समस्या का हल नहीं किया जा सकता । ठोस परिवर्तन के लिए निश्चित योजना लेकर अग्रसर होना पड़ेगा । यदि बहुत दूर की सोचें तो मान सकते हैं कि इन मौखिक सहानुभूति रखने वाले साम्यवादियों पर व्यंग्य करके प्रच्छन्न रूप से `निराला` सर्वहारा की किसी निश्चित योजना और परम्परा को स्थापित करने की ओर प्रेरित करने का संकेत दे रहे हैं ।

५१. `कुकुरमुत्ता` उगाए नहीं उगता से बहुत बड़ी समस्या का सुझाव दे दिया गया है -- `निराला` इस बात का आभास देते हैं कि सर्वहारा वर्ग स्वयं अपना एक निश्चित संगठन बनाए जिसमें उसे फैशनपरस्त लोगों का आश्रय न लेना पड़े । कोई भी काम स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर ही सम्भव हो सकता है । केवल अभिजात्य वर्ग को गाली देने से ही निम्नवर्ग की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता --

-------- ---

१- निराला : कुकुरमुत्ता, १९४२, उन्नाव, पृ० २८

देख मुझको , मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊंचा हूं चढ़ा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता
तू है नकली, मैं हूं मौलिक
तू है बकरा मैं ही कौलिक
तू रंगा और मैं धुला
पानी मैं तू बुलबुला
तूने दुनिया को बिगाड़ा
मैंने गिरते से उभाड़ा
तूने रोटी छीन ली जनता बचा
एक की दे तीन दो मैंने सुना ।[1]

बाग में 'कुकुरमुत्ते' को देखकर गोली हर्षातिरेक से फूल उठती है । बहार का 'कुकुरमुत्ते' के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर गोली का उत्तर --

भाजियां दुनियां में जितनी
इसके सामने नाचीज़
... इसको खाते हर एक को हो आती विहिश्त की याद ।
सच समझ लो इसका कलिया
तेल का भुना कबाब
भाजियों में वैसा, जैसा आदमियों में नवाब ।[2]

'गुलाब' भी 'कुकुरमुत्ते' के आगे पानी भरता है । गोली का 'कुकुरमुत्ता' लेकर घर की तरफ अग्रसर होना व्यंग्यात्मक और प्रयोगशील शैली का प्रतीक है --

चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे ज्यों मुक्खड़ फालोवर

१- निराला , कुकुरमुत्ता, १९४२, उन्नाव, पृ० ५ ।
२- वही०, पृ० २२-२३ ।

उसके पीछे दुम हिलाता
आधुनिक प्वेट (Poet)
पीछे बांदी बक्त की सोचती
कैपिटलिस्ट कवेट ।[1]

आधुनिक पोस्ट का दुम हिलाते टैरियर से साम्य बैठाना बहुत अधिक स्पष्ट हो गया है ।

५२. गोली और बहार की मित्रता ~~बेलकर~~ दिखाकर मानवतावादी विचारधारा का समर्थन किया गया है । नवाब की बेटी बहार और मालिन की बेटी गोली का साहचर्य जन्य प्रेम वर्ग-विषमता के कारण सम्भव नहीं, परन्तु `निराला` ने मानवतावादी धरातल पर यह सम्भव कर दिखाया है । `निराला` ऐसी व्यवस्था चाहते थे, जिसमें अमीर-गरीब, ~~शोक~~ शोषक-शोषित का भेद समाप्त हो जाय वह भी गोली और बहार के समान उन्मुक्त व्यवहार कर सके --

चली दोनों जैसे धूप छांह
गले गोली के पड़ी बहार की बांह[2] ।

समदर्शिता ही `निराला` का प्रतिपाद्य था । इसी के संकेत गोली और बहार की मित्रता में मिलते हैं । मानवता के छिन्न-भिन्न सूत्रों को संगृहीत करने के लिए उनकी कला आजीवन आकुल रही । सबसे अधिक व्यंग्यात्मक रूप `कुकुरमुत्ता` में अपनाया गया । भाषा-शैली भी `कुकुरमुत्ते` के समान सुधारी-संवारी नहीं गई ।

५३. सूक्ष्म स्थितियों का भी कवि आकलन करता चलता है । गोली तथा उसकी मां का आभिजात्य वर्ग के साथ ताल मेल देखकर तथाकथित वर्ग की स्त्रियों को ईर्ष्या होती है --

पहली दूसरी से .... `देखो वह गोली
~~मीना०बंगाली०~~
मीना बंगाली की लड़की
भैंस भड़की
यों ही उसको मां की सूरत
मगर है नवाब की आंखों में सूरत
रोज जाती है महल को `जगे भाग`
आंख का जब उतरा पानी लगी आग

१- निराला : कुकुरमुत्ता , १९४२, उन्नाव, पृ० २४-२५
२- वही०, पृ० १८

मनो ढोया जा रहा हो माल - असबाब
बन रहे हों गहने- जेवर
पकता हो कलिया कबाब ।[1]

स्त्रियां अपने मन की जलन को उन दोनों पर आरोप लगाकर शान्त कर लेती हैं । यह मानवीय स्वभाव है । जिस वस्तु को वह स्वयं प्राप्त नहीं कर पाता दूसरे को भोग करते देख अपनी विवशता और असमर्थता को खट्टे अंगूर की उक्ति द्वारा चरितार्थ कर संतोष पा लेता है ।

५४. `कुकुरमुत्ता` संग्रह में `कुकुरमुत्ता` के अतिरिक्त सात और कविताओं का समावेश किया गया है । कुछ कविताओं का प्रणयन तो १९३९-४० में ही हो गया था पर इनका प्रकाशन सन् १९४२ में ही हो सका । `कुकुरमुत्ता` को छोड़कर बाकी छः कविताओं का समावेश `नये पत्ते` में कर दिया गया है ।[2] `नये पत्ते` में सब मिलाकर अट्ठाईस कवितायें हैं, हास्य व्यंग्य की प्रधानता है, भाषा सरल, सचोट और स्वाभाविक । `गर्म पकौड़ी`[3] (१९४०) हास्य व्यंग्य पूर्ण कविता -- गर्म पकौड़ी के लोभ में ब्राह्मण की पकाई घी की कचौड़ी को छोड़ना-- खान पान की भेदपूर्ण नीति पर आक्षेप है-- जीभ जल जाने पर भी तेल की भुनी नमक मिर्च की मिली पकौड़ी को न छोड़ना --

मेरी जीभ जल गई
सिसकियां निकल रहीं
लार की बूंदें कितनी टपकीं
पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रखा मैंने
कंजूस ने ज्यों कौड़ी ।[4]

कंजूसों की प्रवृत्ति पर मार्मिक व्यंग्य और हास्य प्रकट हुआ है । कंजूस स्वयं कष्ट सह लेगा पर एक भी कौड़ी छोड़ने का साहस नहीं कर सकता । `प्रेमसंगीत` (१९३९)

१- निराला , कुकुरमुत्ता` १९४२, उन्नाव, पृ० १९
२- `गर्म पकौड़ी` , `प्रेम संगीत,` `रानी और कानी` खजोहरा , `मास्को डायलाग` `स्फटिक शिला` ।
३- निराला : `नये पत्ते` १९६२, प्रयाग, पृ० ४४
४- निराला : `नये पत्ते` गर्म पकौड़ी` , १९६२, प्रयाग , पृ० ४४ ।

शीर्षक कविता में प्रेम का कुत्सित रूप प्रकट किया गया है । रूप-सौन्दर्य से रहित जाति की कहारिन घर की पनिहारिन से ब्राह्मण के लड़के का प्यार करना-- प्रेम जैसे नैसर्गिक भाव का उपहास करना है । प्रणय कभी जात-पांत, रूप सौन्दर्य या धन-ऐश्वर्य को देखकर नहीं होता है, पर उसमें किसी प्रकार की कुत्सा या भदेसपन नहीं होता । यदि ऐसा है तो वह वासनात्मक रूप होगा, प्रेम का नैसर्गिक भाव नहीं ।

आती है होते तड़का
उसके पीछे मैं मरता हूं
+ + +
ब्याह नहीं हुआ, तभी भड़का
दिल मेरा मैं आहें भरता हूं ।[१]

उसके अतिरिक्त नायिका परम्परागत सौन्दर्य से अभिमंडित न होकर कुरूप है । तथाकथित नवयुवकों की कौतूहल पूर्ण प्रवृत्ति पर व्यंग्य है । प्रेम के स्वस्थ रूप के लिए जाति-प्रथा की अवहेलना समझ में आती है, लेकिन यहां पर प्रेम का स्वस्थ रूप न होकर वासनात्मक भदेस रूप ही सामने आया है ।

५५. 'रानी और कानी' (१९३९) कविता उस सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य है, जिसमें गुणों के स्थान पर रूप-सौन्दर्य की उपासना होती है । मां के करुणापूर्ण हृदय को ही मूर्त कर दिया गया है । यह एक ऐसी मां की समस्या है, जिसकी बेटी कुरूप और कानी है । वह उसके हाथ पीले करने में असमर्थ रहती है । मां के ममत्व तथा वात्सल्य का चित्र बहुत करुण है,मां अपनी बेटी की कुरूपता से पूर्णतया परिचित है, फिर भी स्नेहवश वह उसको रानी की संज्ञा देती है । बच्चा कितना भी कुरूप क्यों न हो, मां को वह सुन्दर ही प्रतीत होता है, लेकिन उसका प्यार, ममत्व, वात्सल्य यथार्थ की सत्यता को झुठला नहीं पाता --

जब आ पड़ोस की कोई कहती
'औरत की जात रानी
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह ?'[२]

१- निराला : 'नये पत्ते' , 'प्रेम संगीत' , १९६२,प्रयाग, पृ० ४६-४७ ।
२- वही०, पृ० १९

प्रस्तुत कविता में जीवन के यथार्थ का उद्घाटन किया गया है । योग्यता एवं दक्षता के साथ बाह्य सौन्दर्य का होना भी आवश्यक है । आज की समाज-व्यवस्था बाह्य सौन्दर्य की उपासना में ही सन्तोष पाती है । `रानी` भी अपनी मां की पीड़ा से दु:खी है --

सुनकर रानी का दिल हिल गया
कांपे सब अंग
दायीं आंख से
आंसू भी बह चले मां के दु:ख से
लेकिन वह बायीं आंख कानी
ज्यों की त्यों रह गई करती निगरानी[१] ।

जीवन के यथार्थ का चित्र इस कविता में स्पष्ट होता है । `रानी` और उसकी मां के हृदय की पीड़ा अव्यक्त वेदना का संचार करती है ।

५६. `खजोहरा`[२] शीर्षक कविता भी हास्य,व्यंग्य और यथार्थ से समन्वित है । बादलों को हाईकोर्ट के वकीलों से उपमित करना हास्य तो उत्पन्न करता ही है, साथ ही वकीलों की मनोवृत्ति पर भी छींटे हैं, जिनकी वकालत और फैसला बड़े लोगों के पक्ष में ही जाता है । विवाह के पश्चात् मायके में लड़की की बुलाहट स्वार्थवश ही होती है । इस सत्य का उद्घाटन `खजोहरा` की बुआ से होता है -- बुआ का मायके में आगमन भतीजे के होने के कार्यवश ही होता है (इसने सूक्ष्म भाव की पकड़ कवि करता है) गांव आकर बुआ अपने को निपट एकाकी [illegible] पाती है । कवि ने `खजोहरा` की बुआ को टैगोर की विजयिनी की संज्ञाप्रदान की है लेकिन यहां पर उसका विपरीत पक्ष ही चित्रित किया गया है । उदाहरण के लिए दोनों कविताओं के कुछ अंश उद्धृत किये जाते हैं --

उतरीतिर्यग्दृग अविचल चित्त ।
नग्न बाहुओं से उछालती नीर
तरंगों में डूबे दो कुमदों पर
हंसता था एक कलाधर
ऋतुराज दूर से देख उसे होता अधिक अधीर

१- निराला : नये पत्ते,रानी और कानी१९६२, प्रयाग, पृ० १६
२- वही०, पृ० १७ ।

वियोग से नदी हृदय कम्पित कर
तट पर उज्ज्वल चरण रेखायें अंकित कर[1]

इसके विपरीत `सजोहरा' की बुआ का चित्र --

बुआ ताल में पैठीं जैसी हथनी,
डर के मारे कंपने लगा पानी,
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,
बांधा पानी बुआ ने बांहों से भर कर ।
नीव के खम्भे हों, पैर कीच में हैं,
जांघ से छाती तक अंग बीच में है ।[2]

टैगोर की विजयिनी का अभिषेक कुछ वृक्ष से च्युत होते हुए पुष्प करते हैं जब कि सजोहरा की बुआ का सजोहरा लगने से खुजली के कारण बुरा हाल होता है ।

५७. `मास्कोडायलाग्ज़' (१९४०) गिडवानी जैसे सोशलिस्ट नेताओं पर व्यंग्य आक्षेप है, जो साम्यवाद का नारा बुलन्द करते हैं और क्रियात्मक रूप उनका इससे पूर्णतया भिन्न होता है । साम्यवाद का दम भरने वाले यह साम्यवादी नेता दूसरों को फांसने के चक्कर में रहते हैं --

`मेरे समाज में ~~बड़े-बड़े-आदमी~~
बड़े बड़े आदमी हैं,
एक से एक हैं मूर्ख
उनको फसाना है
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का[3] ।

यह नेता लोग समाज की व्यवस्था को ही सुधारने में प्रयत्नशील नहीं हैं, वरन् अनाधिकार प्रवेश द्वारा साहित्य का भी उद्धार करना चाहते हैं --`प्रिय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है ।' अधकचरे ज्ञान पर व्यंग्य किया गया है, सबसे चिन्तनीय विषय तो अपने देश के सुधार के लिए विदेशी विचारधारा का प्रश्रय लेना है । इस

१- अनामिका, पृ०५०

२- नये पत्ते, पृ० २२

३- वही०, पृ० २५-२६ ।

विदेशी विचारधारा के मौखिक प्रचार द्वारा वे देश में सुधार लाना चाहते हैं--

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिरवानी जी,
बहुत बड़े सोश्यलिस्ट,
मास्को डायेलाग्स लेकर आये हैं मिलने ।
मुस्कराकर कहा, यह मास्को डायेलाग्स है
सुभाष बाबू ने उसे जेल में मंगाया था
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर
३५ तक मुश्किल से , पिछड़े उस मुल्क में
दो प्रतियां आयी थीं ।[१]

५८. 'स्फटिक शिला' (१६४२) कविता में चित्रकूट यात्रा का वर्णनात्मक चित्रण है । विवरण में अनावश्यक विस्तार किया गया है, इस वर्णनात्मक कविता में भी 'निराला' का ध्यान समाज-व्यवस्था पर बराबर रहा है --

बायें कुछ ही दूरी पर थी छोटी एक कुटिया
छोटा सा बबूल वह उसकी थी लकुटिया
खोले नैन जाने कैसे यहां ऐसा मारा जोर
दायें गई गाड़ी बायें मुड़ी जैसे एक कौर
कटी चकुतरे की कि कुटिया से निकली
काली एक नारी गाली देती, खाती ढिकली
.... मैंने देखा, बड़ा मैला
मन उसका समाज से
चोट खाई हुई वह राम जी के राज से,
शूद्रों को मिला नहीं
जिनसे कुछ भी कहीं ।[२]

शूद्रों और दलितों का परम्परा से शोषण होता आया है, इस ओर कवि ने ध्यान आकर्षित किया है । गांव वालों के परस्पर द्वेषों का भी संकेत है --

---

१- नये पत्ते, पृ० २५
२- वही०, पृ० ५४-५५ ।

कच्चा चबूतरा मिला,
कुछ राह घेरे हुए । पत्थर एक रखा था
महादेव की जगह पर । भाव मगर पक्का था
दखल जैसे जमाना चाहता था कोई अपना
सत्य को जो बनाए हुए था वहां कल्पना । [1]

इस कविता की अंतिम पंक्ति में कुछ आलोचकों को अश्लीलता का आभास मिलता है लेकिन वास्तविकता तो यह है कि सद्य स्नाता नारी में कवि अपनी आराध्या सीता के ही दर्शन करता है --

याद आयी जानकी
कहा तुम राम की
कैसे दिये दर्शन [2]

जननी की छवि में अश्लीलता का आभास पाना दुराग्रह होगा ।

५६. `कुकुरमुत्ता` के पश्चात् व्यंग्यात्मक कविताओं से युक्त मुख्य संग्रह `बेला` और `नये पत्ते` हैं । छुटपुट अभिव्यक्तियां `अणिमा`, `अर्चना`, `आराधना` में भी मिल जाती है । `दाना-स्तवन` `तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर` `अणिमा` की दोनों कवितायें व्यंजनात्मक हैं । भिक्षुक का द्वार-द्वार भीख मांगने का करुणा पूरित चित्र पेट भर रोटी के लिए भिक्षुक को कितना मान-अपमान सहना पड़ता है । `दाना` जीवन में बहुत ही आवश्यक वस्तु है । वस्तुत: अन्न को ही जीवन मान लिया जाय तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी । इसी की अभिव्यक्ति `दाना-स्तवन` में हुई है । दाने को समस्त जीवन का केन्द्रबिन्दु माना गया है -- `दाना` ही जीवन की सबसे प्राथमिक आवश्यकता है, इसकी सुविधा होने पर ही सब प्रकार के राग-रंग, प्रेम व्यापार, धर्म, दीवानापन इत्यादि सम्भव है [3] । अन्न नहीं, तो कुछ भी सम्भव नहीं । जब तक पेट की क्षुधा शान्त नहीं होती, मनुष्य को कुछ सूझता नहीं ।

१- नये पत्ते, पृ० ५४
२- वही०, पृ० ६०
३०

३- चूंकि यहां दाना है
इसीलिए दीन है, दीवाना है
लोग हैं महफिल है
नग्मे हैं, साज है दिलदार है और दिल है
शम्मा है परवाना है
चूंकि यहां दाना है
--निराला : अणिमा १९४३, उन्नाव, पृ०१०३ ।

६०. `बेला` में भी `निराला` का व्यंग्यात्मक यथार्थवादी स्वर मुखर हुआ है । गंगा के किनारे अवस्थित साधु बाबा का चित्र कवि हल्के व्यंग्य ? और हास्य के साथ प्रस्तुत करता है --

धारे गंगा के किनारे
झाऊ के वन की पगडंडी पकड़े हुए
रेती की खेती को छोड़कर फूस की कुटी
बाबा बैठे मारे बहारे ।[1]

~~साधुओं, सन्यासियों~~
साधुओं, सन्यासियों और पंडों के प्रति भोली जनता की अगाध श्रद्धा और भक्ति इसके विपरीत साधु-सन्यासियों की ठग विद्या कवि को संवेदनशील दृष्टि से ओझल नहीं होती है --

पंडों के सुघर-सुघर घाट हैं
तिनके की टट्टी के ठाट हैं
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं
कहते हैं कितने तारे
\+ + +
बाबा साधक हैं और कढ़े भी हैं
सागर की पोथियां पढ़े भी हैं
आंखों में तेज है, छाया है,
उस छवि की गेह सिधारे ।[2]

`भिक्षुक` के प्रति अपार वेदना प्रवाहित हुई है, सम्भवत: इससे अधिक दीनतापूर्ण स्थिति उनको कोई और नहीं दिखती थी । भिक्षावृत्ति जैसा हीनतापूर्ण कृत्य वही व्यक्ति करने को अग्रसर होता है जो सब तरफ से निराश और असमर्थ हो जाता है । `भिक्षुक` के करुणापूर्ण चित्र `परिमल`, `अणिमा`, `बेला` आदि में दिखाई पड़ते हैं । `बेला` में भिक्षा मांगते हुए हड्डी भर नर का यथार्थ चित्र है । उस दीन-हीन जन को देखकर व्यापारी, शिक्षक, कारीगर, महाराज एवं

१- निराला : `बेला`, १९६२, प्रयाग, कविता ४४, पृ० ६०
२- वही०, पृ० ६० ।

तरुणी पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रिया होती है । इन प्रतिक्रियाओं का ही संकेत दिया गया है --

मीख मांगता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर
+ + +
एक आंख तरुणी की जो अड़ी
कहा, यहां नहीं कामना खड़ी
इससे मैं हूं कितनी सुन्दर ।
+ + +
एक आंख शिक्षा की ऐंठी से
देखने लगी उसे अमेठी से
कहा, खुलकर छोटा भुधर [१]

मनुष्य स्वार्थवश कितनी सीमित परिधि बना लेता है । अपने सुख-दुःख, क्रिया-कलापों के अतिरिक्त बाह्य जीवन के दुःख-दैन्य को समझने का उसके पास हृदय ही नहीं रहता । मनुष्य की इस क्षुद्र, दम्भ और अहं पर ही प्रहार किया गया है ।

६१. `नये पत्ते` (सन् १९४६) की अधिकतर कवितायें हास्य-व्यंग्यपूर्ण हैं । छोटी-छोटी कविताओं में कवि ने बहुत कुछ व्यंजित करने की शक्ति भर दी है । इन कविताओं में सामाजिकता, बाह्योन्मुखता का आधिक्य है । `खुशखबरी`, `आंख आंख का कांटा हो गई`, `थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा` -- अर्थगाम्भीर्यपूर्ण कवितायें हैं । `खुशखबरी` वर्तमान उत्तरदायित्वहीन व्यक्तियों का चित्र है, जो आनन्द और विलास में संलग्न रहते हैं, देश में व्याप्त दुःख,कष्टों एवं परिस्थितियों की उन्हें चिन्ता नहीं रहती, सिने-कलाकारों का उनपर अगाध सम्मोहन है --

कैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता
देविका रानी और उदयशंकर के
पीछे लोग चले गए होते । [२]

१- निराला : `बेला`, १९६२, प्रयाग, कविता ४५, पृ० ६१ ।

२- निराला : `नये पत्ते`, `खुशखबरी`, १९६२, प्रयाग, पृ० ३४ ।

वस्तुत: यह व्यंग्यपूर्ण उक्ति कवि की खीज प्रकट करती है । `थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा` आंग्ल शासकों की व्यापारिक वृत्ति पर व्यंग्य किया गया है । देश वैज्ञानिक दृष्टि से विकास की ओर अग्रसर हुआ लेकिन आर्थिक दृष्टि से वह क्षत-विक्षत होता गया --

वानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया
टापू में ले चलकर रखा और कैद किया ।[1]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी से समाजवाद के विकास तक की आंग्ल शासकों की नीति पर व्यंग्य है --

बदले दिमाग बढ़े
गोल बांधे, घेरे डाले,
अपना मतलब गांठा,
फिर आंखें फेर लीं ।
जाल भी ऐसा चला
कि थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा[2] ।

अंतिम पंक्ति पूंजीवादी व्यवस्था पर घातक प्रहार करती है । व्यापारिक बुद्धि से आए विदेशी किस तरह भारत देश के भाग्य विधाता बन गए । `डिप्टी साहब आए`, `झींगुर डट कर बोला` `छलांग मारता चला गया`, `कुत्ता भौंकने लगा` तथा `तारे गिनते रहे` आदि मुक्तकों में प्रखर राजनीतिक व्यंग्य किए गए हैं । `डिप्टी साहब आए` रचना में गांवों के भाग्य विधाता ज़मींदारों की काली करतूतों का पर्दा-फाश किया गया है । डिप्टी साहब और दरोगा आदि का गांव वालों से बेगार लेना साथ ही उनके पक्ष में फैसला न देना नैतिक पतन की पराकाष्ठा है । ज़मींदार का गोड़इत, लछिमन के बाग के सम्बन्ध में ज़मींदार का ही पक्ष ग्रहण करता है --

---

१- निराला : नये पत्ते, `कुकुरमुत्ता`, १९६२, प्रयाग, पृ० २९
२- वही०, पृ० ३०

जानता नहीं वे
गोड़इत ने पैर रोपा
जमींदार के हैं हम
मालिक का भला जहां वहां है हमारा भला [1]

यह जनता की सुख-सुविधा देखने वाला शासक वर्ग है । ऐसी स्थिति में जनता का ऐक्य हुए बिना चल नहीं सकता -- बदलू के गोड़इत पर प्रहार करने पर गांव की समस्त छोटी जातियां उसकी तरफ हो जाती हैं और थानेदार के सिपाहियों को मूल्य देकर सामान खरीदना पड़ता है तथा बाग की गवाही में भी सब गांव जमींदार के विरुद्ध हो जाता है ।

६२. `झींगुर डट कर बोला` , `कुत्ता भौंकने लगा` , `छलांग मारता चला गया` प्रतीकात्मक प्रयोग है । झींगुर डट कर बोला में शासकीय जमींदारों और समाज के सुधारक नेताओं की कथनी और करनी का वैषम्य प्रकट किया गया है । गांधीवादी विचारधारा के प्रचारक भी इस व्यंग्य विद्रूप के शिकार हो गए हैं--

गांधीवादी आए
कांग्रेस मैन टेढ़े के
देर तक गांधीवाद क्या है, समझाते रहे ।
देश की भक्ति से
निर्विरोध शक्ति से
राज अपना होगा
जमींदार, साहूकार अपने कहलायेंगे [2] ।

कथनी में तो यह आशावादी स्वर्णिम झलकियां हैं और करनी --

झींगुर ने कहा
चूंकि हम किसान सभा के
भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली की
ऐसा यह पेच है । [3]

१- निराला : नये पत्ते डिप्टी साहब १९६२, प्रयाग, पृ० ६५ ६५
२- वहीं०, पृ० ६३

इन छोटे-छोटे मुक्तकों द्वारा कवि ने देश की राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के खण्ड चित्र प्रस्तुत किये हैं । `कुत्ता भौंकने लगा` में कृषक के दैन्य से कुत्ते जैसे जीव को भी पीड़ा होती है, लेकिन डिप्टी साहब को उनके दुःख एवं कष्टों का तनिक भी एहसास नहीं है, शीत के कारण खेती नष्ट हो गई है, किसान घोर निराशा में डूबा हुआ है , परन्तु जमींदारों को इससे कोई सरोकार नहीं, किसान भी उनका प्रतिकार नहीं कर सकता । लेकिन खेतिहर का कुत्ता कृषकों के प्रति अपनी संवेदना जमींदार के सिपाही पर भौंक कर प्रकट कर देता है --

कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ
और भौंकने लगा
करुणा से बन्धु खेतिहार को देख देख कर ।[1]

६३. मेंढक को लक्ष्य बनाकर किसानों की दयनीय स्थिति और जमींदारों के अत्याचारों का पर्दा फाश `छलांग मारता चला गया` में किया गया है । व्यंग्य के लक्ष्य जमींदार और उसके गुर्गे हैं । जमींदारों के दुर्व्यवहारों के प्रति कवि के हृदय में जो उपेक्षामय रोष उत्पन्न होता है, उसकी अभिव्यक्ति प्रयोगवादी ढंग से की गयी है --

पास का मेंढक खाले के पानी से उठकर
मुत मुत कर छलांग मारता चला गया ।[2]

इस प्रकार की अभिव्यक्तियां उसके हृदय की पीड़ा और क्षोभ को अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सफल है । `राजे ने अपनी रखवाली की` शीर्षक कविता पूंजीवादी, जमींदारी व्यवस्था के साथ सामन्ती व्यवस्था पर भी व्यंग्य प्रहार करती है । लेखकों, साहित्यकारों, ब्राह्मण इतिहासकारों पर भी प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य है , जो इस सामन्तवादी व्यवस्था में पलते हुए उसी का गुणगान करते हैं । इसके अतिरिक्त --

---

१- निराला: नये पत्ते कुत्ता भौंकने.., १९६२, प्रयाग, पृ० ६२
२- वही०, पृ० ६३

धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर
खून की नदी बही ।
आंख कान मूंद कर जनता ने डुबकियां लीं
आंख खुली राजे ने अपनी रखवाली की ।[1]

अन्तिम पंक्तियों का व्यंग्य प्रखर है । जनता का इतना सर्वनाश, युद्धों का आतंक राजा की रक्षा हेतु ही होता है । मानो राजा जनता के लिए न होकर जनता राजा की सुरक्षा के लिए है । आधुनिक सभ्यता का विकृत रूप `दगा की` कविता में स्पष्ट होता है, इस सभ्यता का मूल्य `दगा की इस सभ्यता ने दगा की` के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

६४. `चर्खा चला` मानव-विकास की नित-नूतन परिवर्तन होती हुई स्थितियों का चित्र देते हुए सिद्ध किया कि परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है -- किस प्रकार वैदिक कालीन व्यवस्था परिवर्तित होकर रामराज्य तक पहुंची और बाल्मीकि ने परम्परागत मन्त्रों का त्याग कर छन्दोबद्ध मानवीय गीतों को महत्व प्रदान किया। `धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गाए` । आधुनिक काल में `वर्जित स्केल` `गूढ़ अर्थ` इसकी और संकेत करता है । कवि वर्तमान स्थिति के रूप में महाभारतकालीन व्यवस्था की स्थापना चाहता है --

कृष्ण ने कमी पकड़ी
इन्द्र की पूजा की जगह
गोवर्धन को पुजाया
मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया ।
हल को बलदेव ने हथियार बनाया
कंधे पर डाले फिरे
खेती हरी भरी हुई ।[2]

इस कविता का मुख्य आग्रह सामाजिक चेतना पर है । जिस प्रकार बाल्मीकि रामायण धरती का कथानक है , उसी तरह `निराला` की कविता भी सामाजिक

१- निराला : नये पत्ते , `कुकुरमुत्ता` , १९६२, प्रयाग, पृ०३२ ।
२- वही०, पृ० ३८ ।

चेतना से पूर्ण और नवीन बोध से भासित है ।

६५. `पांचक` देश की स्थिति पर प्रकाश डालती है । बंगाल के अकाल पर कवि की वेदनात्मक सहानुभूति प्रकट हुई है । कवि ने बौद्धिक वर्ग की निष्क्रियता पर व्यंग्य किया है । सन् ४२ के अकाल की भयंकर स्थिति भी उनकी निष्क्रियता में आवेग न ला सकी --

दीठ बंधी अंधेरा उजाला हुआ
सेवों का ढेला शकरपाला हुआ [१]

उन नेता लोगों पर भी व्यंग्य है जो स्वाधीनता-संग्राम-आन्दोलनों के जोर पकड़ते ही हिंसा के भय से उनको स्थगित करा दिया करते थे अपार उत्तेजना और जोश के रहते हुए भी निश्चित योजना न होने के कारण दिग्भ्रम भी था --

आदमी हमारा तभी हारा है
दूसरे के हाथ जब उतारा है
+ + +
माल हाट में है और भाव नहीं
जैसे लड़ने को सड़े दांव नहीं । [२]

`तारे गिनते रहे` भी ऐसा मुक्तक है, जिसमें जनता की किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति का आभास दिया गया है । जमींदारों के अत्याचार और शोषण से जनता की शक्ति क्षीण होती गई --

राज में बेकारों की आखिरी सांसें रहीं
जमींदार चांद जैसे कर के लिए ली रहे
देश के आकाश पर
+ + +
बालों के नीचे पड़ी जनता बल तोड़ हुई [३]

यह जमींदार वर्ग ही आंग्ल-शासकों का बहुत बड़ा सहायक था । शासकों से उनको शय मिलती थी, जिससे वह अपने स्वार्थ-साधन में निश्शंक होकर लिप्त रहते थे ।

१- निराला : नये पत्ते, `पांचक`, १९६२, प्रयाग, पृ० ३९
२- वही०, पृ० ३९ ।
३- वही०, पृ० ४०-४१

उसके विपरीत जनता की स्थिति आकाश के तारे गिनने में व्यतीत होती था ।

६६. `देवी सरस्वती` को `नये पत्ते` की सर्वश्रेष्ठ कविता स्वीकार किया जा सकता है । कवि ने ग्राम्य जीवन का रेखांकन किया है । षटऋतु के माध्यम से ग्रामीण जीवन के खण्ड-चित्र इतनी सुन्दरता और मार्मिकता से प्रस्तुत किए गए हैं कि केवल इस एक मात्र कविता द्वारा कवि को कृषक -कवि घोषित किया जा सकता है । `देवी सरस्वती` में ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित षट् ऋतुओं का यथार्थ मय चित्रण किया गया है । `निराला` ने `देवी सरस्वती` का निवास गृह ग्राम्य जीवन को बनाया है । यह ग्राम्य जीवन के चित्र मात्र कल्पना जन्य ही नहीं हैं, वरन् अनुभूति जन्य भी हैं । गांवों का हर्ष-विषाद यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हुआ है । `सरस्वती` का बहुत ही व्यापक स्वरूप लिया गया है ।

जग के सर से
सरस्वती शत शत रूपों की
निकली क्षिप्र मन्द गति
रंकों की भूपों की ।[१]

यह `सरस्वती` कृषक जीवन की हर्ष-विषाद में सहायक ह रहती है --

सुख के आंसू दु:खी
किसानों की जाया के
भर आये आंखों में
खेती की माया से ।
हरी भरी खेतों की
सरस्वती लहराई
मग्न किसानों के घर उन्मद बजी बधाई ।[२]

इसके अतिरिक्त `सरस्वती` को कवि `सायक चढ़ी हुई ही` जनता की जो धन्वी` कहता है । कविता में अंत में बाल्मीकि से लेकर दादू तक इस `सरस्वती` की क्रमिक प्रगति का इतिहास बतलाते हुए कवि निष्कर्ष निकालता है --

---

१- निराला : नये पत्ते ,`देवी सरस्वती, १९६२, प्रयाग, पृ० ६८
२- वही०, पृ० ७० ।

तुम्हीं चिरंतन जीवन की उन्नायक सविता

छवि विश्व की मोहिनी, कवि की स्वप्न कविता ।[1]

कृषक-जीवन के शोषकों का यहां पर भी संकेत दिया गया है --

जमींदार की बनी

महाजन धनी हुए हैं

जग के धूर्त पिशाच

धूर्तगण गुनी हुए हैं ।[2]

देश के अन्नदाताओं की करुण स्थिति 'बबा' शीर्षक कविता में दिखायी पड़ती है --

आम बीन बीन कर

पंजों बांटते हुए

आमों के हिस्सेदार

गांव गांव के किसान

खाने को कल्लक हिस्सा लिए हुए

जमींदार लोगों से ।[3]

कृषक वर्ग की दीन-हीन अवस्था का चित्र है । वही देश वास्तविक रूप से उन्नति कर सकता है जहां का कृषक प्राथमिक आवश्यकताओं से कम से कम सन्तुष्ट होगा ।

६७. 'झ मंघ्रु में लगा रहा' में पंडित जी तक व्यंग्य आक्षेप से नहीं बच पाते हैं । इस कविता का व्यंग्य प्रच्छन्न है --

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं ।

+ + +

बड़े भारी नेता हैं ।

कुछीपुर गांव में व्याख्यान देने को

आए हैं मोटर पर

लण्डन के ग्रेजुएट,

एम०ए० और बैरिस्टर,

१- निराला : नये पत्ते ,देवी सरस्वती १९६२, प्रयाग, पृ०८०

२- वही० पृ० ७३ ।

३- वही० पृ० ६७ ।

बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए ।
एक एक पर्त बड़े-बड़े विलायती लोग ।
देश की भी बड़ी-बड़ी थातियां लिए हुए ।
राजों के बाजू-पकड़, बाप की वकालत से,
कुरसी रखने वाले अनुलंघ्य विद्या से
देशी जनों के बीच,
लेडी ज़मींदारों को आंखें तले रखे हुए,
मिलों के मुनाफे-खाने वालों के अभिन्न मित्र
देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए ।
गले का चढ़ाव बीबीजी का नहीं गया ।
धाक रूस के बल से ढीली थी, जमी हुई,
आंख पर वही पानी
स्वर पर वही संवार[1] ।

'आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं' एक ही पंक्ति में कवि ने कितना बड़ा रहस्य व्यंजित कर दिया है । पंडित जी की अगाध अनुकम्पा है जो आजकल दया करके स्वदेश को शोभायमान कर रहे हैं । 'निराला' का यह अटूट विश्वास झलकता है कि जब --

'बड़े बड़े आदमी धनवान होंगे
तभी देशमुक्त है ।

इतना शिष्ट और मार्मिक व्यंग्य हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है । इसके अतिरिक्त शोषित और प्रताड़ित निम्न वर्ग का भी चित्रण हुआ है जिनमें से कतिपय तो ज़मींदारों द्वारा शोषित हैं, कुछ अल्पमूल्य पर परदेश में श्रम करते हैं और कुछ किसान ऐसे हैं जो महाजनों के कर्ज से दबे हुए हैं-- इन्हीं दबी-पिसी जनता में आकर

१- निराला : नये पत्ते, 'मंहगू मंहगा', १९६२, प्रयाग, पृ० १०६-०७ ।

यह तथाकथित गांधीवादी नेता या वे ज़मींदार लोग जो जेल जाने का प्रमाणपत्र ले चुके हैं,तथा इसी बल पर कांग्रेस के चुनाव के उम्मीदवार हैं --रूमाएं करके केतना लाना चाहते हैं । वस्तुत:इन कांग्रेसी नेताओं की भी ढोल में पोल है ।यही नहीं, अखबार भी व्यापारियों की ही सम्पत्ति है । इस रचना के अन्त में छिपे हुए क्रांतिकारियों की तरफ आशावादी दृष्टि से देखा गया है ।

६८. `अर्चना`, `आराधना` जो कि उनकी `विनय-पत्रिकाएं` हैं,वह भी जन-जीवन के स्पर्श से वंचित नहीं है । अध्यात्म की तरफ उन्मुख होते हुए भी वह जन-चेतना से पूर्णतया विमुख नहीं हो पाए --

आशा आशा मरे
लोग देश के हरे
देख वहां है जहां
सभी झूठ है वहां
भूख प्यास सत्य
होंठ सूख रहे हैं धरे[1] ।

यह देश के स्वतन्त्रता के बाद की लिखी कविता है । सुख की आशा के कच्चे सूत्र में बंधे लोग अपने जीवन को नि:शेष करते जा रहे हैं । लेकिन फल झूठे छल में ही होता है, `भूख प्यास सत्य` रचना जीवन के यथार्थ सत्य का उद्घाटन कर देता है, रोटी ही जीवन का सबसे बड़ा सत्य है । व्यंग्यात्मक उलटवासियों का चमत्कार भी दिखायी पड़ता है --

ऊंट बैल का साथ हुआ है
कुत्ता पकड़े हुए जुआ है
यह संसार सभी बदला है
फिर भी नीर वही गंदला है[2] ।

बाह्यरूप से संसार में परिवर्तन दिखता है लेकिन आत्मिक परिष्कार (नीर वही गंदला है) नहीं हुआ है । मनुष्य को बैल घोड़े की तुला पर तौला गया है--

---

१- निराला : अर्चना ,१९६२, प्रयाग, पृ० २८ ।

२- निराला : आराधना, १९६१, प्रयाग, पृ० ७२ ।

मानव जहाँ बैल घोड़ा है
कैसा तन मन का जोड़ा है [1]

'निराला' की व्यंग्यात्मक कविताओं में मुख्यत: सामाजिक विषमताओं और विकृतियों तथा उनको जन्म देने वाले तथाकथित नेताओं और व्यक्तियों पर व्यंग्य प्रहार किया गया है, किसी प्रकार के व्यक्तिगत आक्रोश या द्वेष से प्रेरित होकर कवि ने कुछ नहीं लिखा है। समाज-सापेक्ष होने के कारण व्यंग्य में मार्मिकता और तीक्ष्णता का समावेश हो सका है।

क्रान्तिकारी

६९. राजनीति के क्षेत्र में जो स्थान हुतात्मा भगत सिंह, आजाद आदि का है, काव्य क्षेत्र में वही स्थान महाप्राण 'निराला' का है। उनका काव्य जर्जरित समाज, शासन एवं वर्गवाद के विरुद्ध 'जिहाद' गीत है। 'निराला' जागरण का प्रतिनिधित्व करने वाला कवि था। विवेकानन्द के अदम्य साहस, रामकृष्ण परमहंस की काली माँ के उपासक कवि ने शक्ति का आवाहन किया है था। शत्रुदल मर्दिनी माँ दुर्गा ही वस्तुत: उनकी आराध्या रही हैं -- 'राम की शक्ति पूजा' 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। 'निराला' स्वयं जगत के जीर्ण पत्रों की द्रुतगति से नि:शेष होने की कामना करते हुए नव कोंपलों का स्वागत करता है। इस शक्ति का उपासक होने से ही उनके काव्य में अदम्य साहस और पौरुष की उद्भावना हो सकी। इस पृष्ठभूमि के प्रेरणा स्रोत विवेकानन्द और रामकृष्णपरमहंस थे जिसका संकेत उनके द्वारा अनुदित विवेकानन्द की अनेक कविताएं तथा परमहंस पर लिखित अनेक निबन्ध हैं।

७०. 'राम की शक्ति पूजा' में शक्ति की मौलिक कल्पना है, समर में पराजय का आभास पा निरुत्साहित राम शक्ति की आराधना कर पुन: विजयी होते हैं। रावण को भी शक्ति का वरदान प्राप्त था लेकिन कवि आसुरी वृत्ति

१- निराला : आराधना, १९६१, प्रयाग, पृ० ७३

पर दैवी वृत्ति की विजय दिखाता है । वस्तुत: यह आसुरी-दैवी वृत्तियों का संघर्ष सृष्टि के आदिकाल से ही चला आ रहा है । `एक बार बस और नाच तू श्यामा` शक्ति का तांडव ही शब्द- योजना द्वारा मूर्त कर दिया गया है --

अट्टहास उल्लासनृत्य का होगा जब आनन्द
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार
बन्द हो जायेंगे ये सारे कोमल छन्द
सिन्धु राग का होगा तब आलाप
उत्ताल तरंग भंग कह देंगे
या मृदंग के सुस्वर क्रिया कलाप
और देखूंगा... ताल
करतल पल्लव दल से निर्जन वन के
सभी तमाल
निर्झर के झर झर स्वर में तू सरिगम मुझे सुना मां ।[1]

मां के खड्ग और खप्पर लेने पर कवि स्वयं अंजलि भर भर कर रुधिर भरने को तत्पर है । असुरों को नाश करने के लिए ऐसी ही शक्ति की आवश्यकता है तभी क्रान्ति का उद्घोष किया जा सकेगा । `धारा` कविता में भी अटूट आत्मविश्वास और आत्मबल का संदेश दिया गया है । दृढ़ संकल्प द्वारा बड़े से बड़ा कार्य किया जा सकता है । स्वयं `निराला` का व्यक्तित्व भी इस तथ्य का पूरक था । उन्होंने निरन्तर व्यंग्य और अवरोधों का सामना किया था , लेकिन हार नहीं मानी । अन्त में स्वयं विरोधी प्रवृत्तियों को हार खानी पड़ी थी । विरोधों की प्रतिक्रिया स्वरूप अदम्य उत्साह और वेग से वह आगे बढ़ने की प्रेरणा पाते रहे । `धारा` कविता उत्साह और पौरुष की प्रतीक है --

बहती कैसी पागल उसकी धारा
हाथ जोड़कर खड़ा देखता दीन
विश्व यह सारा
बड़े दम्भ से खड़े हुए थे भूधर

१- निराला : परिमल, १९६३, लखनऊ, पृ० १३७-१३८ ।

समझे थे जिसे बालिका
आज ढहाते शिलाखंड- क्षय देता
कांपते थर थर
उथल खंड नर मुंड-मालिनी कहते उसे कालिका[1]

७१. प्रस्तुत कविता का आरम्भ `निराला` के स्वयं के संघर्ष कोमूर्त रूप देता है। अपने जीवन के प्रभात काल में जब उनकी प्रतिभा का नव प्रस्फुटन ही हो रहा था, तभी उनको विरोध रूपी कुंजरों का सामना करना पड़ा था।

बहने दो
रोक टोक से नहीं रुकती है
यौवन मद की बाढ़ नदी की
....गरज गरज वह क्या कहती है, कहने दो
अपनी इच्छा से प्रबल वेग से बहने दो
सुना रोकने उसे कभी कुंजर आया था
दशा हुई फिर क्या उसकी ?
फल क्या पाया ?
\+ \+ \+
अगर हठ वश आओगे
दुर्दशा करवाओगेबह जाओगे।[2]

प्रस्तुत कविता कवि के विद्रोहात्मक स्वरूप को प्रकट करती है। वह ऐसी ही विद्रोहात्मक प्रवृत्ति भारतवासियों में फैलना चाहता था। ऐसी क्रान्तिकारी कविताएं वस्तुत: निस्तेज होते हुए बल और शौर्य के लिए आवश्यक हैं। निराला ने समय की मांग को समझा और जागरण का उद्घोष किया। `बादलराग...उनका सबसे उत्कट क्रान्तिकारी गीत है। `बादल राग` से ही `निराला` के पौरुष दीप्त व्यक्तित्व काआभास पाया जा सकता है। यह क्रान्ति-गीत छ: खण्डों में

१- निराला : परिमल, १९६२, लखनऊ, पृ० १३५।
२- वही०, पृ० १३४।

विभाजित है । प्रथम खण्ड में बादल के प्रकृत रूप का चित्र नाद-व्यंजना द्वारा प्रस्तुत कर वह बादल से गर्जन भैरव संसार दिखाने का आग्रह करता है ।

७२. द्वितीय खण्ड में प्रत्यक्षरूप से बादल के उद्दाम उन्मुक्त व्यक्तित्व के साथ-साथ युगान्तर क्रान्ति का संदेश दिया गया , केवल एक शब्दमात्र से पूर्ण खण्ड का अर्थ ही बदल जाता है --

भय के मायामय आंगन पर
गरजो विप्लव के जलधर [1]

`विप्लव` शब्द के साथ जो भाव मूर्त होता है, वह शब्दों की लक्षणा शक्ति से पूरा भाव ही बदल देता है, `विप्लव` का व्यंग्यार्थ प्रकट होते ही सारे शब्द पद-लाक्षणिक हो उठते हैं -- ये युगान्तर के नवीन जीवन का संचार करने वाले पाप के माया मय केन्द्र पर वज्रघोष करो । यहां पर विप्लव का अर्थ प्रकृत रूप से भी व्यक्त होता है और युगान्तर क्रान्ति की ओर संकेत भी करता है । जितने विशेषण और उपमान बादल के लिए प्रयुक्त हुए हैं, वह सशस्त्र क्रान्ति (विप्लव) पर भी घटित किए जा सकते हैं, `निराला` का मुख्य लक्ष्य क्रान्ति का उद्घोष करना ही है । इस कविता की रचना तिथि १९२४ ई० के आस-पास की है , जब कि देश पराजय के शिकंजे में फंसा हुआ था । इस प्रकार का सशक्त उद्घोष तत्कालीन परिस्थिति में अत्यावश्यक था ।

७३. तृतीय खण्ड में अर्जुन और द्रौपदी के रूपक द्वारा त्रिलोकाजित धनुर्धर बादल के द्वारा उसकी प्रिया पृथ्वी की क्षुधा शान्त होने का भाव प्रकट किया गया है --

ऐ त्रिलोक-जित । इन्द्र धनुर्धर
सुर बालाओं के सुख-स्वागत
विजय ।० विश्व में नव जीवन भर
उतरो अपने रथ से भारत ।
उस अरण्य में बैठी प्रिया अधीर
कितने पुजित दिन अब तक हैं व्यर्थ
मौन कुटीर

१- निराला : परिमल, १९६३, लखनऊ, पृ० १६१

आज भेंट होगी
हां होगी निस्सन्देह
आज सदा सुख छाया होगा कानन गेह
आज अनिश्चित पूरा होगा श्रमित प्रवास
आज मिटेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास[1]।

इन्द्र धनुर्धर बादल तथा अर्जुन दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। बादल भी इन्द्रधनुष धारण करता है और पृथ्वी के दाह को शांत करता है। उसी प्रकार इन्द्र धनुष को प्राप्त कर अर्जुन ने द्रौपदी के अधरों की प्यास शान्त की थी। श्यामा-- पृथ्वी और द्रौपदी-- दोनों भाव को बहुत सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त करता है। शब्दों का ऐसा सूक्ष्म प्रयोग 'निराला' की मेधा द्वारा ही सम्भव था। षष्ठम खण्ड में प्रारम्भ से अन्त तक 'विप्लव' और क्रान्ति का ही स्वर है। बादलों के मूसलाधार वर्षा से संसार आतंकित हो उठता है लेकिन निम्नवर्ग ही इस विप्लव से आशावादी और आनन्दित दिखता है --

हंसते छोटे पौधे लघुभार
        अपार
हिल हिल
खिल- खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते[2]।

अन्तिम पंक्ति में बहुत ही गूढ़ार्थ की व्यंजना है --सदैव क्रान्ति का उद्घोष निम्न वर्ग से ही होता है जो परम्परा से प्रताड़ित और दु:खी किये जाते हैं, उनका संयम सहनशक्ति सीमा पार करने पर विद्रोह में बदल जाती है। 'निराला' समाजवादी व्यवस्था का समर्थक है, वह समाज की व्यवस्था को समभाव से देखना चाहता है। दलित वर्ग की पीड़ा से उसका हृदय विदीर्ण हो उठता है -- धनियों की अट्टालिकाओं को 'आतंक भवन' की संज्ञा दी गई है जो शोषित वर्ग का खून चूस कर

१- निराला : परिमल, १९६३, लखनऊ, पृ० १६२-१६३।
२- वही०, पृ० १६६।

कर निर्मित की जाती है । पुंजीवाद का `निराला` ने विरोध किया है । किसी भी क्रियात्मक योजना से इन तथाकथित धनी वर्ग की रूह कांपती है, क्रान्ति के उद्घोष से यह विचलित हो उठते हैं --

रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष
अंगना अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर कांप रहे हैं
धनी वज्र गर्जन से बादल
त्रस्त नयन मुख ढांप रहे हैं ।
जीर्ण बाहु हैं जीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर
चुस लिया है उसका सार
हाड़ मात्र ही हैं आधार[१]
ऐ जीवन के पारावार ।

७४. `निराला` ने शोषक तथा शोषित का वैषम्य दिखाया है, इस वर्ग वैषम्य का नाश ही कविता का मुख्य ध्येय है । इस षष्टम खण्ड में कम से कम पांच-छः बार `विप्लव` शब्द का प्रयोग किया गया है । पुंजीवादी व्यवस्था का संहार तथा सर्वहारा वर्ग का समर्थन हुआ है । किसी भी वस्तु के नव निर्माण के लिए विध्वंस आवश्यक होता है । `निराला` समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे । क्रान्ति का सबसे अधिक जागरूक प्रतिनिधित्व करने वाला बादल ही है । बादल राग में `निराला` का मन्तव्य पूर्णतया सफल रहा है । एक तरफ यह बादल के क्रिया-कलापों को चित्रित करता है, दूसरी तरफ वह क्रान्ति का प्रतीक भी है ।`उद्बोधन` और `मुक्ति` कवितायें भी उद्बोधनात्मक हैं । इनमें निर्द्वन्द्व जीवन की ही कामना की गयी है --

---

१- निराला : परिमल, १९६३, प्रयाग लखनऊ , पृ० १६७ ।

छोड़, छोड़ दे शंकायें , रे निर्झर
गर्जित वीर
उठा केवल निर्मल निर्घोष
+ + +
भर उद्दाम वेग से बाधा हर तू कर्कश प्राण
दूर कर दे दुर्बल विश्वास
किरणों की गति से आ, आ तू गौरवगान
एक कर दे पृथ्वी आकाश ।[1]

अटूट विश्वास ही जीवन का सम्बल होना चाहिए तभी मनुष्य स्वाधीन निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत कर सकता है ।

७५. `निराला` का उद्बोधनात्मक स्वर क्रमशः क्रियात्मक और तीव्र होता गया । वस्तुतः यह परिवर्तन स्पष्ट परिलक्षित होता है, १६३८ के पूर्व की कविताओं की भावनात्मक क्रान्ति, वीरता, शौर्य का स्वर १६३८ के बाद की कविताओं में क्रियात्मक सक्रिय रूप लेता दिखायी पड़ने लगता है । भाव और विषय-वस्तु दोनों ही रूपों में परिवर्तन हुआ, यथा--

तू कभी न ले दूसरी आड़
शत्रु को समर जीते पछाड़
. . . .
झरने फूटेंगे उबलेंगे
भर अगर कहीं तू बन पहाड़ ।[2]

कवि परिवर्तन लाने का एकमात्र उपाय विद्रोह और क्रान्ति मानता है, आवेश में आकर वह उत्तेजनात्मक अभिव्यक्तियां भी कर बैठता है जिसमें आतंक और विध्वंसात्मक का संकेत भी मिलता है --

भेद कुल खुल जाए वह
सूरत हमारे दिल में है

१- निराला: अनामिका, `उद्बोधन` , चतुर्थ सं० १९६३, इलाहाबाद पृ० ६८-६६ ।
२- निराला : बेला , १६६२, प्रयाग, गीत ४७, पृ० ६३ ।

देश को मिल जाय जो
पूंजी तुम्हारी मिल में है ।
+ + +
पेड़ टूटेंगे हिलेंगे
जोर की आंधी चली
हाथ मत डालो हटाओ
पैर बिच्छू बिल में है ।[1]

इस तरह की असम्बन्धित उक्तियां `निराला` के हृदय की छटपटाहट को व्यक्त करती हैं । देश की अव्यवस्था को देखकर वह कुछ कर गुजरने के लिए आकुल-व्याकुल दिखायी देता है । कवि के हृदय का ज्वार ही इसी प्रकार प्रकट हो रहा है । वह सामाजिक व्यवस्था का आमूल परिवर्तन कर देना चाहता है, जिसमें निम्न वर्ग का महत्त्व स्पष्ट होगा । `अमीरों की हवेलियां पाठशाला बनेंगी, सेठों के घर किसानों के बैंक खुलेंगे ।`[2] ऐसी विध्वंसक और प्रचारात्मक राजनीति का तथाकथित समय में प्रचार `निराला` की ही सामर्थ्य थी ।

७६. `निराला` का विद्रोही स्वर ही उनके १९३८ के बाद की रचनाओं में जन-क्रान्ति के रूप में प्रकट हुआ । दुःख-दैन्य से पीड़ित जनता तब तक सुखी नहीं हो सकती जब तक वह स्वयं जागृत नहीं होती और जब तक वह रक्त क्रान्ति के लिए अग्रसर नहीं होती । रुण्ड-मुण्डों से भरे खेत और गोलों से बिछे खेत रक्त-क्रांति की ओर संकेत देते हैं --

जग गई जनता, हुए लुंठित
मुकुट जीवन सुहाये
प्यास पानी से बुझाने को
बुझाई रक्त से जब
आंख से आया लहू
लोहा बजाया शक्त से जब
रुण्ड मुण्डों से भरे हैं खेत
गोलों से बिछाए ।[3]

१- निराला : बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ४७, पृ० ७५

२- वही०, गीत ६२, पृ० ७८ ।

३- वही०, गीत ४६, पृ० ६२ ।

निरन्तर दबाये जाने पर कभी-कभी प्रतिक्रिया बहुत प्रबल हुआ करती है,यथा--

जिन्होंने ठोकरें खायीं गरीबी में पड़ उनके
हजारों हा हजारों हाथ के उठते समर देखे ।[1]

सर्वहारा के प्रति कवि कोरी सहानुभूति ही नहीं दिखाता, वरन् उनको वह क्रियात्मक मार्ग भी बताता चलता है -- सर्वहारा वर्ग में प्रेरणा की चिनगारी प्रज्ज्वलित करने का वह सफल प्रयास करता है --

राह पर बैठे उन्हें आबाद तू जब तक न कर
चैन मत ले, गैर को बरबाद तू जब तक न कर ।

+ + +

उलट तख्ता उपज की ताकत बढ़ाने के लिए
डाल मत खेतों में अपनी खाद तू जब तक न कर ।[2]

देश की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति को देखकर `निराला` को विश्वास हो गया था कि आध्यात्मिक शक्ति `सत्य अहिंसा` से जनता का लाभ होना संभव नहीं, जब तक जनता में स्वयं अपने अधिकार के लिए तीव्र इच्छा उत्पन्न न हो, तभी वह कहते हैं --

आंख के आंसू न शोले बन गए तो क्या हुआ ?
काम के अवसर न गोले बन गये तो क्या हुआ ?[3]

केवल निरीह होकर आंसू बहाने से ही कुछ होना सम्भव नहीं, उनका शोलों में परिवर्तन होना आवश्यक है । काम के अवसर को गोलों का रूप देना होगा । `निराला` ने स्थान-स्थान पर विद्रोह का समर्थन किया है --

स्वर विवादी ही लगा, गाना सुनाना हो जहां
साध से हर बाद का उन्माद तू जब तक न कर ।[4]

१- निराला : बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ५५, पृ० ७१ ।
२- वही०, गीत ६०, पृ० ७६ ।
३- वही०, गीत ५८, पृ० ७४ ।
४- वही०, गीत ६०, पृ० ७६ ।
~~५- निराला : आराधना, १९६२, प्रयाग, गीत ५५, पृ० ५५ ।~~

७७ ७७. 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत-गुंज' में क्रान्ति का उद्घोष शून्य सा है, वह अपने परलोक-सुधार के लिए मानो भक्ति की गंगा में स्नान कर ही संतोष और सुख पाता है। कवि की उद्दामता दर्प अहं न जाने कहां विलीन हो गया था, वह अपनी समस्त व्याकुलता को हृदय में संजोने के प्रयास में संलग्न है तथा एकमात्र भगवान की करुणा की आवाज़ उठाता है। लेकिन कभी-कभी क्रान्ति का उद्घोष प्रतिध्वनित हो उठता है --

नाचो हे रुद्र ताल
आंचो जग ऋजु अराल
भरे जीव जीर्ण-शीर्ण
उद्भव हो नव प्रकीर्ण
करने को पुन: तीर्ण
हो गहरे अन्तराल ।[1]

सांस्कृतिक

७८. 'निराला' सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति के पुजारी हैं। अपनी सांस्कृतिक महत्ता का गायन उन्होंने बहुत ही स्वच्छन्द रूप से किया है। 'निराला' के प्रेरणा स्रोत भी ऐसे थे, जिन्होंने समय-समय पर लुप्त होती हुई भारतीय संस्कृति को पुन: जीवन और जागृति प्रदान की थी। मुस्लिम संस्कृति से आक्रान्त भारत को युग प्रवर्तक गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र का आख्यान गाकर देश की जड़ प्राय: स्थिति में अपूर्व जागरण और नव चेतना का शंखनाद किया था। सब तरफ से निराश मृत प्राय: जनता पुन: चेतनावस्था में आने लगी थी। उनको अंधकार में प्रकाश दिखायी पड़ा और वह अपने अधिकार के लिए सचेत हुई। इसी प्रकार आंग्ल संस्कृति के प्रभाव से जब देश प्रभावित हो, उन्हीं के रंग में रंगता जा रहा था, उस समय भी भारतीय संस्कृति में प्राण संचार करने के हेतु श्रीरामकृष्ण परमहंस का भारत-भू पर अवतार

१- निराला : 'आराधना', १९६१, प्रयाग, गीत ५५, पृ० ५५

हुआ था । इन्हीं के ओजस्वी शिष्य स्वामी विवेकानन्द थे जो भारतीय संस्कृति के जीवंत प्रतीक थे, जिन्होंने भारत में ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी भारतीय संस्कृति का उद्घोष किया था । भारतीयों के हृदय में भी अपनी संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना का प्रादुर्भाव किया। यही प्रत्यक्ष रूप से कवि के प्रेरणा स्रोत रहे थे । विवेकानन्द की तेजस्वी वाणी तथा तुलसीदास की अटूट निष्ठा का प्रभाव तो `निराला` की कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है ।

७९. स्वयं `निराला` का जब जन्म हुआ तो देश परतन्त्रता की शृंखलाओं में आबद्ध था । देश की जागृति हेतु कवि ने भारतीय संस्कृति के आख्यान गाए । इन्होंने न केवल क्रान्तिकारी गीतों की ही की सृजना की, वरन् सांस्कृतिक सूत्र को भी पकड़ा है । तात्कालिक देश की परिस्थिति के अनुसार अतीत प्रेम आवश्यक हो गया था, इस अतीत प्रेम का मुख्य आधार वर्तमान का उद्धार था । इसके द्वारा अपनी संस्कृति से विमुख होते हुए भारतीयों को स्वदेशी संस्कृति की ओर आकर्षण उत्पन्न करने का प्रयास किया गया । वस्तुत: इसका लक्ष्य साम्प्रदायिक भावना फैलाना नहीं था , वरन् भारतीय संस्कृति को जीवित रखना ही था । `यमुना के प्रति` ,`राम की शक्ति पूजा` ,`पंचवटी प्रसंग`, `खंडहर के प्रति` ,`दिल्ली` इत्यादि कविताओं में कवि ने सांस्कृतिक सूत्र को पकड़ा है ।

८०. `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य सांस्कृतिक आख्यान है । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धित कथानक है । पर कवि ने परोक्षरूप से आलंकारिक ढंग से मुगलों के आक्रमण का वर्णन कर भारतीय सभ्यता और संस्कृति मुस्लिम- संस्कृति से प्रभावित होते हुए स्वयं के अस्तित्व को विलीन करने का रूपक बांधा है । प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रारम्भ भारतीय संस्कृति के अस्त होते हुए सूर्य से कवि करता है --

> भारत के नभ का प्रभापूर्ण
> शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
> अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिग्मंडल
> उर के आसन पर शिरस्त्राण
> शासन करते हैं मुसलमान
> है उर्मिल जल निश्चलत्प्राण पर शतदल । [१]

१- निराला : तुलसीदास, पंचम सं०, १९५७, इलाहाबाद, छन्द १,पृ०११ ।

देश की पतन की ओर अग्रसर होती हुई स्थिति को `तुलसीदास` में कवि ने विस्तार से चित्रित किया है । भारतीय जीवन इस्लाम संस्कृति में मिलकर भारतीय जीवन के संचित संस्कारों को विस्मरण करता जा रहा । जन-जन अपने अस्तित्व को भूल इस्लाम संस्कृति के प्रवाह में बहने लगा था । लेकिन `तुलसीदास` प्रकृति के माध्यम से उस रहस्य का आभास पा लेते हैं । प्रकृति `तुलसीदास` को चेतनता की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है, उनका मन ऊर्ध्वमुखी हो उठता है, चिन्तन के उस उच्च स्तर पर कवि ने इस्लाम-धर्म-विजित मलिन विकृत भारतीय संस्कृति देखी थी जो भारत के देशकाल को पूरी तरह भर रही थी --

उस मानस ऊर्ध्व देश में भी
ज्यों राहु ग्रस्त आभा रवि की
देखा कवि ने छवि छाया-सी भरती सी
भारत का सम्यक् देशकाल
खिंचता जैसे तम शेष जाल
खींचती,वृहत् से अन्तराल करती सी[1]

जहां कवि को प्रकृति के द्वारा देश की विपन्नावस्था तथा पतन का ज्ञान होता है, वहां प्रकृति ही उससे निकलने का मार्ग भी प्रशस्त करती है । प्रस्तुत प्रबन्ध का अन्त आशा की किरण दिखाकर किया जाता है । तुलसी के जन्म के समय भारतीय संस्कृति का सूर्य अस्त पर था किन्तु जब `तुलसी` को ज्ञान प्राप्त होता है -- उसके साथ ही सांस्कृतिक सूर्योदय भी कवि दिखाता है --

संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली कमला, तिरती सुख जल
प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि रेखा[2] ।

अस्त से आरम्भ करके कवि सूर्योदय पर आशान्वित करके छोड़ता है ।

८१. `यमुना के प्रति` ,`राम की शक्ति पूजा` तथा `पंचवटी प्रसंग` के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण अन्यत्र दिया जायगा । यहां पर इतना कहना पर्याप्त

१- निराला : तुलसीदास, पंचम सं०,१९५७, इलाहाबाद, छन्द २४, पृ० २३ ।
२- वही०, छन्द १००, पृ० ६१ ।

होगा कि इसमें भी कवि ने अपने अतीत का स्मरण किया है । `खंडहर`, `यमुना के प्रति` तथा `दिल्ली` इत्यादि कविताओं में प्रतिभिज्ञान द्वारा पुरानी स्मृतियां को उभारा गया है । `खंडहर` कवि को पुरातन का अद्भुत अज्ञात मलिन साज के रूप में दिखता है, और करुणामय गीतों के द्वारा जागृति की प्रेरणा दे रहा है । `खण्डहर` प्राचीन वैभव का स्मरण कर विषादमय हो जाता है और उसका वह विषाद करुण गीतों में बह उठता है , बीच-बीच में प्राचीन वैभव की झांकी भी मिलती है --

पवन संचरण के साथ ही
परिमल पराग सम अतीत की विभुतिरज
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में ।[1]

भारतीयों ने अपनी संस्कृति को विस्मृत कर दिया है , इसकी भी व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति हुई है --

बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूंद भर पानी को
तरसते हुए ।[2]

व्यंजना बहुत तीव्र है , उसी व्यक्ति को बूंद भर पानी के लिए तरसना पड़ता है जिसकी सन्तान अयोग्य और अशक्त होती है एवं समुचित व्यवस्था में असमर्थ रहती है । भारतीय अपने कर्तव्य से च्युत हो गए हैं । `खडहर` आंसू बहाते हुए आर्त चीत्कार करता है --

`आर्त भारत जनक हूं मैं
जैमिनी पतंजलि व्यास ऋषियों का
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
रामकृष्ण भीमार्जुन नरदेवों ने[3] ।

१- निराला : अनामिका, १९६३, इलाहाबाद , पृ० २९
२- वही०, चतुर्थ सं०, पृ० ३०
३- वही०, पृ० ३० ।

संझर में कवि पूर्वजों के स्मृति-चित्र प्रस्तुत कर सुप्त भावना को जगाना चाहता है । जिस देश में ऐसे नरदेव उत्पन्न हुए हों उस भू की यह स्थिति हो ? संझर केवल करुणानिश्रित गान ही नहीं गाता, केवल तप्त आंसू ही नहीं बहाता, वह व्यंग्य प्रहार करने में भी समर्थ है --

तुमने मुख फेर लिया
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल
हो बसे नव छाया में
नव स्वप्न ले जगे
भूले वे मुक्त प्रान, साम गान, सुधा पान ।[1]

नश्वर सुख के लिए, दासत्व ग्रहण करने के लिए `संझर` धिक्कारता है। इस नश्वर सुख की तृष्णा में भारतवासी स्वतन्त्र जीवन (मुक्त प्राण) प्राचीन दर्शन और संस्कृति (साम-गान-सुधा-पान) आचार-विचार सभी को पूर्णतया भुला बैठे हैं । कवि का `संझर` को श्रद्धावनत हो प्रणाम करना उसका संस्कृति के प्रति हार्दिक अनुराग प्रकट करता है --

बरसो आशीष , हे पुरुष पुराण
तव चरणों में प्रणाम ।[2]

८२. अपने प्रात:स्मरणीय पूर्वज कृष्ण, अर्जुन, भीम इत्यादि को एक बार पुन: `दिल्ली` कविता के अन्तर्गत स्मरण किया गया है, कवि दिल्ली की परिवर्तित होती हुई स्थिति को देखकर आश्चर्यान्वित हो प्रश्न कर बैठता है---

क्या यह वही देश है ?...
श्रीमुख से कृष्ण के सुना था जहां भारत ने
गीत-गीत-सिंह नाद
मर्म वाणी जीवन संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान कर्म-भक्ति योग का ।[3]

१- निराला: अनामिका, `संझर`, चतुर्थ सं०, १९६३, इलाहाबाद, पृ० ३०
२- वही०, पृ० ५६ ३०
३- वही०, पृ० ५६ ५८

उत्तर मिलता है --

यह वही देश है
परिवर्तित होता हुआ ही देखा गया है जहाँ
भारत का भाग्य चक्र ?

प्रस्तुत कविता में नाटकीयता पर्याप्त है । ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह किसी ऐसे व्यक्ति से वार्तालाप कर रहा है जिसने `दिल्ली` की परिवर्तित होती हुई स्थितियों का अवलोकन किया हो । `महाभारत` कालीन संस्कृति से लेकर मुस्लिम संस्कृति के अंत तक का सांकेतात्मक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है । इस छोटी-सी कविता में ऐतिहासिक आयामों को समेटने का कवि ने प्रयास किया है । भारत देश की सभ्यता संस्कृति पर बर्बर आक्रामक रूप से आते रहे हैं, इन बर्बर शत्रुओं से भारतीय ललनाएं सतीत्व की रक्षा हेतु--

पृथ्वी की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहूत जहाँ विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान.... करती रही है ।[1]

पुराने बलिदानों को स्मरण कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करने की आवश्यकता की ओर `निराला` ने संकेत किया है --

पढ़ो रे पढ़ो रे पाठ
भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर
निज चिता भस्म का टीका लगाते हुए ।[2]

क्योंकि यह कविता `दिल्ली` को लक्ष्य करके लिखी गई है, अतः उससे सम्बन्धित घटनायें ही इसमें समेटी गई हैं -- इस `दिल्ली` ने बदले हैं किरीट सैकड़ों महीपाल` मुस्लिम -संस्कृति के विलासपूर्ण जीवन के चित्रण के साथ उसके पतन का भी चित्र दिया गया है --

यमुना की ध्वनि में
हैं गूंजती सुहाग गाथा
सुनता है अंधकार खड़ा चुपचाप जहाँ

१- निराला: अनामिका `संग्रह` चतुर्थ सं०, १९६३, इलाहाबाद , पृ० ५६
२- वही०, पृ० ५६ ।

आज वह फिर दौर
सुनसान है पड़ा ।
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा ।

+ + +

लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का
निस्तब्ध मीनार
मौन हैं मकबरे ।[1]

८३. यह सांस्कृतिक आख्यान ४-४-१६३४ ई० का लिखा हुआ है । जब कि देश आंग्ल शासकों के शिकंजे में कसा हुआ था । अतः ऐसी परिस्थिति में जागृति का संदेश अपनी संस्कृति के गुणगान से ही सम्भव हो सकता था । `सम्राट एडवर्ड के प्रति` कविता में कवि ने मानवतावादी विचारों को प्रश्रय दिया है । सम्राट मानवतावादी स्वतन्त्र विचारधारा का पोषक है । `यमुना के प्रति` कविता में भी यमुना अतीत का गान करती सुनाई पड़ती है --

किस अतीत का दुर्गम जीवन
अपनी अलकों में सुकुमार
कनक पुष्प सा गूंथ लिया है
किसका है यह रूप अपार ?

+ + +

किस अतीत के स्नेह सुहृद को
अर्पण करती तू निजध्यान ।[2]

`राम की शक्ति पूजा` और `पंचवटी प्रसंग` में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र का नवीन उद्भावनाओं से चित्रण किया गया है । राम का मानवोचित रूप ही लिया गया है । राम सब प्रकार ब की आसुरी प्रवृत्तियों का ध्वंस करने में पूर्णतया सफल दिखाए गए हैं , लेकिन उसके लिए वह अटूट आत्मशक्ति तथा अखण्ड विश्वास

१- निराला: अनामिका, `दिल्ली, चतुर्थ सं०,१६६३, इलाहाबाद , पृ०६२-६३ ।
२- निराला :`परिमल` `यमुना के प्रति` , १६६३, लखनऊ , पृ० ४५ ।

और आस्था का संचय करते हैं । `तुलसीदास` `निराला` का सबसे प्रौढ़ सांस्कृतिक चित्र है । यों तो कवि का सम्पूर्ण काव्य -साहित्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का जीवंत प्रतीक है तथा स्वयं `निराला` भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं ।

राष्ट्रीय

८४. `निराला` सच्चे अर्थों में राष्ट्रवादी थे । राष्ट्र के लिए वह निजी स्वार्थ की पूर्णतया तिलांजलि चाहते थे । `जलद के प्रति` कविता प्रच्छन्नरूप से उनकी राष्ट्रीय भावनाओं को ही पुष्ट करती है, `जलद` को वह देशभक्त के रूप में चित्रित करता है । जातीय भावना को नष्ट करने के लिए विदेशी अनेक प्रकार के प्रलोभनों का जाल फैलाते हैं । लेकिन `जलद` अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा का पोषण करता हुआ , शत्रुओं के समस्त अवरोधों को पार कर `मां` को हरा वसन पहनने में सफल हो जाता है --

मां की दशा देखकर तुमने
तब विदेश प्रस्थान किया
वहां होशियारों ने तुमको
खूब चढ़ाया बहकाया
`दे` जोड़ ग्रेह बढ़ाया तुम पर
जाल कूट का फैलाया
\+ \+ \+
बारं बारं लगे रहे, जिससे तुम
भूलो जाति ख्याल
किन्तु तुम्हारे चारु चित्र पर
खिंची सदा मां की तस्वीर
\+ \+ \+
पवन शत्रुओं ने तुम्हें उतरते देख
उड़ाया पथ अम्बर
पर तुम कूद पड़े पहनाया
मां को हरा वसन सुन्दर ।[१]

१- निराला : परिमल : `जलद के प्रति`, १९६३, लखनऊ, पृ० ७८-७९ ।

वस्तुत: इसी भावना को `निराला` प्रत्येक भारतवासी में पनपती हुई देखना चाहते हैं । देश की प्रतिष्ठा के सम्मुख निजी सभी स्वार्थ मुल्यहीन और तुच्छ समझे जाने चाहिए । `जलद` के प्रतीक द्वारा स्वदेश-प्रेम की भावना को अभिव्यक्ति दी गयी है । `जलद` को मां को हरा वसन पहनाते देखकर कवि को हार्दिक प्रसन्नता होती है । राष्ट्रीय चेतना की सूक्ष्म अनुभूतिमयी गम्भीर व्यंजना इस कविता में प्रस्तुत की गई है ।

८५. `जागो फिर एक बार` में हिन्दू पुनर्जागरण और चेतना को उद्‌बुद्ध किया गया है । विवेकानन्द की ओजस्वी वाणी का ही प्रस्तुत कविता में संस्कार प्रकट हुआ है । दो खण्डों में विभाजित इस कविता में प्रथम खण्ड (१९१८ ई०) में प्रकृति को माध्यम बनाकर भारतीयों की सुप्तावस्था का चित्रण है । प्रकृति से केवल उन प्रतीकों का ही चयन किया गया है, जो सुप्तावस्था को और भी घनीभूत करते हैं --

आंखें अलियां सी
किस मधु की गलियां में फंसी
बन्द कर पाखें
पी रही हैं मधु मौन
या सोई कमल कोरकों में
बन्द हो रहा गुंजार
जागो फिर एक बार [१]

ऐसी अवस्था में जब भारतीय सब कुछ भूल कर विलास में लिप्त ब हो, उस समय `जागो फिर एक बार` की गुहार कुछ क्षण के लिए चेतना की लहर लाने में सफल हो सकती है । ऐसा लगता है , कवि जागृत होकर सोने का संदेश दे रहा है, सब कुछ विस्मृत कर सोना आसुरी वृत्तियों को उभारने में सहायक होता है । इस जागरण गीत में भी `निराला` रहस्यात्मक संकेत भी देते हैं । द्वितीय खण्ड (१९२१ई०) में वीरत्व जागरण हेतु उसने अनेक प्रयोग किए हैं । पूर्वजों के वीरतापूर्ण कृत्यों का

१- निराला : परिमल जागो फिर... , १९६३,लखनऊ , पृ०१७७

उल्लेख कर ऐतिहासिक सन्दर्भों द्वारा वस्तुस्थिति समझने एवं सजग होने का सन्देश दिया गया है -- जिस साहस और शौर्य के `निराला` पुजारी हैं, उसी का आख्यान किया गया है --

सिन्धु नद तीर वासी ।--
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग
सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊंगा
वीर जन मोहन अति
दुर्जय संग्राम- राग
फाग का खेला रण
बारहों महीनों में ।[1]

कवि ने यहां पर विदेशियों को `सियार` की संज्ञा दी है, भारतीय तो सिंह पुरुष हैं --

शेरों की मांद में आया है आज स्यार `

भारतीयों ने अपनी सुप्तावस्था के कारण ही स्यार रूपी शत्रुओं को छूने का अवसर दिया, `निराला` `सियारों` द्वारा सिंहों के मात खाने पर व्यंग्य करते हैं --

सिंह की गोद में छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान
एक मेष माता ही
रहती है निर्निमेष--
दुर्बल वह --
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आंसू बहाती है --[2]

१- निराला : परिमल : `जागो फिर`., १९६३, लखनऊ , पृ० १८०
२- वही०, पृ० १८१ ।

कितनी लज्जा की बात है, सिंह पुरुष होकर भी भारतीय कायरों जैसा व्यवहार कर रहे हैं । जीवित रहते हुए इन विदेशी शक्तियों का पदार्पण कैसे हुआ ? सिंह कभी भी अपने प्रतिद्वन्द्वी को जीवित रहते अग्रसर होने नहीं देता । तब यह भेड़ों वाली प्रवृत्ति का आगमन कैसे ? एक स्वाभिमानी कभी भी स्वाभिमान खोकर जीना नहीं चाहेगा । भारतीय सिंह पुरुष हैं और परम्परागत वीरत्व एवं शौर्य को स्मरण कर उन्हें देश के स्वातन्त्र्य के लिए उद्यत हो जाना चाहिए । गीता में कर्मयोग में विश्वास करने वाले भारत देश को यह शोभनीय नहीं है । भारतीयों ने कभी भी अन्याय को प्रश्रय नहीं दिया । गीता के निष्काम कर्मयोग का सन्देश देने वाले `निराला` की यह मनोवृत्ति है । इस जागरण-गीति में कवि कभी कठोर व्यंग्य प्रहार करता है तो कभी कालचक्र पर दोषारोपण कर भारतीयों की सुप्त चेतना को जगाने का प्रयास करता है --भाग्यवाद का सहारा लेकर वह सांत्वना देता है कि समय का फेर है या ग्रह चक्र ही ऐसे थे वरन् तुम तो शूर वीर हो ?

> ` तुम हो महान, तुम सदा हो महान
> है नश्वर यह दीन भाव
> कायरता काम परता
> ब्रह्म हो तुम
> पद-रज पर भी है नहीं
> यह विश्व भार ।[1]

विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदांत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । `निराला` हीनता, कायरता का पुरुषता के घोर विरोधी थे । अपूर्व बल, साहस, पौरुष और उदात्तता का स्वर सर्वत्र व्याप्त मिलता है । इस कविता में राजनैतिक , सामाजिक एवं दार्शनिक तीनों स्थितियों के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है ।

८६. `महाराज शिवा जी का पत्र` एक ऐतिहासिक का आख्यान है । वस्तुत: इस आख्यान में कथा-विशेष तो नहीं, केवल कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को पत्र-गीति द्वारा प्रस्तुत किया गया है । महाराज जायसी को देश की संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए वीरोत्तेजक पत्र शिवा जी के द्वारा प्रेषित कराया गया है ।

१- निराला : परिमल `जागो फिर...` , १९६३, लखनऊ, पृ० १८२

उसी पत्र का सुन्दर विवरण है । औरंगजेब के साम्राज्यवाद के जाल में फंसे देश की स्थिति का विवरण देते हुए शिवा जी जय सिंह की सुप्त चेतना को उभारते हैं । औरंगजेब ने अपनी कूटनीति द्वारा शिवा जी को परास्त करने का अनेक बार प्रयास किया था । अफजल खां और शाइस्ता खां दोनों ही शिवा जी का कुछ न बिगाड़ सके । तब इन मुस्लिम शासकों ने कूटनीति द्वारा हिन्दुओं की शक्ति को क्षीण करने का ढंग अपनाया । शिवा जी को सबसे अधिक खेद इस बात का है कि --

सांकले हमारी हैं
जकड़ रहा है वह जिनसे हिन्दुओं के पैर
हिन्दुओं के काटता है सीस
हिन्दुओं की तलवार से ।[1]

कल्पना और यथार्थ द्वारा कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का एकाकीकरण किया गया है । इसमें मध्य युगीन ऐतिहासिक परिस्थितियों की फलक मिलती है । यह ऐतिहासिक सत्य है कि मुसलमानों ने कुछ लोलुप हिन्दू राजाओं को प्रलोभन देकर अपने में मिला लिया था , जो अपनी मान-मर्यादा को तिलांजलि देकर स्वार्थवश उनसे मिलकर बन्दी जैसा जीवन व्यतीत करने लगे थे । वह स्वार्थान्ध यह भी भूल बैठे थे कि इस तरह वस्तुत: उन्होंने उनकी वश्यता स्वीकार कर ली है । स्वार्थलिप्सा में यह धीरे-धीरे शासक यह भी विस्मरण कर बैठे थे कि इस तरह वह अपने देश पर ही भयंकर संकट ला रहे हैं । एक बार की ओढ़ी हुई दासता फिर सदियों पीछा नहीं छोड़ती । हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओं को पराजित करने की कूटनीति द्वारा ही तो मुसलमान भारत पर छा सके । जिस औरंगजेब ने अपने पिता और भाइयों के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं किया था, उससे ही --

..... राक्षस वह रखते हो
नीति का भरोसा तुम
तृष्णा, स्वार्थ साधन है जिसकी
निज भाई के खून से
प्राणों से पिता के
जो शक्तिमान है हुआ ।[2]

१- निराला : परिमल , म० शिवा जी का पत्र १९६३, लखनऊ, पृ० २०५ ।
२- वही०, पृ० २०३-२०४ ।

शिवा जी पत्र में जयसिंह को स्वयं के अस्तित्व को समझ कर जागृत होने की प्रेरणा देता है । शिवा जी उसको शूरवीर, बलवान की मान्यता देने को प्रस्तुत नहीं हैं, यदि वह वास्तव में शूरवीर होता तो कभी भी विदेशी शासकों की अधीनता स्वीकार कर भारतीयों पर प्रहार न करता क्योंकि भारतीयों के शौर्य और वीरत्व पर कवि को अटूट विश्वास है । भारतीय शौर्य में अद्वितीय रहे हैं । ऐसे सिंह पुरुषों में जब स्वतन्त्रता की भावना का उदय होता है --

उठती है जब नग्न तलवार है स्वतन्त्रता की
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दु:ख दारुण परतन्त्रता का
फुंकती स्वतन्त्रता निज मन्त्र से
जहां व्याकुल कान
कौन वह सुमेरु
रेणु रेणु न हो जाय । [१]

८७. निराला अपनी शक्ति को दुर्जय मानते हैं जिसकी पुष्टि शिवा जी के पत्र के माध्यम से होती है । स्वाधीनता की अटूट भावना उत्पन्न होने पर फिर कोई भी शक्ति उस जाति को परतन्त्र नहीं बना सकती । अपने देश के प्रति तथाकथित स्वदेशी शासकों का विश्वासघाती व्यवहार शिवा जी जैसे देश भक्त मराठा के लिए असहनीय था । मुस्लिम शासक राजपूतों के दुर्जय शौर्य के सम्बन्ध में पूर्णतया परिचित थे । अत: उन्होंने कूटनीति का सहारा लिया । राजपूतों की स्वार्थलिप्सा को बढ़ावा देकर उनको परस्पर लड़ते रहने की ओर प्रेरित किया , उन्हीं में से एक उदाहरण जयसिंह हैं जिन्हें अपने स्वार्थ के लिए मातृभूमि को भी दांव पर लगाने की झिझक नहीं हुई । परन्तु इस परस्पर लड़ते रहने का परिणाम अच्छा नहीं हुआ । भारतीय पौरुष का नाश हुआ । फलत: सब गीदड़ रूपी मुसलमानों को स्वतन्त्रता पूर्वक राज-सुख भोगने का अवसर मिल गया । शिवा जी बार-बार अपने पत्र में जयसिंह की मृत प्राय: देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना को विभिन्न प्रकार की चेतावनी देकर उत्तेजित करते हैं --

---

१- निराला : परिमल , म०शिवा जी का पत्र १६६३, लखनऊ , पृ० १६८

बाहुओं में बहता है
क्षत्रियों का खून यदि
हृदय में जागती है वीर यदि
माता क्षत्राणी की दिव्यमूर्ति
+ + आओ वीर स्वागत है
सादर बुलाता हूं ।
+ + हैं जो बहादुर समर के
वे मर के भी
माता को बचाएंगे
शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम मां का दाग
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे[1] ।

शिवा जी जयसिंह को उत्तेजित करने के लिए साम, दाम, दण्ड सभी युक्तियों का आश्रय लेते हैं । कहीं वह उन पर बहु व्यंग्य प्रहार करते हैं तथा कहीं उसकी सराहना करते हैं । 'काफिर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे ?' एक वाक्य में कितना कटु व्यंग्य है । शिवा जी ने क्षत्रियों की छिन्न-भिन्न शक्ति को एकत्रित करने का आग्रह किया है जिससे हिन्दुओं की लुप्त कीर्ति फिर से जग सके । भारत की क्षीण होती हुई ज्योति का स्वर्ण सूर्योदय फिर हो सकेगा । धन, जन, देवालय, देव, देश, द्विज, दारा बन्धु, यह सब तृष्णा की भट्टी का ईंधन हुए जा रहे हैं । अतएव हिन्दुओं का संगठित हो जाना भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है । बहुत ही काव्यात्मक ढंग से कवि इस बात की घोषणा करता है कि इस तरह क्षुद्र स्वार्थों के लिए परस्पर लड़ते रहने पर यह निश्चित है 'स्वप्न सा विलीन हो जायगा अस्तित्व सब, दूसरी ही तरंग फिर फैलेगी[2]' इस तरह सदियों तक एक के बाद दूसरे विदेशियों से भारतीय आक्रांत होते रहेंगे । शिवा जी ने स्पष्ट यह अनुभव कर लिया था --

---

१- निराला : परिमल म०शिवाजी का पत्र १९६३, लखनऊ , पृ० २०१ ।
२- वही०, पृ० २०१ ।

साम्राज्यवादियों की भोग-वासनाओं में
नष्ट होंगे चिरकाल के लिए ।[1]

तत्कालीन देश की परिस्थितियों में जातिगत भावना ही एकत्व ला सकती थी । अत: जातीयता का समर्थन किया गया है । लेकिन साम्प्रदायिक भावना फैलाने के उद्देश्य से नहीं, हर परिस्थिति की समय की अपनी मांग होती है । जयसिंह के हृदय में मातृभूमि के प्रति भावनात्मक जागृति लाने के लिए शिवा जी ने पत्र में सब प्रकार का प्रयास किया है । ऐतिहासिक पात्रों और स्थानों के नामोल्लेख से ऐतिहासिकता का समावेश हुआ है ।

८८. 'निराला' ने भारत मां का बहुत ही भावात्मक स्वरूप अपने सम्मुख रखा है । मां जिस तरह अनेक कष्ट सह कर अपनी सन्तान को सुख-सुविधा देने का ध्यान रखती है, उसी तरह प्रत्येक बच्चे का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह भी उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व का भली भांति निर्वाह करे । मां की अश्रुपूरित मुखाकृति देखकर 'निराला' का हृदय दु:ख और पीड़ा से भर जाता है । उसके लिए मां का कष्ट असाध्य हो जाता है और वह अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए प्रस्तुत हो उठता है --

क्लेद मुक्त अपना तन दूंगा
मुक्त करूंगा तुझे अटल
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय श्रम संचित फल ।[1]

'निराला' के सम्पूर्ण साहित्य में राष्ट्रीय स्वर का गुंजार है । उनके द्वारा प्रस्तुत अनेक गीत हैं जो राष्ट्र के प्रति श्रद्धा और भक्ति से पूर्ण हैं । कवि साम्प्रदायिक कभी नहीं रहा । उनकी स्वाधीनता का स्वर किसी भी देश के लिए जागरण गीत बन सकता है । यों तो कवि सम्पूर्ण विश्व के लिए ही मंगल कांक्षिणी भावना रखता था --

सार्थक करो प्राण
जननि, दु:ख अवनि को
दुरित से दो त्राण ।[2]

१- निराला : गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत २०, पृ० २२ ।
२- निराला : गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ५९, पृ० ५८ ।

`निराला` स्वतन्त्रत्व भारत में भरने के लिए वीणा वादिनी से वर मांगते हुए दिखते हैं --

वर दे वीणा वादिनी वर दे
प्रिय स्वतन्त्र रव अमृत मन्त्र नव[1]
भारत में भर दे ।

भारत के दु:ख-दैन्य के निवारण हेतु भारत लक्ष्मी का आवाहन किया गया है । यह गीत भारत की ऐश्वर्य शक्ति पर लिखा गया है --

जागो जीवन धनिके
विश्व- पण्य प्रिय वणिके
दु:ख भार तम केवल
वीर्य सूर्य के ढके सकल दल
खोलो उषा-पटल-निज कर अयि[2]
छविमयि दिन मणि के ।

भारत की दृष्टि भारत के व्यवसाय से ही सीमित न रहे वरन समस्त संसार में फैले । `भारति जय विजय करे` मातृभूमि का स्तवन वंदन है । भारत भू का साकार रूप चित्रित किया गया है । मां स्वर्ण धान्य और कमल धारण करने वाली है, लंका रूपी सहस्त्र दल कमल, उसके चरण तले हैं । सागर का गर्जित उर्मिपूर्ण जल पावन चरणों को पखारता हुआ स्तवनगान करता है --

मुकुट शुभ्र हिम तुषार
प्राण प्रणय ओमकार
ध्वनित दिशाएं उदार[3]
शतमुख-शत रव मुखरे ।

प्रस्तुत गीत वन्देमातरम की कोटि में रखा जा सकता है । `बन्दूं पद सुन्दर तव` में भी भारत भू की बन्दना है --

जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तब जीवन हीन

१-निराला : गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत १, पृ० ३
२- वही०, गीत १५, पृ० १७
३- वही०, गीत ६८, पृ० ७२

के साथ ही `निराला` मां से `देव व्रत नर वर उत्पन्न करने` की प्रार्थना करते हैं। स्पन्दनहीन जड़ जीवन का क्षय होना ही चाहिए। कवि मां को भारत भू पर रूपमय माया तन धारण करके अवतरित होने का आग्रह करता है --

मां तू भारत की पृथ्वी पर
उतर रूपमय माया तन धर
देवव्रत नरवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन।[१]

`निराला` धन-धान्य, ऐश्वर्य की कामना न करके देवव्रत `नरश्रेष्ठ` देखना चाहते हैं, क्योंकि शूरवीर पुरुषों द्वारा ही परतन्त्र भारत भू को स्वाधीन रूप में देखा जा सकता है।

८६ `निराला की राष्ट्रीय भावना अपने राष्ट्र तक ही सीमित नहीं है, वह सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्तित हैं। वह बढ़ते हुए वैज्ञानिक एवं भौतिकवाद के प्रति भी जागरूक हैं। तभी उनका कवि भगवान बुद्ध के प्रति कविता में गा उठता है--

दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।[२]

`निराला` अपनी प्राचीन आर्य संस्कृति के उपासक रहे हैं। उनको अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से मोह था, जिसका आभास `सहस्त्राब्दि` (विक्रमीय प्रथम १००० सम्वत्) नामक कविता से मिलता है। वह अपनी संस्कृति के अपार वैभव का स्मरण करता है जिसमें धर्म, कला एवं साहित्य का समुचित विकास हुआ था। उज्जयिनी के नवरत्नों से दिग्दिगन्त भास्वर हो रहा था। कालिदास की अद्वितीय प्रतिमा, लेखन-कला तथा शकों की सीमा से खदेड़ने वाले अदम्य शौर्य के प्रतीक विक्रमादित्य का आलेखन कर वह गौरव का अनुभव करता है। विक्रमादित्यकाल में भारतीय संस्कृति शिखर पर थी। सब तरफ धन-धान्य, सुख-समृद्धि से देश पूर्ण था।

१- निराला: गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ३४, पृ० ३९।
२- ~~वही०, पृ०-३९~~ निराला : अणिमा, १९४३, उन्नाव, पृ० ३३

भारतीय संस्कृति और इतिहास का प्रस्तुत कविता में सुन्दर समन्वय हुआ है -- बौद्ध धर्म का पतन और शंकर के माध्यम से हिन्दू धर्म के उत्थान का चित्रण किया गया है --

आ रहा याद वह वेदों का उद्धार ख्यात
वह श्रुति करता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात
निष्कम्प भाष्य प्रस्थानत्रयी पर संस्थापन
भारत के चारों ओर मठों का संज्ञापन ।[1]

'निराला' क्षत्रियों के वीरत्व .... ' टूटा भारत का वर्ण धर्म का बांध प्रथम
इससे जो सम थे हुए, हुए वे आज विषम
हारे दाहिर हर गईं कुमारी कन्याएं ।
सुरज परिमल कुल की वे उत्कल कन्याएं
ले साथ मुहम्मद बिनकासिम अरब को चला,
है विदित चुकाया कन्याओं ने ज्यों बदला ।[2]

के साथ उनका पतन भी दिखाता है । क्षत्रियों की शक्ति क्षीण होते ही यवन साम्राज्य भारत पर छाने लगता है, पृथ्वी इस्लामी-प्रखर वेग संभालने में असमर्थ रहती है । वह इस परिवर्तन को प्रकृति के अनुकूल ही मानता है ।

९०. 'निराला' का राष्ट्रीय स्वर स्वतन्त्रता , समानता भ्रातृत्व के स्वर में मुखर हुआ है । वह सम्पूर्ण देश को एक ही स्तर पर देखना चाहते थे , उसमें बड़े-छोटे वर्ग वैषम्य को प्रश्रय न दिया जाय । अमीरों की कोठियां किसानों की पाठशाला के रूप में परिवर्तित हों । धोबी, पासी, चमार , तेली अंधेरे के कपाट खोलें -- ऐसी भावना से वह अग्रसर होता है । स्तर-भेद ही देश की अवनति का कारण है । कवि की राष्ट्रीय भावना तो --

सारी सम्पत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने
जनता जातीय वेश की हो ।[3]

१- निराला: अणिमा, १९४३, उन्नाव, पृ० ३९ ।
२- वही०, पृ० ४१ ।
३- निराला : बेला' १९६२, प्रयाग, गीत ६२, पृ० ७८

दु:ख-सुख में सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन एक हो, एक ही अखण्ड प्राण शक्ति की झंकार सर्वत्र सुनाई पड़े, इसके साथ ही अपने जातीय जीवन के प्रति अनुराग और आस्था हो -- ऐसी प्रवृत्ति को 'निराला' ने अपने राष्ट्रीय स्वर में गुंजायमान किया है। परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार कवि का स्वर भी बदलता गया है। देश-काल परिस्थितियों से वह पूर्णतया सजग और जागृत हैं। 'बेला' के पैसठवें गीत में भी प्रतिजन को सफल बनाने की कामना है --

> रँगे गगन अन्तराल
> मनुजोचित उठे भाल
> छल का फुट जाय जाल
> देश मनाए मंगल।[1]

अपने आराध्य से भी वह इस बात की कामना करते हैं कि उसके देश में सुख-समृद्धि हो। देश की प्रगति के लिए उसने स्वावलम्बन पर जोर दिया है --

> अपने ही पैरों ठहरेंगे
> अपनी ही गरजों घहरेंगे
> अपनी ही बूंदों बहरेंगे
> अपनी ही रिम झिम बुचकार
> छूटेगी जग की ठग लीला
> होगी बासें अन्त: शीला
> होगा न किसी का मुंह पीला
> मिट जाएगा लेना उधार।[2]

प्रस्तुत भावना प्रत्येक राष्ट्र के लिए प्रत्येक परिस्थिति में राष्ट्रीय भावना का स्वर बन सकती है। कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता, नहीं तो सदैव उसे दूसरों से आशंकित रहना पड़ेगा। सबसे मुख्य बात तो यह है कि देश को अपनी आवश्यकता के लिए दूसरों का मुंह जोहना न पड़े। देश की स्वतन्त्रता के लिए सब प्रकार की कठिनाइयों का सामना

१- निराला- बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ६५, पृ० ८१

२- वही०, गीत ६५, पृ० ८४।

करना पड़ा । इसको उक्त कवि ने तेल और आंवले के रूपक द्वारा प्रकट किया है --

सोचे और नभ से फरता नहीं शिशिर कण
तेल आंच जब न साया निकला कब आंव-ले से
+ + +
आया मज़ा कि लाखों आंखों से दम छुटा है
पर-ली है बैठने को गौरे की आंवले से ।[1]

राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर जिसने भी कष्टों को वरण किया वह जनता के हृदय का हार बन गया --

बन्दीगृह वरण किया, जनता के हृदय जिया
बहिर्जगत के निर्भय हरने के लिए नियम
साधन कितना उत्तम किया जला दिया दिया ।[2]

सन् १९४६ के विद्यार्थियों के देश-प्रेम के सम्मान में `निराला` ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है । उनके बलिदान को `खून की होली जो खेली` से उपमित किया गया है --

युवक जनों की है जान
खून की होली जो खेली
पाया है -- लोगों में मान
खून की होली जो खेली ।[3]

आलोच्य कवि सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि हैं । उनकी राष्ट्रीय भावना का स्फुरण बहुत ही व्यापक धरातल पर हुआ है । वस्तुत: मानवमात्र की स्वाधीनता का उद्घोष इनकी राष्ट्रीयभावना का मूल है ।

९१. कवि समाज का प्रतीक होता है । अपनी पूर्व परम्परा पर आधारित सम-सामयिक भावना से ओत प्रोत भावी निर्देशन काव्य ही सच्चा काव्य है ।

१-निराला : बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ८२, पृ० ९८ ।
२- वही०, गीत ३२, पृ० ४८ ।
३- निराला : नये पत्ते, १९६२, प्रयाग, पृ० १०४ ।

यह काव्य देश-काल एवं परिस्थिति - निरपेक्ष होते हुए भी अपने समय से प्रभावित रहता है और समय को प्रभावित भी करता है । किसी पराधीन समाज में जिन प्रवृत्तियों के माध्यम से समाज को मार्गदर्शन दिया जा सकता है, वह सभी प्रवृत्तियां छायावादी, रहस्यवादी, प्रतीकवादी,भक्तिवाद, प्रकृति-चित्रण की भावनाओं से ओत-प्रोत देश एवं समाज के हित में क्रान्ति एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं का सम्पुट लेकर उनका काव्य प्रस्फुटित हुआ है । `निराला' काव्य का लक्ष्य भी तुलसी ही की भांति स्वान्त: सुखाय होते हुए भी `कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुर सरि सम सब कंह हित होई ।' अर्थात् काव्य का अभिप्रेत देश एवं जन-कल्याण की भावना है । इसका पूर्ण परिपाक काव्यात्मक प्रवृत्तियों में परिलक्षित होता है ।

-o-

अध्याय - ५

`निराला` साहित्य में काव्य-रूप और उनका अध्ययन

१. `निराला` काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का आकलन कर लेने के पश्चात् उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न काव्य-रूपों का संक्षिप्त रूप में विवेचन समीचीन होगा । रूप से आशय उन समस्त तत्वों से समन्वित संघटित आकार से है, जिससे किसी कृति के विशिष्ट गुणों का निश्चय होता है । रूप शब्द को विधा या प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है । उस सन्दर्भ में स्थूल रूप से `निराला` के काव्य-साहित्य को प्रबन्ध तथा मुक्तक दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है । प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत उन काव्य-रूपों को लिया गया है जिसमें इतिवृत्त का आश्रय लेकर कवि अग्रसर होता है , यथा --`तुलसीदास` तथा ` राम की शक्ति पूजा` । मुक्तक के अन्तर्गत प्रबन्धहीन समस्त रचनाओं यथा संबोध गीति, शोक गीति, पत्र गीति, चतुर्दशपदी तथा गज़ल इत्यादि का समावेश हो जाता है । इसके अतिरिक्त `पंचवटी-प्रसंग` नामक एक गीति-नाट्य भी उपलब्ध होता है । तालिका रूप में `निराला` के काव्य-साहित्य को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है :-

- काव्य
  - प्रबन्ध काव्य
    - खण्डकाव्य `तुलसीदास`
    - लघु आख्यानात्मक कथा `राम की शक्ति पूजा`
  - मुक्तक
    - संबोधगीति
    - पत्रगीति
    - शोकगीति
    - लोकगीत
    - वृत्त लेखन
    - गज़ल
    - चतुर्दशपदी
    - गीत
  - गीति नाट्य `पंचवटी प्रसंग`

उपर्युक्त विभाजन के आधार पर ही `निराला` के काव्य-रूपों का विवेचन किया जायगा । सर्वप्रथम प्रबन्ध काव्यों -- `तुलसीदास` तथा `राम की शक्ति पूजा` पर दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् मुक्तक काव्य पर विचार किया जायगा ।

खण्ड काव्य -- `तुलसीदास`

सांस्कृतिक चेतना

२. तुलसीदास का जीवन-वृत्त पूर्ण ज्ञापित और विख्यात है । `निराला` का मुख्य उद्देश्य तुलसी के जीवन-वृत्त के माध्यम से तत्कालीन ह्रास होती हुई संस्कृति की व्यंजना करना ही है । तुलसीदास का जीवन-काल भारतीय संस्कृति के ह्रास का समय था । क्रमश: मुसलमानों के आधिपत्य में समस्त भारतीय प्रान्त आते जा रहे थे । मुसलमानों का आतंक सर्वत्र बढ़ता जा रहा था । `तुलसीदास` प्रबन्ध का आरम्भ ही अस्त होते हुए सांस्कृतिक सूर्य से किया गया है । आरम्भिक छन्दों में देश की जिस पतनावस्था का प्रकटीकरण किया गया है, वह ऐतिहासिक सत्य है । स्वयं महाकवि तुलसीदास ने जड़ावस्था को प्राप्त होती हुई भारतीय संस्कृति में पुन: प्राण-प्रतिष्ठा एवं जागृति पैदा की थी, यह भी कटु सत्य है । युग-द्रष्टा कवि के जीवन-वृत्त को लेकर `निराला` ने इस प्रबन्ध की रचना की है । परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रत्येक कवि की कृति में युगीन चेतना एवं संवेदना का आभास मिल जाता है । युग से असंपृक्त कवि कभी नहीं रह सकता, लेकिन कतिपय कृतियां ऐसी होती हैं, जिसमें सृजनकर्ता मुख्यरूप स इसी उद्देश्य से अग्रसर होता है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर लिखा गया है । महाकवि तुलसीदास ने अपने जीवन-काल में मुस्लिम शासन से आक्रान्त भारतीय जनता में सांस्कृतिक चेतना जागृत करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन का आख्यान गाया था । इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर कवि `निराला` ने राष्ट्रीय भावना के उन्नायक तुलसीदास को सन् १९३२ में अपने आख्यान का चरित-नायक बनाकर आंग्ल शासकों से पदाक्रांत और सुप्त भारतीय चेतना में जागृति का शंखनाद करने का प्रयास किया है । वस्तुत: `निराला` ने तुलसीदास के महान सांस्कृतिक जागरण को समझा था । प्रस्तुत प्रबन्ध में न केवल तुलसी युगीन दीन हीन सामाजिक विषमता का ही विवेचन किया गया है, वरन् वर्तमान समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया गया है ।

३. मुस्लिम सत्ता द्वारा पदाक्रांत होने के पश्चात् देश में चारों ओर विलासिता का साम्राज्य होता जा रहा था । तुलसीदास का जीवनकाल अकबर के राज्यरोहण से प्रारम्भ होता है, यह तो सर्वविदित है कि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की कूटनीति ने हिन्दू जाति तथा मुस्लिम-जाति में किसी सीमा तक सामीप्य ला दिया था और दोनों जातियों की परस्पर द्वेष भावना समाप्त होती जा रही थी । मुस्लिम सभ्यता के हास-विलास , सुख-ऐश्वर्य से अभिभूत होकर भारतीय जनता पराधीनता की पीड़ा को विस्मरण करती जा रही थी --

भूला दुःख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला यह केवल - कल्प काल --
कामिनी कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता,
प्राणों की छवि मृदु-मंदस्पंद
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छन्द,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता ।[१]

भारत देश संस्कृति दल से विच्छिन्न होकर तरंगों में भटकते हुए पुष्प की तरह हो रहा था । भारतीय जनता निष्क्रिय हो औचित्य-अनौचित्य का भी विस्मरण कर बैठी थी । सामाजिक विषमता का करुण दयनीय चित्रण किया गया है । शोषित तथा दलित वर्ग की दशा अपेक्षाकृत अधिक पतनोन्मुख थी । वर्ण-व्यवस्था की सुव्यवस्थित शृंखलाएं भी विशृंखलित होती जा रही थीं --

वे टूट चुके थे ठाट सकल वर्णों के,
तृष्णोद्धत,स्पर्धागत, सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व
द्विज चाटुकार, हत इतर वर्ग वर्णों के ।[२]

समाज में अनेक मत-मतान्तरों का आधिपत्य होता जा रहा था । साम्प्रदायिकता से संकीर्णता बढ़ती जा रही थी, धार्मिक स्थिति में भी बाह्याडम्बर तथा विरोध का साम्राज्य होता जा रहा था । सबसे अधिक सोचनीय एवं दयनीय स्थिति निम्नवर्ग

१- निराला : तुलसीदास, १९५७, इलाहाबाद, पृ० १५

२- वही०, पृ० २४ ।

की थी --

चलते फिरते पर निःसहाय,
वे दीन, क्षीण कंकाल काय,
आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में[1]

+ + +

वे शेष श्वास, पशु मूक-भाष
पाते प्रहार अब हताश्वास
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विजगण के[2] ।

लेकिन इस शोषण की पृष्ठभूमि का मनोवैज्ञानिक आधार कवि ने दिया है । द्विजगण अपने अस्तित्व तथा आदर को मुस्लिम सभ्यता में खो बैठे थे, फलत: वह अपने अहं की तुष्टि निम्नवर्ग का शोषण करके करते थे ।

४. तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक विशृंखलता ने ही मानो विदेशी शक्तियों का आह्वान किया था । देश की अव्यवस्थित स्थिति का लाभ उठा कर समय-समय पर विदेशी शक्तियां भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित करती रही हैं । आत्मबल से रहित देश शीघ्र ही मुस्लिम संस्कृति द्वारा पदाक्रान्त हो गया । देश की दीन-हीन अवस्था का आवेगमय वर्णन करते हुए `निराला` उस समस्या का समाधान खोजते हुए भी देखे जा सकते हैं । वह स्पष्ट रूप से इसकी उद्घोषणा करते हैं कि --

दीनों की भी दुर्बल पुकार
कर सकती नहीं कदापि वार
पार्थिवैश्वर्य का अंधकार पीड़ा कर
जब तक कांक्षाओं के प्रहार
अपने साधन को बार-बार
होंगे भारत पर इस प्रकार तृष्णा पर[3] ।

तद्युगीन परिस्थितियों के साथ-साथ वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था पर भी प्रच्छन्न रूप से

१- निराला : तुलसीदास , १९५७, इलाहाबाद, पृ० २५
२- वही०, पृ० २५
३- वही०, पृ० २७

व्यंग्य और आक्षेप किया गया है --

बाहिर उधै और भी और,
फिर साधारण को कहां ठौर ?
जीवन के, जग के,यही ठौर हैं जय के[1] ।

समाजवाद के पुजारी भारत देश में अभी भी धनी अधिक धनी और निर्धन अधिक निर्धन होता जा रहा है । मानव-मूल्यों पर आधारित कृति कभी भी देश-काल में आबद्ध नहीं रहती । तुलसीदास के जीवन-वृत्त के माध्यम से `निराला` ने शाश्वत मानव-मूल्यों की स्थापना की है । कवि का उद्देश्य केवल सांस्कृतिक पतन और दुरावस्था दिखाना ही नहीं, वरन् भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल रूप का दिग्दर्शन करना भी है । इसके लिए तुलसी का जीवन आख्यान ही सर्वाधिक प्रेरक हो सकता है था, क्योंकि वे मृत होती हुई दिग्भ्रमित भारतीय संस्कृति के प्राण संचारक और प्रेरणा स्रोत बने थे । तथा `प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा` के रूप में भारतीय संस्कृति के सूर्योदय का आभास पाया था । तुलसीदास ने अपने जीवन-अंतराल में मुस्लिम शासन से आक्रांत भारत का साक्षात्कार किया था । उसी प्रकार `निराला` ने भी आंग्ल शासकों द्वारा जर्जर हुए स्वदेश का साक्षात्कार किया था । राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक तुलसीदास का सन् १६३८ के मध्य जीवन वृत्त लिखकर `निराला` ने आंग्ल शासकों से संघर्षरत भारतीय जनता को अपूर्व सहयोग और जीवन दिया ।

पारिवारिक व्यंजना

५. चिन्तन प्रधान इस काव्य में पारिवारिक व्यंजना के पुट से सरसता, सहजता का समावेश हो सका है । तुलसीदास की अपनी पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति , अनुरक्ति, फलस्वरूप उनका व्यवहार, लड़की का विवाह के पश्चात् चिर समय तक नैहर न जाने से परिवार की प्रतिष्ठा पर आघात,माता-पिता के

१- वही०, पृ० २८

स्नेह से आप्लावित करुण सन्देश, भाभी तथा सखियों का व्यंग्य परिहास आदि प्रसंगों से पारिवारिक जीवन का मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक चित्रण मूर्त हो सका है । भाई का स्नेहयुक्त ताना --

`हम बिना तुम्हारे आए घर
गांव की दृष्टि से गये उतर ,
क्यों बहन, ब्याह हो जाने पर घर पहला
केवल कहने को है नैहर ? --
दे सकता नहीं स्नेह-आदर ? --
पूजे पद, हम इसलिए अपर ?`[1]

भाई के स्वाभाविक स्नेह और लाड़ का परिचायक है । `पूजे पद हम इसलिए अपर` में सत्यता है । वास्तव में लड़की के विवाहोपरान्त माता-पिता, भाई-बन्धु किसी का भी उस पर अधिकार नहीं रह जाता । पति तथा उसके परिजन ही उसके जीवन के सूत्राधार बन जाते हैं । चाहने पर भी माता-पिता लड़की को बुला नहीं सकते, मात्र आग्रह ही कर सकते हैं --

आंसुओं भरी मां दु:ख से स्वर
बोलीं, रतन से कहो जाकर
क्या नहीं मोह कुछ माता पर अब तुमको ?
जामाता वाली ममता
मां से तो पाती उत्तमता ।
बोले बापू, योगी समता में अब तो[2] --

माता-पिता का हार्दिक स्नेह वात्सल्य और ममत्व लड़की का विवाह कर देने से ही समाप्त नहीं हो जाता । माता-पिता के अन्यतम वात्सल्य का चित्र अनुपम है । ननद-भाभी का व्यंग्य-परिहास भी जगत प्रसिद्ध है । रत्ना के नैहर पहुंचने के तत्काल बाद ही तुलसीदास का ससुराल में पदार्पण उपस्थित परिजनों के लिए

१- वही०, पृ० ४३ ।
२- वही०, पृ० ४२ ।

कौतुक का विषय हो जाता है । रत्ना की भाभी भी उस अवसर से कब चूकने वाली थी --

उस सादर उठी समाज श्वसुर परिजन की
बैठाला देकर मान-पान,
कुछ जन बतला कान कान,
सुन बोली भाभी, यह पक्वान रतन की[1] ।

ऐसी विद्रूपपूर्ण परिस्थिति में रत्ना की मानसिक अवस्था की कल्पना सहज ही की जा सकती है । निस्सहाय रत्ना ' रखो मर्यादा पुरुषोत्तम' से अधिक कर भी क्या सकती थी । नारी की विवशता और स्वाभाविक लज्जा का चित्र साकार कर दिया गया है । `निराला` ने नारी का अबला पक्ष ही नहीं लिया है, नारी में कोमल और कठोर दोनों भावनाओं का अप्रतिम सम्मिश्रण हुआ करता है । वह आवश्यकता पड़ने पर रणचंडी का भी रूप धारण कर सकती है । `तुलसीदास` में नारी के दोनों रूपों की अवतारणा हुई है । रत्नावली `कामायनी` की श्रद्धा की भांति तुलसीदास की प्रेरक शक्ति भी है । उसमें असीम त्याग की क्षमता है । वह केवल भोग्या ही नहीं, श्रद्धेय भी है ।

६. नारी केवल अंधकार या माया ही नहीं, जागृति और प्रकाश भी है । तुलसीदास के जीवन को ऊर्ध्वमुख करने वाली शक्ति प्रेरक शक्ति है --

अचपल ध्वनि की चमकी चपला
बल की महिमा बोली अबला
जागी जलपर कमला, अमला मति बोली[2] ।

आवश्यकता पड़ने पर वह शिक्षिका की पदवी ग्रहण कर सकती है --

धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठकुल धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए
हो बिके जहां तुम बिना दाम

१- वही०, पृ० ४६ ।
२- वही०, पृ० ५२ ।

वह नहीं और कुछ हाड़-चाम
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये।[1]"

रत्नावली की अवहेलना तथा ताड़ना से तुलसी के मोह ग्रस्त मर्म चक्षु खुल जाते हैं। उनकी सुप्त अन्तरात्मा जाग्रत हो उठी और उनको अपना लक्ष्य स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है तथा वह कभी न लौटने के लिए सदैव के लिए घर का परित्याग कर चले जाते हैं।

चिन्तन और दर्शन

७. 'तुलसीदास' प्रबन्ध-काव्य चिन्तन प्रधान होते हुए भी भावना और काव्यात्मक औदात्य के समुचित सम्मिश्रण के कारण रसास्वादन कराने में पूर्ण समर्थ है। काव्य और दर्शन का सुन्दर परिपाक इस प्रबन्ध में हुआ है। चिन्तन का प्रसार संकेतों द्वारा किया गया है। इसे रहस्य काव्य की शैली का चिन्तन भी कहा जा सकता है। सांस्कृतिक और दार्शनिक तन्तुओं से इस प्रबन्ध का कथा संग्रथन हुआ है, तथा इसी चेतना का प्रसार अथ से इति तक व्याप्त है। प्रकृति-दर्शन और ऊर्ध्वगमन में भी 'निराला' इसी चेतना का आभास देते हैं लेकिन इस दार्शनिक, सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति में वह उपदेशक का आवरण नहीं ओढ़ते वरन् वह इसको काव्यात्मक औदात्य से प्रस्तुत करते हैं। तुलसी के जीवन से सम्बन्धित कथा बहु चर्चित है, लेकिन प्रस्तुत प्रबन्ध में तुलसीदास के जीवन का चित्रांकन पूर्णतया ~~भिन्न~~ भिन्न दृष्टिकोण, नवीन साज-सज्जा तथा नवीन कलेवर में आबद्ध किया गया है। कवि 'निराला' ने बहुत गहन अवगाहन किया है तथा बहुत से सूक्ष्म अनचीन्हे तत्वों को वह उद्घाटित करने में सफल हो सका है। मुख्य बात तो यह है कि इस कथा का केन्द्रबिन्दु शुद्ध रूप से तुलसीदास का अन्तर्मन है। तुलसीदास के विद्याध्ययन से आरम्भ करके सांसारिक विरक्ति के अन्तराल में घटित हुई बहुत सी सूक्ष्म गतिविधियों पर कवि दृष्टिपात करता है जो साधारणतया जन साधारण की स्थूल पर्यवेक्षण बुद्धि से परे रहती है। सांस्कृतिक सान्ध्यकाल का आलंकारिक वर्णन, तुलसीदास

१- वही०, पृ० ५२।

का प्रथम अध्ययन, प्रकृति द्वारा नवीन सन्देश और पुर्व संस्कारों का उदय, फलत: मन का ऊर्ध्वगमन, पत्नी के प्रति अत्यधिक आसक्ति, नारी का प्राकृतिक विराट-स्वरूप, मानसिक द्वन्द्व , अंत में नारी द्वारा शाश्वत ज्ञान की उपलब्धि आदि मनौवैज्ञानिक समस्याओं की दृष्टि में रख कर उसी के अनुकूल मनौवैज्ञानिक धरातल का सृजन कर विश्लेषण किया गया है । कथातत्व का अभाव है, प्रधानता है, कवि की चिन्तना की । काव्य को प्रबन्धात्मकता देने के लिए अंशत: बाह्य घटनाओं को लिया गया है । कथा साध्य न होकर साधन बनकर आयी है । वस्तुत: रहस्यात्मक भावना का विश्लेषण ही `निराला` का प्रतिपाद्य था ।

८. कवि तुलसीदास का ऊर्ध्व गमन रूप ही `तुलसीदास` प्रबन्ध की मुल चिन्ताधारा है । इसी ऊर्ध्वगमन के अन्तराल में वह आत्म साक्षात्कार करते हैं । प्रकृति का निखिल सौन्दर्य तुलसी के पुर्व संस्कारों को जाग्रत करने में सहायक होता है तथा प्रकृति में उन्हें कुछ परिचित सा आभासित होता है । तुलसीदास का मन-विहंग संस्कारों की पर्तों को पार करते हुए अग्रसर होने लगता है --

हो गया चित कवि का त्यों तुलकर उन्मन,
वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन ।

\+ \+ \+

दूर, दूर तर , दूरतम, शेष
कर रहा पार मन नभोदेश,
सजता सुवेश, फिर-फिर सुवेश जीवन पर,
छोड़ता रंग, फिर-फिर संवार
उड़ती तरंग अपर अपार
सन्ध्या- ज्योति: ज्यों सुविस्तार अवरंतर ।[१]

इसी ऊर्ध्वावस्था में कवि तुलसीदास प्रकृति के माध्यम द्वारा संस्कृति के पतन का संकेत पाते हैं । मन का उस ऊर्ध्वावस्था तक पहुंचना चिन्तन का प्रतीक है, ऊर्ध्व-मुखी मन क्रमश: अधिकाधिक दिव्यता सम्पन्न होता जाता है और उस ऊर्ध्वगामी

१- वही०, पृ० २२ ।

स्थिति की पुनरावृत्ति होने पर वह शाश्वत सत्य का आभास पाते हैं और कवि तुलसीदास को शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है ।

६. ऊर्ध्वगमन के क्षणों में भी पतन होती हुई संस्कृति का विलोप तुलसी के मन से नहीं जाता --

इस मानस ऊर्ध्व देश में भी
ज्यों राहुग्रस्त आभा रवि की
देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरतीय -सी--
भारत का सम्यक् देशकाल,
खिंचता जैसे तम शेष जाल,
खींचती, वृहत् से अन्तराल करतीय -सी ।[1]

तुलसीदास का मन गहन से गहनतर होता हुआ भारतीय संस्कृति के पतन के कारणों का विश्लेषण करता है, यह विश्लेषण मनोवैज्ञानिक है । सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक सभी पक्षों का गहन गम्भीर चिन्तन इसमें प्रत्यक्ष है । सत्य एवं ज्ञान की ज्योतिर्मयी किरणों की अवस्थिति भौतिक ऐश्वर्य के परे स्वीकृत की गयी है । भौतिकता के संकीर्ण गह्वर से उठकर ही ज्ञान-लोक में प्रवेश सम्भव है --

करना होगा यह तिमिर पार--
देखना सत्य का मिहिर द्वार --
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय--
लड़ना विरोध से द्वन्द्व समर,
रह सत्य मार्ग पर स्थिर निर्भर --
जाना भिन्न भी देह, निज घर नि:संशय ।[2]

अंतिम पंक्ति से वेदान्त की पुष्टि होती है -- आत्मा अन्तत: परमात्मा में लय होती है, व्यवधान केवल समय का रहता है । कर्मानुसार ही जीवात्मा उस मुक्तावस्था को प्राप्त होती है । पुण्यात्मा और दुरात्मा सभी उस अनन्त परब्रह्म से एकाकार होते हैं । निज घर नि:संशय से ह यही पुष्ट होता है ।

१- वही०, पृ० २३

२- वही०, पृ० २८

`निज घर` से तात्पर्य उस परब्रह्म परमात्मा से है । माया के पाश में आबद्ध होकर जीवात्मा अपने सत् स्वरूप को विस्मरण कर बैठता है, माया का बन्धन जीवात्मा को जन्म जन्मांतर के चक्कर में डालता है । फलत: जीव को अपने अधिवास का ज्ञान नहीं रहता । तुलसीदास की भी प्रारम्भिक स्थिति यही प्रकट करती है --

करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम ~~वज्रहर~~ वज्रद्वार ,
उमड़े, भारत का तम अपार हरने को[1] ।

तुरन्त कवि के मन पर विक्षेप आ जाता है । रत्ना का मोह उसे ऐसा करने को वर्जित करता है, जैसे ही उन्हें प्रकाश की किरण दिखायी पड़ती है , रत्नावली मोह का आवरण डाल देती है । माया के दो रूप दृष्टिगत होते हैं -- विद्या माया, अविद्या माया । अविद्यामाया जीव को मोह में डालकर भ्रमित करती रहती है । माया का आवरण ऐसा आकर्षक होता है कि चाहने पर भी जीव उससे मुक्त नहीं होपाता । विद्या-माया जीव का ब्रह्म साक्षात्कार कराने में सहायक होती है । माया का बन्धन इतना मोहमय और भ्रामक होता है कि वह जीव का ब्रह्म से सम्मिलन नहीं होने देती कोई-न-कोई विक्षेप डालती रहती है --

जो ज्ञान दीप्ति, वह दूर,अजर ,
विश्व के प्राण के ही ऊपर ,
माया वह जो जीव से सुघर संयुक्ता[2] ।

यहां पर आत्मा की स्पष्ट परिभाषा दे दी गयी है । `तुलसीदास` की रचना में `निराला` ने विद्यामाया और अविद्या माया दोनों रूप साकार कर दिए हैं । तुलसीदास का मन रूपी भ्रमर उसी में आबद्ध हो कर रह जाता है । वह माया के भ्रममें पड़कर संसार के मिथ्यात्व को स्वीकार नहीं कर पाता । यह अविद्या माया का रूप है । रत्ना के मोह में अभिभूत तुलसी को सम्पूर्ण प्रकृति प्रियामय दिखती है--

प्रेयसी के अलक नील, व्योम,
दृग फल, कलंक-मुख मंजु,सोम,
नि:सृत प्रकाश जो, तरुण क्षौम प्रियतन पर,
पुलकित प्रतिपल मानस चकोर
देखता भुक दिक् उसी ओर ।[3]

१- वही० पृ० २६
२- वही०, पृ०३६
३- वही०पृ० ३४ ।

मन के भावानुसार प्रकृति का रूप भी उन्हें पूर्णतया परिवर्तित दिखायी पड़ता है --

केशर रज-कण अब हैं हीरे-पर्वत चय,
पर वही प्रकृति , पर रूप बन्य
जगमग जगमग सब वेश वन्य
सुरभित दिशि-दिशि कवि हुआ धन्य, मायाशय ।।[१]

कवि तुलसीदास इस माया मोह को ही सत्य का स्वरूप मान लेते हैं, ऐसा पूर्ण संभव था, क्योंकि उनके मर्म चक्षुओं पर मोह का पर्दा पड़ा हुआ था । लेकिन दूसरी तरफ यही रत्ना तुलसी के सत्य स्वरूप प्राप्ति की प्रेरणा भी बनती है -- यहां पर उसको विद्या माया की संज्ञा दे सकते हैं । रत्नावली तुलसी के लिए अपरिचित पुण्य और अक्षय धन सिद्ध हुई । तुलसी को ज्ञानोन्मुख करने का समस्त श्रेय रत्ना को ही है । वह --

प्रिय करालम्ब को सत्य-यष्टि
प्रतिमा में श्रद्धा की समष्टि
मायायन में प्रिय- शयन व्यष्टि भर सोई[२]

१०. कवि तुलसीदास की मोह निद्रा तथा रत्ना के चैतन्य का सुन्दर दिग्दर्शन हुआ है --

लखती ऊषारुण,मौन राग
सोते पति से वह रही जाग
प्रिय के फाग में आग त्याग की तरुणा,
प्रिय को बहु युग कूलों को भर
बहती ज्यों स्वर्गंगा सस्वर,
नश्वरता पर आलोक सुघर इक करुणा[३] ।

'कामायनी' की श्रद्धा के रूप से रत्ना के स्वरूप की तुलना की जा सकती है । श्रद्धा जिस प्रकार मनु की मार्गदर्शिका बनकर उसको आनन्द लोक तक ले जाती है

१- वही०, पृ० ३१
२- वही०, पृ० ४०
३- वही०, पृ० ४०

उसी तरह रत्ना भी तुलसी के ज्ञान चक्षुओं को खोल देती है तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा के दर्शन का मार्ग प्रशस्त कर देती है । विद्या माया के रूप में तुलसीदास को अपनी प्रिया का नवीन रूप दिखाई पड़ता है --

विखरी छूटी शफरी अलकें,
निस्पात नयन नीरज पलकें
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता,
नि:संबल केवल ध्यान-मग्न,
जागी योगिनी अरूप लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय भाव मग्न निरूपमिता[1] ।

रत्ना द्वारा ताड़ना पाने के पश्चात् तुलसीदास के प्रबल संस्कार जाग्रत हो उठते हैं । उन्हें रत्ना में सरस्वती का विराट रूप दिखायी पड़ता है । इस विराट रूप का साक्षात्कार करते ही कवि तुलसी का मन ऊर्ध्वगामी हो जाता है । उन्हें केवल शून्य ही शून्य दृष्टिगत होता है । सब प्रकार की सीमाएं, द्वन्द्व तथा बन्धन उसमें तिरोहित हो जाते हैं, शेष रह जाता है स्कमात्र आनन्द[2] । इस ऊर्ध्वगमन के पश्चात् जब कवि को बाह्य संसार का ज्ञान होता है तो उनकी गति में निर्विरोध तथा द्वन्द्व हीन हो जाती है । तुलसी को चैतन्य का बोध होते ही सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा जाता है , तथा रत्ना का प्रेयसी वाला रूप तिरोहित होकर विश्व को आश्रय देने वाली गौरवमयी चेतना के रूप में परिवर्तित हो जाता है । --

जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा --
संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली कमला तिरती सुख-जल
प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि-रेखा[3] ।

१- वही०, पृ० ५२
२- निस्तब्ध व्योम गति-रहित-द्वन्द
आनन्द रहा ,मिट गए द्वन्द्व, बन्धन सब ।
वही०, पृ० ५५
३- वही०, पृ० ६१

<u>वस्तु योजना</u>

११. तुलसीदास प्रबन्ध काव्य खण्ड काव्य की विधा का अधिकारी होते हुए भी महाकाव्यत्व की औदात्म गरिमा से अभिसिक्त है । सौ छन्दों के इस प्रबन्ध काव्य में महाकाव्य की प्राणवत्ता प्रतिष्ठित है । महाकाव्य के लक्षणों के अनुरूप प्रस्तुत प्रबन्ध का नायक तुलसीदास आदर्श नायक है, जो लोकोत्तर चारित्रिक गुणों और सौन्दर्य से शोभित है । कथानक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से युक्त है । लेकिन तुलसी के बहु चर्चित ऐतिहासिक जीवन-वृत्त का मूर्त रूप न ग्रहण करके कवि ने उसका अमूर्त आत्मपरक रूप ही ग्रहण किया है और उसी के माध्यम से ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को पुष्ट किया गया है । शाश्वत मानव-मूल्यों की व्याख्या इस प्रबन्ध का प्रधान आकर्षण है, इसमें चिन्तन और दर्शनानुभूतियां लक्षित होती हैं । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य को `कामायनी` के समकक्ष माना जा सकता है । दोनों प्रबन्ध काव्य छायावाद काल के उत्कृष्ट दार्शनिक कल्पना के प्रतीक हैं । `तुलसीदास छायावाद का वह पहला काव्य है, जिसमें अन्तर्मन्थन और मनोवैज्ञानिक तथा इतिहास और प्रकृति के समन्वय से युक्त एक ऐसी कथा है, जो व्यक्ति के इर्द-गिर्द चलती है[१]।` अतः तुलसीदास काव्य का रसास्वादन करने के लिए एक विशिष्ट, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार की आवश्यकता है , यह सहज बोधगम्य नहीं । यह दर्शन और चिन्तन से आपूरित काव्य बौद्धिकता तथा हृदय का मणिकांचन संयोग है । सम्पूर्ण काव्य आध्यात्मिक,रहस्यात्मक भावों से ओत प्रोत है । कल्पना की उदात्तता एवं आध्यात्म के गहन-गम्भीर भावों से प्रबन्ध में अपूर्ण महाप्राणता आ गयी है । जो किसी भी महाकाव्य के लिए आवश्यक है ।

१२. यह प्रबन्ध काव्य पूर्णतया मनोवैज्ञानिक धरातल पर आधारित है । अतएव मन जैसे सूक्ष्म तत्वों का विश्लेषण होने के कारण इसमें अद्वितीय सूक्ष्मता तथा रहस्यात्मकता का बोध होता है । प्रधानता इस काव्य में नायक `तुलसीदास` के हृदय-संघर्ष की है, जो देश की राजनैतिक व आर्थिक विषमताओं से पीड़ित भारतीय जन-जीवन की पीड़ा से उद्बुद्ध हुआ था । उसी संघर्ष का मूर्त रूप प्रत्यक्ष

१- नई धारा, फरवरी १९५३, पृ० ५३-५४ ।

करने का कवि ने सफल प्रयोग किया है । छ: सौ पंक्तियों के इस प्रबन्ध काव्य में कथावस्तु नाटकीय सोपानों से अग्रसर हुई है । सामान्यत: कथावस्तु का विभाजन पाश्चात्य नाटकीय स्थितियों-- आरम्भ, कार्य-विकास, चरम सीमा, कार्य-निगति और अंत -- और भारतीय नाट्य-कला की पंच अवस्थाओं -- आरम्भ, यत्न, व्याप्ति, प्राप्त्याशा नियताप्ति तथा फल आदि में किया जा सकता है । आरम्भ, भारतीय संस्कृति के पतनान्मुख तथा तुलसी के विद्याध्ययन के परिचय तक, प्रकृति-दर्शन के प्रतिक्रिया स्वरूप नवीन भावों की उत्पत्ति तथा ऊर्ध्वगमन में भारतीय समाज के जर्जर जीवन का अवलोकन, कार्य-विकास तथा रत्नावली के मायारूप में आकर तुलसी के मन पर विक्षेप फलत: तुलसी का मानसिक संघर्ष चरम सीमा का बिन्दु है । भाई का आगमन और रत्ना का पितृ-गृह गमन -- कार्य निगति, रत्नावली की भर्त्सना द्वारा कवि की जाग्रति का स्थल अन्त माना जा सकता है ।

१२. भारतीय नाट्य कला की पंचावस्थाएं भी क्रमश: उन्हीं बिन्दुओं पर स्थापित की जा सकती हैं । सांस्कृतिक सांध्य-वर्णन और तुलसीदास जीवन-परिचय , आरम्भ । यत्न का बिन्दु तुलसी के चित्रकूट-गमन तथा प्रकृति के संकेतों द्वारा नवीन ज्ञान प्राप्ति के रूप में होता है । रत्ना का पितृ-गृह गमन तक का प्रसंग व्याप्ति और तुलसीदास का ससुराल पहुंचना प्राप्त्याशा एवं रत्ना द्वारा उनको उद्बोधन नियताप्ति एवं तुलसीदास का अन्तर्ज्ञान तथा उनके संकल्प को फल या फल का संकेत माना जा सकता है । भारतीय परम्परा का निर्वाह करते हुए कथानक का अंत आशामय होता है । भारतीय संस्कृति के अस्त होते हुए सूर्य से प्रारम्भ करके तुलसी के ज्ञान प्राप्ति के साथ पुष्कल रवि-रेखा दिखाकर प्रबन्ध को सुखांत कर दिया गया है । ज्ञानप्राप्ति के साथ ही तुलसी का हृदयगत संघर्ष और द्वन्द्व भी समाप्त हो जाता है और सर्वत्र अज्ञात आनन्द की लहर व्याप्त हो जाती है । "संघर्ष का जैसा ओजपूर्ण चित्रण कवि ने किया है, वैसा ही उसका अंत भी हृदय में न समा सकने वाले भारत किंवा विश्व व्यापी उल्लास में किया है[१] ।"

१- निराला : तुलसीदास परिचय : कृष्णदास, पृ० ३ ।

१४. `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य की अलंकृत भाषा -शैली भी इसको महाकाव्यत्व का औदात्य प्रदान करने में सक्षम है । `तुलसीदास` प्रतीकात्मक प्रबन्ध काव्य है । प्रतीकात्मक शैली में ही कवि ने सांस्कृतिक पतन का चित्र अंकित किया है । रत्ना मोहान्धरत तुलसी को जाग्रत करने वाली सरस्वती की प्रतीक है । तुलसी के चरित के माध्यम से `निराला` ने दिग्भ्रमित संस्कृति का उज्ज्वल मार्ग खोजने का प्रयास किया है तथा भारत के उज्ज्वल भविष्य का सन्देश भी आलंकारिक रूप में ही दिया गया है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य वस्तुत: खण्ड काव्य की विधा का ही अधिकारी है । महाकाव्य का औदात्य होते हुए भी बाह्य आकार-प्रकार की दृष्टि से यह खण्डकाव्य ही ठहरता है । विषय-विस्तार की दृष्टि से इस प्रबन्ध का धरातल लघु और सीमित है । सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता होने के कारण ~~कथ्य-का~~ कथ्य का आग्रह भी नहीं । कथा-संगठन इतना कसावपूर्ण है कि कहीं भी भटकन, बिखराव या उलझाव का भान नहीं होता । यद्यपि मनोवैज्ञानिक, अमूर्त, सूक्ष्म विश्लेषण होने के कारण अस्पष्टता के लिए पर्याप्त अवकाश था । अमूर्त घटनाओं के संग्रथन के लिए जिस अपूर्व कवि-कौशल की आवश्यकता रहती है, उसका दिग्दर्शन इस कृति में सहज सुलभ है । शैथिल्य दोष तथा बिखराव से इस प्रबन्ध का कथा संगठन विमुक्त है । कथानक में अनावश्यक स्फीतता नहीं आने पाई है । अवान्तर कथाओं का समावेश भी कवि ने नहीं किया है । यदि प्रासंगिक कथा के रूप में रत्ना के भाई के प्रसंग को स्वीकार कर भी लें तो भी समस्या का सुलझाव नहीं हो पाता क्योंकि रत्ना का अप्रत्याशित रूप से नैहर गमन ही तुलसी के जीवन में इतना बृहत परिवर्तन लाता है । उसका मूल कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है । वस्तुत: यह कथा का प्रधान अंग है, प्रासंगिक नहीं । वस्तु-विन्यास में नाटकीयता के समावेश से कथा-संगठन का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है । प्रत्येक घटना या भाव में अनंत संगति और प्रभान्विति है ।

१५. खण्ड काव्य की कथावस्तु वर्णनात्मक की अपेक्षा भावात्मक अधिक होती है । इस दृष्टि से भी तुलसीदास की कथावस्तु पूर्ण सार्थक है --विषयवस्तु अत्यधिक सूक्ष्म और अमूर्त है, जीवन-वृत्त का बहुत अल्प प्रयोग हुआ है । केवल उतना ही बाह्य जीवन या घटनाओं को संजोया गया है जिससे कथ्य का झीना आवरण रहे । रहस्यात्मक संकेतों का कथात्मक नवीन चित्र खींचा गया है ।

सर्ग योजना का आग्रह भी कवि ने नहीं रखा है । यों तो खण्डकाव्य में उसका आग्रह रहता भी नहीं है । छन्दों का वैविध्य भी इस प्रबन्ध में नहीं है । बाह्य घटनाओं की न्यूनता है । जितनी भी बाह्य घटनाओं का निर्माण हुआ है, वह प्रतीकात्मक रूप में ही प्रयुक्त हुई है । उदाहरण के लिए प्रकृति के दीन-हीन चित्रण में देश की दुरवस्था का लक्ष्य अन्तर्निहित है --

> 'हनती आँखों की ज्वाला चल,
> पाषाण खण्ड रहता जल-जल
> ऋतु सभी प्रबलतर बदल-बदल कर आते,
> वर्षा में पंक प्रवाहित सरि,
> है शीर्ण काय कारण हिम अरि
> केवल दुःख देकर उदर भरि जल जाते ।[१]

दीन-हीन , वर्ग वैषम्य या सामाजिक दुरावस्था का जितना भी चित्रण हुआ है, वह कवि तुलसीदास की सांस्कृतिक चेतना को उद्बुद्ध करने के प्रेरक रूप में ही हुआ है । मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होते हुए भी 'निराला' ने प्रबन्धत्व की अवहेलना नहीं की है । सबसे अधिक मार्मिक, संवेदनात्मक और सूक्ष्म चित्रांकन वहां हुआ है, जहां 'निराला' कवि तुलसी के मानसिक संघर्ष का चित्र मूर्त करते हैं । उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'तुलसीदास' प्रबन्ध एक सफल खण्ड काव्य है ।

शिल्पगत प्रौढ़ता

१६. विषयवस्तु के अनुकूल ही सूक्ष्म व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है । कवि का भाव इसमें व्यंजित है, लक्षित नहीं । कहीं-कहीं व्यंजना अत्यधिक सूक्ष्म हो गयी है । यही कारण है कि पाठकों को बौद्धिक श्रम करना पड़ता है । कोमल और विराट दोनों कल्पना-चित्रों का सफल अंकन हुआ है ।

१- वही०, पृ० २०

ओजस्वी, औदात्यपूर्ण तथा परुष भावों की अभिव्यक्ति में कवि को अप्रतिम सफलता मिली है --

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम तरने को
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्रद्वार
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को[1]।

कोमल, मसृण मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति भी भावानुकूल अभिव्यंजित हुई है। तुलसीदास देश की दुरावस्था से पीड़ित हो अत्यधिक उद्विग्न हो उठते हैं। लेकिन उनकी प्रिया का मोह इस पर विक्षेप डाल देता है और वह उसके मोहपाश में बद्ध हो अक्षम होकर रह जाते हैं। इस भाव स्थिति का अंकन कोमल मधुर शब्द-चित्र में मूर्त किया गया है --

उस ऊँचे नभ का गुंजनपर,
मंजुल जीवन का मन-मधुकर ,
खुलती उस दृग-छवि में बंधकर, सौरभ को
बैठा ही था दुःख से क्षण-भर,
मुंद गये पलों के दल मृदुतर ,
रह गया उसी उर के भीतर, अक्षम हो[2]।

विराट चित्रों की अवतारणा में कवि ने अन्यतम सफलता पाई है। भाषा-शैली चित्रात्मक और गत्यात्मक है। अधिकांश छन्द अपने आप में एक छोटा-सा चित्र है। व्यंजना के अत्यधिक आग्रह के कारण शैली में अनूठा चमत्कार और सौन्दर्य का समावेश हुआ है, पर साथ ही अर्थगत दुरूहता और अस्पष्टता भी आ गई है। अर्थगत और भावगत सौन्दर्य के लिए शब्दों की तोड़-मरोड़ भी हुई है। छोटे-छोटे

१- वही०, पृ० २९।

२- वही०, पृ० ३०।

पद भी गम्भीर अर्थ-सौन्दर्य से पुष्ट हैं । नाद-गुण `निराला` काव्य का आवश्यक लक्षण है ।ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा वह अर्थ को और भी अधिक सुगम बना देते हैं ।

१७. `निराला` की सृजनात्मक प्रतिभा अद्वितीय है । `तुलसीदास` जैसे सूक्ष्म अन्तर्मुख काव्य में भी कवि ने नाटकीय सौन्दर्य का आनन्द प्रदान किया है । तुलसीदास का मन ऊहापोहात्मक स्थिति में स्वयं ही अपनी शंकाओं का समाधान पा लेता है --

बन्धु के बिना , कह, कहां प्रगति ?
गतिहीन जीव को कहां सुरति ?
रति-रहित कहां सुख ? केवल क्षति--केवल क्षति[1] ।

इस प्रकार की द्वन्द्वात्मक मन:स्थिति की अभिव्यक्ति प्रस्तुत प्रश्नोत्तर में अधिक सजीव और नाटकीय हो गई है ।`तुलसीदास` प्रबन्ध में शृंगार और शान्त दो रसों की संयोजना हुई है । अथ से इति तक मुख्त: शान्त रस की ही प्रधानता है । प्रबन्ध के मध्य में कुछ छन्दों द्वारा शृंगार रस का भी समावेश हो सका है । रति और निर्वेद दो ही प्रधान भावों की पुष्टि होती है । आध्यात्मपरक और रहस्यात्मक प्रबन्ध होने के कारण निर्वेद भाव ही प्रधान भाव है । शृंगार रस निष्पत्ति में रत्ना का सौन्दर्य तथा प्रकृति का उद्दीपन रूप ही सहायक होता है । भारतीय संस्कृति का मुस्लिम संस्कृति द्वारा पदाक्रान्त होना निर्वेद जाग्रत करने में सहायक है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य सांस्कृतिक नव जागरण का सफल प्रतिनिधित्व करता है । मुगलकालीन पृष्ठभूमि पर आधारित इस प्रबन्ध के माध्यम से कवि भविष्यत् सांस्कृतिक नव निर्माण की योजना को मूर्त करने का प्रयास करता है और इस दृष्टि से इसने पर्याप्त सफलता भी पाई है । वस्तुत: यह संस्कृति का श्रेष्ठ, सशक्त तथा गौरवयुक्त महान चित्र है ।

लघु आख्यानात्मक कथा : राम की शक्ति पूजा

१८. `राम की शक्ति पूजा` सशक्त पौराणिक आख्यान है । पौराणिक आख्यान तथा कल्पना के सुन्दर अनुपात में इसका सृजन हुआ है । प्रस्तुत कथानक का

१- वही०, छन्द ५२, पृ० ३७ ।

आधार विभिन्न पौराणिक सूत्रों से पुष्ट हुआ है । अतएव सर्वप्रथम `राम की - शक्ति पूजा' के प्रेरणा स्रोतों का विश्लेषण कर लेना संगत होगा ।

१६. `राम की शक्ति पूजा' का कथावस्तु 'देवी भागवत' 'शिव महिम्न स्तोत्रम्' रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द की शक्ति-साधना से प्रभावित है । वस्तुत: इन पौराणिक स्रोतों की प्रतिछाया का भी कुछ परिवर्तित रूप इसके कथा-संगठन में प्रतिबिम्बित होता है । घटनाओं में `निराला' ने संगठन और प्रभाव की दृष्टि से कुछ क्रम परिवर्तन और रूप-परिवर्तन अवश्य किया गया है । देवी भागवत के अन्तर्गत नारद की प्रेरणा से राम नवरात्रि का व्रत लेते हैं तथा युद्ध के अंतिम दिन से पूर्व देवी की पूजा करते हैं । इसके विपरीत `राम की शक्ति पूजा' में राम शक्ति की पूजा अर्थात् युद्ध के अन्तराल में ही करते हैं । राम नवरात्रि का व्रत लेते हैं, व तब तक लक्ष्मण युद्ध का संचालन-कार्य संभालते हैं । नारद की अपेक्षा जाम्बवान राम को शक्ति-पूजा की प्रेरणा देते हैं, वह भी मौलिक कल्पना के रूप में । कथा का प्रस्तुत अंश देवी भागवत का प्रभाव परिलक्षित करता है । शिवमहिम्न स्तोत्रम् में विष्णु द्वारा एक सहस्र कमलों से शिव की पूजा का उल्लेख मिलता है[१], तथा एक कमल के अभाव में वह अपना कमलनयन अर्पित करने को उद्यत होते हैं । विष्णु के रूप में यहां राम का रूप साकार होता है । राम एक सौ आठ कमलों से दुर्गा की आराधना करते हैं । पूजा की अंतिम परिणति पर दुर्गा द्वारा एक कमल उठा लिया जाता है और राम पुंडरीकाक्ष चढ़ाकर पूजा पूर्ण करने को प्रस्तुत होते हैं । अन्त में दुर्गा द्वारा उनका हाथ पकड़ लिया जाता है । हनुमान का प्रसंग भी आंशिक नवीनता से ही समन्वित है । पवन-पुत्र का शैशवावस्था में सूर्य को निगलने की उक्ति

१- हरिस्ते साहस्रं कमल बलि माधाय पदयो--
र्यदेकोने तस्मिन्निज मुदहरन्नेत्र --कमलम्
गतोभक्त्युद्रेक: परिणति मसौ चक्र वपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्

-- शिवमहिम्न स्तोत्रम्: श्लोक १६ ।

पर्याप्त विख्यात है। रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द की शक्ति-साधना का भी 'निराला' पर अन्यतम प्रभाव था। बंगदेश से बाल्यकाल से ही निकट सम्पर्क होने के कारण कवि पर शक्ति-साधना का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा था। 'राम की शक्ति पूजा' की दार्शनिक पृष्ठभूमि तथा चिन्ताधारा पर प्रच्छन्न रूप से इनका प्रभाव है।

नवीन उद्भावनाएं : कथागत नवीनता

२०. पौराणिक आख्यानों से प्रेरणा लेने पर भी 'निराला' ने अपनी कल्पना-शक्ति का अपूर्व परिचय दिया है। यथार्थ तथा कल्पना के सुन्दर सामंजस्य से यह आख्यानक कृति अन्यतम बन गई है। 'निराला' की यह प्रधान विशेषता है कि वह अपनी कूंची से विभिन्न रंगों के मिश्रण द्वारा किसी नवीन चित्र का ही निर्माण करते हुए सर्वत्र दिखायी देते हैं। पवन-पुत्र हनुमान द्वारा आकाश ग्रसने की कथा प्रख्यात है। प्रस्तुत कथानक में हनुमान आकाश ग्रसने के लिए ऊर्ध्व गमन करते हैं। शिव महानाश की कल्पना कर श्यामा को छल द्वारा प्रबोधित करने के लिए प्रेरित करते हैं, साथ ही इस बात का भी संकेत देते हैं --

'.... इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि तुम्हारी विषम हार,
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध'[1]

श्यामा अंजना का रूप धर हनुमान से कहती है --

'यह महाकाश, है जहां वास शिव का निर्मल
पूजते जिन्हें श्रीराम, उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ? -- सोचो मन में,
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ रघुनन्दन ने ?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए धार्य ?'[2]

१- निराला : अनामिका, 'राम की शक्ति पूजा', १६६३, प्रयाग, पृ० १५८
२- वही०, पृ० १५६।

श्यामा का अंजना का रूप धारण कर महाकाश को राम के आराध्य शिव का निवास बताकर पवन-पुत्र को शान्त करना कवि की मौलिक और प्रभावनीय कल्पना है । सर्वप्रथम हनुमान का विराट चित्र मूर्त कर उनके असाधारण बल और पौरुष की स्थापना की गई है । ऐसे उद्भट तेजोदीप्त रूप को प्रबोध देने के लिए उसी के अनुरूप छल का आश्रय लिया गया है । हनुमान राम के अन्यतम भक्त हैं, ऐसा भक्त अपने इष्ट की किसी भी रूप में अवहेलना नहीं कर सकता । कवि ने इस सूक्ष्म भाव को समझा था । अतएव इसी पक्ष को लेकर श्यामा पवन-पुत्र के क्रोध को शांत करती है ।

२१. शक्ति की मौलिक कल्पना भी नवीन उद्भावना है । आराधना का दृढ़ आराधन से उत्तर देने की स्थापना की गयी है । काव्यात्मक रूपकों द्वारा शक्ति का विराट चित्र रेखांकित किया गया है --

"....सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत-हरित-गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द-विन्दु,
गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह , नहीं सिन्धु
दशदिक् समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर,[1]

पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना की गई है, जिसके पदतल में गर्जन-तर्जन करता हुआ सिन्धु माँ दुर्गा का वाहन सिंह है । दशों दिशाएं उनकी दश भुजाएं हैं । शक्ति की यह मौलिक उद्भावना अन्यतम है । महाशक्ति का राम को वरदान न देकर 'होगी जय होगी जय' कह कर राम के शरीर में विलीन होना भी एक नवीन मान्यता है । वस्तुत: 'निराला' दृढ़ इच्छा शक्ति और आत्मबल का ही समर्थन करते हैं । इन मौलिक उद्भावनाओं से कथानक में अपूर्व सौन्दर्य और औदात्य का समावेश हुआ है । यों तो कवि जो कुछ भी सृजन करता है , वह अपने में नवीन और मौलिक होता है, लेकिन 'निराला' के सृजन में नवीनता का आग्रह विशेषरूप से है ।

१- वही०, पृ० १६४-१६५ ।

पात्रगत नवीनता

२२. परम्परा से राम के ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना और धारणा करते आये हैं, जो पूर्ण काम मर्यादा पुरुषोत्तम तथा अजर अमर है । `रामचरित मानस` के राम अवतारी राम हैं -- मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने असुरों के संहार हेतु दशरथ पुत्र के रूप में अवतार लिया था और इसी आधार को लेकर राम का दिव्य चरित्रांकन परब्रह्म के रूप में तुलसीदास ने `रामचरित मानस` में किया है । किन्तु `राम की शक्ति पूजा` में राम का चरित्र पूर्णतया भिन्न दृष्टिकोण से रूपायित किया गया है, उनको पूर्णतया मानवीय संस्पर्श मिला है, उनके चरित्र में लौकिकता का आग्रह इतना है कि राम के समस्त क्रिया-कलाप अति मानवीय प्रतीत होते हैं । राम में मानव सुलभ दुर्बलताओं ,भय,आशंका,अवसाद तथा रुदन आदि का साक्षात्कार किया जा सकता है । प्रस्तुत कथानक के नायक राम योद्धा और साधक के रूप में चित्रित हैं । प्रारम्भ में ही कवि ने नायक के मुख से --

> `-- मित्र वर विजय होगी न समर,
> यह नहीं रहा नर - वानर का राक्षस से रण,
> उतरी पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण[१]
> अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति ।`

कहला कर राम के चरित्र का स्वमेव स्पष्टीकरण करा दिया है । `शक्ति पूजा` के आरम्भ में युद्धोपरान्त निराश निरुत्साहित तथा विवश राम का रूप दिखाई पड़ता है । रावण के पराजित होने में राम को शंका हो रही है । उन्हें बार-बार रावण का जय भय लग रहा है । राम की मनःस्थिति चिन्तनीय है --

> स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय[२]
> रह रह उठता जग-जीवन में रावण जय भय ।

२३. राम का चरित्र `रामचरितमानस` के मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र नहीं । उनके चरित्र में ब्रह्म की पूर्णता की अपेक्षा मानव जन्य अपूर्णता है । राम अधीर हो जाते हैं । सीता की स्मृति कर विह्वल हो उठते हैं । नेत्रों से

१- वही०, पृ० १६१

२- वही०, पृ० ५४

अश्रुपात होने लगता है --

भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल ।[1]

\+ + +

.... कहते छल छल

हो गए नयन, कुछ बूंद पुन: ढलके दृगजल,[2]

\+ + +

...... भर गए नयन द्वय ।[3]

राम का बार-बार दु:खी होकर विह्वल होना तथा नेत्रों का अश्रु पूरित होना पूर्णतया मानवीय है । ऐसी मान्यता रही है कि भगवान जब अवतार लेकर मनुष्य शरीर धारण करते हैं , तब वह मनुष्य शरीर के समस्त धर्मों का निर्वाह करते हैं, लेकिन `निराला` ने उनको पूर्णतया मनुष्य रूप में ही चित्रित किया है । राम का नैराश्यपूर्ण भाव, व्याकुल मुख, सजल नयन देखकर राम के पक्ष के लोगों में विषाद छा जाता है । साधारण मनुष्य के समान राम को प्रबोधित तथा उत्साहित करने के लिए कवि विभीषण द्वारा राम को प्रेरणा दिलवाताहै । विभीषण जानकी का प्रसंग लाकर राम में उत्तेजना लाने का प्रयास करता है । यही नहीं, वह कतिपय कटु शब्दों का प्रयोग भी कर बैठता है --

रघुकुल गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण ।
कितना श्रम हुआ व्यर्थ । आया जब मिलन-समय,
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय ।[4]

सीता की वेदना का भावपूर्ण कल्पना-चित्र विभीषण राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं --

---

१- वही०, पृ० १५६
२- वही०, पृ० १६१
३- वही०, पृ० १६७
४- वही०, पृ० १६०

करते हैं --

> रावण .. ..
> बैठा वैभव में देगा दुःख सीता को फिर
> कहता रण की जय-कथा पारिषद-दल से घिर,
> सुनता वसन्त में उपवन में कल कूजित पिक,
> मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव, धिक् धिक्।[1]

प्रस्तुत कथ्य की व्यंजना अत्यधिक मार्मिक, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है। धीरे-धीरे सीता के प्रसंग को उठा कर राम की पीड़ा को घनीभूत किया गया है। मानव सुलभ स्पर्द्धा का चित्रण तो राम के चरित्र में बहुत सुन्दर उतारा गया है।

> आया न समझ में यह दैवीय विधान
> रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर[2]
>
> \+ \+ \+
>
> हैं महाशक्ति रावण को लिए अंक,
> लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक[3]

राम का अपने को रावण से श्रेष्ठतर मानते हुए महाशक्ति के प्रति रोष तथा क्षोभ-प्रकट करना, पूर्णतया मानवीय है। सिद्धि के अन्तिम समय में दुर्गा द्वारा अवरोध उत्पन्न किए जाने पर राम का हृदय वेदना से टुकड़े-टुकड़े हो उठता है --

> धिक जीवन को जो पाता ही आया विरोध
> धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।
> जानकी! हाय, उद्धार, प्रिया का हो न सका।[4]

मानव-हृदय की विक्षुब्ध शोकातुर स्थिति का दिग्दर्शन है। उपर्युक्त पंक्तियां न केवल निरन्तर विरोध सहने की ओर ही संकेत करती हैं वरन् विरोध से उत्पन्न

१- वही०, पृ० १६०

२- वही०, पृ० १६१

३- वही०, पृ० १६२

४- वही०, पृ० १६७

क्षोभ तथा व्याकुलता का भी स्पष्टीकरण करते हैं जो स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है ।

२४. `राम की शक्ति पूजा` में राम के चरित्र के माध्यम से स्वयं कवि का मानसिक संघर्ष उभर कर आया है । यों तो किसी भी कृति से सृजनकर्ता का व्यक्तित्व असंपृक्त नहीं रहता लेकिन किसी-किसी पात्र में वह स्वयं तदाकार हो जाता है कि उसका स्वयं का व्यक्तित्व उसमें साकार हो उठता है । राम का संघर्ष मानो `निराला` का ही संघर्ष है । कवि ने अपनी संघर्षशील परिस्थितियों को शक्ति-पूजा के माध्यम से एक बार पुन: चुनौती दी है । कवि जीवनपर्यन्त समाज और परिस्थितियों से लोहा लेने वाले क्रान्तिकारी योद्धा एवं अपने प्राप्य के लिए साधनाशील साधक के रूप में रहे हैं । दुर्गा द्वारा एक कमल उठा लिये जाने पर राम की विकलता --

> धिक जीवन जो पाता ही आया विरोध
> धिक साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।[१]

मानो स्वयं कवि का आर्तनाद है।

वस्तु योजना

२५. `राम की शक्ति पूजा` की कथा पांच भागों में विभाजित की जा सकती है । कथा का आरम्भ राम-रावण के अपराजेय समर के संशय से होता है । निराश वानर-सेना युद्ध-क्षेत्र से खिन्न मन: राम के पद-चिह्नों का अनुसरण करती हुई शिविर को प्रत्यावर्तन कर रही है । वातावरण अत्यन्त विषादमय तथा गम्भीर है । शिविर में पहुंच कर भावी युद्ध की मन्त्रणा हेतु सब राम के चारों ओर अवस्थित होते हैं । दूसरा भाग लंका के रात्रि-वर्णन से प्रारम्भ होता है । राम एकाकी समुद्र के तट पर अवस्थित हैं । राम की मन:स्थिति के अनुकूल ही प्रकृति भी अत्यधिक विकराल रूप धारण किए हुए है । अमा निशा के प्रगाढ़ अंधकार में

१- वही०, पृ० १६७

मात्र एक मशाल जल रही है । वातावरण के गम्भीरता की कल्पना स्वत: हो जाती है । राम चिन्तित बैठे हैं । कुशल शिल्पी के समान कवि स्मृति-चित्रों के द्वारा पूर्व कथानक को जोड़ता है । राम को जनक के उपवन की स्मृति होती है-- सीता-मिलन, धनुर्भंग, विश्व-विजय भावना, ताड़का , सुबाहु, विराध,दूषण तथा खर वध आदि की स्मृतियां चित्रपट की तरह राम के स्मृति-पटल पर आती हैं । कल्पना में ही वह रावण का खल खल करता हुआ अट्टहास सुनते हैं, फलत: राम का हृदय आतंकित हो उठता है । इसी के मध्य एक प्रासंगिक कथा का निर्माण होता है । राम के अन्यतम भक्त पवन-सुत हनुमान, राम की विषादपूर्ण मनोदशा को देखकर विचलित हो उठते हैं । वह क्रोधावेश में समस्त महाकाश को ग्रसने के लिए उद्यत होते हैं । शिव श्यामा को हनुमान को प्रबोधित करने के लिए प्रेरित करते हैं तथा वह अंजना का रूप धारण कर छल द्वारा हनुमान को शांत करती है । हनुमान शान्त हो पुन: राम के चरणों में अवस्थित हो जाते हैं । प्रस्तुत प्रसंग कथा का तीसरा भाग है । हनुमान की प्रासंगिक कथा का मूल कथा-वस्तु से कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है, न तो यह कथा के प्रवाह में बाधक ही है और न साधक ही तथा शक्ति-पूजा के विस्तार के मध्य में ही उसका उत्थान और अवसान होता है । प्रस्तुत प्रसंग के समावेश और निराकरण से कथा के प्रवाह, संगठन एवं प्रभावान्विति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता । निस्सन्देह, हनुमान के पौरुष दीप्त व्यक्तित्व से कथा के औदात्य में वृद्धि अवश्य हुई है लेकिन प्रासंगिक कथा बाह्य या आन्तरिक किसी भी संघर्ष में सहायक नहीं हो सकी है । महाकाव्य में ऐसी अलौकिक घटनाओं का समावेश चमत्कार हेतु समाविष्ट किया जाता है । चौथे भाग से कथा चरम सीमा की ओर बढ़ने लगती है । इस भाग का आरम्भ वहां से होता है जहां विभीषण राम का विवण्णानन देखकर, राम को रावण द्वारा सीता को दी जाने वाली यन्त्रणाओं का स्मरण कराकर उनमें वीरत्व का संचार करते हैं, राम को अपनी विजय में शंका होती है । उनको इस बात की हार्दिक पीड़ा है कि ~~अधर्मरत-की~~ रावण अधर्मरत भी अपना में हुआ अपर । वह कल्पना में रावण को महाशक्ति के अंक में बैठा देखते हैं तथा उनके तीक्ष्ण शर व्यर्थ जाते हैं । इसकी कल्पना मात्र से वह उद्विग्न और कातर हो उठते हैं ।जाम्बवान आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर का समाधान प्रस्तुत कर राम को उत्साहित करते हैं ।

यह प्रस्ताव स्वीकृत होने पर सम्पूर्ण सभा प्रफुल्लित हो उठती है । पंचम भाग में राम शक्ति की मौलिक कल्पना कर साधना में प्रवृत्त होते हैं । हनुमान एक सौ आठ इन्दीवर की व्यवस्था करते हैं । साधना की अंतिम स्थिति में दुर्गा द्वारा एक कमल ~~का~~ उठा लिए जाने पर राम अपना राजीव नयन अर्पित करने को उद्यत होते हैं और शक्ति के वरदान द्वारा कथा का अन्त होता है । यहीं पर कथा की परिसमाप्ति भी हो जाती है ।

२६. `राम की शक्ति पूजा` जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है राम के जीवन चरित से सम्बन्धित एक घटना मात्र है । प्रस्तुत लघु प्रसंग को लेकर कवि `निराला` ने आख्यानात्मक रूप प्रदान किया है । स्वभावत: प्रश्न उठता है कि `राम की शक्ति पूजा` महाकाव्य की तुला पर तुलनीय है ? बाह्य रूप-विन्यास आकार-प्रकार की दृष्टि से जो कि महाकाव्य का आवश्यक लक्षण होता है । उत्तर नकारात्मक ही होगा । निस्सन्देह कौशलपूर्ण कथा-संगठन, प्रस्तुतीकरण की भव्यता औदात्यपूर्ण शैली महाकाव्यत्व का आभास अवश्य देती है । `राम की शक्ति पूजा` जैसी छोटी सी घटना को उचित पृष्ठभूमि परिमाण और वातावरण के साथ संयोजित किया गया है । जिससे अपूर्व मार्मिकता आ सकी है । आत्मा उसकी अवश्य महाकाव्य की गरिमा से अभिमण्डित है, लेकिन बाह्य आकार-प्रकार से इसको महाकाव्य की विधा के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता । ~~एक~~ किसी भी साहित्यिक कृति की आलोचना करते समय उसके बाह्यान्तर दोनों पक्षों का विश्लेषण आवश्यक होता है । `निराला` का `गागर में सागर भरने का` प्रयास सीमित कलेवर में शक्तिशाली और औदात्यपूर्ण प्रसंगों से युक्त सूक्ष्म कथा का विस्तार वस्तुत: अद्वितीय है । पर बाह्य रूप -विधान तथा आत्मा के समुचित सन्तुलन से ही किसी कृति का वास्तविक मूल्यांकन किया जा सकता है । बाह्य रूप-विधान की दृष्टि से `राम की शक्ति पूजा` को न तो महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है, और न खण्ड काव्य की ही । इसके विपरीत उसे `लघु आख्यानात्मक कथा` की संज्ञा देना पूर्णतया संगत और सार्थक है । महाकाव्य में जीवन का पूर्ण चित्र-अन्तर और बाह्य दोनों रहता है , परन्तु यह तो राम के जीवन में घटित होने वाली घटना का एक प्रसंग मात्र है । अतएव किसी प्रकरण को जीवन का पूर्ण चित्र कैसे माना जा सकता है , शक्ति पूजा एक खण्डचित्र मात्र है ।

यदि महाकाव्य की विशिष्ट मान्यताएं आकार-प्रकार आदि का प्रश्न आवश्यक न हो तो इसको निस्सन्देह, महाकाव्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है । महाकाव्य के लिए जो कथा सम्बन्धी एक निश्चित विस्तार एवं व्यापकता होती है, उस दृष्टि से निराश ही होना पड़ता है अन्यथा महाकाव्य की प्राण वत्ता में सन्देह नहीं है । कथानक पौराणिक है जिसमें कल्पना और तथ्यों का मणिकांचन संयोग हुआ है ।

२७. महाकाव्य की शास्त्रीय शैली के आधार पर नाटकीय पंच कार्यावस्थाओं को कथा के पंच भागों पर स्वीकार किया जा सकता है । आरम्भ, मध्य , अवसान की भी निश्चित सीमारेखा निर्धारित हो जाती है । प्रश्न है केवल प्रासंगिक कथा का जो कथा के मध्य में ही उभरती है और वहीं उसका अवसान भी हो जाता है । आधिकारिक कथा के साथ उसका कोई प्रयोजनीय सम्बन्ध भी नहीं है । मूल कार्यारम्भ भी प्रासंगिक कथा के बाद ही होता है । मूलत: कार्यारम्भ बहुत विलम्ब से होता है । कथा के चौथे भाग में इसका सूत्रपात होता है, लेकिन इस कार्य का संकेत कथा के शीर्षक, राम की नैराश्यपूर्ण स्थिति और रावण के शक्ति-वरदान के द्वारा पहले ही आभासित हो जाता है और वास्तविक गति जाम्बान की प्रेरणा के पश्चात् ही दी जाती है । चिन्तनीय विषय है कि क्या कार्यारम्भ इतने विलम्ब से होना लघु-कथा से संगठन की दृष्टि से औचित्यपूर्ण है ? सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कथा संगठन का दोष माना जायगा । लेकिन शक्ति-पूजा जैसे अपूर्ण विषय की कार्य कारण संगति स्थापित करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में इतनी विस्तृत भूमिका आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य थी, अन्यथा इस अपूर्ण प्रसंग की इतनी सशक्त प्रभावान्विति सम्भव नहीं हो सकती थी । शक्ति-पूजा की स्वयं में कोई स्वतन्त्र गति नहीं । वह राम के जीवन में घटित उस महान घटना का प्रतिफलन है , जो बहुत पहले राम-रावण के युद्ध के रूप में घटित हो चुकी थी । राम-रावण युद्ध की कल्पना मूर्त किए बिना उसकी संगति नहीं बैठ सकती थी । यही कारण है कि इतनी विस्तृत पृष्ठभूमि कथावस्तु की विशिष्टता बन गई है । पूर्वपीठिका के अभाव में शक्ति-पूजा के गुरुतर महत्व का भान नहीं हो सकता था ।

२८. राम के अभ्यन्तर और बाह्य दोनों संघर्षों का अप्रतिम चित्रण

हुआ है । अन्तर्द्वन्द्वों[1], मानसिक हलचलों[2] का इतना सजीव चित्रण `निराला` जैसे महान कवि द्वारा ही सम्भव था । शक्ति की आराधना में राम के अन्तर्मन की यौगिक क्रियाओं का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है --` चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस` । मन की स्थितियों का विश्लेषण किया गया है -- षष्ठ दिवस पर आज्ञा चक्र पर राम का मन अवस्थित होता है । त्रिकुटी पर ध्यान एकाग्र कर द्विदल पर साधना पहुंचती है और अंतिम स्थिति सहस्त्रार को पार करने की आती है तो दुर्गा अन्तिम कमल उठाकर ले जाती है । मन की यह यौगिक प्रक्रियाएं राम की आत्मस्थित शक्ति-साधना की व्यंजना करती है । आज्ञा चक्र, त्रिकुटी, द्विदल , ब्रह्मरन्ध्र , सहस्त्रार (मूलाधार शतदल कमल) आदि यौग साधना की पारिभाषिक रूढ़ शब्दावली है । राम की आत्म स्थित शक्ति को यौगिक प्रक्रियाओं द्वारा काव्यात्मक रूप प्रदान कर दिया गया है । वस्तुत: राम की यह योग-साधना आभ्यान्तर शक्तियों के जागरण के प्रतीक हैं । अन्त में शक्ति का राम के शरीर में विलीन होना भी इसी सत्य की पुष्टि करता है । राम ने अपनी क्षीण हुई आत्मशक्ति तथा आत्मबल को दृढ़ इच्छा शक्ति से जाग्रत किया है ।

१- स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग जीवन में रावण जय भय,
जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपु-दम्य श्रांत,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रांत,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार हार

-+ + +

२- ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया-कुमारिका-छवि-अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान-पतन
कांपते हुए किसलय,--फरते पराग-समुदय
गति लग नव जीवन-परिचय, तरु मलय वलय...
-- वही०, पृ०१५४-१५५

२६. शैलीगत वैविध्य ओज और औदात्य 'राम की शक्ति पुजा' की विशेष उपलब्धि है । वीर रस के लिए जिस ओज और परुष भावों का चयन हुआ है, वह प्रशंसनीय है । युद्ध के समय का विकराल चित्रण ध्वनिपूर्ण व्यंजक शैली के कारण और भी अधिक भयंकर एवं विकराल चित्र मूर्त करने में सफल हो सका है । विराट चित्रों की कल्पना अद्वितीय है । युद्ध से लौटते हुए राम का विराट रूप चित्रण विराट उपमानों द्वारा ही मूर्त किया गया है --

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएं ज्यों हो कहीं पार ।[१]

राम जैसे महान शक्तिशाली नायक के लिए ऐसे विराट उपमानों की स्थापना सार्थक है । राम के अन्तरतम में घनीभूत होते हुए नैराश्य का भी भाव मूर्त हो उठा है । सुन्दर प्रतीक योजना, शब्दलाघव द्वारा विराट चित्रों का रेखांकन प्रस्तुत कविता को महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करता है । हनुमान का ऊर्ध्वगमन विराट चित्र की ही संयोजना है । कवि का शैलीगत लाघव प्रयत्न साध्य नहीं, अपितु स्वत: स्फुरित है । यही कारण है कि तत्सम समास प्रधान एवं संस्कृतिनिष्ठ होने पर भी रसास्वादन में व्याघात नहीं होता । मधुर भावों के लिए कोमल प्रतीक तथा परुष भावों के लिए गम्भीर प्रतीकों की सृजना है । शब्दावली भी भावों के अनुसार परिवर्तित होती चलती है । कोमल भावों के लिए --

नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन,[२]
कांपते हुए किसलय, फरते पराग--समुदय,

कोमलकान्त पदावली का प्रयोग है तो इसके विपरीत परुष भावों के लिए --
'तीक्ष्ण शर- विधृत- क्षिप्र कर वेग प्रखर'[३] जैसी शब्दावली का प्रयोग हुआ है । समय, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुकूल विरोधी भावों

१- वही०, पृ० १५३
२- वही०, पृ० १५५
३- वही०, पृ० १५२

की अवतारणा सफलतापूर्वक हुई है । तथा उद्धत, ओजस्विनी शैली का प्रयोग किया गया है । एक साथ वीरत्व, गम्भीर वातावरण और भावों की अभिव्यंजना होती है ।

३०. `राम की शक्ति पूजा` में प्रधान दो ही रसों की निष्पत्ति हुई है वह है वीर और शृंगार । रति और उत्साह दो ही भावों को पुष्टि होती है । `निराला` ने शृंगार और वीर दोनों को अन्योन्याश्रित माना है[१] । तथा इसको सिद्ध करने के लिए उन्होंने कतिपय उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं । उनके अनुसार `रामायण के लंकाकांड के मूल में है शृंगारमयी श्री सीता देवी । श्री रामचन्द्र की शृंगार की मूर्ति हर गई- कोमल भावना में वीर रस की प्रतिक्रिया होने लगी - उन्होंने अपनी शृंगार की मूर्ति का उद्धार किया । महाभारत के मूल में इस तरह द्रौपदी विराजमान है[२] ।` `राम की शक्ति पूजा` की पृष्ठभूमि में भी उपर्युक्त मान्यता ही कार्य कर रही है । सम्पूर्ण कविता अप्रतिम ओज, पौरुष और औदात्म से दीप्त है । वीर एवं शृंगार के अतिरिक्त शांत और अद्भुत रस का भी आंशिक समावेश हुआ है । `राम की शक्ति पूजा` वीर रस की उत्कृष्ट रचना है तथा गठित वाक्य-विन्यास, लघु कलेवर में यह विशाल भाव अन्तर्निहित किए हुए है ।

संबोध गीति

३१. संबोधन गीतियों का आरम्भ छायावाद युग में ही मुख्यत: दिखाई पड़ता है । यह पाश्चात्य-विधा ओड का हिन्दी रूपान्तर है । कवि संबोध्य को सम्बोधित कर अनेक प्रकार की मूर्त-अमूर्त, प्रस्तुत-अप्रस्तुत योजनाएं कल्पनाएं करता है । `निराला` ने अनेक संबोधन-गीतियों का सृजन -प्रणयन किया है -`यमुना` के प्रति` ,`प्रिया के प्रति` ,`तरंगों के प्रति` ,`जलद के प्रति` ,`प्रपात के प्रति` ,`बासंती`

१- जिस तरह दिन को सिद्ध करने के लिए रात्रि की आवश्यकता है और रात्रि को सिद्ध करने के लिए दिन की, उसी तरह वीर के लिए शृंगार की और शृंगार के लिए वीर की आवश्यकता है । यदि इनमें से एक न रहा तो दूसरा रह ही नहीं सकता । यही रहस्य है और यही सत्य है । वीर्य की आवश्यकता क्यों है ? भोग के लिए -- चाहे राज्यभोग हो या आत्म भोग ।
-- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ३१४

२- वही०, पृ० ३१४

'वसन्त-समीर', 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'मित्र के प्रति' 'खण्डहर के प्रति', 'प्रेम के प्रति' एवं 'प्रिया से' आदि कविताएं सम्बोध गीति के सुन्दर उदाहरण हैं। 'निराला' की सम्बोधित गीतियों में वर्णनात्मक के स्थान पर भावात्मक तथा रागात्मक का आग्रह अधिक है। शैली की दृष्टि से कवि की यह गीतियां भव्य और आलंकारिकता से पुष्ट हैं। प्रकृति सम्बन्धी सम्बोध गीतियों में जड़ में चेतना का आरोप, लक्षणा-व्यंजना का आग्रह, प्रतीकात्मकता, तथा विरोध चमत्कार आदि का समावेश हुआ है। 'तरंगों के प्रति' संबोध गीति में सौन्दर्य और रहस्य का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है। व्यक्तिगत भावनाओं से पूर्ण संबोध गीति के अन्तर्गत 'प्रिया के प्रति' कविता विशेष उल्लेखनीय है। यह कविता पत्नी को लक्ष्य करके लिखी गयी है।

३२. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित 'यमुना के प्रति' सशक्त दीर्घ संबोध गीति है। इसमें द्वापर युगीन गतिविधियों को कल्पना के माध्यम से साकार किया गया है। यमुना तत्कालीन क्रिया-कलापों की साक्षी रही हैं। कवि ने उसे जीवित व्यक्तित्व के रूप में उभारा है --

बता कहां अब वह बंशी वट ?
कहां गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दा धाम ?[1]

कवि प्रश्नकर्ता के रूप में हमारे सम्मुख आता है, ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह प्रत्यक्ष रूप से यमुना से वार्तालाप कर रहा हो। यमुना स्वयं संवेदनशील श्रोता के रूप में चित्रित की गयी है, जिससे नाटकीयता का सहज समावेश हो सका है --

तू किस विस्मृति की वीणा से
उठ उठकर कातर झंकार
उत्सुकता से उकता-उकता
खोल रही स्मृति के दृढ़ द्वार ?
+ + +

१- निराला : परिमल 'यमुना के प्रति', १९६३, लखनऊ, पृ० ४३।

अलस प्रेयसी सी स्वप्नों में
प्रिय की शिथिल सेज के पास
लघु लहरों के मधुर स्वरों में
किस अतीत का गूढ़ विलास ?[1]

३३. `यमुना के प्रति` कविता में वर्तमान और अतीत दोनों कालों को मुर्त किया गया है । यमुना प्रतीक रूप में ही चित्रित की गई है । कवि का लक्ष्य मात्र पौराणिक गौरव गाथा का ही आख्यान करना नहीं था, वरन् अतीत की गौरव गाथा का उद्घोष करते हुए, वर्तमान यमुना को अतीत का अवलोकन करते को प्रस्तुत करना भी है । यहां पर यमुना भारत की सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना की प्रतीक बन कर उपस्थित हुई है । साधारणतया `निराला` की संबोध गीतियों का चयन गम्भीर विषयों के अन्तर्गत ही हुआ है । और आकारगत सीमारेखा इन संबोध गीतियों में नहीं परिलक्षित होती है । एक तरफ यदि `यमुना के प्रति` दीर्घ संबोध गीति है, वहां `प्रिया के प्रति` लघु संबोध गीति भी उपलब्ध हो जाती है ।

शोक गीति

३४. शोक गीति में वैयक्तिक अभाव की तीव्रानुभूति उद्वेगपूर्ण विषाद, अपरिमित पीड़ा की कारुणिक शोकाविष्ट अभिव्यक्ति रहती है । अत्यधिक वैयक्तिकता का आग्रह होने के कारण इसमें गीति काव्यात्मकता का स्वभावत: समावेश हो जाता है । शोक गीति का उत्कृष्ट उदाहरण `सरोज स्मृति` है । यह `निराला` की एकमात्र कन्या सरोज की मृत्यु पर प्रकट की गई कवि के हृदय की आर्त पुकार है । दु:ख के इस वज्रापात से उसका वज्रादपि कठोर हृदय का भी दात-विदात हो उठा था । शोकाकुल हृदय की वेदना को वह रोक न सका और उसके वेदनासिक्त हृदय की अश्रुधारा `सरोज स्मृति` में साकार हो उठी । आलम्बन से नैकट्य का सम्बन्ध होने के कारण इसमें अनुभूति की प्रगाढ़ता, हार्दिकता, हृदय का आवेग और उच्छ्वास देखा जा सकता है । इस दु:ख की आवेगमयी स्थिति में `निराला` अपने व्यक्तिगत जीवन के बहुत से महत्वपूर्ण आवरणों को उघाड़ कर रख देते हैं ।

१- वही०, पृ० ४५ ।

`सरोज` की मृत्यु पर ही वस्तुत: कवि को जगत की असारता का आभास मिलता है । यह ऐसा अभाव था जिसने उसके जीवन को झकझोर कर रख दिया । कवि अपने जीवन का प्रत्यालोकन करने लगता है, जिसमें वह अपने जीवन के बहुत से अनौद्घाटित पृष्ठों को खोल देता है । इतना सहज और स्वत: प्रेरित आत्मद्रव और किसी शोक गीति में इतनी सहजता से नहीं प्राप्त होता है । वैयक्तिक आत्मद्रव होते हुए भी कवि अत्यधिक भावनात्मक नहीं हो गया है, वरन उसकी स्वभावगत तटस्थता यहां पर भी दृष्टव्य है ।

लोक गीत

३५. लोक गीतों के भाव अनुसरण पर लिखित `निराला` के अनेक गीत प्राप्त होते हैं । उनकी यह प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही परिलक्षित होती है । लोकगीतों की प्रकृत संवेदना, तन्मयता और तीव्रता `गीतिका` के गीतों में भी दिख जाती है । `नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली`[1] लोक गीत की भावमयता से युक्त गीत में प्रेमी-प्रेमिका मिलन ब होली के माध्यम से व्यक्त किया गया है । `मार दी तुझे पिचकारी`[2] गीत भी रंगमयता और आवेग से मंडित है । इसमें लोकगीतों का प्रकृत श्रृंगार दिखायी पड़ता है । ~~खेलूंगी कभी न होली~~

खेलूंगी कभी न होली
उससे जो नहीं हमजोली[3] ।

गीत की इसी परम्परा में आता है । लोक गीतों की प्रचलित शैली के अन्तर्गत होली, कजली आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । सावन मास में जो लोक गीत गाये जाते हैं, उन्हें कजली या कजरी कहते हैं । कजली के गीतों में श्रृंगार रस की मात्रा प्रचुर परिमाण में पायी जाती है । लेकिन `निराला` ने कजली और लोक गीतों

१- निराला : गीतिका , १६६१, इलाहाबाद, गीत ४१, पृ० ४६

२- वही०,पृ० ६०

३- निराला : अर्चना, १६६२, प्रयाग, पृ० ५० ।

की धुनों में देश की तत्कालीन परिस्थितियाँ तथा जनता की दुरावस्था को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । `निराला` की कजलियों में जन - संवेदना का स्वर उभरा है । कजली की लय पर लिखा यह गीत द्रष्टव्य है --

काले काले बादल आए, न आए वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मंडलाए, न आए वीर जवाहरलाल ।

\+ + +

मंहगाई की बाढ़ बढ़ गई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आए वीर जवाहर लाल ।

\+ + +

कैसे हम बच पाए निहत्थे, बहते गए हमारे जत्थे
राह देखते हैं भरमाये, न आए वीर जवाहरलाल ।[1]

इस कजली का विषय देश की विषम परिस्थितियां हैं । मंहगाई की बढ़ती हुई बाढ़, गांठ के पैसे का छूटना, नंगी-भूखी जनता का खड़ा होना ही इस कजली का विषय है । `टूटी बांह जवाहर की`[2] गीत भी लोक गीत की लय पर लिखा गया है । `निराला` के सभी प्रकार के विषयों को लोक गीतों में प्रयुक्त किया है । सामयिक कतिपय समस्याएं भी उभर कर आयी हैं ।

३६. `निराला` के लोक गीतों में लोक गीतों की भावगत प्रकृत मधुरता एवं सहजता तो मिलती है, लेकिन लोकगीतों की प्रचलित अनगढ़ शैली का नितान्त अभाव है । इन गीतों की भाषा-शैली आलंकारिक और परिष्कृत है । लोक गीतों की शैली की सरलता -तरलता और मादकता इन गीतों में नहीं मिलती है । भावगत साम्य तो है लेकिन शैलीगत साम्य का एकांत अभाव है । `ठानना न करो`, `घन आए घनश्याम न आए`, `बादल रे जी तड़पे` आदि गीत जन गीतात्मकता और माधुर्य से पूर्ण है । `गीतिका` के पांचवे गीत में लोकगीतों की नायिका का अपने प्रियतम के प्रति अगाध भावनात्मक आवेग देखा जा सकता है --

तुम्हीं हृदय के सिंहासन के
महाराज हो, तन के, मन के,
मेरे मरण और जीवन के
कारण जाम पिये ।[3]

१- निराला : बेला, १९६२, प्रयाग, पृ० ५४
२- वही०, पृ० ५५
३-गीतिका, १९६१, प्रयाग, पृ०७

जन परम्परा का निर्वाह `टेक` का प्रयोग भी इनके भक्ति गीतों में मिलता है --

दो सत्संग मुफको
अनल से पीछा छूटे
तन हरे अमृत का रंग, मुफको[1] ।
+ +
पतित पावनी गंगे[2] ।

गज़ल
-----

३७. `निराला` के साहित्यिक जीवन में प्रयोगशील रहे । गजलों का प्रणयन भी इनका नवीन प्रयोग ही है । यद्यपि इस प्रयोग में उसको विशेष सफलता न मिल सकी । गजलों का प्रयोग `बेला` नामक संग्रह में मिलता है, जिसके आवेदन में कवि ने स्वयं स्वीकार किया है, ``बेला` मेरे नये गीतों का संग्रह है । प्राय: सभी तरह के गेय गीत इसमें हैं । भाषा सरल तथा मुहावरेदार है । गद्य करने की आवश्यकता नहीं । देशभक्ति के गीत भी हैं । बढ़कर नयी बात यह है कि अलग अलग बहरों की गजलें भी हैं जिनमें फारसी छन्द शास्त्र का निर्वाह किया गया हैं गजलों के माध्यम से `निराला` ने उर्दू शैली और हिन्दी शैली का समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है । हिन्दी-उर्दू का मिला-जुला सौन्दर्य इनके गीतों में मिलता है ।

३८. `गज़ल` में एक ही भाव पर अनेक प्रकार की उक्तियां कहने की प्रवृत्ति रहती है और विषय की दृष्टि से प्रेम पर आग्रह अधिक दिया जाता है यथा---

हंसी के तार के ये होते हैं ये बहार के दिन ।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन ।
निगह रुकी केशरों की वेशिनी ने कहा,
सुगन्ध भार के होते हैं ये बहार के दिन ।

१- अर्चना, १९६२, प्रयाग, पृ० ३७
२- वही०, पृ० ११२

३०

नवीनता की आंखें चार जो हुई उनसे
कहा कि प्यार के होते हैं ये बहार के दिन[1] ।

कल्पना का वैभव, भावों की मार्मिकता, गागर में सागर भरने का प्रयास, कोमलता तथा भाषा की मुहावरेदानी गज़ल की मुख्य विशेषता होती है ।

वह चलने से तेरे छुटा जा रहा है
उसी से दम घुटा जा रहा है ।[2]

+ +

गिराया जमीं हो कर , छुटाया आसमां होकर
निकाला दुश्मने जां और बुलाया मेहरबां होकर ।[3]

३६. गज़लों की शैली पर लिखे गीत सहज और सरल हैं । हिन्दी शब्दावली में भी गज़ल का रूप मिलता है --

संकोच को विस्तार दिये जा रहा हूं मैं,
छन्दों को विनिस्तार दिये जा रहा हूं मैं ।
प्रस्तार को प्रस्तार दिये जा रहा हूं मैं,
जैसे विजय को हार दिये जा रहा हूं मैं ।[4]

एक ही कविता के विविध अंशों में यदि एक बन्ध में शुद्ध उर्दू की छटा है, तो दूसरे अंश में हिन्दी उर्दू का मिश्रण तो तीसरे में संस्कृत उर्दू की बेमेल खिचड़ी इस तरह का प्रयोग सफल प्रयोग नहीं है --

निगह तुम्हारी थी
दिल जिससे बेकरार हुआ ।
मगर मैं गैर से मिल कर
निगह के पार हुआ ।

+ + +

१- निराला : बेला , १६६२, प्रयाग, पृ० ३१
२- वही०, पृ० ६७
३- वही०, पृ० ७०
४- वही०, पृ० ६३ ।

अंधेरा छाया रहा
    रौशनी की माया में
कहीं न छाया का आंचल
    न तार तार हुआ ।
+ +
वहीं नवीना सजी और
    वहीं बजी वीणा
शराबी प्याले का अब तक
    न बहिष्कार हुआ ।[1]

वस्तुत: उर्दू का प्रयोग करते हुए भी वातावरण हिन्दी का ही प्रतीत होता है । अत: `निराला` का यह प्रयोग,प्रयोग मात्र ही माना जायगा , कोई विशेष उपलब्धि नहीं ।

पत्र- गीति

४०. `निराला` द्वारा प्रणीत दो `पत्र-गीतियां` उपलब्ध हैं -- एक `महाराज शिवा जी का पत्र` तथा दूसरी `हिन्दी सुमनों के प्रति पत्र` । इन दोनों गीतियों में आकारगत अन्तर पर्याप्त है । `हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र` का प्रेषक कवि स्वयं है, लेकिन महाराज शिवा जी के पत्र का प्रेषक तथा प्रेष्य दोनों ऐतिहासिक पात्र हैं -- परन्तु प्रेषक के साथ कवि का इतना हार्दिक तादात्म्य स्थापित हो गया है कि शिवा जी तथा कवि दोनोंभिन्न व्यक्तित्व नहीं प्रतीत होते । वैयक्तिता बनाये रखना ही गीति-तत्व की सफलता है । महाराज शिवा जी के हृदय में उद्भूत उद्वेग, ग्लानि, आत्मद्रव और द्वन्द्व स्वयं कवि का ही प्रतीत होता है, ऐसा लगता है ,`निराला` और शिवा जी का स्पन्दन एकाकार हो गया है, तभी तो वह इतनी उत्कृष्ट पत्र-गीति का सृजन करने में सफल हो सके ।

४१. शिवा जी अपने जातीय भाई जयसिंह के हृदय में देशभक्ति,जातीय-भावना और आत्म सम्मान को जाग्रत करने हेतु पत्र-लेखन को प्रवृत्त होते हैं -- इसके

१-वही०, पृ० ३७

लिए `निराला` पृष्ठभूमि में घटित अनेक घटनाओं को समेटते हैं , यवनों के विभिन्न षड्यन्त्र और कूटनीतिज्ञ चालें जिसके कि स्वयं शिवा जी भी शिकार हुए थे, कथात्मकता लाने में सफल होते हैं । अत: कविता का आख्यानात्मक रूप बना रहता है । शिवा जी के हृदय का द्वन्द्व एवं संघर्ष स्वयं कवि का संघर्ष है । प्रेष्य जातीय भाई होते हुए भी शत्रु के रूप में चित्रित है ,फिर भी पत्र में अपनत्व का भाव बराबर बना रहता है । मानों कोई अपने निकट सम्बन्धी को दुष्कृत्य के लिए उसे ताड़ना, व्यंग्य प्रहार और तथाकथित अकार्य को न करने के लिए हार्दिक अनुनय विनय कर रहा हो । अनुनय-विनय के आग्रह के साथ एकाएक `निराला`का आक्रोश उद्वेलित हो उठता है और वह कटु व्यंग्य कर बैठते हैं --

क्या कहता चित्तौर गढ़ ?
मढ़ गए ऐसे तुम तुर्कों पर ?
करते अभिमान भी किन पर ?
विदेशियों-विधर्मियों पर
काफिर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे
विजित भी न होंगे तुम और गुलाम भी नहीं
कैसा परिणाम भी यह सेवा का
लोभ भी न होगा तुम्हें मेवा का महाराज ।[1]

ऐसी व्यंग्यात्मक उक्तियां ही जयसिंह की सुप्त जातीय, राष्ट्रीय भावना उभाड़ने में समर्थ हो सकती थीं । वार्तालाप की सहजता, तर्क-वितर्क, व्यंग्य प्रहार सभी का स्वभाविक संचयन किया गया है । नाटकीयता के लिए भी पर्याप्त अवकाश है --

हाय री यशोलिप्सा ।
अंधे की दिवस तू --
अंधकार रात्रि-सी ।[2]
\+ +
हाय री दासता ।
पेट के लिए ही --
लड़ते हैं भाई इ - भाई --
कोई तुम ऐसा भी कीर्तिकामी ।

१- परिमल, १९६१, लखनऊ, पृ० २०२-२०३ ।
२- वही०, पृ० १९४-१९७ ।

४२. पत्र-प्रेषक के हृदयगत आलोड़न-विलोड़न, भावगत परिवर्तन की अभिव्यक्ति दी गयी है । सब प्रकार की ताड़ना, व्यंग्य प्रहार, कटु आक्षेपों के पश्चात् भी प्रेषक अपने शत्रु प्रेष्य के प्रति आत्मीय भाव बनाए रखता है --

अगर निज नाम से,
बाहुबल से , चढ़कर
तुम आते कहीं दक्षिण में
विजय के लिए वीर,
पत्र- से प्रभात के
इन नयन-पलकों को
राह पर तुम्हारी मैं
सुख से बिछा देता --
सीस भी झुका देता सेवा में,
साथ भी होता वीर,
रक्षक शरीर का, हम रकाब
साथ लेता सेना निज,
सागराम्बरा भूमि
क्षत्रियों की जीत कर,
विजय सिंहासन-श्री
सौंपता ला तुम्हें मैं --
स्मृति-सी निज प्रेम की ।[१]

`पत्र-गीति` की आत्मीय शैली की स्थापना में `निराला` को अद्भुत सफलता मिली है ।

चतुर्दशपदी

४३. सौनेट यूरोप का १४ पदों का प्रसिद्ध काव्यरूप है । चौदह पदों से निर्मित होने के कारण हिन्दी में इसको चतुर्दशपदी नाम से अभिहित किया गया है ।

१- वही०, पृ० १९५-१९६ ।

सानेट में अधिक महत्व उसमें प्रयुक्त चरणांत अन्त्यानुप्रास के क्रम का होता है। `निराला` ने कतिपय प्रयोग इस विधा में भी किए हैं -- यथा `संत कवि रविदास जी के प्रति` तथा `महादेवी वर्मा के प्रति` आदि उल्लेखनीय चतुर्दशपदियां हैं। इन समस्त चतुर्दशपदियों का अन्त्यानुक्रम अ ब अ ब के क्रम से चलता है। वस्तुत: कवि ने चतुर्दशपदी में सात द्विपदियों का ही प्रयोग किया है जो सानेट का सबसे साधारण रूप माना जाता है।

वृत्त लेखन

४४. साहित्य वांगमय की प्रत्येक विधा का `निराला` ने स्पर्श किया है। `राम की शक्ति पूजा`, `यमुना के प्रति`, `बादल राग` के कवि `निराला` को सम सामयिक कवियों और लेखकों के साथ-साथ भक्त चर्मकार रैदास आदि का प्रशस्ति अंकन करते हुए भी देखा जा सकता है। वह केवल आलंकारिक, प्रतीकात्मक योजनाएं ही नहीं, करता वरन् वृत्त लेखन जैसी वर्णनात्मक अकाव्यात्मक कविताएं भी लिख सकते हैं। वस्तुत: सम सामयिक कवियों एवं लेखकों की स्मृति हेतु लिखित यह प्रशस्ति अंकन इतिवृत्तात्मक शैली में ही लिखे गए हैं। संत कवि रविदास के प्रति श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए गए हैं। आरम्भ से ही कवि जातीय अहम्न्यता का विरोधी रहा। वह रैदास की जातीय हीनता की ओर अग्रसर न होकर अगाध भक्ति और चिन्तन से प्रभावित होते हैं और भक्ति के अजस्र स्रोत चर्मकार रविदास के प्रति वह नतमस्तक हो उठते हैं --

`........................ रहे
कर्म के अभ्यास में अविरत बहे
ज्ञान गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार
चरण छू कर कर रहा मैं नमस्कार।`[१]

`निराला` ने अपने कटु आलोचक रामचन्द्र शुक्ल को भी स्मरण किया है। साहित्यिक क्षेत्र में उनके अन्यतम देय को उन्होंने अनुभूत किया है और उनको समालोचना के अमा निशापूर्ण अम्बर पर दिव्य कलाधर की उपमा से उपमित किया है

१- निराला : `अणिमा`, १६४३, उन्नाव, पृ० २५।

सानेट में अधिक महत्व उसमें प्रयुक्त चरणांत अन्त्यानुप्रास के क्रम का होता है । `निराला` ने कतिपय प्रयोग इस विधा में भी किए हैं -- यथा `संत कवि रविदास जी के प्रति` तथा `महादेवी वर्मा के प्रति` आदि उल्लेखनीय चतुर्दशपदियां हैं । इन समस्त चतुर्दशपदियों का अन्त्यानुक्रम अ ब अ ब के क्रम से चलता है । वस्तुत: कवि ने चतुर्दशपदी में सात द्विपदियों का ही प्रयोग किया है जो सानेट का सबसे साधारण रूप माना जाता है ।

वृत्त लेखन

४४. साहित्य वांगमय की प्रत्येक विधा का `निराला` ने स्पर्श किया है । `राम की शक्ति पूजा` , `यमुना के प्रति` , `बादल राग` के कवि `निराला` को सम सामयिक कवियों और लेखकों के साथ-साथ भक्त चर्मकार रैदास आदि का प्रशस्ति अंकन करते हुए भी देखा जा सकता है । वह केवल आलंकारिक, प्रतीकात्मक योजनाएं ही नहीं, करता वरन् वृत्त लेखन जैसी वर्णनात्मक अकाव्यात्मक कविताएं भी लिख सकते हैं । वस्तुत: सम सामयिक कवियों एवं लेखकों की स्मृति हेतु लिखित यह प्रशस्ति अंकन इतिवृत्तात्मक शैली में ही लिखे गए हैं । संत कवि रविदास के प्रति श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए गए हैं । आरम्भ से ही कवि जातीय अहमन्यता का विरोधी रहा । वह रैदास की जातीय हीनता की ओर अग्रसर न होकर अगाध भक्ति और चिन्तन से प्रभावित होते हैं और भक्ति के अजस्र स्रोत चर्मकार रविदास के प्रति वह नतमस्तक हो उठते हैं --

`......................... रहे
कर्म के अभ्यास में अविरत बहे
ज्ञान गंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार
चरण छू कर कर रहा मैं नमस्कार ।[१]

`निराला` ने अपने कटु आलोचक रामचन्द्र शुक्ल को भी स्मरण किया है । साहित्यिक क्षेत्र में उनके अन्यतम देय को उन्होंने अनुभूत किया है और उनको समालोचना के अमा निशापूर्ण अम्बर पर दिव्य कलाधर की उपमा से उपमित किया है

१- निराला : `अणिमा`, १६४३, उन्नाव, पृ० २५ ।

प्रसाद तथा महादेवी को भी वह स्मरण करते हैं । प्रसाद जी को तो वह हिन्दी के जीवन की मान्यता प्रदान करते हैं --

हिन्दी के जीवन हे
पिया गरल, पर किया जाति-साहित्य को अमर[1] ।

प्रसाद के सम्पूर्ण जीवन का आलेखन षट्‌ऋतु के माध्यम से आकलित किया गया है । तत्कालीन अनेक सम सामयिक कवि कवयित्रियों का नामोल्लेख उस कविता में आया है । महादेवी वर्मा कवि ने विदुषी की संज्ञा दी है --

दिये व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रचकर
विदुषी रहीं विदूषक के सम्मुख तुम तत्पर
हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा वाणी
स्फूर्ति - चेतना रचना की प्रतिमा कल्याणी[2] ।

विजयलक्ष्मी पंडित पर भी `निराला` के दो प्रशस्ति-अंकन हैं --एक हिन्दी तथा एक बंगला में । `स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज` पर लिखित कविता वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक है । इसमें उन्होंने जातिवाद तथा धार्मिक वितण्डावाद पर प्रहार किया है । काव्यात्मक दृष्टि से यह कविताएं अधिक श्रेष्ठ न होते हुए भी उपयोगी और महत्वपूर्ण हैं । कवि की अपने सम सामयिक साहित्यकारों के प्रति आत्मीय भावना का स्फुरण हुआ है ।

व्यंग्य गीतियां

४५. `निराला` की व्यंग्य गीतियां पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हैं -- उदाहरण के लिए `कुकुरमुत्ता` ,`खजोहरा`,`मन बेलो तथा `गर्म पकौड़ी` प्रभृति कविताओं को ले सकते हैं । इन व्यंग्य गीतियों में वर्ग वैषम्य, सामाजिक रूढ़ मान्यताओं, विकृतियों के साथ-साथ मानव चरित्र की दुर्बलताओं पर व्यंग्य परिहास किया गया है । वस्तुत: इन व्यंग्य गीतियों को `निराला` ने सुधारवादी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही लिखा था । मुख्य बात तो यह है कि इनको व्यंग्य

१- वही०, पृ० २७
२- अणिमा, पृ० ५३

गीतियां हास-परिहास में ही मार्मिक व्यंग्य प्रहार करने में असाधारण रूप से सक्षम हैं ।

गीत

४६. गीतों की सृजना `निराला` ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है । निस्सन्देह वह इस क्षेत्र में पर्याप्त सफल भी रहे । राग-रागिनी से पुष्ट एवं दार्शनिकता से भास्वित इन गीतों में कलात्मक सौन्दर्य, एकतानता और समाहार परिलक्षित होता है । कहीं बिखराव नहीं, उलझाव नहीं -- अपूर्व सहजता और औदात्य से यह गीत अभिमण्डित है । छोटे-छोटे चित्रों को इन गीतों में मूर्त किया गया है । विषयवस्तु की दृष्टि से भी इनके गीतों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है । स्थूल रूप से इनके गीतों को राष्ट्रीय, शृंगारिक, प्रार्थनापरक, प्रकृति सम्बन्धी, प्रगतिशील तथा प्रयोगात्मक श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है । शृंगारिक गीतों में नारी रूप -चित्रण के साथ प्रकृति भी सहायक हुई है । वस्तुत: प्रकृति पर नारी भाव का आरोपण कर चित्रण किया गया है । `प्रिय यामिनी जागी` गीत में प्रकृति पर नारी भाव का आरोपण कर शृंगार भाव को पुष्टि मिली है । `स्पर्श से लाज लगी`, `नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली` शृंगारिक गीतों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । कतिपय शृंगारिक गीतों में लोक गीतों की धुनों का समावेश होने से प्रभावोत्पादकता और हृदय ग्राह्यता का सहज स्फुरण हो सका । बारहमासे की परम्परा पर विरहिणी की विभिन्न मानसिक दशाओं की अभिव्यक्ति के लिए चतुर्मास के चार महीने (आषाढ़, सावन, भादों, क्वार) को माध्यम बनाया गया है । `बांधो न नाव इस ठांव बंधु` इस श्रेणी का बहुत ही लोकप्रिय गीत है । इसमें भावों की उच्चता और अनुभावों का सुन्दर चित्रण हुआ । `अणिमा` के `हुमदल शोभी फुल्ल नयन यह` गीत में भी स्वस्थ, सन्तुलित शृंगार की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है । `निराला` के शृंगारिक गीतों की प्रधान विशेषता है कि इनमें स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता मनःपरता का आधिक्य देखने को मिलता है । यही कारण है कि `नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली` तथा `स्पर्श से लाज लगी`, आदि गीतों में यौवन का उद्दाम आवेग और वासनात्मक चित्रण होते हुए भी अपूर्व दार्शनिक औदात्य का संकेत मिलता है । संयोगावस्था के चित्रों में भी अन्यतम तटस्थता का समावेश हुआ है । वस्तुत: लौकिक

क्रियाओं का अंत `निराला` ने अलौकिक पर्यवसान में किया है । यही कारण है कि `निराला` के शृंगार से पुष्ट गीत वासनात्मक उद्रेक में सहायक नहीं होते ।

४८. कवि के प्रकृति सम्बन्धी गीत सालंकारिक सौन्दर्य से अभिमंडित हैं । उनके प्रकृति सम्बन्धी गीतों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वसंत, वर्षा, शरद उनकी प्रिय ऋतुएं थीं । `सखि वसंत आया`, `घन गर्जन से भर दो वन`, `द्रुत बलि ऋतुपति के आए,` `बादल में आए जीवन धन`, तथा `रुखी री यह डाल वसन वासंती लेगी` प्रभृति गीत इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । `निराला` के प्रकृति सम्बन्धी गीतों में एक सा भाव, स्वर मुखरित हुआ हो, ऐसा नहीं, इनके प्रारम्भिक प्रकृति गीतों में आलंकारिक चित्रण के साथ अप्रतिम सूक्ष्मता, भास्वरता, उमंग और उल्लास भी परिलक्षित होता है । वहां बाद के प्रकृति सम्बन्धी गीतों में सरलता, सहजता और यथातथ्य चित्रण अधिक हुआ है । इन ऋतु गीतों में लोक गीतों की प्रणाली पर प्रणीत होली-वर्णन सम्बन्धी गीतों को भी ले सकते हैं ।

४९. `निराला` के विनय परक गीतों में मानवमात्र के प्रति मांगलिक भावस्फुरित हुआ है[१] । वह स्वयं के उद्धार की ही अपेक्षा नहीं करते, वरन् अपनी आराध्या से प्राणिमात्र के स्वार्थों की बलि की प्रार्थना भी करते देखे जा सकते हैं,[२] तथा साधना-पथ पर अग्रसर होने के लिए बल और साहस की कामना भी करते हैं । `निराला` के प्रारम्भिक विनयपरक गीतों में जहां जन-कल्याण की भावना का आधिक्य है, वहां बाद के आत्मपरक गीतों में आत्मसमर्पण और आत्म निवेदन था । वस्तुत: बाद के गीतों का स्वर अधिक आर्द्र और करुणापूरित है । जीवन के संघर्षों से श्रांत क्लांत कवि भगवान की शान्तिमयी गोद में अभय हो जाना चाहता है । राष्ट्रीय गीतों की दृष्टि से `भारति जय विजय करे` तथा `जागो जीवन धनि के` आदि गीत पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं । राष्ट्रीय गीतों में भारत

१- सार्थक करो प्राण
जननि दु:ख अवनि को
दुरित से दो त्राण । (गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, पृ०५८)

२- नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर मां
— वही०, पृ० २२ ।

के गौरव का ही आख्यान नहीं है , वरन् राष्ट्र की पतितावस्था एवं दुरावस्था को भी मूर्त करते हुए स्वस्थ, सुन्दर भविष्य की कामना की गयी है । `निराला` के राष्ट्रीय गीतों में राष्ट्रीय गीतों के समस्त तत्वों का समाहार हो जाता है । सबसे प्रधान विशेषता यह है कि यह सार्वजनिक रूप से गाये भी जा सकते हैं ।

५०. शृंगार, प्रकृति, आत्मपरक गीतों के अतिरिक्त कवि ने कतिपय सामाजिक विषमताओं और विकृतियों को केन्द्रबिन्दु बनाकर गीतों का सृजन किया है । ऐसे गीतों के अन्तर्गत `मानव जहां बैल घोड़ा है`, `ऊंट बैल का साथ हुआ है` आदि गीतों को उदाहरणस्वरूप ले सकते हैं । कुछेक गीत `निराला` ने प्रयोगात्मक शैली में भी लिखे हैं । मुख्यत: उर्दू की गज़ल शैली का ही प्रयोग किया गया है । यह प्रयोग मात्र ही हैं तथा इनमें कवि को आंशिक सफलता ही मिली है । इन गीतों में हिन्दी-उर्दू, संस्कृत, फारसी का मिश्रित रूप मिलता है । कवि की स्वर-साधना अप्रतिम थी । उनके गीतों में समस्त विषयों और सब स्वरों का समारोह एक साथ मिल जाता है ।

गीति-नाट्य : `पंचवटी-प्रसंग`

५१. `पंचवटी प्रसंग` का प्रणयन गीति नाट्य की पद्धति पर हुआ है । गीति नाट्य की दो प्रधान शैलियां हैं -- प्रथम, मूक अभिनयात्मक, दूसरी, संवादात्मक । `निराला` का `पंचवटी प्रसंग` संवादात्मक शैली का प्रतिनिधित्व करता है । यह बंगला के यात्रा नाटकों का प्रभाव परिलक्षित करता है । जिसका अभिनय उन्मुक्त प्रांगण में होता है । स्वयं `पंचवटी-प्रसंग` का रंगमंच अनलंकृत है, रंगमंच की व्यवस्था के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की स्थापना नहीं की गई है । प्रस्तुत गीति-नाट्य में नाट्य तत्वों का आधिक्य नहीं । नाट्य तत्वों में से मुख्यत: संवाद और स्वगत का ही समावेश किया गया है । नाटकीय क्रिया-व्यापारों, संघर्षपूर्ण परिस्थितियों और घटनाओं के वैचित्र्य का अंशत: ही प्रयोग हुआ है । अंतिम दृश्य में कार्य-व्यापार और संघर्ष योजना से सघनता सम्भव हो सकी है । लेकिन वहां भी घटनाओं तथा कार्य व्यापार की सूचना मात्र दे दी गई है । प्रत्यक्ष घटनाओं के घटित होने का संकेत नहीं दिया गया है और न घटनाओं और कार्य व्यापार को विस्तार प्रसार देने का प्रयास ही ।

५२. प्रस्तुत गीति-नाट्य की अवतारणा मुक्त छन्द में हुई है। मुक्त छन्द की सृष्टि `निराला` ने अभिनय की स्वाभाविकता की दृष्टि में रखकर ही की थी, यही कारण है कि `पंचवटी प्रसंग` के कथोपकथनों में सहजता और स्वाभाविकता है। दो या दो से अधिक पात्रों के वार्तालाप से कथावस्तु अग्रसर होती है। मुक्त छन्द में प्रणीत होने के कारण कथावस्तु में अबाध गति का समावेश हो सका है। लोक नाट्य की पद्धति पर आधारित होते हुए भी कवि ने इसे काव्यात्मक औदात्य देने में सफलता पाई है। भाषा-शैली और चरित्रांकन की रेखाएं साहित्यिक स्तर की हैं। राम और सीता की मधुर स्मृतियां, लक्ष्मण की भक्ति-भावना, शूर्पणखा का दर्पपूर्ण सौन्दर्य चिन्तन आदि स्थितियों को काव्यात्मक स्फुरण मिला है। संवाद कवित्वपूर्ण, सप्राण और प्रभावोत्पादकता से अभिमंडित है। लेकिन जहां दर्शन की व्याख्या हुई है, वहां अवश्य कुछ नीरसता शुष्कता आ गई है। गीतमय स्वर आद्योपान्त वर्तमान है। पाठ्य-सौन्दर्य इसकी विशेषता है। `निराला` ने लोक नाट्य की पद्धति को साहित्यिक स्तर पर स्थापित करने का प्रयास किया है और उनको इसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

५३. रामायण का प्रसिद्ध शूर्पणखा प्रसंग ही `पंचवटी प्रसंग` की विषयवस्तु है। कथावस्तु का विभाजन पांच दृश्यों में किया गया है। प्रथम दृश्य में राम और सीता के परस्पर वार्तालाप के माध्यम से अनुसूया-प्रसंग तथा भरत और लक्ष्मण की चरित्रगत गुणों पर प्रकाश पड़ता है। द्वितीय भाग में लक्ष्मण का पुष्प चयन करते समय मां सीता के प्रति अगाध भक्ति का संकेत जो प्रच्छन्न रूप से लक्ष्मण के व्यक्तित्व को ही स्पष्ट करता है। यह दृश्य लक्ष्मण के आत्म-भाषण से युक्त है। तृतीय दृश्य में शूर्पणखा का स्वयं के सौन्दर्य से अभिभूत मनोवैज्ञानिक चित्रण है। नारी मनोविज्ञान का काव्यात्मक रूप से विवेचन किया गया है। शूर्पणखा आत्मरति में लीन अपने सौन्दर्य ~~में-लीन-अपने-सौन्दर्य~~ पर मुग्ध है। चतुर्थ दृश्य में राम और लक्ष्मण का बौद्धिक चिन्तन युक्त वार्तालाप एवं अद्वैत दर्शन की ही व्याख्या हुई है -- प्रलय, सृष्टि इत्यादि सूक्ष्म तत्वों की विवेचना की गई है। अंतिम दृश्य में शूर्पणखा का स्वगत कथन, राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य से आकर्षित हो उनके प्रति प्रणय निवेदन और विकलांग होने की सूचना दी गई है।

५४. `पंचवटी-प्रसंग` के पौराणिक आख्यान को भी कवि द्वारा नवीन संस्पर्श मिला है । नारी पात्रों में विशिष्टता है । सीता परम्परागत चरित्रगत मान्यता के विपरीत अधिक मुखर और स्वाधीन भावनाओं से पूर्ण है । नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव इस दृष्टि से `निराला` पर देखा जा सकता है । वन का उन्मुक्त वातावरण राजमहल के बन्धनयुक्त वातावरण से सीता को अधिक भाता है --

`..... कहां वंदिनी थी
और यहां खेलती हूं मुक्त खेल
साथ हो तुम
और कहां इतना सुअवसर मुझे मिल सकता
और कहां पास बैठ देखती मैं
चंचल तरंगिणी की तरल तरंगों पर...`[१]

तत्कालीन समाज में जब कि नारी के प्रति अपूर्व सम्माननीय भाव था, तथा वह गृह में रहकर त्यागमय जीवन व्यतीत करने में ही आनन्द पाती थी । उस समाज की सीता का यह वन्दिनी का विचार आधुनिकता की छाप से युक्त है ।`पंचवटी - प्रसंग` में शूर्पणखा का चरित्र`निराला` की अपूर्व देन है । परम्परागत कल्पना और धारणा के विपरीत शूर्पणखा को अनिन्द्य सुन्दरी नारी के रूप में चित्रित किया गया है । वह स्वयं अपने रूप सौन्दर्य पर आसक्त है --

`सृष्टि भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाग
खींच कर विधाता ने भरा है इस अंग में ....
सत्य है कि ऐसी ललाम वम वामा चित्रित नहोंगी कभी[२] ।

~~की-मयी- । -कभी~~ कवि ने उसके रूप-सौन्दर्य का शृंगार नवीन उपमानों से किया है । इसके अतिरिक्त उसका सौन्दर्य इतना अनुपम है कि --

छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियों का
देवों-भोगियों की तो बात ही निराली है[३] ।

१- निराला : परिमल , पंचवटी प्रसंग, १९६३, लखनऊ, पृ० २१४ ।
२- वही०, पृ० २२३ ।
३- वही०, पृ० २२५ ।

ऐसे अपूर्व सौन्दर्य के साथ शूर्पणखा को गर्व होना स्वाभाविक ही है । शूर्पणखा का चरित्र-चित्रण पूर्णतया मनोवैज्ञानिक धरातल पर आधारित है, सीता को राम के साथ देखकर उसके हृदय में प्रश्न उठता है --

सुन्दरी सुकुमारी है
किन्तु क्या मुझसे भी ? [1]

राम के पौरुषमय स्वरूप को देखकर वह उनपर आसक्त हो जाती है । राम द्वारा अपने प्रणय का नकारात्मक उत्तर पाकर उसको प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठती है--

दम में दम जब तक है,
काल-नागिनी-सी मैं लगी रहूंगी घात में ।
तुझे भी रुलाऊंगी
जैसा है रुलाया मुझे । [2]

प्रणय इच्छा की पूर्ति न होने पर ऐसी प्रतिक्रिया होना पूर्ण मनोवैज्ञानिक है ।

५५. लक्ष्मण के चिन्तन की विशिष्टता आधुनिक बौद्धिकता से बोझिल है । मां सीता में अगाध भक्ति रखते हुए भी वह मुक्ति की कामना नहीं करता । वह अपने अस्तित्व को अलग ही बनाये रखना चाहते हैं --

सुधाकर की कला में अंशु यदि बनकर रहूं
तो अधिक आनन्द है
अथवा यदि होकर चकोर कुमुदनेशगन्ध
पीता रहूं सुधा इन्दु सिन्धु से बरसती हुई
तो सुख मुझे अधिक होगा
इसमें सन्देह नहीं,
आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है । [3]

१- वही०, पृ० २१२

२- वही०, पृ० २१५

३- वही०, पृ० २२०-२२१

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र परम्परागत ही है । उनका आदर्शमय जीवन नि:स्वार्थ प्रेम का समर्थक है --

छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्र भाव,
यह सत्य है प्रिये,
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही नि:सीम भू पर ।[1]

चरित्र-चित्रण उदात्त भूमि पर रेखांकित किया गया है । लोक नाट्य की पद्धति पर आधारित 'निराला' का यह सफल गीति नाट्य है । व लोक नाट्य का प्रधान आधार काव्यात्मक होता है जिसकी इस गीति नाट्य में प्रधानता है । 'निराला' प्रधानत: प्रगीत कवि हैं । प्रगीति के माध्यम से उनका सम्पूर्ण काव्य-व्यक्तित्व मुखरित हो सका है ।यद्यपि प्रबन्धात्मक काव्य भी कम श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण नहीं, प्रबन्धात्मक कृतियां उनके प्रौढ़ काव्य की प्रतीक हैं ।'निराला' के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य का यह स्थूल विधात्मक विभाजन मात्र प्रस्तुत किया गया है । वस्तुत: कवि की सृजनात्मक प्रक्रिया बहुत व्यापक,वैविध्यपूर्ण एवं प्रयोगात्मक रही है । अतएव रूपात्मक वैविध्य भी स्वाभाविक ही है । अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सूक्ष्म विवेचना और विश्लेषण से और भी कतिपय रूपों की खोज और स्थापना की जा सकती है ।

-0-

१- वही०, पृ० २१५ ।

अध्याय -- ६

काव्य - शिल्प

कला का स्वरूप

१. कला को `निराला` ने बहुत ही व्यापक रूप में स्वीकार किया था। कला मात्र अभिव्यक्ति का सुसम्बद्ध, मनोहर और प्रभावशाली रूप ही कवि द्वारा नहीं मान्य हुआ था, वरन् कला को उन्होंने जीवन्त शाश्वत मानव मुल्य के रूप में मान्यता दी थी, अर्थात् जीने और जिलाने की सुन्दर और शिवत्वमय भावना की पुष्टि को वह कला स्वीकार करते थे, उनकी इसी मान्यता का मुर्त रूप `कला की रूपरेखा` नामक कहानी से सहज ही पुष्ट हो जाता है। `कला की रूप रेखा` कहानी के शीर्षक की सार्थकता सम्पूर्ण कहानी का पारायण करने के पश्चात् ही ज्ञात होती है। कर्मठ,साधनहीन मद्रासी के व्यक्तित्व में कवि कला का जीवन्त स्वरूप साकार पाता है। कला का यही सूक्ष्म और व्यापक रूप कवि की स्थापना थी। काव्य-कला का वास्तविक स्वरूप कवि के मन का सौन्दर्य बोध है और उस सौन्दर्य-बोध को कला-माध्यमों द्वारा तद्वत रूप देना ही वस्तुत: श्रेष्ठ कला है।

२. `निराला` कला को पूर्ण रूप में स्वीकार करते हैं, खण्ड रूप में नहीं। वस्तुत: कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या

ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु उन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है[1]। अतएव कला की दृष्टि से काव्य के सभी लक्षणों पर दृष्टिपात करना उन्होंने आवश्यक माना है । साधारणतया कविता के बहिरंग से सम्बन्धित कौशल को कला का नाम दिया जाता है । काव्यानुभूति की स्थापना के लिए जिन प्रतीकात्मक उपकरणों का समावेश किया जाता है, वे काव्य-कला का निर्माण करते हैं तथा रचना-कौशल की संज्ञा पाते हैं, जिसका सम्बन्ध रचना के विविध अंगों से होता है । काव्य-कला के उपकरणों के अन्तर्गत भावगत उत्कर्ष के साथ-साथ भाषा, छन्द, प्रकृति-चित्रण, प्रतीक, अलंकार, बिम्ब इत्यादि सभी विषय आ जाते हैं । प्रस्तुत परिच्छेद में इन्हीं विषयों का विवेचन अभिप्रेत है ।

उपदेश और काव्य

३. उपदेश को `निराला` काव्य की कमजोरी मानते हैं, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनका काव्य अर्थवत्ता या नीतिमत्ता से शून्य है । इसके विपरीत उपदेश की अवस्थिति उनकी कविताओं में कलात्मक रूप से रहती हैं । कला के अप्रतिम माध्यम द्वारा वे बड़े से बड़े उपदेश को मूर्त कर सकने में समर्थ हुए हैं । केवल ग्राह्य करने के लिए सहृदयता की आवश्यकता है । उदाहरण स्वरूप `निराला` की प्रारम्भिक कविता `जुही की कली` को ले सकते हैं । `जुही की कली` में मात्र रूप-चित्रण कवि का अभिप्रेत नहीं था, वरन् शाश्वत सत्य की स्थापना भी उसने की है । प्रस्तुत रूप से कली के प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के माध्यम से `निराला` ने इस दार्शनिक उक्ति की स्थापना की है कि सुप्तावस्था में प्रिय की प्राप्ति सम्भव नहीं । उस अव्यक्त प्रियतम के साक्षात्कार के लिए जागरण की और ज्ञान की आवश्यकता है । जीवात्मा के सुप्तावस्था से जागृतावस्था के क्रम को प्राकृतिक और लौकिक सत्यों एवं क्रियाओं द्वारा एक सरल कथा के रूप में मूर्त किया गया है । कली का क्रमश: खिलने का क्रम जीवात्मा के एवं परमात्मा के साक्षात्कार की विभिन्न स्थितियां स्वीकार की जा सकती हैं । जब तक

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा (?) ., पृ० २७२

आत्मविस्मृति अर्थात् अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता, जीवात्मा अंधकार में रहती है । अज्ञान का पर्दा हटते ही आत्मा अपने स्वरूप से परिचित होती है और प्रिय साक्षात्कार से मन ज्योतिर्मय हो उठता है । यही क्रम कली के विकास का भी है कली भी सोते से जगती है । उसका प्रियतम पवन से साक्षात्कार होता है और उस आनन्द से वह पूर्णरूप में खिल उठती है । `कली` का खिलना ही उसकी पूर्ण परिणति (मुक्ति) है । वस्तुत: कलात्मक एवं दार्शनिक व्याख्या के माध्यम से बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन कर दिया गया है ।

४. दार्शनिक अभिव्यंजना के अतिरिक्त प्राकृतिक सत्य को भी अभिव्यंजित किया गया है । कली के अनन्त यौवन की स्थापना द्वारा `निराला` ने कली के प्रतिवर्ष खिलने की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति दी है । प्रियतम पवन सदैव अपनी प्रेयसी के पास रह नहीं सकता । वह प्रवासी है तथा वर्ष के पश्चात् पुन: उसी समय आता है, जब कली के खिलने का समय रहता है । इसलिए वह अपनी प्रियतमा को सदैव पूर्ण यौवनत्व में पाता है । `कली` का नारी रूप में चित्रण अन्यतम और सौन्दर्ययुक्त है । वासन्ती निशा का समय तरुण और तरुणी नायिका के प्रेमालाप के अनुकूल ही चुना गया है । इस लघु मुक्त छन्द की कविता में कला का पूर्ण रूप साकार हो उठा है । समय, रूप-चित्रण तथा अपूर्व दार्शनिक पुट के साथ साथ भाव, रस, अलंकार का समन्वय हुआ । इन समस्त लक्षणों का रूप ही कला की पूर्णता है ।

भावों की सम्बद्धता

५. `निराला` की कविता में भावों की अपूर्व तारतम्यता के साथ चित्रात्मक सौन्दर्य का भी सामन्जस्य दिखायी पड़ता है । भावों की सम्बद्धता लघु प्रगीत की ही विशेषता नहीं, वरन् दीर्घ प्रगीति से लेकर `प्रबन्धात्मक` कविता में भी इसकी छटा दर्शनीय है । `तुलसीदास` , `राम की शक्ति पूजा` आदि दीर्घ प्रबन्धात्मक कविताएं कवि की श्रम-साधना को सार्थक करती है । तुलसीदास के अन्तर्जगत से सम्बन्धित सूक्ष्म भाव को भी `निराला` ने कहीं भी धुमिल या अस्पष्ट नहीं होने दिया । मुक्त छन्द की कविताओं तथा गीतों में भाव की एकतानता स्वत: स्पष्ट है -- जागृति में सुप्ति थी, `जागो फिर एक बार` ,

`शैफालिका`, `मौन रही हार`, `प्रिय यामिनी जागी` तथा `सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी` प्रभृति कविताओं में संघटित भावों की शृंखला दर्शनीय है। भावों की स्वतानता के साथ संयम भी पर्याप्त है। `सरोज स्मृति` में अवश्य कुछ स्मृति-चित्रों द्वारा विभिन्न भावनात्मक सूत्र आकर जुड़ हुए हैं। कवि बीच-बीच में अपनी तरफ उन्मुख हो जाता है। इससे विसराम असम्बद्धता का आभास दृष्टिगत हो सकता है लेकिन `सरोज-स्मृति` जैसी वेदनात्मक आवेग में लिखी कविता का यह कलात्मक सौन्दर्य बन गया है। कला की दृष्टि से यह `निराला` का अपूर्व देन है। उसमें विशृंखलता नहीं आने पाई है, अपूर्व सौन्दर्य का समावेश हो सका है। वेदना सिक्त क्षणों में लिखित यह कविता कहीं भी असंयमित या बिखरने नहीं पाई।

६. `मौन रही हार`[1] गीत में हृदय के शुद्ध शृंगार का चित्रण है। नायिका सजीबजी प्रिय-पथ पर अग्रसर हो रही है। झंकृत होते हुए आभूषणों से वह कुछ संकुचित हो जाती है तथा पति के द्वारा स्वर सुने जाने के भय से तथा शृंगार से सजे हृदय के स्वर के तारों से नायिका का संकोच दूर हो जाता है। आत्मिक प्रेम की दैहिक भावना पर विजय कलात्मक रूप से व्यंजित की गयी है। नायिका के हृदय में पति के प्रति आत्मिक भाव जागृत होते ही समस्त लौकिक लज्जा का अवसान हो जाता है। वह मानवी से देवी रूप में अपने पति के समीप जाती है। मनुष्य के मन का चित्र खींच सकने को ही `निराला` ने वास्तविक कला स्वीकार किया है[2] और यह प्रस्तुत गीत में पूर्णरूप से अभिव्यंजित हो उठा है।

१- मौन रही हार

प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।

कण कण कर कंकण प्रिय, किण किण रव किंकिणी
रणन-रणन नूपुर, उर लाज, लौट रंकिणी।
और मुखर पायल स्वर करे बार बार
प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार
शब्द सुना हो तो अब लौट कहां जाऊं
उन चरणों को छोड़, और शरण कहां पाऊं (गीतिका गीत ६ पृ०८)

२- `कला` वह है जिसमें मनुष्य के मन का चित्र दिखलाया जाय।
-- रवीन्द्र कविता कानन, पृ० ८२।

साधारण से साधारण भाव को कलात्मक औदात्य प्रदान किया गया है। `यमुना के प्रति` प्रतीकात्मक कविता में ऐसे प्रयोग यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। गोप-गोपियों के चंचल चरणों से मुखरित तट की अभिव्यक्ति `चल चरणों का व्याकुल पनघट` के रूप में अभिव्यंजित की गयी है। जिससे पनघट की व्याकुलता का आभास होने लगता है। कवि के हृदय में गोपियों की स्मृति हेतु जागृत वेदना की अभिव्यंजना सहज करुण रूप से हो सकी है।

कलात्मक परिसमाप्ति

७. आलोच्य कवि ने कविताओं का अन्त अन्यतम कलात्मक ढंग से किया है। जिस तरह के भावों से कविता का आरम्भ और सम्वर्द्धन किया गया है, उसी के अनुरूप उसका अवसान भी हुआ है। `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य में भी कवि इस कलात्मकता को विस्मरण नहीं कर देता है। भारतीय संस्कृति के अस्त होते हुए सूर्य से[1] प्रस्तुत प्रबन्ध का पट अनावरण होता है। कथा `तुलसीदास` के जीवन के विभिन्न मोड़ों से आगे बढ़ती है। लेकिन `निराला` का उद्देश्य मात्र पतन कालीन स्थिति का दिग्दर्शन कराना ही नहीं था, वरन् संस्कृति के उदय का आभास दिखा कर आशा का प्रकाश दिखाना भी था। अन्त में `तुलसीदास` की ज्ञान प्राप्ति के साथ `प्राची-दिगंत उर पुष्कल रवि-रेखा`[2] दिखा कर प्रबन्ध का अन्त कर दिया गया है। अस्त होते हुए सूर्य से प्रबन्ध का पट अनावरण हुआ है और उदय से पटाक्षेप। यह कवि का अपूर्व कौशल और कला का अद्वितीय रूप, और यह अपूर्व कलात्मक अवसान उनके लघु प्रगीतों में भी देखा जा सकता है। `शेफालिका` १८ पंक्तियों की लघु कविता है। इसका आरम्भ शृंगारिक[3] उद्दामता से होता है लेकिन इसका

१- भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे-- तमस्तूर्य दिङ्मंडल (तुलसीदास छन्द १ पृ०११)

२- प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि-रेखा। (वही०छंद१००,पृ०६१)

३- बन्द कंचुकी के खोल दिए प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यङ्क पर सोती शेफालिके। (परिमल, पृ० १७५)

अन्त अत्यधिक दार्शनिक तटस्थता के साथ प्राकृतिक सत्य की उद्घाटना करते हुए किया गया है।[1] `शेफालिका` के खिलने के साथ आरम्भ तथा अन्त उसके झर कर बिखरने के रूप में होता है। प्राकृतिक और दार्शनिक दोनों भावों की पुष्टि सहज ही हो जाती है। खिलने के बाद `शेफालिका` का झरना प्राकृतिक सत्य है और दार्शनिक रूप से आत्मा के अमर-विराम की अभिव्यक्ति।

कल्पना की अतिशयता

८. `निराला` काव्य में लघु विराट चित्रों का सुन्दर समन्वय है। लघु विराट चित्रों की दृष्टि से `गीतिका` अनुपम है तथा विराट कल्पना चित्रों की दृष्टि से `तुलसीदास` तथा `राम की शक्ति पूजा` दृष्टव्य है। कवि ने स्वयं लघु विराट कल्पनाओं को आवश्यक माना है --" काव्य में साहित्य के हृदय को दिगन्त व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। .... रूप की सार्थक लघु विराट कल्पनाएं संसार के सुन्दरतम रंगों से जिस तरह अंकित हों उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष[2]।" सूक्ष्म कल्पना-विलास `निराला` काव्य की विशेषता है। इसी कल्पना विलास ने कवि को उस अनन्त असीम , अरूप को जानने के रहस्यात्मक संकेत दिए। कवि साधारण से साधारण वस्तु में अपूर्व रहस्य का आभास पाने लगा। जड़ में चेतना, स्पन्दन, थिरकन, रोमांच तथा हास-विलास का साक्षात्कार इस कल्पना वैभव का ही प्रतिफलन है। `निराला` अत्यधिक कल्पना प्रवण होते हुए भी पूर्णतया आकाशचारी नहीं हुए वह धरती का छोर बराबर पकड़े रहे थे तथा छायावाद काल में भी सामाजिक कविताएं बराबर देते रहे थे। कवि ने कविता को कल्पना का ही पर्याय मान लिया है --

---

१- आशा की प्यास एक रात में भर जाती है
सुबह को आली, शेफाली झर जाती है।
-- वही०, पृ० १७६।

२- निराला : प्रबन्ध -पद्म : काव्य में रूप और अरूप, १९६०, पृ० १७३।

कल्पना के कानन की रानी
आओ, आओ मृदु पद, मेरे
मानस की कुसुमित वाणी ।[1]

कल्पना की महत्ता को कवि ने समझा है तथा स्पष्ट उद्घोषणा की है --

देखता हूं
खिलते नहीं है फूल वैसे वसंत में
जैसे तब कल्पना की डालों पर
खिलते हैं ।[2]

६. कवि का अत्यधिक कल्पना-प्रवण होना , उसका अनिवार्य गुण है, तभी वह समाज और देश को आशावादी दृष्टिकोण दे सकता है तथा अतीत, वर्तमान और भविष्य का अपनी कविता में आयतीकरण कर सकता है । वह अतीत के मोहक चित्रों के साथ भविष्य की उज्ज्वल छवि का आभास भी पा लेता है । `यमुना के प्रति` कविता कवि की मनोरम कल्पना है । कवि अतीत का ऐसा मार्मिक चित्र खींचता है कि प्रस्तुत यमुना का अस्तित्व ही विलीन हो जाता है और द्वापरकालीन यमुना की गतिविधियाँ साकार हो उठती हैं । गोप-गोपियों के प्रणय सम्बन्धों के साथ ही साथ रास लीलाओं तथा उनकी विविध क्रीड़ाओं से कवि इसके तट को स्पन्दित तथा झंकृत पाता है । `शक्ति पूजा` की मौलिक कल्पना भी अपूर्व है ।`तुलसीदास` तथा `राम की शक्ति पूजा` दोनों में ही अन्तर्मन की प्रधानता है । `तुलसीदास` में प्रकृति कवि के हृदय में प्रेरणा और नवीन उद्भावनाएं उत्पन्न करती है, भारत की तत्कालीन देश की समस्त परिस्थितियों का साक्षात्कार भी कवि कल्पना में ही करता है और कल्पना द्वारा ही वह उसका समाधान भी खोजता है --

सोचा कवि ने मानस तरंग
यह भारत संस्कृति पर सभंग
फैली जो लेती संग संग जनता को

१- गीतिका, गीत २४, पृ० ३६ ।

२- परिमल : कवि, पृ० १८५

इस अनिल वाह के पार प्रखर
किरणों का वह ज्योतिर्मय घर
रविकुल-जीवन चुम्बन कर मानस घन जो ।[१]

प्राकृतिक सौन्दर्य कवि के सुप्त सौन्दर्य-बोध को जाग्रत करता है । कथा और भावगत सौन्दर्य पर दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् बहिरंग उपादान के अन्तर्गत भाषा सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है । कवि के सौन्दर्य-बोध तथा भावाभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम भाषा ही होती है । भाव और भाषा का अभिन्न सम्बन्ध है । जो श्रेष्ठ काव्य का सृजन करता है । "भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छामात्र से बदलने वाली देह है ... वस्तुत: " रचना युद्ध-कौशल है और भाषा तदनुरूप अस्त्र ।"[२]

भाषा

१०. 'निराला' विभिन्न भाषा रूपों के सर्जक थे, पर भाषा का वैविध्यपूर्ण प्रयोग सायास नहीं हुआ अपितु विषय और भाव के अनुरूप भाषा का स्वत: रूप-परिवर्तन हो गया, इसका मुख्य आधार विषय वस्तु में अनेकरूपता ही मानी जा सकती है । अत: भाषा के प्रतिमान भी स्वभावत: विषयानुसार बदलते गए हैं । 'निराला' का दृष्टिकोण कभी भी एकांकी नहीं रहा । जीवन को उन्होंने विभिन्न कोणों से देखा एवं परखा था । अतएव उनका साहित्यिक चित्रफलक अत्यन्त विस्तृत रहा है और उसमें उसी अनुपात में विभिन्न रंगों का समावेश किया गया है । 'निराला' का जीवन ही प्रयोग का जीवन रहा था । भाषा के सामान्य और दीर्घ संधि युक्त दोनों प्रकार के प्रयोग किए गए हैं । एक तरफ यदि 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'तुलसीदास' की ओजस्विनी औदात्यमय, संस्कृतनिष्ठ सामासिक भाषा है तो दूसरी तरफ 'कुकुरमुत्ता'

१- तुलसीदास, छन्द ३३, पृ० २७ ।
२- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, १९४०, पृ० १२६ ।

की उर्दू मिश्रित सीधी, सरल, बोलचाल की अनगढ़ भाषा के भी दर्शन होते हैं। भाषा का स्वरूप `निराला` ने विषयानुरूपिणी और भावानुरूपिणी निर्धारित किया था। `निराला` द्वारा प्रयुक्त भाषा का स्वरूप उस उन्मुक्त धारा के सदृश्य है, जो समस्त अवरोधों को नकारती हुई अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती ह चलती है। अपेक्षानुसार विभिन्न भाषाओं से शब्द-चयन करने में कवि ने संकोच नहीं किया। उन्होंने स्वयं इस बात की स्थापना की है कि " संसार की हर एक भाषा स्वाधीन चाल से चल कर और भिन्न भिन्न भाषाओं से ही शब्द लेकर अपना भंडार भरती है।[1]" इस उदारवादी दृष्टिकोण के कारण ही उनके द्वारा विविध भाषाओं के शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया गया है लेकिन इन शब्दों को इतनी सहजता से अपनाया गया है कि वह विदेशी नहीं प्रतीत होते। `निराला` का शब्द भंडार अत्यधिक विस्तृत था। उनके प्रबन्ध काव्य तथा गीत अधिकतर संस्कृतनिष्ठ भाषा में लिखे गए हैं और मुक्त छन्द युक्त कविताएं अपेक्षाकृत सरल और सुबोध भाषा में।

११. भाषा को भावानुरूप स्वीकार करते हुए भी क्लिष्टता की तरफ उनका दुराग्रह कभी नहीं रहा, " साहित्य में भावों की उच्चता का ही विचार रखना चाहिए। यह अभिप्राय भी नहीं कि भाषा मुश्किल लिखी जाय।... उसका प्रभाव भावों के अनुकूल ही रहना चाहिए। आप निकली और गढ़ी हुई भाषा छिपती नहीं। भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाषा समझ में आ जाती है।[2]" स्पष्ट ही कवि ने भावों का अनुगमन करने वाली भाषा की घोषणा की है। यही कारण है कि `निराला` द्वारा प्रयुक्त भाषा में भी भावों को अभिव्यक्ति परिस्थितियों के चित्रण और वातावरण के स्पष्टीकरण की अपूर्व, अप्रतिम सामर्थ्य है। भाषा की प्रवृत्ति को सरलीकृत न कर वह शिक्षा की भूमि को विस्तृत करने के समर्थक थे।[3] भाषा के निरन्तर विकास और परिवर्तन में `निराला` का अटूट विश्वास था। भाषा को शृंखला की कड़ियों में आबद्ध करने के वह घोर विरोधी थे। जो प्राणवान है, वह गतिशील होगा ही और निरन्तर मुक्ति की ओर

१- निराला : चयन, १९५७, वाराणसी, पृ० २१।

२- निराला ? प्रबन्ध पद्म, १९३४, पृ०१२-१३।

३- हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने वाले या बनाने वाले साल में तेरह बार आर्त चीत्कार करते हैं--भाषा सरल होनी चाहिए जिसे आबाल वृद्ध समझ सकें। मैंने आज तक किसी को यह कहते हुए नहीं सुना कि शिक्षा की भूमि विस्तृत होनी चाहिए जिससे अनेक शब्दों का लोगों को ज्ञान हो, जनता क्रमश: ऊंचे सोपान पर चढ़े। -- प्रबन्ध पद्म, पृ० ६।

अग्रसर होता रहेगा ।" प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय शक्ति- सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या तुलानुसयत: मृदुलता और छन्द-लालित्य की तरफ यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो वह निश्चित रूप से कहा जायगा कि प्राण शक्ति उस भाषा में है[1]। "क्लिष्टता का दुराग्रह न स्वीकार करते हुए भी वह दुरूहता और अस्पष्टता से अपने को बचा नहीं पाये उनकी पृष्ठभूमि में सम्भवत: उनकी अवचेतन में यह धारणा प्रेरणा देती रही हो, प्राचीन बड़े-बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही ... बड़े बड़े साहित्यिकों ने प्रकृति के अनुकूल ही भाषा लिखी है । कठिन भावों को व्यक्त करने में प्राय: भाषा भी कठिन हो जाती है । जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गम्भीरता तक पैठ सकता है और पैठता है[2]।"

१२. आलोच्य कवि की भाषा-शैली पर संस्कृत के कवि जयदेव, हिन्दी के महान कवि तुलसीदास , बंगला के महा कवि रवीन्द्रनाथ का अपूर्व प्रभाव देखा जा सकता है । सामासिकता तथा संस्कृतनिष्ठता का आग्रह जयदेव का प्रभाव परिलक्षित करता है तो कोमलकान्त पदावली तथा संगीतात्मकता `रवीन्द्रनाथ' का । संस्कृत और हिन्दी मिश्रित सौष्ठवपूर्ण भाषा तुलसी की ही देन है । `निराला' की भाषा में स्पष्टतया दो अन्तराल स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं -- सन् १६३८ तक के काव्य में संस्कृत की अपेक्षाकृत प्रचुरता है, जब कि १६३८ के बाद के काव्य में अपेक्षाकृत सरल भाषा का रूप मुखरित हुआ है । `राम की शक्ति पूजा' `बुद्ध के प्रति', `तुलसीदास', `जागरण' तथा `गीतिका' के कतिपय गीतों में सामासिकता का आग्रह अधिक है । यों तो शब्द-लाघव इनके सम्पूर्ण वाङ्मय का प्रधान लक्षण है । समासबद्ध पदविन्यास तथा क्रिया पदों का लोप उन्हें छायावादी कवियों की श्रेणी से अलग ही घोषित करते हैं । दीर्घ समास-प्रधान भाषा से अपूर्व प्रभावोत्पादकता तथा गाम्भीर्य का समावेश हो सका है । लेकिन इससे दुरूहता

१- प्रबन्ध प्रतिमा , पृ० २७०-२७१ ।

२- निराला : प्रबन्ध पद्म , पृ० १०-१२

का आगमन भी अनिवार्यरूप से हुआ है --

.... आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत- क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शत शेल सम्वरणशील नील नम गर्जित स्वर,
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, भेद- कौशल समूह,
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह -- क्रुद्ध-कपि-विषम हू हू,[1]
विच्छुरित वह्नि.......................

प्रस्तुत सामासिक पदावली युद्ध की विकरालता को साकार करने के लिए प्रयुक्त की गई है । तत्कालीन राम-रावण युद्ध की भयंकरता को मूर्त रूप देने के लिए अन्य कोई शब्द-विधान सफल नहीं हो सकता था, इससे आतंकपूर्ण वातावरण के साथ युद्ध के भयंकर कोलाहल, अस्त्र-शस्त्रों की झंकार भी मूर्त हो उठी है । `निराला` ओज और शक्ति के कवि हैं । उनका सामासिकता का आग्रह अप्रतिम ओज और पौरुष की उद्भावना कर सका है । दीर्घ समासयुक्त पदावली का प्रयोग केवल ओज और वीरत्व प्रदर्शित करने के लिए या आतंकपूर्ण वातावरण की सृष्टि करने के लिए ही नहीं किया गया है, वरन मसृण और कोमलकांत पदावली में भी इसका प्रयोग सहज रूप में देखा जा सकता है --

कांपते हुए किसलय, झरते पराग-समुदाय,
गाते खग-नव-जीवन-परिचय,-- मरुत -वलय,
ज्योति: प्रपात स्वर्गीय-- ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,[2]
जानकी-नयन- कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।

शब्द-लाघव तथा थोड़े में अधिक अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति के कारण `निराला` की शैली में अपूर्व कसावट का बोध होता है ।

१३. साधारणतया गागर में सागर भरने का प्रयास काव्यात्मक गुण है और यह `निराला` में सर्वाधिक देखा जा सकता है, लेकिन सामासिकता के दुराग्रह के कारण वह क्लिष्टता, दुरूहता एवं अस्पष्टता के आक्षेप के भागीदार भी बने हैं ।

१- अनामिका : राम की शक्ति पूजा , पृ० १५२

२- वही०, पृ० १५५

वस्तुस्थिति में इसमें कुछ सत्यांश भी है, पर सर्वत्र इस दुरूहता का ही प्रदर्शन है, ऐसा कहना दुराग्रह होगा । कुछेक स्थलों को छोड़कर इस समास शैली से सौन्दर्य और प्रसाद गुण का ही प्रादुर्भाव हुआ है, उदाहरण स्वरूप--

किसलय वसना नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी--पिक-स्वर नभ सरसाया ।[1]

कतिपय गीतों में संस्कृत-समास-पद्धति के दुराग्रह से गीति की संवेदनशीलता और अर्थ प्रवाह को पर्याप्त हानि पहुंची है । पाठक अर्थ संगति खोजने में इतना व्यस्त हो जाता है कि गीत का माधुर्य पूर्णतया समाप्त हो जाता है, यथा --

तरु-गत-किसलय-जीवित-मिस लय,
विस्मय,विषमय सलिल अनिल चल,
निराधार भव भार, न कलरव,
लग तुषार-दव जार हुआ स्थल ।[2]

प्रस्तुत गीत में स्वत: स्फुरित भावाभिव्यक्ति का एकान्त अभाव है । अत्यधिक संक्षेपीकरण के लोभ में अपेक्षित शब्दों का आवश्यकता से अधिक अभाव चिन्तनीय हो गया है । शब्द लाघव,अर्थ गाम्भीर्य का लोभ छायावादी कवियों में से `निराला` में सबसे अधिक दृष्टिगत होता है । आवश्यक क्रिया-पदों के लोप से भावार्थ अस्पष्ट हो जाता है --

प्रतनु, शरदिन्दु-वर,
पद्म-जल विन्दु पर
स्वप्न-जागृति सुघर,
दु:ख-निशि करो शयन ।[3]

रश्मि को सम्बोधित कर कहा गया है, हे कोमलांगी (तुम्हीं) श्रेष्ठ शारदीयचन्द (हो) कमल के अश्रुओं पर (कमल पर बिखरी ओस-बिन्दुओं) को कवि सूर्य के अवसान

१- गीतिका, गीत ३, पृ० ०५
२- वही०, गीत ८३, पृ० ८८
३- वही०, गीत ६, पृ० ११

पर उसके अङ्ग पुरित होने का संकेत देता है) स्वप्न में सुघर जागृति बनकर । स्वप्न में प्रकाश के कारण सुरभि कमल को जागृति का सुख प्राप्त होगा, इसलिए तुम उसको सुघर जागृति बनकर) उसकी दुःख की रात में शयन करो । अर्थात् उसकी वेदना को दूर करो । उपर्युक्त गीत के क्रिया-पदों से हीन अल्प शब्दों की संयोजना में इतना भावार्थ निकाल सकना साधारणतया अत्यधिक कठिन है । अप्रचलित शब्दों के समावेश के मोह तथा शब्दों में नवीनता लाने के आग्रह से भी इनकी भाषा अस्पष्ट हो गई है -- वर्ण दल[1], तमिस्त्र संचार[2], तुम-कल्म आदि ऐसे ही शब्द हैं ।

१४. सुबोध सौष्ठव प्रधान भाषा के अन्तर्गत मुक्तछन्द की कविताओं, जैसा कि मुक्तछन्द के नाम से ही स्पष्ट है इसमें भाषा का उन्मुक्त प्रवाह दिखाई पड़ता है । संस्कृतनिष्ठ गीतों के समान इसमें बन्धन संयम नहीं -उच्छृंखलता भी नहीं -- अपितु अनुप्रासों की मौलिक उद्भावना के साथ अपूर्व सौन्दर्य ला दिया गया है --

> विजन-वन-वल्लरी पर
> सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न--
> अमल-कोमल-तनु तरुणी--जुही की कली ।[3]
>
> \+ \+ \+
>
> आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
> सुबह को आली, शेफाली झर जाती है ।[4]

`अमल-कोमल` `आली - शेफाली` अनुप्रासों के संयोजन से भाषाजन्य सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है । वस्तुत: इन मुक्त छन्दों में बन्धन नियमों का अभाव अवश्य है, पर भावों के अनुरूप चुन-चुन कर शब्दों का चयन किया गया है किसी भी प्रकार की क्लिष्टता या अस्पष्टता नहीं है । इस शैली की कविताओं के अन्तर्गत `जुही की कली`, `सन्ध्या सुन्दरी`, `बादल राग` तथा `जागो फिर एक बार` आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं । भाषा गतिशील और प्रवाहयुक्त है - अपूर्व उच्छलता और सहजता के साथ प्रगल्भता और उन्मुक्तता भी है ।

१- गीतिका, गीत ६३, पृ० ६८

२- वही०, गीत ५६, पृ० ६१

३- परिमल : जुही की कली, पृ० १७१

४- वही० शेफालिका, पृ० १७६ ।

१५. भाषा का मिश्रित रूप भी कवि की अपनी विशेषता है। 'निराला' द्वारा प्रणीत कतिपय कविताएं तथा प्रगीत ऐसे भी उपलब्ध हैं जिनके विभिन्न पदों में विभिन्न भाषा-शब्दों का प्रयोग किया गया है, यथा --

निगह तुम्हारी थी
दिल जिससे बेकरार हुआ
मगर मैं गैर से मिलकर
निगह के पार हुआ
अंधेरा छाया रहा
रोशनी की माया में
कहीं भी छाया का आंचल
न तार तार हुआ
वहीं नवीना बजी और
कहीं बजी वीणा
शराबी प्याले का अब तक
न बहिष्कार हुआ।[1]

प्रस्तुत गीत के प्रथम पद में उर्दू का शुद्ध रूप है, द्वितीय में हिन्दी-उर्दू का मिश्रित रूप तथा तृतीय में संस्कृत-उर्दू की छटा दर्शनीय है। एक ही कविता में संस्कृतनिष्ठ शैली के साथ सामान्य लोक शैली का भी प्रयोग हुआ है, 'प्रेयसी', 'बनबेला' तथा 'सरोज-स्मृति' आदि कविताओं में यह रूप दृष्टव्य है --

चढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण चरण
कह--'पिता, पूर्ण आलोक वरण
करती हूं मैं, यह नहीं मरण
'सरोज' का ज्योति शरण-तरण[2]

\+ \+ \+

१- बेला, पृ० ३७।

२- अनामिका : सरोज स्मृति, पृ० १२१-१२९।

वे बड़े भले जन हैं भय्या
एण्ट्रेंस पास है लड़की वह,
बोले मुझसे छब्बीस हो तो
वर की है उम्र, ठीक ही है ।[1]

अति उच्च कलात्मक संस्कृतनिष्ठ शब्दों के साथ अति सामान्य प्रचलित भाषा का स्वर मुखरित हुआ है । सामान्य तथा उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग हास्य व्यंग्यपूर्ण कविताओं में किया गया है । `नये पत्ते` की अधिकांश कविताएं तथा `कुकुरमुत्ता` इसके उदाहरण हैं ।

१६. शुद्ध हिन्दी का भाषा-रूप `सेवा आरम्भ` , `भिक्षुक` , `हिन्दी के सुमनों के प्रति` तथा `वह तोड़ती पत्थर` तथा कतिपय गीतों में मिलता है -- इनमें भाषा का सहज संचरण है --

बांधो न नाव इस ठांव बन्धु
पूछेगा सारा गांव बन्धु[2]

मुहावरेदार खड़ी बोली का उन्मुक्त और सहज रूप इस गीत में दिखाई पड़ता है --

छोड़ दो, न छेड़ो टेढ़े
कब बने तुम्हारे बेड़े[3]

शुद्ध हिन्दी भाषा-रूप से तात्पर्य ऐसी भाषा से है जिसमें संस्कृत और अन्य भाषा-शब्दों का साधारणतया एकांत अभाव है तथा खड़ी बोली का ही शुद्ध रूप दृष्टिगत होता है । `कुकुरमुत्ता` तथा `बेला` की अधिकांश गज़लों की भाषा प्रयोगशील भाषा की संज्ञा पाने की अधिकारी है । वस्तुत: कवि को किसी भी प्रकार का नियम या अवरोध नहीं बांधता --

टी०एस० इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने सिर पर रख कर
हाय कहा, लिख दिया जहां सारा[4] ।

१- अनामिका : सरोज स्मृति, पृ० १२८ ।
२- अर्चना, पृ० ५३ ।
३- वही०, पृ० ८३ ।
४- कुकुरमुत्ता, पृ० ११

ऐसी अभिव्यंजना शैली हिन्दी में साधारणतया प्रयुक्त नहीं होती । विभिन्न भाषा-शब्दों का विभिन्न प्रकार से प्रयोग भाषा की दृष्टि से कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होता है । `बेला` में कहीं उर्दू-फारसी के छन्दों को अपनाने का प्रयास है, तो कहीं गज़लों में संस्कृत पदावली का प्रयोग ।

१७. `निराला` की भाषा मूलत: चित्र विधायिनी तथा ध्वन्यर्थ व्यंजक है । वस्तुत: वह भावों की अभिव्यक्ति, परिस्थितियों के चित्रण और वातावरण के स्पष्टीकरण की ही अद्भुत क्षमता नहीं रखती वरन् वह चित्र भी मूर्त करने में पूर्ण समर्थवान है । लघु चित्रों के साथ-साथ विराट चित्रों की अवतारणा वह स्वाभाविक रूप से कर सकते हैं । `राम की शक्ति पूजा` में जहां शब्दों के माध्यम से कवि भयानक निशा[1] को चित्र मूर्त कर देता है, वहां `गीतिका` में सुप्त-जाग्रत नायिका[2] का गत्यात्मक रूप भी असाधारण सफलता से उभरा है । भयानक और कोमल चित्र देते समय इन्होंने वैसी ही परिस्थिति और वातावरण का निर्माण किया है । `सन्ध्या सुन्दरी` तो चित्र-विधान की दृष्टि से अन्यतम बन गई है । भावों के अनुरूप शब्द-चयन कवि ने किया है । अपनी तूलिका द्वारा बहुत सुन्दर और मधुर ~~मिलके~~ चित्रों को उभारा गया है । `सन्ध्या-सुन्दरी` का अम्बर पथ पर सखी नीरवता के कन्धे का सहारा ले मन्द-मन्द गति से उतरना एक चित्र को मूर्त करता है । वातावरण चित्रण में कवि का कौशल अपूर्व है, सन्ध्या सुन्दरी में कवि केवल सन्ध्या परी का ही रूप चित्र नहीं देता वरन् तत्कालीन वातावरण स्थितियों का भी आभास देता है । `सन्ध्या-सुन्दरी` अत्यन्त कोमल एवं सम्भ्रांत है । अतएव उनके साथ सखी का होना भी आवश्यक है और सखी भी ऐसी जो स्वयं बहुत शान्त और गम्भीर है । इसीलिए उसे नीरवता की संज्ञा दी गई है -- साथ ही अम्बर पथ से अग्रसर होना एक तरफ उसके अत्यधिक कोमलता और सुकुमारता को प्रकट करता है, दूसरा उसका परीत्व साकार हो जाता है । रात्रि के वातावरण का भी सूक्ष्म अंकन है । `वह तोड़ती पत्थर` तथा `भिक्षुक` कवितारं भी चित्रात्मक हैं । सरल से सरल भाषा में भी कवि चित्रमूर्त करने में सफल रहा है । एक-एक बन्ध जाग्रत और सीमित है तथा अपनी अर्थवत्ता को स्वयमेव पूर्ण करता है । ~~`सन्ध्या-सुन्दरी`--वो~~

१- है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।--अनामिका,पृ०१५४

'स्पर्श से लाज लगी'[१], 'प्रिय यामिनी जागी'[२] आदि कविताएं ऐसी हैं जिनमें अभिधा शक्ति द्वारा सौन्दर्य तथा चित्रात्मकता का सृजन हो रहा है ।

१८. ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्दों के माध्यम से आत्मनैव भावों की पुष्टि होती चलती है । शब्दों के अनुरणन और उच्चारण द्वारा अभीष्ट अर्थ स्वत: अभिव्यक्त हो जाता है --

कण कण कर कंकण प्रिय
किण किण रव किंकिणी
रणन रणन नूपुर उर लाज
लौट रंकिणी ।[३]

\+ \+ \+

'फिर क्या? पवन-उपवन वन-सर-सरित-गहन गिरि
कानन कुंजलता-पुंजों को पार कर पहुंचा[४] ।

सर-सर करते पवन का वेग स्वयं शब्दों की ध्वनि से साकार हो उठा है । पवन की तीव्रता को प्रकट करने के लिए कवि द्रव वर्णों का चयन करता है । कवि केवल वन-उपवन-कानन कुंजों को पार करने का संकेत मात्र देता है लेकिन उसकी गति का आभास शब्दों की ध्वनि से स्वत: हो जाता है । 'राम की शक्ति पूजा' में ध्वनि पूर्ण सुन्दर शब्द-योजना की स्थापना की गई है --

कह कर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा फलक
ले लिया हस्त लक लक करता वह महा फलक[५] ।

'लक लक' की ध्वनि से स्वत: ही फलक की तीक्ष्ण धार का चित्र साकार हो उठता है ।

१९. कवि ने कतिपय भाषा सम्बन्धी नवीन उद्भावनाएं भी की हैं । वाक्य विन्यास में संस्कृत व्याकरण सम्मत समास भाषा का ही आधिक्य है, परन्तु

१- गीतिका, गीत २८, पृ०३३
२- वही०, गीत २, पृ०४
३- वही०, पृ० ८
४- परिमल, पृ० १७१
५- अनामिका, पृ० १६८

कुछ एक स्थलों पर स्वतन्त्र-समास योजना का भी कवि ने प्रयास किया है --

गंध व्याकुल-कूल-उर-सर
लहर-कच कर कमल मुख पर
हर्ष अलि हर स्पर्श शर सर
गूंज बारम्बार ।[1]

संस्कृत की समास पद्धति के आधार पर `उर-सर-कूल' होना चाहिए । कवि ने `कूल -उर-सर' लिख कर नवीनता का समावेश किया है । अंग्रेज़ी शब्दों का रूपान्तर भी सुविधानुसार किया गया है । `यमुना के प्रति' कविता में `स्वप्निल पर'[2] पद का प्रयोग हुआ है जो वस्तुत: अंग्रेज़ी के ड्रीमिंग विंग का ही रूपान्तर है । इसी तरह `कहां है देश' कविता में `सोने के संगीत राज्य' में का पद[3] इन दी गोल्डन रैल्म आफ म्यूज़िक' का संकेत देता है । कतिपय नवीन शब्दों की सर्जना भी `निराला' ने की है --

तुम्हारा इतना हृदय उदार
व क्या समझेगा माली निष्ठुर निरा गंवार[4]

+ + +

हाथ जिसके तू लगा
पैर सर पर रख वह व पीछे को भगा[5] ।

कुछेक हिन्दी शब्दों को उर्दू की शैली में प्रयुक्त किया गया है[6] --

मथकर समुन्दर से निकाले थे चौदह रत्न
उठी व्यथित उंगली से कातर एक तीव्र झंकार[7]

१- गीतिका, पृ० १४
२- उत्सुक किस अभिसार निशा में
गई कौन स्वप्निल पर मार । -- परिमल, पृ० ९६.
३- मिलन मुखर उस सोने के संगीत राज्य में -- अनामिका, पृ० ५५
४- परिमल , पृ० १२२
५- कुकुरमुत्ता, पृ० ४
६- परिमल , पृ० २२३
७- अनामिका, पृ० ४५

समुद्र का `समुन्दर` तथा अंगुली का `उंगली` कर दिया गया है ।

२०. कवि की प्रतिभा शब्दों को नवीन अर्थों में प्रयुक्त करने में भी असाधारण सफलता पा सकी है । हिन्दी में हंसते चेहरे के लिए `हंस मुख` संधियुक्त शब्द प्रयुक्त होता है ।`निराला` ने उसके स्थान पर `हंसता मुख`[1] नवीन पद की सृष्टि की है । इ अर्थ की दृष्टि से `हंस मुख` तथा `हंसता मुख` में बहुत अन्तर हो जाता है --`हंसमुख` वस्तुत: मनुष्य की नित्यप्रति के स्वभाव और प्रकृति का घोतन करता है जब कि`हंसता मुख` तत्कालीन स्थिति का । कुछ ऐसे शब्दों की अवतारणा भी हुई है, जिनकी अर्थवत्ता में भिन्नता आ गई है यथा--अज्ञात परचय, प्रकर, दित्य, व्यंग्यदाम[2] । विराम चिह्नों आदि के विशिष्ट प्रयोग द्वारा कवि अपने अभीष्ट अर्थ तथा मन:स्थिति का सफलांकन कर सका है । उदाहरण के लिए `सरोजस्मृति`कविता में केवल डैश के प्रयोग द्वारा क्रिया को मूर्त कर दिया गया है।[3] `कुंडली दिखा बोला``ए- लो` मानो देने की क्रिया हो रही हो । इसी तरह `अधिवास` शीर्षक कविता में शब्दों की संयोजना इस प्रकार की गयी है कि अपूर्व नाटकीयता का समावेश हो सका है --

कहां --
मेरा अधिवास कहां
क्या कहा? -- रुकती है गति जहां ?[4]

२१. `निराला` के भाषा-प्रयोग में यत्र-तत्र व्याकरण संबंधी असंगतियां भी दृष्टिगत हो जाती हैं । संस्कृत व्याकरण के अनुसार `ऋतु` स्त्रीलिंग रूप में प्रयुक्त होता है पर कवि ने उसे पुल्लिंग रूप में प्रयुक्त किया है यथा--

ऋतु सभी प्रबलतर बदल बदल कर आते[5]

इसी प्रकार `गला` शब्द हिन्दी में पुल्लिंग रूप में प्रयुक्त होता है, जब कि `निराला` ने स्त्रीलिंग रूप किया है --

----

१- फिर वर्ष सहस्त्र पंथी से,
आया हंसता मुख आया ।(परिमल वासंती, पृ० ७३)

२- `आराधना, पृ० १, १,१२,१४ ।

३- अनामिका, पृ० १२६

कर्म पाश से बंधी गला, वह ज्योतिदान जान किस ठौर[1]

संस्कृत के तत्सम शब्दों की बेमेल खिचड़ी पकाई गई है, फलत: व्याकरण के नियमों की उपेक्षा कर दी गयी है -- जैसे प्रमन, उपाय करण[2] आदि । हिन्दी शब्द `समाज` का प्रयोग उर्दू के ढंग पर हुआ है --

लख आदर, उठी समाज श्वसुर परिजन का[3] ।

कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द ध्वन्यार्थ को ही वहन नहीं करते वरन् नवीन अर्थ की योजना में भी सहायक हुए हैं --

नर हैं भीतर किन्नर-गण गाते
बन्धन में फंस, आत्मा बांधव दु:ख पाते[4] ।

`किन्नरगण` का अर्थ नपुंसक तथा `आत्मा बांधव` को आध्यात्मिक शक्ति के रूप में ध्वनित करने का कवि का आशय है । शब्दों को मनमाने तथा नितान्त वैयक्तिक अर्थों में प्रयुक्त करने के कारण ही साधारणतया उनका अर्थ लगा सकना सहज नहीं यही कारण है कि दुरूहता और अस्पष्टता का समावेश हो जाता है । शुद्ध सौष्ठव युक्त भाषा प्रयोग में एकाएक ग्रामीण शब्द का आगमन कर्ण-कटु लगने लगता है--

मैं भी सत्य कहता हूं मुनियों में
पाता हूं जैसा अपूर्व प्रेम
वैसा कभी आज तक कभी नहीं पाया है[5] ।

\+ + +

.... नीचे तुम रखोगे,
काढ़ देना चाहते हो दक्षिण के प्राण --
मौगलों को तुम जीवनदान[6],
काढ़ हिन्दुओं का हृदय

१- अनामिका, पृ० १७०

२- वही०, पृ० १५६, २४ ।

३- तुलसीदास, पृ० ४६ ।

४- वही०, पृ० १३ ।

५- परिमल, पृ० २१६

६- वही०, पृ० १६४ ।

इसी तरह शुद्ध संस्कृत समासयुक्त पदावली में फारसी शब्द अत्युक्तिपूर्ण लगता है--

शत-सहस्र जीवन-पुलकित प्लुत प्यालाकर्षण ।[1]

प्याला फारसी शब्द है और आकर्षण शुद्ध संस्कृत दोनों से युक्त समास योजना भाषा की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग है । लेकिन कवि की प्रयोगशील प्रवृत्ति के अनुकूल है ।

२२. 'निराला' द्वारा प्रणीत ऐसे गीत कठिनाई से ही देखने को मिलते हैं जिनमें संस्कृत शब्दावली का एकांत अभाव हो, जैसे --

दुख का दिन डूबे डूब जाय
तुमसे न सहज मन अब जाय
खुल जाय न ~~उठे~~ मिली गांठ मन की ।
लुट जाय न उठी राशि घन की
धुल जाय न आन शुभानन की
सारा जग रुठे रूठ जाय ।[2]

इसमें संस्कृत शब्दों का कम से कम तथा हिन्दी शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग हुआ है । पूरे गीत में हिन्दी मुहावरों की संघटना की गई है -- दिन डूबना, मन ऊबना, गांठ खुलना, आन घुलना, दाल न गलना, उल्टी गति का सीधा न होना, बान टलनातथा जान जाना आदि । इतने छोटे से गीत में हिन्दी के इतने मुहावरों का समावेश कवि का भाषा पर अन्यतम अधिकार की घोषणा करता है । कहीं-कहीं दो-एक चरण शुद्ध मुहावरों से ही निर्मित हुए हैं --

गली गली हाथ पसारे, फिरते हैं मारे मारे ।[3]

+ + +

साहस कभी न छोड़ा , आगे कदम बढ़ाए
पट्टी पढ़ी कब उनकी, फांसे में हम कब आए ।[4]

१- वही०, पृ० ६१
२- आराधना, पृ० २६
३- बेला , पृ० १०८
४- वही०, पृ० ६७

न कोई जब की दिल की गांठ खोले ।[1]

प्रचलित मुहावरों का प्रयोग कवि ने पर्याप्त किया है पर ऐसा आयास नहीं वरन् स्वत: हुआ है । आलोच्य कवि का भाषा सम्बन्धी वैविध्य आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणा और पथ प्रदर्शन का आधार बना । नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने सन् १६२४ में इस बात की घोषणा की थी कि 'निराला जी की कविताएं उस हिन्दी की सम्पत्ति हैं जो हिन्दी राष्ट्रभाषा बनेगी ।..... 'निराला' किसी समाज या किसी प्रान्त के कवि नहीं, वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम महाकवि हैं[2] ।'

बिम्ब योजना

२३. साहित्य-रचना में बिम्ब-विधान से अपूर्व कलात्मक सौन्दर्य का प्रस्फुरण होता है । मनुष्य के मानस में अमूर्त अव्यक्त तथा अतीत की अनेक वस्तुओं घटनाओं की असंख्य प्रतिमाएं भी रहती हैं, बिम्ब शब्द इसी मानस प्रतिमाओं का पर्याय है । कवि इन अमूर्त प्रतिमाओं की मूर्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है । यह काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही बिम्ब-विधान की संज्ञा पाती है । वस्तुत: भाषा और चिन्तन के मूल उपादान बिम्ब ही है । मन की अनेक मुखी कल्पनाओं, भावनाओं को अभिधात्मक रूप से अभिव्यक्त कर सकना सदैव सम्भव नहीं होता । सूक्ष्म, कलात्मक मूर्त-विधान के लिए बिम्ब-विधान अन्यतम सहायक होता है । बिम्ब विधान का विशेष सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है अर्थात् बिम्ब की प्रकृति, स्वरूप और प्रभाव विशेषत: ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है । वही कविता बिम्ब योजना की दृष्टि से उत्कृष्ट और सफल है, जिसमें मन पर स्पष्ट और मूर्त चित्रों का अंकन करने की अपूर्व क्षमता है । बिम्ब-योजना में चित्र स्पष्टरूप से उभरा हुआ होना चाहिए । दृश्यात्मकता बिम्ब योजना का अनिवार्य गुण है । 'निराला' काव्य में बिम्ब योजना बहुत सफलतापूर्वक हुई है तथा प्रधानता प्रकृति के

१- बेला, पृ० ४३

२- नवजादिकलाल :वंश परम्परा: मतवाला, ६ अगस्त, १६२४, पृ०६७४-६७५ ।

उपकरणों का ही आश्रय लिया गया है । प्राकृतिक उपादानों की प्रधानता होना स्वाभाविक ही था , क्योंकि छायावादी कविता में प्रकृति का महत्वपूर्ण योग रहा है । बिम्ब-विधान वस्तु प्रधान भी हो सकता है, विवरण प्रधान भी हो सकता है, गठनपूर्ण, अस्पष्ट और बिखरा हुआ भी ।

वस्तु बिम्ब

२४. वस्तु-बिम्ब में यथार्थ का आग्रह रहता है । छायावादी युग में वस्तु-बिम्ब की संयोजना नहीं के बराबर हुई । `निराला` इस दृष्टि से अपवाद हो माने जायेंगे । उन्होंने वस्तु-बिम्ब के यत्र-तत्र अनुपम और मार्मिक चित्र दिए । `वह तोड़ती पत्थर`, `भिक्षुक` तथा `सन्ध्या-सुन्दरी` वस्तु-बिम्ब के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । `वह तोड़ती पत्थर`[1] की वस्तु-योजना इतनी संवेदनात्मक है कि उसमें हृदयस्थित कोमल भावना को स्पर्श करने की अपूर्व क्षमता है । कवि ने सायास आक्रोश या करुणा उभारने का प्रयास नहीं किया , वरन् बहुत ही तटस्थ भाव से झुलसाती लू में श्रमसीकर युक्त पत्थर तोड़ती का चित्र मूर्त किया है । `भिक्षुक`[2]

१- वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
\+ \+ \+
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप
उठी झुलसाती हुई लू
रूई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गईं
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर --(अनामिका, पृ० ८१-८२)

२- वह आता
दो टूक कलेजे को करता पछताता
पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता (परिमल,पृ०१२५)

कविता में गत्यात्मक वस्तु-बिम्ब का चित्र मूर्त हुआ है । प्रस्तुत कविताओं में यथार्थ का आग्रह स्पष्ट है जो कि वस्तु-बिम्ब का प्राण है । मानवीय संवेदना को स्पर्श करने की इनमें अपूर्व क्षमता है । यथातथ्य वस्तु-बिम्ब का उद्धरण `कुकुरमुत्ता` से भी दिया जा सकता है --

बाग के बाहर पड़े थे झोंपड़े,
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े,
जगह गन्दी, रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी --
बिलबिलाते कीड़े,बिखरी हड्डियां,
सेल्हरों की, परों की, थी गड्डियां,
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे,[1]
धूप खाते हुए कण्डे ।

विवृत्त बिम्ब
---

२५. विवृत्त-बिम्ब योजना में विवरण की प्रधानता रहती है । अत: साधारणतया इस बिम्ब-योजना की सृष्टि महाकाव्योचित ही होती है ।लेकिन प्रतिभावान कवि इसका प्रयोग लघु-प्रगीत में भी सफलतापूर्वक करते हैं । चित्रण में औदात्म्य अवश्य होना चाहिए । `निराला` की `सन्ध्या सुन्दरी` में सन्ध्या के समय का अव्यक्त शान्तमयता का चित्रण हुआ है --

व्योममण्डल में जगतीतल में--
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में --
सौन्दर्य-गर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्ष:स्थल में--
धीर वीर गम्भीर शिखर पर हिमगिरि अटल अचल में--
उत्ताल तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि-प्रबल में --
क्षिति में--जल में-- नभ में-- अनिल-अनल में--
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा `चुप चुप चुप `
है गूंज रहा सब कहीं--[2]

१- कुकुरमुत्ता : पृ० १४-१५
२- परिमल : सन्ध्या सुन्दरी, पृ० १२७ ।

चुप चुप शब्द सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त प्रतीत होता है ।

भाव बिम्ब तथा दृश्य बिम्ब

२६. भाव बिम्ब की अवस्थिति संश्लिष्ट और अस्पष्ट चित्रण में स्वीकार की गई है । अत्यधिक भावात्मकता का आग्रह होने के कारण ही इसको भाव-बिम्ब की संज्ञा दी गई है । भाव-बिम्बों में किसी दृश्य की संयोजना नहीं रहती । इसमें बिम्ब का स्वरूप अत्यधिक सूक्ष्म अनिश्चित तथा वास्तविक पदार्थ से पृथक हो जाता है । `निराला' की कतिपय कविताओं में भाव-बिम्ब की संयोजना हुई है । यों तो दृश्यात्मकता बिम्ब-योजना का अनिवार्य गुण है पर यहां दृश्य बिम्ब का तात्पर्य उस विशिष्ट चित्रण से है, जो दृष्टि के साथ-साथ अन्य इन्द्रियों को भी प्रभावित करने में सफल होते हैं ।

अस्ताचल रवि जल छल छल छवि
स्तब्ध विश्व कवि जीवन उन्मन ।

छल छल की ध्वनि से कर्ण कुहरों को नाद-व्यंजना का सुख प्राप्त होता है । साहित्य-रचना में बिम्ब-विधान का स्वरूप बहुत-कुछ कवि या लेखक के स्वयं के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है । `निराला' का बिम्ब-विधान उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने ही ढंग का है ।

प्रतीक

२७. काव्य में प्रतीकों की संयोजना बहुत प्राचीन है । प्राचीन आध्यात्मिक साहित्य इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । आधुनिक वाङ्मय में प्रतीक-योजना कोई नवीन प्रयोग नहीं । छायावादी काव्य अपने संकेतार्थ तथा सूक्ष्मता के लिए उल्लेखनीय रहा है । छायावादी काव्य में परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग तो हुआ ही बहुत से व्यक्तिगत प्रतीकों का सृजन भी हुआ, जिनका संबंध कवि की निजी अनुभूति और प्रेरणा से होता था । इन व्यक्तिगत प्रतीकों के प्रयोग के कारण छायावादी काव्य की सूक्ष्मता और संकेतात्मकता में अस्पष्टता का एक बिन्दु और आकार जुड़ गया । छायावादी कविता शैलीगत चमत्कार, अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, संकेतात्मकता तथा अस्पष्टता के लिए विशेष उल्लेखनीय रही है । प्रतीक

किसी वस्तु का स्थानापन्न बनता है तथा उसके द्वारा उस वस्तु की संकेत विशिष्टता अथवा प्रभाव का ही संकेत मिलता है । कोई-कोई शब्द प्रस्तुत अर्थ में के अतिरिक्त उससे एकांत भिन्न अन्य अर्थ को भी अभिव्यंजना करता है । उस निरर्थक रूप को ही प्रतीक का स्वरूप पाने का अधिकार मिलता है । यह आवश्यक नहीं कि प्रतीक में सादृश्य गुण हो ही, उदाहरण के लिए चन्द्र, कुमुदिनी, आकाश, समुद्र, हंस आदि गोचर प्रतीक क्रमश: स्निग्धता, आह्लाद, शुभ्रता हास उच्चता, अनंतता, गम्भीरता एवं विवेक आदि के प्रतीक बने हैं ।

२८. सूक्ष्म तथा रहस्यात्मक भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों की संयोजना अनिवार्य रूप से होती है । रहस्यवादियों ने प्रतीकों का विपुल प्रयोग किया है । उनके साध्य तथा उनकी अनुभूति का स्वरूप भाषा में अप्रेषणीय होने के कारण उनको प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा । `निराला` की अभिव्यक्ति रहस्यात्मक है । अतएव उनके काव्य में प्रतीकों की संयोजना पर्याप्त परिमाण में देखी जा सकती है । प्रतीक-योजना से काव्य -विधान में मार्मिकता तो आती है, साथ ही सूक्ष्मता का भी समावेश हो जाता है । `निराला` द्वारा प्रयुक्त शब्द एक तरफ अपना प्रतीकार्थ रखते हैं , दूसरी तरफ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी बनाये रखते हैं । वह अपने मूल अर्थ का त्याग नहीं करते । कवि की लगभग सभी कविताओं में कोई-न-कोई संकेतार्थ सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है । छायावादी युग में लिखे गए उच्चतम प्रबन्धकाव्य भी प्रतीकात्मक ही हैं । प्रसाद की `कामायनी` , `निराला` का `तुलसीदास` प्रतीकात्मक प्रबन्धकाव्य की संज्ञा पाने के अधिकारी हैं । `निराला` काव्य में प्रकृत, परम्परागत सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।

प्रकृत प्रतीक

२९. छायावाद युग में साधारणतया प्रकृतप प्रतीकों की संयोजना ही अधिक हुई है । वस्तुत: वह युग ही सूक्ष्म काव्य-विधान का युग था । प्रकृति की गोद में छायावादी कवि अपनी तीव्र भावनाओं की सन्तुष्टि पाते थे । छायावाद के उत्थान-काल में छायावादी कवियों ने अपनी शैली के उपकरण भी प्रकृति से ही लिए थे, प्रकृति के लिए अपूर्व संवेदन सप्राण सहचरी के रूप में रही है । शृंगारिक कविताओं में ही नहीं, रहस्यात्मक दार्शनिक यथार्थवादी कविताओं में

भी इन प्रकृत प्रतीकों की छटा का अवलोकन किया जा सकता है । `निराला` ने क्रान्ति के उद्घोष में भी प्रकृत - प्रतीकों का आश्रय ग्रहण किया है । प्रस्तुत रूप में कवि बादलों के कोमल और कठोर रूप को ही रूपायित करता है । संकेतार्थ में वह बादलों के वज्रघोष के माध्यम से सर्वहारा की क्रान्ति का तुमुल नाद घोषित करता है --

बार बार गर्जन
वर्षण है मूसलाधार
हृदय थाम लेता संसार
सुन सुन घोर वज्र हुंकार ।
अशनिपात से शापित उन्नत शत शत वीर
क्षत विक्षत हत अचल शरीर
गगन स्पर्शी स्पर्द्धा धीर ।
हंसते हैं छोटे पौधे लघु भार
शस्य अपार
हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।[१]

प्रस्तुत कविता का संकेतार्थ ही इसकी प्रतीकात्मकता है । प्रतीक रूप में बादलों का गर्जन , किसान - मजदूरों का क्रान्ति स्वर बन जाता है जिससे पूंजीपति गगन-स्पर्शी -स्पर्द्धा धीरों की शक्ति क्षत-विक्षत हो जाती है तथा छोटे पौधे(सर्वहारा वर्ग) उस क्रान्ति से आनन्दित और समृद्ध बनते हैं ।

३०. `तुम और मैं` रहस्यात्मक कविता में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से ही उपादान एकत्र किए गए हैं --

----

१- परिमल : बादल राग, पृ० १६६

तुम तुंग हिमालय शृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता [1]

`कुकुरमुत्ता` में गुलाब और कुकुरमुत्ता क्रमश: धनीवर्ग और सर्वहारा वर्ग के प्रतीक हैं। `खून चूसा खाद का` धनिकों की शोषित प्रवृत्ति का प्रतीक है [2]। `निराला` की सर्वप्रथम कविता `जुही की कली` भी प्रतीकात्मक है। `जुही की कली` के आलम्बन कली और मलयानिल प्रेमिका और प्रेमी के प्रतीक हैं। मुकुल और मधुप क्रमश: प्रियतमा और प्रियतम के प्रतीक बने --

मिल गए एक प्रणय में प्राण
मौन प्रिय मेरा मधुमय गान
खिली थी जब तुम प्रथम प्रकाश
पवन कम्पित नवयौवना--हास
वृन्त पर टलमल उज्ज्वल प्राण
नवल यौवन कोमल --नव ज्ञान
सुरभि से मिला आशु आह्वान
प्रथम फूटा प्रिय मेरा गान। [3]

यहां पर भ्रमर, प्रेमी और कली प्रेमिका के रूप में चित्रित किए गए हैं।

सांस्कृतिक प्रतीक

३१. सांस्कृतिक वर्ग के अन्तर्गत पौराणिक, धार्मिक और ऐतिहासिक प्रतीकों पर विचार किया जा सकता है, यथा --

आ रहा याद वह वेदों का उद्धार, ख्यात
वह श्रुतिधरता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात
निष्कम्प, भाष्य प्रस्थानत्रयी पर, संस्थापन
भारत के चारों ओर मठों का, संज्ञापन। [4]

१- परिमल : `तुम और मैं`, पृ० ८०
२- `अबे, सुन बे गुलाब
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट। --(कुकुरमुत्ता, पृ० ३-४)
३- परिमल: भ्रमरगीत, पृ० ६४।
४- अणिमा, १९४३, उन्माद, पृ० ३६।

वेद , प्रस्थानत्रयी , `मठ` आदि शब्द विशिष्ट धार्मिक भावना को अभिव्यक्त करते हैं । कुछ शब्दव परम्परा से एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहने के कारण एक विशिष्टअर्थ के प्रतीक रूप में रूढ़ हो जाते हैं, ऐसे प्रतीकों का भी `निराला` की कविताओं में अभाव नहीं --

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार
बेधना तुझे मीन शरमार [1]

\+ + +

क्रम क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस
चक्र से चक्र मन बढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस
चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन

\+ + +

संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी पद पर [2]

मीन, शर, `चक्र के सूक्ष्म छिद्र` आज्ञा, त्रिकुटी आदि शब्द योग साधना की विशेष क्रिया के लिए रूढ़ हो गए हैं, तथा यह जहां भी प्रयुक्त होते हैं , इसी विशिष्ट अर्थ में ही ।

३२. रहस्यवादी कविताओं में मां जननी आदि के प्रतीकों द्वारा आध्यात्मिक अर्थों की व्यंजना की गई है --

प्रात तपद्वार पर
आया , जननि, नैशअंध पथ पार कर [3] ।
लगे जो उपल पद हुए उत्पल ज्ञात ,

`नैश अंध` , अज्ञान, उपल, एवं कंटक साधना मार्ग में आने वाले कष्टों के प्रतीक स्वरूपप्रयुक्त हुए हैं । काव्यात्मक प्रतीकों द्वारा आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों को स्वर दिया गया है । संसार को भवसागर के रूप में मान्यता दी जाती रही है

१- गीतिका, पृ० २८

२- अनामिका : `राम की शक्ति पूजा` , पृ० १६६

३- गीतिका, गीत ६५, पृ० १००

और जीवन को तरणि का प्रतीक रूप में स्वीकार किया जाता रहा है, इस परम्परागत रूपक को कवि ने `डोलती नाव प्रखर है धार` द्वारा अभिव्यक्त किया है --

डोलती नाव, प्रखर है धार,
संभालो जीवन-खेवनहार ।
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
डोले पग जल भर
डगमग डगमग
टूट गई पतवार ।[१]

नाव-जीवन, खेवनहार-परमात्मा, संसार-सागर, प्रबल तरंगे सांसारिक दु:ख-कष्ट के भवसागर में डगमगाती तरणि का चित्र है, जिसको संसाररूपी सागर में अनेक दु:ख-कष्टों और कलिशी का सामना करना पड़ता है । जर्जर होती हुई पतवार के लिए जीव चिन्तित है । `प्रपात के प्रति` कविता भी प्रतीकात्मक है-- प्रपात पर चेतना का आरोप कर कवि ने उसके जीव रूप की ओर संकेत किया है । अचल (पहाड़) परोक्ष सत्ता का प्रतीक है तथा अंधकार और घन क्रमश: माया, मायोपधिक जीव को संकेतित करते हैं । आत्मा और परमात्मा के एकत्व का भी आभास है, जीव संसार में जीवन धारण करके माया से आबद्ध होकर नाना रूपात्मक क्रीड़ाएं करता है । इसी का रहस्यात्मक संकेत प्रतीक द्वारा कवि देता है । प्रत्यक्षरूप से यह एक प्रपात के प्रति उक्ति है जो अपने उद्भावक अचल से हरहराता हुआ निकलता है ।

३३. रहस्यवाद के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रणय के अतिरिक्त, मां जननी प्रतीक भी अपनाया गया है । `निराला` की प्रतीक योजना भावात्मक है । इस भावात्मक प्रतीक की योजना ` बन्द तुम्हारा द्वार मेरे सुहाग शृंगार` में सुन्दर रूप में मिलती है । इसमें एक उपेक्षित प्रेयसी का चित्र है , जो अपने प्रियतम को अपना स्नेहोपहार देने आई है, पर वंचित रह जाती है । गीत में प्रयुक्त बन्द द्वार, सुमनोपहार आदि प्रतीक हृदय की विभिन्न अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करते हैं । `निराला` की प्रतीक

१- परिमल : सेवा, पृ० ३०

योजना स्वतन्त्र और स्वानुभूतिपूर्ण होने के कारण मार्मिक और हृदयग्राही हो गई है । साहित्य के क्षेत्र में ही प्रतीक योजना आवश्यक नहीं है वरन् मनुष्य का समस्त जीवन ही प्रतीकों से परिपूर्ण है । वस्तुत: मनुष्य मूलत: प्रतीकों के ही माध्यम से सोचता है ।

अलंकार

३४. अलंकारों का दुराग्रह `निराला` की कविता में नहीं दिखाई पड़ता है । अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म हैं । उनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सम्पादन होता है लेकिन यह काव्य का अनिवार्य अंग हो, ऐसा नहीं है । `निराला` काव्य में अलंकारों का औचित्य वहीं तक है, जहां तक वे साधन रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं । वस्तुत: इन्होंने अलंकारों को साधन रूप में ही प्रयुक्त किया है, साध्य रूप में नहीं । आलोच्य कवि के काव्य में अलंकार काव्य के लिए है काव्य अलंकारों के लिए नहीं । `निराला` की कविता में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों की संयोजना स्वाभाविक रूप से हुई । साधारणतया शब्दालंकारों की योजना चामत्कारिक दृष्टि से की जाती है लेकिन कवि द्वारा शब्दालंकारों का विधान चमत्कार के आशय से सायास नहीं हुआ वरन् ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से अभिमंडित उनकी कविता में ऐसा स्वत: हुआ है ।

३५. अनुप्रास की दृष्टि से कवि को अपूर्व सफलता मिली है , लेकिन इसके लिए उन्होंने कोई विशेष नियम स्थापित नहीं किए हैं । नाद-सौन्दर्य की दृष्टि से जहां जैसी आवश्यकता हुई, वहां अनुप्रासों की संयोजना कर दी गई है । मुक्त छन्द में अनुप्रासों की स्वच्छन्द मनोहारी छटा दर्शनीय है । मुक्तछन्दों में अन्त्यानुप्रासों का प्रयोग किसी क्रमिक या निश्चयात्मक पद्धति पर नहीं किया गया है । मुक्तछन्द का कवि भावानुकूल किसी भी स्थान पर अन्त्य योजना का अधिकारी है, जैसा कि प्रस्तुत उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है --

स्वप्नों की उन किन आंखों की
पल्लव छाया में अम्लान
यौवन की माया-सा आया
मोहन का सम्मोहन ध्यान ।`१

वे ही सुख-दु:ख में रहे न्यस्त
तेरे हित सदा समस्त-व्यस्त
वह लता वहीं की, जहां कली
तू खिली, स्नेह से हिली, पली ।[1]

चरण के मध्य में अनुप्रासों की संयोजना की गयी है । `माया आया` `मोहन-सम्मोहन` समस्त व्यस्त, हिली पली, चरण के मध्य में प्रयुक्त अनुप्रास हैं । दूर दूर चरणों में अनुप्रास की योजना से भी अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि हो सकी है, यथा--

झूम झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
राग अमर । अम्बर में भर निज रोर
झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित गति, चकित पवन में
मन में , विजन- गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव घोर कठोर
राग अमर। अम्बर में भर निज रोर ।[2]

प्रथम दो पंक्तियों तथा अन्तिम दोनों पंक्तियों के घोर रोर, कठोर रोर दूरान्तर प्रवाही अनुप्रासों से अपूर्व ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का समावेश हो सका है ।

३६. `निराला` की मुक्तछन्द की प्रारम्भिक कविता `जुही की कली` में वर्णों की आवृत्ति द्वारा स्फुटानुप्रास अलंकार की सृष्टि हो सकी है --

आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
आयी याद चांदनी की धुली हुई आधी रात
आयी याद कांता की कम्पित कमनीय गात ।[3]

`पास हीरे हीरे की खान` गीत में यमक अलंकार का स्वाभाविक रूप देखा जा सकता है । पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार के भी स्थान स्थान पर दर्शन हो जाते हैं --

---

१- अनामिका : `सरोज स्मृति` पृ० १३७
२- परिमल : `बादल राग` , पृ० १५६
३- वही०, पृ० १७३ ।

वे गए असह दुःख भर

वारिद झर झर झर[1]

'निराला' वाङ्गमय में परम्परा से प्रचलित भारतीय अलंकारों का विधान तो स्वत: हुआ ही है । पाश्चात्य अलंकार मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय की छटा भी दर्शनीय है । मानवीकरण अलंकार तो छायावादी कवियों का प्रिय अलंकार रहा था --'जुही की कली', 'बादल राग', 'शेफालिका', 'सन्ध्या-सुन्दरी', 'तरंगों के प्रति' तथा 'यमुना के प्रति' आदि कविताओं में इस अलंकार का प्रयोग किया गया । 'सन्ध्या' को सुन्दरी परी में चित्रित किया गया है --

दिवसा वसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह सन्ध्या-सुन्दरी-परी-सी

धीरे धीरे धीरे ।[2]

विशेषण विपर्यय अलंकार जो पाश्चात्य अलंकार का ही रूपान्तर है, 'निराला' ने अपनी कविता में उसका प्रयोग किया है । इस अलंकार के अन्तर्गत किसी विशिष्ट कथन को अर्थ गर्भित तथा गम्भीर बनाने के हेतु उपमेय का विशेषण उपमान से जोड़ दिया जाता है --

किस विनोद की तृषित गोद में

आज पोंछती वे दृग नीर[3]

\+ \+ \+

कल्मषोद्गार कवि के दुर्दम

चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम[4]

\+ \+ \+

चल चरणों का व्याकुल पनघट[5]

१- गीतिका : गीत ५७, पृ० ६३

२- परिमल : सन्ध्या सुन्दरी, पृ० १२६

३- वही०, पृ० ४४

४- तुलसीदास, छन्द ३५, पृ० २८

५- परिमल : यमुना के प्रति, पृ० ४३ ।

अन्तिम चरण में कवि ब्रजबालाओं की व्याकुलता न बताकर व्याकुल पनघट का प्रयोग करता है ।

३७. सादृश्य मूलक अलंकारों के अन्तर्गत उपमा और रूपक विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं । कवि ने उपमानों में नवीनता लाने का प्रयास किया है , जहां कहीं भी उन्होंने प्राचीन उपमानों का समावेश किया है वहां भी नवीनता का स्पर्श स्पष्ट दिखायी पड़ता है , वस्तुत: कवि की सर्वत्र मौलिकता के दर्शन होते हैं --

प्रेयसी के अलक नील, व्योम
दृग पल, कलंक, मुख मंजु, सोम,
निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोम प्रिय तन पर[1] ।

उपमान का उपमेय में आरोपण ही रूपक अलंकार की सृष्टि करता है । उपर्युक्त उद्धरण रूपक अलंकार का ही सशक्त उदाहरण है । `पंचवटी -प्रसंग` में नवीन और परम्परागत दोनों उपमानों का प्रयोग हुआ है -- शूर्पणखा के सौन्दर्य के लिए प्रयुक्त उपमान --

.... देखती हैं ये भौंहें बालिका-सी खड़ी
छूटते हैं जिनसे आदि रस के सम्मोहन-शर
वशीकरण-मारण उच्चाटन भी कभी कभी ।
हारे हैं सारे नेत्र नेत्रों को हेर-हेर,--
विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में ।
मीन-मदन फांसने की बंशी सी विचित्र नासा,[2]
फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल ।

`शिवा जी का पत्र` नामक कविता में जयसिंह की यश-लिप्सा को अंधे को दिवस की उपमा दी गयी है --

हाय री यशोलिप्सा ।
अन्धे की दिवस तू--
अंधकार रात्रि सी ।[3]

१- तुलसीदास , पृ० ३४
२- परिमल : पंचवटी-प्रसंग, पृ० २२४ ।
३- वही०, पृ० १६४

`तुलसीदास` में प्रिया के प्रभाव को दूर तान से उपमित किया गया है, जो दूर होते-होते और मधुर प्रतीत होने लगती है --

> वह आज हो गई दूर तान
> इसलिए मधुर वह और गान[1]

३८. कवि ने मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के उपमानों का यथा स्थान प्रयोग किया है -- प्रस्तुत `विधवा` के लिए अमूर्त अप्रस्तुत विधान की योजना की गई है --

> वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
> वह क्रूर काल- तांडव की स्मृति रेखा सी[2]।

`पूजा` और `स्मृति रेखा` अमूर्त उपमान है। `निराला` के अमूर्त उपमान भावात्मक सृष्टि करने में पूर्ण समर्थ है। `विधवा` की दीन-हीन पवित्र स्थिति के चित्रांकन के लिए ही कवि अमूर्त उपमानों का सृजन करता है। मूर्त उपमानों का प्रयोग भी आकर्षक है -- `वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन`[3]। अमूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुतों की संयोजना भी कवि ने कुशलता पूर्वक की है।

३६. अन्योक्ति अलंकार की पद्धति पर `ठूंठ`, `उद्बोधन`, `खंडहर के प्रति` आदि कविताएं मिलती हैं। `जुही की कली` कविता में समासोक्ति अलंकार में साकार हो उठा है। इस अलंकार में प्रस्तुत वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है। प्रस्तुत `जुही की कली` पर अप्रस्तुत तरुणी का तथा विरह विधुर पवन पर नायक का आरोप किया गया है, तथा वही प्रधान बन गया है। सन्देहालंकार का सुन्दर उदाहरण `नयन` शीर्षक कविता में मिलता है --

> मद भरे नलिन नयन मलीन हैं
> अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं।[4]

`नलिन` और `मीन` दोनों ही नेत्रों के लिए परम्परा से प्रयुक्त होते आ रहे हैं लेकिन दोनों उपमानों के मध्य कवि ने सन्देहालंकार का आश्रय लिया है। `निराला`

१- तुलसीदास, छन्द ७३, पृ० ४७
२- परिमल : विधवा, पृ० ११६
३- वही०, पृ० ११६
४- वही०, पृ० ७५

काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का पर्याप्त प्रयोग मिलता है - इस अलंकार में भेद स्पष्ट रहते हुए उपमेय में उपमान की प्रतीति की जाती है --

बहती समीर, चिर आलिंगन ज्यों उन्मन[1]

वायु क्या है मानों कभी न खुलने वाले उत्सुक आलिंगन ही बह रहे हैं । `वायु` और `आलिंगन` का भेद स्पष्ट ही है । व्यतिरेक अलंकार के अन्तर्गत उपमान की अपेक्षाकृत उपमेय की विशेषता परिलक्षित होती है, जैसे -- ज्योति की तन्वी तड़ित द्युति ने क्षमा मांगी[2] । अपह्नुति अलंकार में उपमेय का निषेध और उपमान की स्थापना की जाती है, ऐसे अलंकार का प्रयोग भी देखा जा सकता है --

देखा वामा वह न थी, अनिल प्रतिमा वह[3] ।

प्रतीप, मुद्रालंकार, परिकर, तथा परिकरांकुर आदि अलंकारों की भी कवि ने सफल संयोजना की है । `निराला` के काव्य -साहित्य में अलंकारों की योजना प्रयत्नसाध्य नहीं और न कवि ने उसकी उपस्थिति को अनिवार्य मान्यता ही दी है , क्योंकि उनकी प्रवृत्ति किसी भी प्रकार के बन्धन या अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करती थी ।

पौराणिक तत्व

४०. `निराला` प्राचीन संस्कृति के पोषक और उद्गायक रहे हैं । फलत: उनका सांस्कृतिक आधार पुष्ट और गम्भीर है । उनका पौराणिक आधार देवी-देवताओं अवतार पुरुषों तथा यक्ष कथाओं पर आधारित है । अधिकतर पौराणिक पात्र रामकृष्ण, भीष्म तथा अर्जुन आदि नर श्रेष्ठ के रूप में ही अवतरित हुए हैं । `राम की शक्ति पूजा` के समस्त पात्र देवत्व से बोझिल नहीं, वरन मानव सुलभ प्रवृत्तियों से पूर्ण हैं । पुराख्यान तत्वों का प्रयोग `निराला काव्य में विभिन्न रूपों में हुआ है । पौराणिक कथात्मक रूप `राम की शक्ति पूजा` तथा `पंचवटी प्रसंग`

१-तुलसीदास , पृ० १५
२-गीतिका , पृ० ४
३- तुलसीदास, पृ० ५४

आदि में उपलब्ध होता है । इसके अतिरिक्त बिम्ब, प्रतीक तथा उपमा आदि रूप में भी पौराणिक सन्दर्भ प्रयुक्त किए गए हैं । पौराणिक सन्दर्भों से कवि का राष्ट्रीय स्वर भी पुष्ट और मुखरित हुआ है तथा रहस्योन्मुखी कविताओं में भी यह तत्व उपादान रूप में प्रयुक्त किया गया है । पौराणिक सन्दर्भों के माध्यम से कवि भारत की गौरव गाथा का आख्यान प्रस्तुत करता है । वस्तुत: उसका प्रयोग सुप्त भारतीय चेतना में जागरण का सूत्रपात करना ही है --

क्या यह वही देश है
भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र
चिर कुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त
उड़ती है आज भी जहां के वायुमण्डल में
उज्ज्वल, अधीर और चिर नवीन ? -
श्रीमुख से कृष्ण का सुना था जहां भारत ने
गीता गीत सिंहनाद
मर्मवाणी जीवन संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म भक्तियोग का ।[1]

देश की विषम परिस्थितियों में आमूल परिवर्तन हेतु संघर्षरत भारतीयों में लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रह्लाद की दृढ़ आस्था, निष्ठा तथा साधना प्रतीक रूप में ली गई है । सन् १९४३ में प्रकाशित `बेला` संग्रह की एक कविता में कवि ने प्रह्लाद को संघर्षों में अडिग रहने के प्रतीक रूप में ही स्वीकार किया है --

बदल शिलाक्रम, बना इतिहास सच्चा, दम न ले
सज्जनों की प्रगति -पद प्रह्लाद तू जब तक न कर ।[2]

४१. बिम्ब रूप में भी पुराख्यान तत्व का प्रयोग किया गया है । तुलसीदास के ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् स्त्री तथा संसार के प्रति जाग्रत स्वाभाविक विरक्ति तथा आत्म-चेतना के पश्चात सृजनोन्मुख प्रवृत्ति का संकेत पौराणिक बिम्ब

१- अनामिका, पृ० ५८
२- बेला , पृ० ६०

द्वारा ही उभारा गया है --

देखा शारदा नील-वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-- शुचि-नि:श्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर - निर्झर,
यह विश्वहंस है चरण सुघर जिस पर श्री ।[1]

'यमुना के प्रति' कविता पौराणिक प्रतीक योजना की दृष्टि से अनुपम है --

बता कहां अब वह वंशीवट ?
कहां गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहां आज वह वृन्दा धाम ?[2]

यमुना द्वापर कालीन गोप-गोपियों की क्रीड़ाओं की प्रतीक रूप में प्रयुक्त की गई है । प्रस्तुत पंक्तियों के साथ ही तद्युगीन यमुना तट पर हुई कृष्ण गोप-गोपियों की समस्त लीलाएं उभर कर प्रत्यक्ष हो जाती हैं । रहस्यात्मक प्रतीक भी कवि ने पुराख्यान तत्व के आधार पर एकत्र किए हैं --

तुम हो राधा के मन मोहन
मैं उन अधरों की वेणु
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति ।[3]

उपर्युक्त कविता में ब्रह्म और जीव के सम्बन्धों की दार्शनिक व्याख्या में पौराणिक तत्व उपादान के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं । माया के स्वरूप की व्याख्या के लिए भी पुराख्यान तत्व का आश्रय लिया गया है --

यक्ष विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त कांत शकुन्तला ?
या कि कौशिक मोह की तू मेनका[4]

१- तुलसीदास, छन्द ८७, पृ० ५४
२- परिमल, पृ० ४३ ।
३- वही०, पृ० ८१-८२ ।
४- वही०, पृ० ६१

एक स्थल पर शकुन्तला विश्व की विकलता के प्रतीक रूप में अवतरित हुई--

विश्व की विकलता अनुपम शकुन्तला
रह गई, दिग्देश ऋषि का लगा शाप [1]

४२ रूपक तथा उपमान के रूप में भी पौराणिक तत्वों की संयोजना व हो सकी है । प्रकृति-चित्रण के माध्यम से बसन्त से पूर्व पत्तों से हीन हुई डाल पर कवि ने पार्वती के तप का रूपक बांधा है --

देख सखी करती तप अपलक
हीरक सी समीर माला जप
शैल सुता अपर्ण-अशना,
\+ \+ \+
मधुव्रत में रत वधु मधुर फल
देगी जग को स्वाद तोष दल,
गरलामृत शिव आशुतोष-बल
विश्व सकल नेगी । [2]

पुत्री सरोज के विवाह को कवि शिव और पार्वती के रूप में उपमित करता है --

ऐसे शिव से गिरजा विवाह
करने की मुझको नहीं चाह [3]

नारी मात्र को कवि ने पार्वती रूप में कल्पित किया है --

गृह गृह की पार्वती
पुन: सत्य सुन्दर शिव को संवारती
उर उर की बनी आरती । [4]

महाभारत मत्स्यभेद प्रसंग का चित्रण बहुत सुन्दर रूप से अभिव्यक्ति पा सका है --

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार
बेधना तुझे मीन, शर मार
चित्र के जल में चित्र निहार
कर्म का कार्मुक कर में धार

१- बेला पृ० १०६
२- गीतिका, गीत १४, पृ० १६
३- अनामिका, पृ० १३४।
४- वही०, पृ० १४१

मिलेगी कृष्णा, सिद्धि महान
खोजता कहां उसे नादान ?[1]

पौराणिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों तथा तत्वों की संयोजना कवि के सृजन का अन्यतम पक्ष है ।

गीत और संगीत
----

४३. छायावादी काव्य में वैयक्तिक स्वर का आधिक्य रहा है । तत्कालीन समय में स्फुट गीतात्मक रचनाएं अधिक हुईं । लेकिन छायावादी कवियों में गीत सृष्टि की दृष्टि से `निराला` को सर्वाधिक सफलता मिली है । गेयत्व की दृष्टि से `निराला` के गीत अधिक सफल हो सके । वह उच्चकोटि के काव्य मर्मज्ञ ही नहीं, सफल संगीतज्ञ भी थे । यही कारण है कि वह संगीत के क्षेत्र में भी असाधारण सफलता प्राप्त कर सके हैं । कवि के गीतों की संख्या पर्याप्त है । विश्व की स्वर से उत्पत्ति स्वीकार करते हुए `निराला` ने गीति सृष्टि को शाश्वत[2] घोषित किया है । कवि की संगीत -साधना अद्वितीय थी । वस्तुत: उन्होंने संगीत की संगति स्थापित करने का ही प्रयास नहीं किया वरन् काव्यात्मक उत्कर्ष से भी अपने गीतों को अभिमंडित किया है । रामचन्द्र शुक्ल ने कवि की इस महान देन को अन्यतम माना है[3] । काव्य और संगीत के मणि कांचन संयोग से `निराला` के गीत अभिनव बन सके हैं । यों तो साधारणतया संगीत की स्थापना के लिए काव्य की उपेक्षा कर दी जाती है लेकिन आलोच्य कवि ने इस

१- गीतिका, पृ०

२- गीत सृष्टि शाश्वत है । समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है । इसी अशब्द संगीत से स्वर सप्तकों की सृष्टि हुई । समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है, अलग अलग व्यष्टि स्वर-विशेष-व्यक्ति या मौन ।`
-- गीतिका :भूमिका, पृ०७

३- संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास `निराला` ने किया है ।
-- रामचन्द्र शुक्ल :हिन्दी साहित्य का इतिहास
पृ० ५७५

दृष्टि से पर्याप्त सतर्कता रखी है । पर उनके गीत पूर्णतया दोषशून्य ही हों--ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता । कतिपय गीतों संगीत की संगति का आग्रह होने के कारण कवि अनायास ही अर्थ समन्वय की उपेक्षा कर गया है , उदाहरण के लिए --

अभरण भर वरण गान
वन वन उपवन-उपवन
जागी छवि, खुले प्राण ।
\+ \+ \+
मधुप निकर कलरव भर,
गीत मुखर पिक-प्रिय-स्वर
स्मर- शर हर केशर-भर,[१]

और कहीं-कहीं संगीत स्वरों की संगति के लिए उन्होंने अभिप्रेत शब्दों का निराकरण भी कर दिया जिससे न्यून पदत्व दोष आ गया है । परन्तु ऐसे गीत अपवाद स्वरूप ही हैं इसके विपरीत गीति-योजना के अनुरूप स्वर और शब्दों का सफल समन्वयात्मक रूप ही दृष्टिगत होता है ।

४४. सर्वप्रथम बंगाल प्रान्त पश्चिमी सभ्यता संस्कृति और साहित्य से प्रभावित हुआ था । कवि के जीवन का प्रारम्भिक अधिकांश समय बंगाल प्रान्त में व्यतीत हुआ था । बंगला संगीत पर पश्चिमी संगीत की प्रतिछाया पर्याप्त देखी जा सकती है । अत: आलोच्य कवि का बंगला संगीत से प्रभावित होना स्वभाविक ही था, पर बंगला सम्मि संगीत से प्रभावित होते हुए भी हिन्दी में प्रयुक्त उनकी संगीत साधना पूर्णतया मौलिक और नवीन रही । अंग्रेजी संगीत से प्रभावित होने पर भी कवि यह स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था कि अंग्रेजी संगीत का अनुकरण किया गया है[२] ।

४५. परम्परागत हिन्दी में प्रयुक्त शब्दावली और स्वर साधन को `निराला` स्वीकार करने को तत्पर नहीं थे । सब प्रकार के बन्धन को नकारने वाले

१- गीतिका, गीत ७, पृ० ६ ।

२- अंग्रेजी संगीत से प्रभावित होने के यह मानी नहीं कि उसकी हूबहू नकल की गई । अंग्रेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी यह संदिग्ध है । कारण भारतीय संगीत की स्वर मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं, वे अंग्रेजी संगीत में लगते हैं ।.उनसे अंग्रेजी में ही भाव पैदा होता है ।

कवि के लिए गीत की निश्चित सीमाएं आहत थीं, यद्यपि उनके स्वयं के गीत भी एक निश्चित आधार के अन्तर्गत ही सीमित व किए गए हैं । लेकिन वह श्रृंखलाबद्ध होते हुए भी मनोरमता और स्वच्छन्दता से युक्त है । `निराला` के गीत रूढ़ राग रागनियों के मोह में पड़कर रसहीन नहीं हो गए हैं । यद्यपि एकाध स्थलों को छोड़कर सर्वत्र संगीत के छन्दशास्त्र की ही अनुवर्तिता की गयी है । हिन्दी गवैयों का सम पर आना, `निराला` को ऐसा लगता था, जैसे कोई मजदूर लकड़ी का बोझा मंजिल पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिन्त हुआ हो । ह्रस्व-दीर्घ घट बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है , उससे भी बचने का कवि का सक्रिय प्रयास रहा है था । यही कारण है कि अभिव्यक्ति को नवीनता को स्वीकार करने के कारण ही प्राचीन भावों को भी नवीनता का स्पर्श मिल सका ।`गीतिका` के गीतों में कवि ने ताल और मात्राएं भी निश्चित की हैं । `गीतिका` की भूमिका में कवि ने स्वर लिपियां भी दे दी हैं तथा ताल-मात्रा का पूरा-पूरा उल्लेख कर दिया है । किन्तु राग-रागनियों का उल्लेख उन्होंने नहीं किया, इसके लिए उन्होंने कहा है,` गीतों पर राग-रागिनी का उल्लेख मैंने नहीं किया, कारण गीत हर एक राग-रागिनी में गाया जा सकता है ।`[१]

४६. साधारणतया वैयक्तिक अभिव्यक्ति होने के कारण छायावादी गीत अधिक सार्वजनिक न हो सके लेकिन इस दृष्टि से `निराला` के गीत रसास्वादन में पूर्ण समर्थ हैं । `निराला` के गीतों को सार्वजनिक रूप से गाया भी जा सकता है क्योंकि इनके गीतों में व्यक्तिगत भावनाओं को मुखरित नहीं किया गया है,वरन् कवि का दृष्टिकोण तटस्थ भावात्मक चित्रण में संलग्न रहा । वैयक्तिकता के स्थान पर वस्तु मुखरता इनके गीतों की प्रधान विशेषता है । गीतों में भावों की मनोहरता सुसम्बद्धता तथा मानवीय भावों की अपूर्व औदात्यपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है । कवि ने सभी प्रकार के विषयों पर गीत सृजना की है, आत्म-निवेदन युक्त, प्रार्थनापरक, शृंगारिक(नारी सौन्दर्य युक्त) प्रकृति-वर्णन तथा राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत है । कवि के बहुत से गीत सार्वजनिक रूप से गाए जाते हैं -- इनका बहु प्रचलित गीत `भारति जय विजय करे` राष्ट्रीय गीत के रूप में गाया जाता है ।

४७. `निराला` के गीतों में अपूर्व कसावट है , अनावश्यक शब्दों का समावेश कवि ने नहीं किया है । एक एक भाव गठित और गुम्फित है, कहीं भी

१- गीतिका : भूमिका, पृ० १७-१८

विखराव या भटकन नहीं जो गीत-सृष्टि की दृष्टि से कवि की अप्रतिम उपलब्धि है, यही कारण है कि `निराला` के गीतों में सांकेतिक अभिव्यंजना का साक्षात्कार होता है[1]। शुद्ध परिमार्जित खड़ी बोली का प्रयोग होने से यह अशिक्षित वर्ग के लिए सहज एवं बोधगम्य नहीं तथा स्वर-संधान के आधार पर तो अनाधिकार प्रवेश ही होगा । यहां तक कि `ब्रजभाषा के पदों को गाने वाले उस्ताद उत्तरी-संगीत स्कूल के कलावंत, जिन्हें खड़ी का बहुत साधारण ज्ञान है.... गीत गा न सकेंगे[2]। `गीत में कवि ने सामासिक पदावली का ही प्रयोग अधिकतर किया है । `निराला` के गीत गत्यात्मक रूप चित्रों तथा दार्शनिक पर्यवसान से पूर्ण हैं । लौकिक दृष्टि से प्रारम्भ और पुष्ट हुआ भाव भी अन्त में अलौकिकता का आवरण ओढ़ लेता है । इस अपूर्व दार्शनिक रहस्यात्मक परिसमाप्ति से औदात्य तथा कलात्मकता का समावेश हो सका है । काव्यात्मक चित्रमयता, रागमयता के साथ दार्शनिक अनुबंध कला की दृष्टि से चार चांद लगा देता है ।

४८. सार्वजनिक गेयता के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए ही `निराला` ने गीतों की सीमा लघु रखी है । लेकिन लघु आकार के कारण रस-संवेदन में कोई अन्तर नहीं पड़ा है । सौन्दर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति का साक्षात्कार गीत के पूर्ण रूप में ही होता है, खण्डरूप में नहीं । सम्पूर्ण गीत में आद्योपान्त एक ही भाव व्याप्त रहता है । जो गीत की समाप्ति के साथ ही पूर्ण होता है । `निराला` के गीतों की विभिन्न कोटियां निर्धारित की जा सकती हैं । कवि के कुछ एक गीत तो शास्त्रीय राग-रागिनियों को लक्ष्य में रखकर रचे गए हैं । कुछ गीत लोक-प्रचलित पद्धति के आधार पर लिखे गए हैं जैसे -- बिरहा, कजली, फारसी उर्दू की कव्वालियां, गज़लों का रूप भी `निराला` के गीतों में पाया जाता है । तथा कुछ एक ऐसे भी गीत हैं जिसमें समन्वयात्मक रूप पाश्चात्य तथा भारतीय लयों और ग्राम्य गीतों का मिलता है[3]। प्राचीन पद-शैली से युक्त तथा नवीनता के आग्रह से

१- मधु-ऋतुराज मधुर अधरों की पी मधु सुध बुध खोली,
खुले अलक मुंद गए पलक-दल श्रम-सुख की हद होली--
बनी रति की छवि भोली ।
-- गीतिका, गीत ४१, पृ०४६ ।

२- गीतिका: भूमिका, पृ० १८

३- जग का एक देखा तार
कंठ अगणित देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार ।।
-- गीतिका, पृ० २४

मंडित गीतों का साक्षात्कार भी किया जा सकता है ।

छन्द

४६. काव्य-क्षेत्र में `मुक्त छन्द` का आविष्कार `निराला` का सर्वाधिक क्रान्तिकारी कार्य था । यों तो उनके सृजन में सर्वत्र नवीनता, मौलिकता और प्रशंसनीय कार्य `मुक्त छन्द` की उद्भावना थी । प्रारम्भ में परम्परा और रूढ़ि से भिन्न मार्ग का अवलम्बन लेने के कारण उनको पर्याप्त उपेक्षित और लांछित होना पड़ा परन्तु शीघ्र ही इस महत्व कार्य की उपादेयता को अनुभूत किया गया, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव आज तक देखा जा सकता है उन्मुक्तता मनुष्य-स्वभाव का स्वाभाविक गुण है,` अतएव मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है । जैसे बाग की बंधी और वन की खुली प्रकृति । दोनों ही सुन्दर हैं पर दोनों के आनन्द तथा दृश्य दूसरे दूसरे हैं , जैसे अलाप और तान की रागिनी.... इसमें सन्देह नहीं कि अलाप, वय प्रकृति तथा मुक्त काव्य स्वभाव के अधिक अनुकूल है[१] ।`

५०. `निराला` ने मुक्त छन्द का `ब्रह्म` के मुक्त स्वभाव से साम्य स्थापित किया है[२] । वैदिक युग में भी छन्दों की दृष्टि से पूर्ण उन्मुक्तता थी, भावानुकूल ही चरणों का विस्तार और निर्माण होता था, वही रूप `निराला` के `मुक्तछन्द` में स्वीकृत है । कालगत परिवर्तन के साथ परम्पराएं तथा मान्यताएं भी परिवर्तित होती चलती हैं, यह आवश्यक नहीं कि रीतिकाल में यदि काव्य में अत्यधिक रूढ़ मान्यताएं स्वीकृत थीं तो वह सदैव ही स्वीकृत रहेंगी । बीसवीं सदी की स्वाधीन चेतना ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आलोड़ित (विलोडित) किया । साहित्य में यही चेतना प्राचीन रूढ़िगत बन्धनों से मुक्त होने की भावना में आभासित हुई ।

१- निराला : परिमल -- भूमिका, नवम सं० १९६३, लखनऊ पृ० १२

२- `जिस तरह ब्रह्म मुक्त स्वभाव है वैसे ही यह छन्द भी` ।
वही०, पृ० १३ ।

साहित्य के क्षेत्र में नवीन, विचार, नवीन भाव, नवीन विषयों के साथ नवीन अभिव्यंजना पद्धतियों का अन्वेषण हुआ । `मुक्त छन्द` का प्रयोग ऐसा ही प्रयोग था । `निराला` की काव्य-अभिव्यक्ति `मुक्त छन्द` से ही प्रारम्भ हुई थी ।

५१. `निराला` ने मुक्त छन्द को स्वत: स्फुरित और सहज घोषित किया था, `कल्पना की सुन्दर भूमि में हिन्दी के अभिनय की सफलता पर विचार करते हुए बोलते हुए, पाठ देखते हुए, जिस छन्द की सृष्टि हुई, वह यही है और पीछे से विचार करके भी देखा तो स्वभाववश निश्छल हृदय की सत्य ज्योति की तरह निकला हुआ पाया[1] ।` `मुक्त छन्द` ही वस्तुत: जातीय छन्द की मान्यता पाने का अधिकारी है[2] । लय ही मुक्त छन्द का प्राण है । इस छन्द में चरणों की संख्या और विस्तार पूर्णतया अनिश्चित एवं स्वतन्त्र रहता है, केवल लय का आधार अथ से इति तक एक-सा स्पन्दित होता है --

आँखें अलियों सी
किस मधु की गलियों में फँसी,
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधुमौन
या सोई कमल- कोरकों में ?
बन्द हो रहा गुंजार--
जागो फिर एक बार[3] ।

प्रस्तुत अंश में मात्रा या वर्ण या चरण किसी का भी साम्य दृष्टिगत नहीं हो रहा है, लेकिन लयाधार कवित्त छन्द का है ।

५२. `निराला` की विद्रोही स्वाधीन प्रवृत्ति ने छन्द में वर्ण, मात्रा, गण सभी के अस्तित्व को नकारा है, लेकिन फिर भी छन्द की भूमि के अन्तर्गत

१- निराला: प्रबन्ध [illegible] --`पंत जी और पल्लव`, १९६०, लखनऊ पृ०१०६-१०७

२- कवित्त छन्द हिन्दी का चूंकि जातीय छन्द है, इसलिए जातीय `मुक्त छन्द` की सृष्टि भी कवित्त छन्द की गति के अनुकूल हुई है ।
-- वही०, पृ० १०८ ।

३- निराला : परिमल --`जागो फिर एक बार` , १९६३, लखनऊ पृ० १७७

का एकमात्र आधार लय की अनिवार्यता ही है।[1] मुक्त छन्द
ही उसको मान्यता प्रदान की है और इस मान्यता की सफलता पाठ्य-कला पर निर्भर करती है। कवि की मुक्त छन्द की कविताओं में अपूर्व ओज, प्रवाह और संगीतात्मकता है, लेकिन संगीतात्मकता का समावेश करने के लिए मात्राओं की संख्या को नियमबद्ध नहीं किया गया है, वरन् संगीत के आधार पर चरणों की रचना होती है। उदाहरणस्वरूप 'जागो फिर एक बार' 'मुक्त छन्द' की कविता का कुछ अंश लिया जा सकता है --

सत् श्री अकाल,
भाल-अनल- धक धक कर जला,
भस्म हो गया था काल --
तीनों गुण-ताप-त्रय,
अभय हो गए थे तुम
मृत्युंजय व्योम केश के समान,
अमृत-संतान। तीव्र
भेद कर सप्तावरण - मरण-लोक
शोकहारी। पहुंचे थे वहां
जहां आसन है सहस्रार
जागो फिर एक बार[2]।

प्रस्तुत अंश में मात्रा और चरण का कोई नियम नहीं। वस्तुस्थिति में इसकी लयात्मकता और निर्बाधता ही ओज का कारण है। यदि इन्हीं पंक्तियों को नियम में आबद्ध कर दिया जाय तो इसकी समस्त ओजस्विता और भास्वरता समाप्त हो जायगी। कवि ने स्वयं बाह्य साम्य की उपेक्षा की है, 'मुक्त काव्य में बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध-धारा प्राणों को सुख प्रवाहसिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है[3]।'

१- मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है... मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।'
--निराला: परिमल --भूमिका, नवम सं०, १९६३, लखनऊ पृ०१६।
२- निराला : परिमल --'जागो फिर एक बार', १९६३, लखनऊ, पृ०१८०-१८१।
३- निराला : प्रबन्ध पद्म --'पंत और पल्लव' १९६०, लखनऊ पृ०१०२-१०३।

५३. लय की अनिवार्यता के कारण ही यत्र-तत्र अनायास ही वर्णों की समानता, अनुप्रास आदि का भी समावेश हो गया है लेकिन ऐसा सर्वत्र दृष्टिगत नहीं होता, लय के निर्बाध प्रवाह के लिए एक पंक्ति का कुछ अंश दूसरी पंक्ति से भी जोड़ दिया गया है --

तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर
किन्तु गम्भीर नहीं है उसमें हास-विलास[1]।

यद्यपि मुक्त छन्द में अन्त्यानुप्रास का कोई क्रम नहीं होता लेकिन मध्यानुप्रासों का योग तथा अन्त्यानुप्रासों का दूरान्तर सम्बन्ध उसमें होता है। रूढ़िगत अन्त्यानुप्रास की उपेक्षा करके भी उसे ध्वनि सौन्दर्य की व्यंजना में विशेष स्थान दिया जाता है --

देख ये कपोत कंठ
बाहु वली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन-क्षीण कटि--
नितम्ब-भार चरण सुकुमार--
गति मंद मंद।[2]

द्वितीय पंक्ति का 'सरोज' तथा तृतीय पंक्ति का 'उरोज' एवं 'पीन क्षीण' चतुर्थ पंक्ति का 'भार' और 'सुकुमार' आदि स्वरों और व्यंजनों की ध्वनि साम्य के द्वारा अपूर्व संगीतात्मकता का समावेश हो सका। इस कविता का आधार कवित्त छन्द है, 'देख यह कपोत कंठ' के 'ह' को निकाल देने से कवित्त छन्द का एक चरण बन जाता है। इसी तरह 'बाहु वली - कर सरोज' के 'र' को निकाल देने से भी कवित्त का चरण बन जाता है-- सम्पूर्ण छन्द की लय कवित्त छन्द पर आधारित है।

५४. कहीं-कहीं इस छन्द में चरण के कुछ अंश की आवृत्ति करने से अपूर्व सौन्दर्य का सृजन हुआ है --

---

१- निराला : परिमल-- सन्ध्या सुन्दरी, १९६३, लखनऊ, पृ० १२६।
२- वही०, पृ० १२५।

आयी याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात
आयी याद चांदनी की धुली हुई आधी रात
आयी याद कांता की कम्पित कमनीय गात ।[1]

`जुही की कली` का निर्माण कवि ने वर्णिक मुक्त छन्द में किया है --

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल-तनु तरुणी
जुही की कली
दृग बंद किए - शिथिल पत्रांक में[2]

यहां `सोती थी सुहाग भरी` आठ अक्षरों का एक छन्द आप ही आप बन गया है और सम्पूर्ण कविता की गति कवित्त छन्द की तरह है । `मुक्त छन्द` के अतिरिक्त अनेक प्राचीन छन्दों का उद्धार और नवीन छन्दों का सृजन भी आलोच्य कवि द्वारा हुआ । अत: प्रस्तुत स्थल पर उनके छन्द सम्बन्धी प्रयोगों के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है --

५५. `निराला` ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल `महादेवी जी के प्रति` तथा श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति चतुर्दशपदियों में २४ मात्रा के रोला छन्द का प्रयोग किया है --

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर
दीप्त द्वितीया हुई लीन, खिलने से पहले
किन्तु निशाचर सन्ध्या के अन्तर में दहले
स्पष्ट तृतीया, खिंची दृष्टि लोगों की सहसा
छिड़ी सिद्ध साहित्यिक से, तुमसे जब वचसा ।

१- वही०, पृ० १७१
२- वही०, पृ० १७१

मुक्त चतुर्थी, समालोचना वधू व्याह कर
लाए तुम, पंचमी काव्य वाणी अपने घर ।
षष्ठी, छः ऐश्वर्य प्रदर्शित कोष प्राण में,
शिक्षण की सप्तमी, महार्णव सत्य ज्ञान में ।
दिए अष्टमी आठों वसु टीकाओं में भर,
नवमी शांति ग्रहों की, दशमी विजित दिगम्बर ।
एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी ।
त्रयोदशी प्रदोष नत चतुर्दशी रत्न शशी ।[1]

उपर्युक्त `चतुर्दश पदी` में `सौनेट` के सैद्धान्तिक पक्ष का निर्वाह न करके सम्पूर्ण कविता अखण्ड रूप में ही प्रयुक्त हुई है, तथा युग्मक अनुप्रास का प्रयोग किया गया है ।

५६. राग-रागिनियों से युक्त `गीतिका` के कतिपय गीतों में १२ मात्रा के लीला छन्द का कवि द्वारा प्रयोग हुआ है , यह छन्द शास्त्रीय संगीत के अधिक अनुकूल पड़ता है --

स्तब्ध अंधकार सघन   ६+६ मात्राएं
मन्द गन्ध भार पवन
ध्यान लग्न नैश गगन
मूंदे दल नीलोत्पल ।[2]

कुंडल छन्द की लय पर १७ मात्रा का नवीन प्रयोग `निराला` ने किया है --और इस छन्द की क्रम-योजना ६+६+५ की मात्रा के आधार पर संगठित की गई है --

फैली दिङ्०। मंडल में । चांदनी   ६+६+५
बंधी ज्योति । जितनी थी । बांधनी
करती है । स्तवन मंद । पवन से
गन्ध कुसुम। कलिकाएं। भवन से ।[3]

१- निराला : अणिमा, `श्रद्धांजलि` , १९४३, उन्नाव, पृ० २६

२- निराला : गीतिका, १९६१, इलाहाबाद, गीत ७३, पृ० ७८ ।

३- निराला : अणिमा, १९४३, उन्नाव, पृ० ५४ ।

१८ मात्रा के 'पुराण छन्द' जो फारसी के फायलुन, मुफ़ायलुन मुफायलुन के आधार पर निर्मित होता है -- का प्रयोग 'निराला' ने सफलता पूर्वक किया है --

हाथ मारते फिरे कहां के हैं — १८ मात्राएं
ये गफलत से घिरे जहां के हैं, — १८ ,,
अपनी तरणी तिरे यहां के हैं, — १८ ,,
उनसे जैसा चाहे कह ले ।[1] — १६ मात्राएं

फारसी के बहर फायलातुन,फायलातुन, फायलातुन, फायलुन के आधार पर २७ मात्राओं के नवीन छन्द का निर्माण हुआ है । सप्तकों में विभाजित इस छन्द के अन्त में लघु गुरु रहता है --

भेद खुल खुल । जाय वह सू । रत हमारे । दिल में है
देश कोमिल । जाय जो यूं । जी तुम्हारे । मिल में है ।[2]

'राम की शक्ति पूजा' में प्रयुक्त छन्द कवि की नवीन उद्भावना है, इस छन्द का निर्माण तीन अष्टकों से हुआ है तथा 'इन अष्टकों की पुनरावृत्ति से अपूर्व भास्वरता का समावेश हो सका है --

शत-वायु-वेग।-बल, डुबा अतल । में देश-भाव, — ८+८+८
जल-राशि-विपुल। मथ मिला अनिल। में महाराव — ,,
वज्रांग तेज। घन बना पवन। को, महाकाश
पहुंचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध ।कर अट्टहास ।[3]

इस छन्द का चरणांत गुरु लघु से होता है ।तुक का प्रयोग कवि ने प्रसंगानुसार मध्य और अन्त में किया है । गति का कोई निश्चित नियम नहीं है । डा० पुत्तूलाल शुक्ल ने किसी परम्परागत नाम के अभाव में इस छन्द को 'शक्तिपूजा' नाम से अभिहित किया है ।[4]

१- निराला: बेला, १९६२, प्रयाग, गीत ३६, पृ० ५२
२- वही०, पृ० ७५
३- निराला : अनामिका, 'राम की शक्ति पूजा' , पृ० १५७
४- डा० पुत्तूलाल शुक्ल: आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, १९५७,लखनऊ,पृ०२६०

५७. आधुनिक युग में सम छन्दों को अर्द्ध सम रूप में भी प्रयुक्त किया गया है । दीर्घ मात्रिक सम छन्दों को यति के स्थान पर विभाजित करके दो चरणों का निर्माण कर दिया जाता है , पर ऐसा विभाजन कतिपय दीर्घ छन्दों में ही किया गया है । इससे सम छन्दों की लय में कोई अन्तर नहीं पड़ता --`निराला` ने २२ मात्रा के `कुण्डल छन्द` का अर्द्धसम रूप में प्रयोग किया है --वस्तुत: मुद्रण द्वारा ही यह नवीनता इसमें लाई जाती है सैद्धान्तिक रूप से इन `सम छन्दों` में कोई अन्तर नहीं पड़ता --

जननि, जनक । जनति-जननि,	१२ मात्राएं
जन्मभूमि - भाषे ।	१० ,,
जागो, नव अम्बर -भर,	१२ ,,
ज्योतिस्तर-वासे ।[१]	१० ,,

`कुण्डल छन्द` में १२ के बाद यति और अंत में दो गुरु होते हैं । संगीतात्मकता इस छन्द की मुख्य विशेषता है । इसी प्रकार `रजनी छन्द` का भी अर्द्ध सम रूप प्रयुक्त हुआ है --

जब कहीं झड़ जायेंगे वे	१४ मात्राएं
कह न पाएगी	६ ,,
वह हमारी मौन भाषा	१४ ,,
क्या सुनाएगी ?[२]	६ ,,

`रजनी छन्द` की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा अनिवार्यत: लघु होती है । और यह छन्द शृंगार-रस के अधिक उपयुक्त होता है ।`रोला छन्द`का अर्द्ध सम रूप --

नयन मुंदेंगे जब, क्या देंगे ?	१६ मात्राएं
चिर प्रिय दर्शन ?	८ ,,
स्रत- सहस्र, जीवन-पुलकित, प्लुत[३]	१६ ,,
प्याला कर्षण ?	८ ,,

१- गीतिका, गीत, ७८, पृ० ८३

२- परिमल : पृ० ३२

३- परिमल : पृ० ६१

५८. `निराला' ने कुछ ऐसे सम-मात्रिक छन्दों का भी प्रयोग किया है, जिनमें समान मात्रा के चरण क्रमायोजन में आद्योपान्त प्रयोग में लाए जाते हैं। इन छन्दों में केवल अन्त्यक्रम के आयोजन में ही विशेषता रहती है और यह छन्द चार चरण से अधिक चरणों का होता है -- इन छन्दों की मात्राएं निश्चित होती हैं --

अमरण भर वरण गान	क अन्त्यानुप्रास
वन-वन उपवन उपवन	क
जागी छवि खुले प्राण	क
उज्ज्वल दृग कल कल पल	ख
निश्चल कर रही ध्यान[1]	क

उपर्युक्त लीला छन्द क, क, क, ख, क अन्त्यानुप्रास की क्रम-योजना से प्रयुक्त किया गया है।

५९. विभिन्न मात्रा संख्या के चरणों से संयोजित `विषम मात्रिक छन्द भी कवि द्वारा प्रयुक्त किए गए हैं। इन विषम- मात्रिक छन्दों में विभिन्न मात्रा संख्या के चरणों के रहते हुए भी परस्पर लय मैत्री अनिवार्य रूप से रहती है --

गीत जगाओ	८ क मात्राएं
गले लगाओ	८ क
हुआ गैर जो सहज सगा हो	१६ ख
करें पार जो हैं अति दुस्तर[2]	१६ ग

प्रस्तुत छन्द में आठ और सोलह मात्राएं चौपाई के अष्टक के आधार पर ही चलती हैं अत: दोनों भिन्न विस्तार के चरणों का संयोग सम्भव हुआ।

६०. मिश्रवर्ग के छन्द भी `निराला' द्वारा प्रयुक्त किए गए हैं। इन मिश्र वर्ग के अन्तर्गत ऐसे छन्द स्वीकृत हैं, जिनमें दो निश्चित छन्दों की लय मिलकर छन्द की एक नई इकाई निर्मित होती है। दो निश्चित छन्दों के योग तथा पूर्ववत्

१- गीतिका, गीत, ७, पृ० ६

२- अणिमा, पृ० ११

क्रम से चरणों की आवृत्ति यही इस छन्द का मुख्य आधार है --

वह वह कुछ कह कह वायर में	१६ मात्राएं
रह रह आती हैं रस बस में	१६ ,,
कितनी ही तरुण अरुण किरणें	१६ ,,
देख रहा हूं अजान दूर ज्योति यानदार	२४ ,,
मेरे जीवन पर, प्रिय, यौवन वन के बहार[1]	२४ ,,

प्रस्तुत छन्द 'चौपाई' के तीन चरण तथा 'रोले' के दो चरणों से निर्मित हुआ है । इसी तरह 'तुलसीदास' प्रबन्ध में छन्द-विधान भी मिश्र वर्ग के अन्तर्गत हो जाता है । दो लघु पंक्तियों के बाद एक दीर्घ पंक्ति फिर दो लघु पंक्तियां तथा एक दीर्घ पंक्ति यह छन्द का बाह्य रूप आकार है । पहली, दूसरी, चौथी तथा पांचवीं पंक्तियां एक छन्द की है तथा तीसरी तथा छठी पंक्तियां भिन्न छन्द की । लघु पंक्तियों का अंत साधारणतया लघु वर्णों से ही हुआ है --

बल मंद चरण आर बहार
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रम मल्लिाधर, फिर देखा
संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख जल,[2]
प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि रेखा ।

यदि तीसरी पंक्तिका 'फिर देखा' और छठी पंक्ति का 'रविरेखा' पद निकाल दिया जाय तो सम्पूर्ण पंक्तियां एक ही छन्द की प्रतीत होंगी । तीसरी और छठी पंक्ति ऊपर के अन्त्यानुप्रास का अनुसरण करती हुई एक सी ही प्रतीत होती हैं लेकिन फिर वह अपनी दिशा बदल लेती हैं । 'मल्लिाधर' पद तक तीसरी पंक्ति भीउपर्युक्त पंक्तियों से साम्य रखती है , लेकिन दो शब्दों के बढ़ा देने से छन्द परिवर्तन हो जाता है । गति और यति का स्वेच्छा पूर्वक प्रयोग किया गया है

१- परिमल : पारस, पृ० ६७

२- तुलसीदास, छन्द १००, पृ० ६१

६१. ऐसे छन्द भी आलोच्य-कवि द्वारा प्रयुक्त हुए हैं, जिनके चार चरणों में तीन चरणों का अन्त्यानुप्रास एक सा होता है और यह तीन चरण सम होते हैं और चतुर्थ चरण का अन्त्यानुप्रास छन्दक(टेक) से मिलता है । इस तरह के प्रयोग अधिकतर गीतों के अन्तर्गत किए गए हैं --

मूंदे पलक प्रिय की शैय्या पर　　　　१६ मात्राएं
रखते ही पग, उर थर-थर-थर
कांप उठा वन में तरु मर्मर
　　चली पवन पगली ।[1]

प्रस्तुत छन्द का अन्त्यानुप्रास क, क,क, ख के प्रायोजन से प्रयुक्त हुआ है । छन्द के क्षेत्र में `निराला' की देन अत्यन्त क्रान्तिकारी रही है । यदि मुक्त छन्द के प्रवर्तन की उनको मान्यता प्रदान की जाय तो अत्युक्ति न होगी । वस्तुत: ऐसी स्थापना पूर्णतया न्यायोचित है ।

प्रकृति

६२. छायावादी कवियों के लिए प्रकृति अपूर्व प्रेरणादायिनी तथा काव्य का प्रधान विषय थी । लेकिन छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रकृति का स्वरूप पूर्ववर्ती काव्य से एकांत भिन्न अपना कुछ विशिष्ट स्थान रखता है । प्रकृति का मात्र यथातथ्य रूप में या प्रतीक विधान या अप्रस्तुत के रूप में ही अंकन नहीं किया गया, वरन प्रकृति के सचेतन रूप के साथ रागात्मक सम्बन्ध की कल्पना भी की गई और साथ ही प्रकृति के विराट स्वरूप में रहस्यात्मकता का संकेत भी पाया गया । प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के माध्यम से कवि उस सर्वात्मा अदृश्य विराट सत्ता के प्रति कुछ संकेत भी पाता रहा है । `निराला' काव्य में प्रकृति का स्वरूप ऐसा ही है । वस्तुत: प्रकृति का जितना उदात्त स्वरूप `निराला' काव्य में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है-- कवि ने प्रकृति का कोमल और कठोर दोनों रूपों का चित्रण अपूर्व सफलता के साथ किया है । `निराला' द्वारा प्रकृति -चित्रण मानवीय भावनाओं से युक्त नाना रूपों में हुआ । उनके काव्य में प्रकृति के प्रति तादात्म्य

१- परिमल, पृ० १०१

रूप अधिक परिलक्षित होता है तथा इस तादात्म्य भाव के स्फुरण की पृष्ठभूमि में उनका बौद्धिक चिन्तन ही प्रधान कारण है ।

उद्दीपन-रूप

६३. प्रकृति मानव-भावों सुख-दुःख को उद्दीप्त करने की माध्यम भी रही है -- उमड़ते-घुमड़ते पावस के बादलों से प्रेमिका को अपने प्रियतम की स्मृति विरह-विह्वल कर देती है --

अलि, घिर आए घन पावस के
द्रुम समीर-- कम्पित थर थर थर,
झरती धाराएं झर झर झर,
जगती के प्राणों में स्मर-शर
बेध गए, कसके --[1]

'गीतिका' के एक गीत ' बह चली अली अब शिशिर समीर' में शिशिर का वर्णन उद्दीपन रूप में ही किया गया है । 'शिशिर' केवल कामिनी को ही विरह से उद्दीप्त ~~रूप में ही किया गया है ।~~ नहीं करता वरन् नील-कमल कलिकाएं भी थर थर कम्पित प्रात अरुण को करुण अश्रुपूरित नेत्रों से निहारती हुई चित्रित की गयी हैं --

बह चली अब अलि शिशिर समीर ।
कांपी भीरु मृणाल-वृंत पर
नील-कमल-कलिकाएं थर-थर,
प्रात अरुण को करुण अश्रु भर
लखतीं खड़ा अधीर ।

\+ \+

विरह-भरी सी खड़ी कामिनी
व्यर्थ बह गई शिशिर-यामिनी
प्रिय के गृह की स्वाभिमानिनी
नयनों में भर नीर ।[2]

१- परिमल, पृ० ६६
२- गीतिका, गीत ८, पृ० १०

प्रिय के अभाव में शिशिर का अवसान नायिका के लिए व्यर्थ और कष्टकर है । यहाँ पर नायिका का रूप प्रोषित पतिका रूप में चित्रित किया गया है ।

६४. परम्परा का निर्वाह भी कवि ने प्रकृति-चित्रण में किया है उसने 'चतुर्मास वर्णन' में उद्दीपन रूप को ही लिया है --

यह गाढ़ तन, आषाढ़ आया, दाह दमक लगी, जगी री--
रैन चैन नहीं कि वैरिन नयन नीर-नदी बही ।

\+ \+ \+

फिर लगा सावन सुमन भावन, फूलने घर - घर पड़े,
सखि, पीर सारी की सँवारी झूलती, फोंके बढ़े ।
वन मोर चारों ओर बोले, पपीहे पी -पी रटे
क्यों बोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हटे ।[१]

प्रस्तुत 'चतुर्मास' में विभिन्न ऋतुओं से उद्दीप्त विरहिणी की मानसिक स्थिति का चित्रण किया गया है । प्रकृति की विभिन्न ऋतुएं विरहिणी के विरह को घनीभूत करने में सहायक होते हैं । लेकिन प्रकृति का उद्दीपन-रूप कवि ने श्रृंगारिक भावनाओं तक ही सीमित नहीं रखा है, वह आतंक भाव तथा राष्ट्रीय भावना को भी उद्दीप्त करने में सहायक होती है । 'राम की शक्ति पूजा' में जहां प्रकृति श्रृंगारिक भावनाओं का उद्दीपन करती है, वहां भय पूर्ण वातावरण में भी उद्दीपन में सहायक होती है । 'प्रेयसी', 'तुलसीदास' आदि में भी प्रकृति के उद्दीपन रूप का सृजन हुआ है । इसके अतिरिक्त उनके कथा-साहित्य में भी प्रकृति के उद्दीपन रूप का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

प्रकृति का चेतन स्वरूप

६५. कवि के लिए प्रकृति निपट जड़ पदार्थ नहीं थी, अपितु एक संवेदनशील जाग्रत, सजीव प्राणी के सदृश्य उसने कवि को पीड़ित एवं आह्लादित भी किया था । कवि की प्रारम्भिक कविता 'जुही की कली' सजीव सप्राण युवती के सदृश्य चित्रांकित की गई है । उसमें न केवल यौवन का उद्दाम उन्मुक्त आवेग दिखाया गया है, वरन्

१- आराधना, पृ० ६६

उसके प्रेमी पवन को भी प्रेयसी के वियोग में अधीर, व्याकुल, चित्रित किया गया है। 'सन्ध्या सुन्दरी', 'शरतपूर्णिमा की विदाई', 'बादल राग', 'प्रपात के प्रति', 'जलद के प्रति', 'जुही की कली', 'तरंगों के प्रति', 'सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी', 'प्रिय यामिनी जागी', 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना' आदि कवितारं मानव आकृति और मानव-व्यापारों से युक्त है। प्रकृति में नारी-भाव के आरोपण में कवि ने अद्वितीय सफलता पाई है। 'सखी वसन्त आया' एक छोटा-सा गीत है, जिसमें वसन्त आगमन का चित्र खींचा गया है --

आवृत सरसी उर सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छूटे
स्वर्ण-शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया[1]।

प्रस्तुत गीत में सरसी, कली और पृथ्वी को नारी रूप में चित्रित किया गया है। तीनों का पृथक-पृथक रूप-चित्र अपने में पूर्ण है। सरसी के हृदय के आवृत कमल प्रकट हो गए हैं, कली के केशर केश छूट गए और पृथ्वी का स्वर्णशस्यांचल लहराने लगा। सरसी के हृदय के आवृत कमलों का उठना उसके नवयौवन होने का संकेत है, केशर के केशों का छूटना, उसके यौवन के विकास को प्रकट करता है तथा पृथ्वी का स्वर्ण अंचल लहराने लगा। इसके अतिरिक्त वसंत प्रकृति-स्त्री का रूप भी पूरा बन जाता है -- कमल कुच, केशर केश और शस्य अंचल लहराता हुआ। तुलसीदास प्रबन्ध काव्य के नायक को समस्त प्रकृति ही स्त्रीमय आभासित होती है --

प्रेयसी के अलक नील व्योम
दृगपल कलंक मुख मंजु सोम
निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोभ प्रियतन पर[2]।।

आलोच्य कवि ने प्रकृति में नायिका रूप का आरोपण बहुत ही सुन्दर और स्वस्थ रूप में किया है। 'सन्ध्या सुन्दरी' का जहां गत्यात्मक रूप-चित्रण मंद मंथर गति से आकाशमार्ग से अग्रसर होना दिखाया है वहां खिलखिलाती शुभ्र मृणाल से सलिल काटती हुई तरंगों का भी मानवीय रूप साकार किया गया है।

१- गीतिका, १९५१, इलाहाबाद, गीत ३, पृ० ५
२- तुलसीदास, १९५०, इलाहाबाद, पृ० ३४

सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल क्रिया-व्यापारों का आकलन कवि द्वारा हुआ है। 'शेफालिका' में कवि ने वात्सल्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है[1]।

६६. प्रकृति मानव सुख-दुःख में तटस्थ नहीं रहती, मानव के समान प्रकृति भी अपूर्व संवेदनशील चित्रित की गई है। वह चेतन प्राणी के समान मानवीय प्रवृत्तियों का संकेत देती है, देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि और अनुभव करने के लिए स्पन्दनशील हृदय की आवश्यकता है। प्रेमी सूर्य के अस्ताचल जाने पर सन्ध्या के नेत्र प्रिय के वियोग से छल छला आते हैं --

डूबा रवि अस्ताचल
सन्ध्या के दृग छल छल[2]।

कवि प्रकृति के माध्यम से सौन्दर्यपूर्ण चित्रों को ही नहीं देखता, वरन् उस तरंगों के साथ बहते हुए दग्ध चिता के हाहा कार भी सुनायी पड़ते हैं --

चलती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियां कितनी
दग्ध चिता के कितने हाहाकार
नश्वरता की थी सजीव जो कृतियां कितनी
अबलाओं की कितनी करुण पुकार[3]।

प्रकृति के सचेतन स्वरूप में कवि ने मात्र सुख-सौन्दर्य को ही प्रधानता नहीं दी है, वरन सुख-दुःख दोनों का ही सामंजस्य दिखायी पड़ता है। यदि सुख है तो दुःख का अस्तित्व भी अनिवार्य रूप से होगा ही। मानव जीवन के अपूर्ण पक्ष पर भी कवि ने प्रकृति के माध्यम से प्रकाश डाला है --'प्रभात के प्रति', 'धारा', 'कण', 'वन कुसुमों की शैय्या' तथा 'रास्ते के फूल से' आदि कविताओं में मानवीय जीवन की अपूर्णता का ही आभास है। प्रकृति की वेदना और कष्ट की कल्पना कर कवि का हृदय करुणा आपूरित हो उठता है। माली को पुष्पित, पल्लवित, क्रीड़ारत, पुष्प को खंडित करते देख कवि का हृदय वेदना से चीत्कार कर उठता है --

---

१-बन्द कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव- पर्यंक पर सोती शेफालिके।
मूक आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।--परिमल, पृ० १७५
२- गीतिका, गीत ७२, पृ० ७८

पत्थर से भी कठिन कलेजे का है
चला गया जो वह हत्यारा माली[1]।

प्रकृति को जीवन्त प्राणी के रूप में स्वीकार्य करने का कारण ही उसकी किसी भी प्रकार की क्षति या अवहेलना कवि की असहाय पीड़ा का कारण बन जाती है।

९७. प्रकृति मनुष्य के दुःख से वेदनाभिभूत और सुख से आनन्दित हो उठती है। इस तरह कवि तथा प्रकृति का तादात्म्य भाव प्रकट होता है। इस तादात्म्य भाव के कारण ही कवि `यमुना` के अतीत को मूर्त करना चाहता है, गत समय में यमुना के तट पर हुए क्रिया-व्यापारों की कल्पना कर वर्तमान यमुना के प्रति उसकी सहानुभूति घनीभूत हो उठती है। तरंगों का अनवरत अपरिचित दिशा की ओर अग्रसर होना कवि-जिज्ञासा को उद्घाटित कर देता है। कवि कल्पना करता है, मानों तरंगें व्याकुल भाव से अपने प्रियतम के से साकार होने के लिए ही बढ़ी जा रही हैं[2]। तरंगों की यह व्याकुलता कवि को भी उस अव्यक्त से साक्षात्कार करने को व्याकुल कर देती है[3]। `कण` जैसे सूक्ष्म बिन्दु में कवि सम्पूर्ण निखिल विश्व की कल्पना करता है। कवि को `कण` की असीम सहनशीलता पीड़ा पहुंचाती है, वह दुखित हो कह उठता है --

क्यों एक विरव के लिए ही
इतना सहते हो[4]।

कवि ने अपनी भावनाओं राग-विराग, हास-विषाद की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया। प्रकृति उनकी भावनाओं की पुष्टि में सहायक हुई-- `बादल राग`, `धारा` आदि कविताओं के माध्यम से कवि ने अपनी भावना की अभिव्यक्ति की है। `कुकुरमुत्ता` का प्रणयन भी अभीष्ट अर्थ की पुष्टि के लिए ही हुआ है।

१- वही०, पृ० १२२
२- बाहें आलिंगन बढ़ी जा रहीं हृदय खोलकर
   किसके आलिंगन का है यह साध ? --परिमल: तरंगों के प्रति, पृ०७६
३- उस असीम में ले जाओ
   मुझे न तुम कुछ दे जाओ। -- वही०, पृ० ७७
४- परिमल : `कण`, पृ० १५७

प्रकृति और रहस्य

६८. प्रकृति का प्रेम कवि को विश्वात्मा का आभास देता है । प्रकृति के माध्यम से रहस्यात्मक संकेत भी प्राप्त होते हैं । अनन्तविश्व को देखकर कवि का हृदय जिज्ञासा से भर उठता है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य में प्रकृति ही कवि तुलसी की भावना को चिन्तन को रहस्योन्मुख करती है, प्रकृति उन्हें खुली मुंदी भाषा में सन्देश देती है --

वह भाषा छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा में रंग कर
वह भावप कुरल-कुहर सा भर कर आया[1] ।

प्रकृति का एक एक कण,वृक्ष,लताएं,गुल्म अव्यक्त रहस्यात्मकता का संकेत अपनी मधुर मंद मंद हंसी द्वारा देते हैं --

तरु तरु वीरुध, तृण तृण
जाने क्या हंसते मसृण मसृण[2] ।

प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के माध्यम से कवि परमात्मा की अदृश्य विराट सत्ता के प्रति संकेत पाता है । आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी प्राकृतिक उपकरणों द्वारा स्पष्ट की गई है । इस दृष्टि से `तुम और मैं` कविता का उल्लेख किया जा सकता है । `जुही की कली` ,`तरंगों के प्रति` ,`जग का एक देखा तार` `धन्य भा कर दे मन्य प्रसून` एवं `बह जाता रे परिमल` आदि कविताएं दार्शनिक संकेतों से आच्छादित हैं ।

प्रकृति : राष्ट्रीय भावना

६६. प्रकृति के उपकरणों के माध्यम से देश-प्रेम की भावना की भी पुष्टि हो मिली है । `यमुना के प्रति` ,`खंडहर` ,`उद्बोधन` ,`जागो फिर एक बार`

१- तुलसीदास, पृ० १८

२- वही०, पृ० १६

और `बादल राग` आदि कविताएं देश-प्रेम तथा राष्ट्रीय भावना काउद्दीप्त करती हैं। `उद्बोधन` में प्रकृति भारतीयों को चेतावनी देती है। `यमुना` की कल कल ध्वनि में अतीत के गौरवगान का संकेत कवि को मिलता है। `तुलसीदास` में नायक तुलसी के हृ दय में देश के उद्धार की भावना का जागरण प्रकृति के प्रांगण में ही होता है तथा प्रकृति के प्रांगण में ही देश के उद्धार की समस्या का समाधान भी और आशा की किरण लेकर प्रकृति ही `प्राची रवि रेखा का द्वार` खोलती है। `जागो फिर एक बार` में प्रकृति देशवासियों को जागरण का सन्देश सुना रही है —

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार
जागो फिर एक बार ![१]

`खंडहर` विस्मृति की निद्रा से जगाता हुआ प्रतीत होता है और स्वेच्छाचारी मानव के रूप में बादल की अवतारणा की गयी है —

हे निर्बन्ध
अन्धतम अगम अनर्गल बादल
ऐ स्वच्छन्द
मंद चंचल समीर रथ पर उच्छृंखल
हे उद्दाम
अपार कामनाओं के प्राण
बाधारहित विराट
ऐ विप्लव के प्लावन
सावन घोर गगन के हे सम्राट[२]

१- परिमल, पृ० १७७
२- वही०, पृ० १६० ।

अलंकार रूप में प्रकृति

७०. छायावादी कवियों ने अलंकरण रूप में भी प्रकृति के उपादानों का उपयोग किया है । प्रतीक योजना, रूपक तथा उपमान-विधान के लिए कवियों ने प्रकृति का आश्रय लिया है । मानवीकरण अलंकार तो छायावादी कवियों की विशेष उपलब्धि थी । `जुही की कली` , `जलद` , रेखा , और `वारिद वदना` आदि कविताएं मानवीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । `तुलसीदास` की नायिका को कवि ने नील आकाश और चन्द्रमा से उपमित किया है -- वस्तुत: उसके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त उपमान प्रकृति के विस्तृत प्रांगण से वे चुने गए हैं --

प्रेयसी के अलक नील व्योम
दृग पल कलंक-मुख मंजु - सोम
नि:सृत प्रकाश जो तरुण क्षोभ प्रियतन पर ।[१]

रूपक-विधान में तो कवि ने अद्वितीय सफलता पाई है । `अणिमा` में रामचन्द्र शुक्ल पर लिखी कविता `सांगरूपक का सुन्दर उदाहरण है अमावस्या से पूर्णिमा तक चन्द्र की कलाओं के माध्यम से रामचन्द्र शुक्ल के साहित्यिक जीवन के विभिन्न आयामों को कवि ने समेटा है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य में वर्षा के रूपक द्वारा मुस्लिम संस्कृति के आक्रामक रूप का चित्रण किया गया है --

मोगल दल बल के जलदयान
दर्पित पद-उन्मद-नद पठान
है बहा रहे दिग्देश ज्ञान शर खर तर
छाया ऊपर घन अंधकार, टूटता वज्र दह दुर्निवार[२] ।

विशेषण विपर्यय अलंकरण में प्रकृति के उपकरणों को प्रयुक्त किया गया है --[३]

चल चरणों का व्याकुल पनघट

१- तुलसीदास , पृ० ३५

२- वही०, पृ० १२

३- परिमल: यमुना के प्रति, पृ० ५३

जीवन की एक-एक गति ,स्पन्दन, भाव को कवियों ने प्रकृति के उपादानों की प्रतीक रूप में स्वीकार कर अभिव्यक्त किया है । अधिकतर प्रकृति के पदार्थ ही प्रतीक रूप में रूढ़ हुए हैं- सरिता यदि जीवन की प्रतीक बनी है तो उसमें उठते हुए वीचि-विलास को स्मृति आदि तथा झंझा और तूफान को मानसिक क्षोभ और आकुलता के लिए अभिहित किया गया है । दु:ख सुख के लिए कवियों ने क्रमश: अंधकार,पतझड़ उषा, प्रभात आदि प्रतीक स्वीकार किए । इसी तरह मुकुल और मधुप प्रेयसी और प्रेमी को मूर्त करते हैं । 'निराला' काव्य में प्रतीक रूप में प्रकृति का पर्याप्त प्रयोग हुआ ।'सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी' ,'यमुना के प्रति' तथा 'प्रभात के प्रति' आदि कविताएं प्राकृतिक प्रतीक विधान की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं । यथार्थवादी कविताओं में 'कुकुरमुत्ता' और 'गुलाब' प्रतीकों का कवि ने सृजन किया है ।

प्रकृति का उदात्त चित्र

७१. 'निराला'ने प्रकृति का कोमल और कठोर दोनों रूपों का आकलन बहुत ही सहजता और सरलता पूर्वक किया है । 'राम की शक्ति पूजा' में युद्ध के मध्य की भयंकर रात्रि का चित्रण आतंक और भय की सृष्टि करता है --

है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान , स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा ब पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल ।[१]

कोमल कमनीय चित्रण में भी कवि को अपूर्व सफलता मिली है । इस दृष्टि से 'सन्ध्या सुन्दरी' का चित्रण उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं । सन्ध्या सुन्दरी के रूप-चित्रांकन में अपूर्व कोमलता और स्निग्धता का आभास मिलता है ।'निराला' के अधिक प्रकृति-चित्रण में उदात्त रूप अधिक मुखरित हुआ है । वस्तुत: उनके प्रकृति-चित्रों का अवसान अव्यक्त विराट सत्ता में ही होता दिखायी पड़ता है --उदाहरण

१- अनामिका, राम की शक्ति पूजा, पृ० १५४ ।

के लिए तरंगों का उस असीम से मिलने जाने की उत्सुकता, 'जुही की कली' का प्रिय तादात्म्यकार आदि कवि के उदात्त रूप को प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त विराट उदात्त चित्रण की दृष्टि से 'बादल राग' अद्वितीय रचना है।

<u>प्रकृति का यथातथ्य रूप</u>

७२. 'निराला' ने प्रकृति का स्वतन्त्र रूप चित्रण भी किया है पर मूलतः उनका आग्रह प्रकृति के तादात्म्य रूप चित्रण की ओर ही है। प्रकृति के यथातथ्य चित्रण में कवि प्रकृति की जैसी सौन्दर्य श्री को निहारता है। उसको उसी रूप में मूर्त कर देता है --

शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया
रवि गा गया किरण गीत
श्वेत शतदल कमल के अमल खुल गये।[1]
विहग-कुल-कंठ -उपवीत।

कहीं भी कवि ने मानवीय व्यापार, संवेदना या तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास नहीं किया है --

किरणें कैसी कैसी फूटी
आंखें कैसी कैसी खुलीं
चिड़ियां कैसी कैसी उड़ी[2]
पांखें कैसी कैसी खुलीं।

'निराला' की १९३८ तक की प्रारम्भिक कविताओं में हुए प्रकृति-चित्रण में उत्कट उद्घोष के साथ-साथ मधुर, कोमल, तथा कमनीय चित्रात्मक रूप भी परिलक्षित होता है। 'बादल राग' में यह दोनों रूप मूर्त होते देखे जा सकते हैं। बादल के माध्यम से कवि ने मुख्यतः विद्रोहात्मक विध्वंसक विचारों को ही अभिव्यक्त किया है। १९३८ के बाद की कविताओं में भी बादल पर अनेक कविताएं हैं, लेकिन उनका रूप प्रारम्भिक कविताओं से पूर्णतया भिन्न है --

---

१- बेला: १९६२, प्रयाग, पृ० १७
२- वही०, पृ० ९१

मुक्ता जल बरसो बादल

सरिसर कल कल सरसो, बादल[1]

\+ \+

धार धाराधार धावन है

गगन गगन गाजे सावन है।

श्याम दिगन्त दाम छवि छाई

बही अनुत्कंठित पुरवाई

शीतलता शीतलता आई

प्रियतम जीवन मन भावन है ।[2]

प्रस्तुत चित्रण में बादल का वर्णनात्मक रूप ही चित्रित किया गया है ।कवि ने किसी भी प्रकार की मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति नहीं की है । प्रारम्भिक 'बादल राग' का उन्मुक्त उद्दाम उद्घोष तथा विप्लवात्मक विद्रोहात्मक प्रवृत्तियाँ इसमें मुखरित नहीं हुई हैं । 'नये पत्ते' की 'देवी सरस्वती' कविता में ग्रामीण प्रकृति का यथातथ्य रूप ही लिया गया है षड् ऋतुओं का चित्रण अत्यन्त ही यथार्थपूर्ण और मनोरम है । विभिन्न ऋतुओं के सौन्दर्य को भी स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण में ही बांधा गया है—

वन वन के झरे पात

नग्न हुए विजनगात

जैसे छाया के क्षण

हंसा किसी का उपवन

ऊब कर छुटे विज्ञापन,

दामापन्न, प्रपन्न, प्रात ।[3]

पतझड़ का चित्रण यथातथ्य रूप में ही अभिव्यक्ति पा सका है । वसन्त श्री की शोभा से कवि की विशेष अनुरक्ति रही है । वसंत का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है—'जुही की कली' का मिलन कवि वासंती निशा में ही कराता है,

---

१- अर्चना, गीत १०२, पृ० ११८
२- आराधना, पृ० ३
३- अर्चना, पृ० ७२

इसके अतिरिक्त "गीतिका" के "सखि वसंत आया" "सखी री यह डाल वसन वासंती लेगी" आदि वसंत श्री का ही आख्यान है ।

७३. आलोच्य कवि प्रकाश और ज्योति का कवि है । उनके सम्पूर्ण वांगमय में अपूर्व ज्योतिर्मयता भासित होती है --

ज्योति प्रात ज्योति रात
ज्योति नयन, ज्योतिगात
ज्योति चरण, ज्योति चाल
ज्योति विटप, आलबाल
ज्योति सलिल, ज्योति ताल
ज्योति कलश, ज्योति पात
ज्योति प्रथम, प्रिय दर्शन
ज्योति कम्प, आकर्षण
ज्योति मिलन, राग वर्षण
ज्योति निकम, ज्योति जात ।[१]

जीवन के हर क्षेत्र में कवि अपूर्व ज्योतिर्मयता का साक्षात्कार करता है । कवि को अपनी आराध्य माँ से ज्योति का निर्झर प्रवाहित करने का आग्रह करता हुआ भी देखा जा सकता है[२] । यही नहीं, वह स्वयं तो दूर क्षान में ज्योति का भान द्वार देखता है[३] । कवि की वहाँ तक जाने की हार्दिक कामना भी प्रकट होती है ।[४] इसका प्रधान कारण यह है कि वह ज्योति को उत्थान का प्रतीक मानता है और अंधकार को सुप्ति[५] ।

७४. कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से "निराला" की साधना अनुपम है । वस्तुत: उनकी शैली अत्यधिक सघन, लाक्षणिक तथा प्रतीकात्मक है । कवि अपने

१- आराधना, पृ० ५४
२- बहा जननी ज्योतिर्मय निर्झर : गीतिका, पृ० ३
३- देख रहा हूं दूर ज्योति भान द्वार : परिमल, पृ० ६७
४- हमें जाना है जग के पार ....
.... जहाँ ज्योति के रूप सहस्र खिले -- परिमल, पृ० ६६
५- दिवस का किरणोज्ज्वल उत्थान
रात्रि की सुप्ति पतन-- परिमल, पृ० १३२

हृदयस्थ सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए नवीन प्रतीकों, नवीन उपमानों तथा नवीन शब्दों की सृजना करता रहा, यही कारण है कि वह अनुभूति, संवेदना तथा ~~[illegible]~~ भावना को अभीप्सित अभिव्यक्ति देने में पूर्ण समर्थ हो सका है। सूक्ष्म आभ्यान्तर भावों को मूर्त करने के लिए तथाकथित प्रचलित भाषा पूर्णतया प्रभावशून्य, जड़ एवं अपूर्ण थी। "निराला" इस जड़त्व से पूर्ण निष्कृति के लिए प्रयत्नशील रहे, वह उन्मुक्त वातावरण के पक्षपाती थे। इसीलिए कविता कामिनी से उनका अनुग्रह रहा है --

आज नहीं मुझे और कुछ चाह
अर्ध विकच इस हृदय कमल में आ तू
प्रिय छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह
गज गामिनी वह पथ तेरा संकीर्ण
कंटकाकीर्ण।

केवल छन्दों के बन्धन से ही कवि कविता कामिनी को मुक्त नहीं करना चाहता वरण वीणा वादिनी की वन्दना करते समय, नव गति, नव लय, नव ताल, छन्द की याचना भी करता है। छन्दों के बन्धन को त्याग कर "निराला" ने हिन्दी वांगमय को अनुपम, ओजपूर्ण और उदात्त कविताएं प्रदान की हैं। कवि की यह स्वच्छन्दता वादी प्रवृत्ति भाव और विषय दोनों ही क्षेत्रों में प्रकट होती है। कविमें शैलीगत सौन्दर्य पर्याप्त उत्कर्ष प्राप्त कर सका है -- नवीन उपमानों की संयोजना, अनुकूल प्रतीक विधान, भावानुकूल शब्द चयन तथा छन्द विधान ने काव्यात्मक सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया। बहिरंग और अंतरंग दोनों क्षेत्रों में वह एक कुशल शिल्पी की तरह दृष्टिगत होते हैं।

--0--

अध्याय -- ७

दार्शनिकता

१. `दर्शन` का अर्थ है `साक्षात्कार` और यह साक्षात्कार साधक को तभी प्राप्त होता है, जब वह साधना की चरम सिद्धि पर पहुंच जाता है। दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म तथा जीवन के अन्तिम लक्ष्य का विवेचन रहता है। `दर्शन` जीवन का प्रश्न है, तथा उसका अन्तिम लक्ष्य है-- मोक्ष की प्राप्ति। भारतीय ऋषि जीवन के उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर जिज्ञासु रहे। जीवन का चरम लक्ष्य क्या है ? आत्मा-परमात्मा प्रकृति, जड़, चेतन आदि के आधारभुत रहस्य क्या है ? इन समस्त प्रश्नों को अनुभुत करने के लिए भारतीय मनीषी कृत-संकल्प रहे। अतएव परम पद की प्राप्ति के रहस्य जो तत्व-चिन्तन के बाद उनको प्राप्त हुए, वही कालान्तर में विभिन्न दर्शनों की संज्ञा प्राप्त कर सके। लेकिन यहां पर अभिप्राय दर्शन का विश्लेषण करना नहीं, अपितु साहित्यकार के साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त विशिष्ट भाव-भूमि का आकलन करना है।

२. `दर्शन` के अन्तर्गत दर्शन का जिस अर्थ में प्रयोग होता है, साहित्य के अन्तर्गत उसको उसी रूप में प्रयुक्त नहीं कर सकते, क्योंकि साहित्य एक रचनात्मक प्रक्रिया भी है। यहां साहित्यकार या रचनाकार की वैचारिक प्रक्रिया विशेष को भी `दर्शन` के नाम से अभिहित कर लिया जाता है। यह वैचारिक प्रक्रिया किसी दर्शन-विशेष से पुष्ट या अनुप्राणित भी हो सकती है। या उसके साहित्य के अन्तर्गत

दर्शन कहलाता है । जैसे प्रेमचन्द किसी दार्शनिक मतवाद के अनुयायी नहीं थे किन्तु उनके साहित्य में जिस प्रकार के विचार व्यक्त हैं, उनको हम उनके साहित्य दर्शन के रूप में समझते हैं । `निराला` की वैचारिक प्रक्रिया मुख्यत: वेदान्त से प्रभावित थी, साथ ही कतिपय अन्य दर्शनों से भी उसने प्रेरणा प्राप्त की है । प्रस्तुत परिच्छेद में `निराला` के दर्शन विशेष का आकलन ही अभिप्रेत है ।

ब्रह्म
---

१. `निराला` द्वारा ~~प्रस्तुत~~ प्रयुक्त ब्रह्म का स्वरूप औपनिषदिक ब्रह्म ही है -- वह अज्ञेय, अव्यक्त, अनिर्वचनीय अखण्ड और समस्त भूतों में विद्यमान है । रामकृष्ण परमहंस ने ब्रह्म को त्रिगुणात्मक गुणों से अतीत माना है[१] । विवेकानन्द ने भी ब्रह्म की इसी रूप में स्थापना की है --` ब्रह्म.... निर्विकार है । ब्रह्म ही एक ऐसी इकाई है जो अन्य इकाइयों की समष्टि नहीं वह अखण्ड है, वह क्षुद्र जीवाणु से लेकर ईश्वर तक समस्त भूतों में व्याप्त है ,उसके बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नहीं, और जो कुछ भी सत्य है, वह ब्रह्म ही है ।.... प्रत्येक ही वही पूर्ण ब्रह्मतत्व है[२] ।` `निराला` ने भी सम्पूर्ण सौर ब्रह्माण्ड को उसी ब्रह्म से उद्भासित माना है -- व्यष्टि और समष्टि में वही चिन्द घन आनन्द कंद व्याप्त है --

जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई ।
व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप
चिद घन आनन्द कंद[३] ।

१- Brahman alone is real, and the world illusory....... Brahman is beyond the three Gunas. It beyond Prakrity. The gospel of Sri Ram Krishna ~~xxxxxxx~~ Madras, 1947 P. 206-207.

२- विवेकानन्द साहित्य : जन्म शती संस्करण, अष्टम खंड, पृ० ८३ : अद्वैत

३- निराला : परिमल ,`पंचवटी प्रसंग`, पृ० २२७

सृष्टि-स्थिति प्रलय का कारण कार्य भी वही एक मात्र ब्रह्म है, वही उसका सृजनकर्ता है , वही संहार भी । सृष्टि-स्थिति प्रलय का

कारण-कार्य भी वही है
उसकी इच्छा है रचना चातुर्य में
पालन संहार में ।[1]

ब्रह्म को विवेकानन्द ने "..... समस्त ज्ञान का वह शाश्वत साक्षी स्वरूप है ।... वही हमारी आत्मा का सार सत्ता स्वरूप है ।.... वह ज्ञात भी नहीं, अज्ञात भी नहीं, पर दोनों की अपेक्षा अनन्त गुणा ऊंचा है । तुम्हारी आत्मा है । कौन इस जगत में एक क्षण भी सांस ले सकता है । यदि वह आनन्द स्वरूप इसमें रम न रहा होता... वही समुदाय जगत का सत्ता स्वरूप है -- हमारी आत्मा की आत्मा है ।"[2]

४. 'निराला' ने सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में भी इसी विराट ब्रह्म का आभास पाया था । --'कण' नामक कविता इसी आशय को प्रकट करती है --

तुम हो अखिल विश्व में
या यह अखिल विश्व है तुममें
अथवा अखिल विश्व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूं तुम में भेद अनेक ?
बिन्दु विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ?
कार्य पंचभूतात्मक तुम हो
या कि तुम्हारे कार्य भूतगण[3] ?

५. 'निराला' ने मातृ रूप में भी ब्रह्म रूप का साक्षात्कार किया था । 'ब्रह्म' की जग-जननी के रूप में प्रतिष्ठा हुई है --

----

१- परिमल : पंचवटी,-प्रसंग, पृ० २२८

२- विवेकानन्द जन्म शती अंक : द्वितीय खण्ड, पृ० ८८

३- परिमल : कण, पृ० १५६

जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु अज
कोटि कोटि सूर्य चन्द्र ताराग्रह
कोटि इन्द्र सुरासुर
जड़ चेतन मिले हुए जीव जग
बनते पलते हैं, नष्ट होते हैं अन्त में
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्ति शालियों में सत्ता है
माता है तेरी वह[1] ।

~~'निराला' की यह आदि शक्ति~~
'निराला' की यह आदि शक्ति रूपिणी मां के प्रति आस्था रामकृष्ण परमहंस की 'मां शक्ति' का ही प्रभाव परिलक्षित करती है । उनके आधार पर मां काली खेल-खेल में इस जगत का सृजन, पोषण और संहार करती है । अस्तु 'काली' ही ब्रह्म है, और ब्रह्म ही काली है[2] ।

जीवात्मा और परमात्मा : ब्रह्म जीवैक्य

६- ब्रह्म और जीव की एकता की स्थापना वेदान्त का मुख्य आधार है । 'निराला' अद्वैत वेदान्ती हैं, तथा वह ब्रह्म और जीव की एकता में विश्वास करते हैं थे -- 'तुम और मैं' कविता[3] में उन्होंने इसी सिद्धांत की पुष्टि की है -- प्रस्तुत कविता में ऐसे उपकरणों की स्थापना की है, जिसका एक-दूसरे के बिना अस्तित्व सम्भव नहीं ' तुम नभ हो मैं नीलिमा' कह कर कवि एकत्व का ही समर्थन करता है -- 'नभ' ब्रह्म और 'नीलिमा' आत्मा के लिए प्रयुक्त किया गया है । आकाश रूप बे०बे ब्रह्म की अभिव्यक्ति आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर की गयी है । प्रतीकों का प्रयोग होने से काव्यात्मक औदात्म्य आ सका है ।

१- परिमल : पंचवटी -प्रसंग, पृ० २१६-२२० ।

२- The Primordial Power is ever at play. She is creating preserving, and destroying in play, as it were. This Power is called 'Kali'. Kali is verily Brahman and Brahman is verily Kali. It is one and the same reality. The gospel of Sri Ram Krishna. P. 63.

३- तुम नंदन वन घन विटप
और मैं सुख शीतल-तलशाखा । --परिमल : पृ० ८० ।

उपनिषदों और गीता में ब्रह्म , और आत्मा एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं । `अहम् ब्रह्मास्मि` और `सोहम्` का प्रसार `निराला` साहित्य में भी सर्वत्र देखा जा सकता है -- उन्होंने आत्मा को शुद्ध मुक्त सच्चिदानन्द माना है --

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों ।
आनन्द में सच्चिदानन्द रूप ।
तुम हो महान , तुम सदा हो महान
ब्रह्म हो तुम
पदरज भी नहीं है पूरा यह विश्व भार ।[१]

आत्म और नैरात्म का सम्बन्ध अनश्वर, अटल एवं अविकृत है , `अहं ब्रह्मास्मि` का आख्यान स्वीकार करने के कारण ही `आत्मा` सर्वत्र अपना ही प्रकाश प्रकाशित देखती है --

ज्योतिर्मय चारों ओर
परिचय सब अपना ही[२] ।

परम तत्व की स्थिति स्वयं जीव में ही स्थित है, इसका कथन की पुष्टि अधोलिखित गीत से हो जाती है --

पास ही रे हीरे की खान
खोजता कहाँ और नादान ![३]

आत्मा और परमात्मा की सम्बद्धता परम्परागत रूपक प्रेमी और प्रेमिका के माध्यम से भी अभिव्यक्ति पा सकी है । प्रेमिका (आत्मा) का जब प्रेमी (परमात्मा) से साक्षात्कार होता है, तभी उसे अपनी वास्तविक स्थिति का भान होता है । जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में को विवेकानन्द ने सह अस्तित्व मान स्वीकार

१- परिमल : जागो फिर एक बार , पृ० १८२
२- परिमल : जागरण, पृ० २३८
३- गीतिका : गीत २५, पृ० २७

किया है ।[1] यदि एक का अस्तित्व होगा तो दूसरे की स्थिति भी अनिवार्य रूप में होगी ही । `निराला` ने भी इसी को स्वीकार करते हुए व्यष्टि और समष्टि की अभिन्नता को घोषित किया है --

> व्यष्टि औ समष्टि में नहीं है भेद
> भेद उपजाता भ्रम
> माया जिसे कहते हैं ।[2]

माया के बन्धन में पड़कर `जीवात्मा` अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल जाता है । आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया बहुत बड़ा अवरोध है ।`माया` कुछ नहीं केवल बद्ध आत्मा का अहंवाद ही है, और यही अहंवाद समस्त वस्तुओं को अपने आवरण से ढक देता है । इस अहं (माया) के समाप्त होते ही समस्त बन्धनों का क्षय हो जाता है । इस माया के कारण ही जीव ईश्वर को नहीं देख पाता । ईश्वर अत्यधिक निकट है पर माया के आवरण से नहीं देख पाते[3] । माया के कारण ही जीवात्मा को इतना भटकना पड़ता है ।

जगत

७. उपनिषद् में ब्रह्म को जगत का उपादान कारण माना गया है ।[4] `निराला` भी ब्रह्म से ही जगत की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं --

---

१- ईश्वर व्यष्टियों की समष्टि है और साथ ही वह एक व्यष्टि भी है ।... समष्टि ही ईश्वर है,और व्यष्टि ही जीव है,अतएव ईश्वर का अस्तित्व जीव के अस्तित्व पर निर्भर है... जीव और ईश्वर सह अस्तित्वमान है, यदि एक का अस्तित्व है, तो दूसरे का होगा ही ।... समष्टि रूप होने के कारण सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञता ईश्वर के प्रत्यक्ष गुण है, इसे सिद्ध करने के लिए किसी तर्क की आवश्यकता नहीं ।
--विवेकानन्द जन्म शती अंक,अष्टम, पृ०८३ ।

२- परिमल: पंचवटी-प्रसंग, पृ० २२७

३- Maya is nothing but the egotism of the embodied soul. This egotism has covered everything like a viel. All troubles comes to an end when the ego dies... Man cannot see God on account of the barrier of Maya....God is the nearest of all, but we cannot see Him on account of this covering of Maya. Gospel of Sri Rama Krishna, P. 100.

सृष्टि स्थिति प्रलय का

कारण कार्य भी है वही[1]

कठोपनिषद की द्वितीय बल्ली में `एकोऽहं बहुस्याम्` कहा गया है अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही नाना रूपों में भासमान होता है --`निराला` कवि स्वयं इस सिद्धांत के पोषक हैं --

रूप-रस-गन्ध -स्पर्श

शब्दज संसार यह

वीचियां ही अगनित शुचि

सच्चिदानन्द की ।[2]

साथ ही एक ही सूत्र से बंधे हुए सम्पूर्ण सृष्टि को वह पाता है --

बहु सुमन बहुरंग, निर्मित एक सुन्दर हार,

एक ही कर से गुंथा, उर एक शोभाभार।[3]

विवेकानन्द के `व्यवहारिक वेदांत` में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि केवल एक ही जीवन है , एक ही जगत है और वही हम लोगों को अनेकवत् प्रतीत होता है यह बहुत्व उस एकत्व की ही अभिव्यक्ति है । केवल वह ` एक ` ही अपने को बहु रूप में -- जड़ , चेतन, मन विचार अथवा अन्य विविध रूपों में व्यक्त करता है ।[4]

१-परिमल : पंचवटी-प्रसंग, पृ० २२८

२- वही० जागरण, पृ० २३६

३- गीतिका, गीत २२, पृ० २४

४- There is only one life and one world, and this one life and one world is appearing to us as manifold ..... All this manifoldness is the manifestations of that one. That one is manifesting Himself as many, as matter, spirit, mind thought and every things else. It is that one, manifesting Himself as many. The complete of works of Swami Vivekananda Vol. II, Page 302 - 302.

८. वेदांत दर्शन में जगत की स्थापना मिथ्या रूप में स्वीकार की गई है। माया से आवृत यह जगत मिथ्या और नश्वर है। माया के कारण यह इतना घनीभूत रहता है कि यह दुर्गम-अज्ञान राज्य हो जाता है अत: इस माया वृत संसार को संज्ञा दी गई है --

नश्वर संसार
सृष्टि-पालन-प्रलय-भूमि
दुर्गम अज्ञान राज्य
मायावृत मैं का परिवार[1]

जीवात्मा बार-बार इस माया के कारण ही धोखा खाता है[2]। लेकिन जब जीवात्मा इस माया के आवरण को भेद कर अपने सत स्वरूप से परिचित हो जाता है तब "जागो न प्यास थी और न माया" की स्थिति में पहुंच जाता है। उससे तनिक और बढ़ने पर वह --

वहां कहां कोई अपना सब
सत्य नीलिमा में लय मान
केवल मैं, केवल मैं, केवल
मैं, केवल मैं, केवल ज्ञान।[3]

माया से उबरने के लिए विवेकानन्द ने ज्ञान-योग पर आग्रह किया है। ज्ञान के द्वारा ही जीव को सत्यं,ज्ञानं, अनंत ब्रह्म की उपलब्धि सम्भव हो सकती है। माया का आवरण हटते ही संसार का स्वरूप ही बदल जाता है --

बदल गयी आंख विश्व--
रूप वह भूला।
मिथ्या के भाव सभी
कहां समाये।[4]

१- परिमल: जागरण, पृ० २३७
२- बार बार छाया में धोखा खाया: जागो: परिमल, पृ०८३
३- परिमल: बसंत समीर, पृ० ८५।
४- अर्चना, : गीत , पृ० २३

'निराला' ने कहीं जगत को धोखे की संज्ञा[1] दी है, तो कहीं काल्पनिक[2] माना है । संसार दुःख कष्टों का पुंज है, उसको संसार में सर्वत्र मृत्यु के ही विवर[3] दिखाई पड़ते हैं, वह जीवन को 'चिरकालिक क्रन्दन'[4] मानता है । यह उक्ति केवल वह अपने ऊपर ही लागू नहीं करता वरन् सब के जीवन में मूर्त होता देखता है --दुःख सुख जीवन का अनिवार्य अंग बनकर आया है --

अविराम घात-आघात
आह । उत्पात
यही जग जीवन के दिन रात ।
यही मेरा, इनका, उनका, सब का स्पन्दन
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन[5]

ईश्वर और प्रेम

६. प्रेम को ईश्वर की संज्ञा दी गई है । संसार में एकत्व का कारण भी यही प्रेम है, प्रेम ही जगत का सूत्राधार है । विवेकानन्द ने प्रेम का बहुत ही व्यापक रूप प्रकट किया है -- प्रेम जोड़ता है, प्रेम एकत्व स्थापित करता है । सभी एक हो जाते हैं क्योंकि प्रेम ही सत्य है[6], प्रेम ही भगवान है और यह सभी कुछ उसी एक प्रेम का ही न्यूनाधिक प्रस्फुटन है । इस प्रेम की व्याप्ति का अंकन 'निराला' ने सुन्दर किया है --

----

१- रे कुछ न हुआ तो क्या
जग धोखा तो रो क्या --गीतिका, गीत ४६, पृ० ५४ ।

२- बोलूं अल्प न करूं जल्पना
सत्य रहे मिट जाय कल्पना ।

३- मैं रहूंगा न गृह के भीतर
जीवन में रे मृत्यु के विवर -- गीतिका, गीत ८८

४- अनामिका, पृ० ६४

५- परिमल, पृ० १३३

६- Love binds, love makes for that oneness.... the whole world becomes one.... For love is Existence, God himself, and all is the mainfestation of that One love, more or less expressed. The complete works of Swami Vivekananda. Vol. II, Page. 302.

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही नि: सीम भू पर
प्रेम की महोर्मि माला तोड़ देती क्षुद्र ठाठ
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोयोग
तृण सब बह जाते हैं[1]।

प्रेम सब प्रकार के क्षुद्र व्यापारों का नाश कर एकत्व की स्थापना करता है। प्रेम की अवस्थिति 'निराला' ने शुद्ध चिदात्म में ही स्वीकार की है, और चित्त की शुद्धता के लिए सेवा को उन्होंने अनिवार्य माना है -- यदि चित्त निर्मल नहीं तो उसमें अंकुरित प्रेम पशुता की ओर अग्रसर करने वाला होगा।

सेवा से चित्त शुद्धि होती है
शुद्ध चिदात्म में उगाता है प्रेमांकुर।
चित्त यदि निर्मल नहीं
तो वह प्रेम व्यर्थ है
पशुता की ओर है वह खींचता मनुष्यों को[2]।

प्रेम की बड़वाग्नि में प्रवेश करने का साहस दिव्यधारी ही करते हैं लेकिन एक बार प्रवेश करने के पश्चात् प्रेमामृत पान कर अमर होने का अवसर सहज ही प्राप्य हो जाता है।

नाद कर प्रेम बड़वाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला
दिव्य देहधारी हैं कूदते हैं उसमें प्रिय
पाते हैं प्रेमामृत
पी कर अमर होते हैं[3]।

१- परिमल : पंचवटी-प्रसंग, पृ० २१५
२- वही०, पृ० २११
३-परिमल, पृ० २१६.

मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण

१०. अनादिकाल से संसार मृत्यु के रहस्य को सुलझाने का प्रयास करता रहा है। विभिन्न मनीषियों ने मृत्यु के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण प्रस्तुत किये। भारतीय मान्यता है कि मृत्यु शरीररूपी जीर्ण,वस्त्र के परिवर्तन का नाम है किन्तु यह बात उतनी ही निर्विवाद ह एवं सत्य है कि इस मृत्यु ने संसार के भले भले दार्शनिकों को भयभीत किया है। वीर `निराला` कर्मक्षेत्र में हो निडर नहीं, अपितु मृत्यु के विषय में भी निडर दृष्टिकोण लेकर अपने काव्य-क्षेत्र में कूदते हैं। `निराला` का मृत्यु के प्रति कोई भयपूर्ण या आतंकवादी भाव दृष्टिगत नहीं होता। इसके विपरीत उन्होंने मृत्यु को मुक्ति माना है[१]। आत्मा कभी मरती नहीं, वह तो केवल आकार-परिवर्तन का क्रम मात्र है। आत्मा के सम्बन्ध में जन्म अथवा मृत्यु की बात करना विवेकानन्द कोरी विडम्बना मानते थे,उनके सिद्धान्तानुसार आत्मा का न कभी जन्म होता है न मृत्यु। मरने के सम्बन्ध में भय की भावना मात्र कुसंस्कार है[२]। आत्मा कभी मरती नहीं, वह नित्य नूतन नित नवीन स्वरूप धारण कर सामने आती है। `निराला` के के सम्पूर्ण वांगमय में मृत्यु के प्रति यही भाव दृष्टिगत होता है। जीवन की सान्ध्य वेला में जब वह शरीर और मानसिक दृष्टि से पूर्णतया जर्जर हो गए थे, तब भी उनको मृत्यु मधुर ही प्रतीत हो रही थी --

`मधुर मधुर मृत्यु मधुर `[३]

विवेकानन्द की प्रसिद्ध कविता `गाए गीत तो मार सो नाम` का कवि ने अनुवाद किया है, उसमें स्वामी जी की मृत्यु सम्बन्धी विचारधारा--

जन्म और मृत्यु मेरे पैर पर लोटते हैं[४]

१- मुक्ति हूं मैं, मृत्यु में आई हुई न डरो।

२- " .... human soul to be pure and omniscient, you see that such superstitions as birth and death would be entire nonsense...The soul was never born and will never die, and all these ideas that we are going to die and are afraid to die are mere superstitions. The complete works of Swami Vivekananda. Vol. II, Page 292.

३- गीत गुंज : द्वितीय संस्करण, १९५९

४- अनामिका, पृ० ६७

ऐसा अनुवाद हुआ है, यह स्वामी जी की मृत्यु सम्बन्धी अभिव्यक्ति `निराला` का आदर्श है । आत्मा जन्म और मृत्यु के बन्धन से परे है । अतएव मृत्यु के आसन्न समीप होने पर भी वह निरन्तर हंसते परिलक्षित होते हैं --

मैं अकेला
आ रही मेरे दिवस की सान्ध्य बेला
...... हंस रहा यह देख
कोई नहीं भेला ।[१]

११. जीवन पर्यन्त कवि मृत्यु से अनवरत संघर्ष करते रहे । उनकी साधना कठोर और अदम्य है । सब कष्टों और वेदनाओं को उन्होंने असाधारण साहस और औदात्य से सहा है । और मर कर अमर होने की उनकी धारणा अटूट और आस्थामय थी --

मृत्यु की बाधाएं, बहु द्वन्द्व
पार कर जाते स्वच्छन्द
तरंगों में भर अगणित रंग
जग जीते, मर हुए अमर ।[२]

मृत्यु को उन्होंने निर्माण[३] की संज्ञा दी है । अपनी एकमात्र पुत्री `सरोज` के असमय निधन को भी वह `सरोज` का ज्योति: शरण-तरण[४] मानते हैं । केवल सरोज की मृत्यु को ही वह `आलोक वरण` और `ज्योति: शरण - तरण` नहीं मानते, वरन् मृत्यु को उन्होंने इसी रूप में स्वीकारा है । `गीतिका` के पच्चीसवें गीत में मृत्यु[५] को महान मृत्यु-पथ पर बढ़ने तथा महाकाल के सरतर सहने की शक्ति[६] वह

१- अपरा, पृ० ४५-४६
२- अनामिका, पृ० ६५
३- मृत्यु निर्माण प्राण ईश्वर
   कौन देता प्याला भर भर ? -- अनामिका, पृ० ६५ ।
४- बढ़ मृत्यु तरणि पर तूर्ण चरण
   कह-- `पिता, पूर्ण आलोक वरण
   करती हूं मैं, यह नहीं मरण
   `सरोज` का ज्योति: शरण तरण । -- अनामिका, पृ० १२१
५- ऊर्मि- घूर्णित रे, मृत्यु महान ।--गीतिका, पृ०२७
६- जीवन के रथ पर चढ़कर

अपनी आराध्या 'मा' से प्रार्थना करते हैं 'दे मैं करूं वरण'[1] में उन्होंने मृत्यु को मां के चरणों के राग से रंजित आभासित पाया है। मृत्यु के वरण को वह श्रेष्ठता प्रदान करता है --

मरण को जिसने वरा है
उसी ने जीवन भरा है
परा भी उसकी, उसी के
अंक साथ यशोधरा है।[2]

जिसने मृत्युंजयी साधना कर ली वस्तुत: उसी का जीवन पूर्ण है। उसको इहलोक और परलोक दोनों का सुख प्राप्त होगा। इनकी प्रारम्भिक कविताओं का स्वर अत्यन्त शान्त और वेदनासिक्त है, उनमें अब वह तेज और उद्दामता नहीं दृष्टिगत होती उनकी मृत्यु की प्रथम आभा दिखाई पड़ती है --

धीरे धीरे हंसकर आई
प्राणों की जर्जर परछाईं
छाया-पथ घनता से घनतम
होता जो गया पंक कर्दम
कला रवि आंखों से सक्षम
मृत्यु की प्रथम आभा भाई[3]

कवि बहुत ही तटस्थ और शान्त भाव से अपने अंत की प्रतीक्षा करता परिलक्षित होता है --

भग्न तन, रुग्ण मन
जीवन विपण्ण वन
क्षीण क्षण क्षण देह
जीर्ण सज्जित गेह[4]

१- दे, मैं करूं वरण
जननि, दुखहरण पद-राग-रंजित मरण। -- गीतिका, पृ० ६७
२- अपरा, पृ० १३३
३- अर्चना, गीत ३६, पृ० ५५
४- आराधना, पृ० ६२।

भक्ति भावना

१२. `निराला` अपने जीवन में वज्रादपि कठोर और कुसुमादपि कोमल के साक्षात् प्रतीक थे। भक्ति-भावना में भी दो विरोधाभासों का समन्वय साक्षात् `निराला` थे, अर्थात् अद्वैत भावना तथा सगुण उपासना दो विरोधी दृष्टिकोण हैं, कवि स्वयं द्वैत भाव है भ्रम की प्रतिष्ठा करते हुए भी भक्ति भाव का समर्थन करते हैं, पर इस मान्यता का भी एक कारण है, वह यह कि मनुष्यों के मन के अनुकूल सगुण की उपासना ही सबसे सुलभ उपासना है, अतः भ्रम के माध्यम से ही भ्रम का नाश करने की बात कहते हैं[1]। स्पष्ट शब्दों में भक्ति की स्थापना की गई है -- `मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रहे काफी है` अद्वैत वेदांतीय कवि अपने जीवन के सान्ध्यकाल में अत्यधिक विनत हो उठा। बाद की कविताओं में दैन्य, विनय, शरणागति की भावना अधिक मुखर हो उठी है। वह भक्त कवि की भांति स्मरण, वन्दन, स्तवन, कीर्तन का समर्थन करते हैं। और इस भवसागर से पार होने की मनुष्यों के मन के द्वन्द्वों को शान्त करने की प्रार्थना करते भी दिखते हैं। `निराला` का वेदांती उद्दाम ओजस्वी स्वर आत्म समर्पण में परिवर्तित होता दिखायी पड़ने लगता है। वेदांतवादी युवक `निराला` प्रारम्भिक व्यष्टि उपासना से ऊपर उठकर वार्धक्य तक पहुंचते पहुंचते सर्वसाधारण के कल्याण भाव से अधिक से अधिकतर ओत-प्रोत होते चले गए और उनका वेदांत भाव सर्व सुलभ भक्ति-भावना में प्रस्फुटित हो चला, वह इसी भक्ति-भाव से प्रेरित हो सगुण भाव के उपासक दैन्य एवं शरणागति के पोषक बनकर काव्य में आए।

१- द्वैत भाव ही है भ्रम
        तो भी प्रिय
  भ्रम के भीतर से
  भ्रम के पार जाना है
  मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
  सोच ली थी पहले ही
  इसीलिए द्वैतभाव-भावुकों में
  भक्ति की भावना भरी। --- परिमल, पृ० २३०

मानवतावाद

१३. `निराला` अपने जीवन में सर्वजन हिताय की भावना से दीक्षित थे। और यही कारण है कि मानवता के हित में शासन प्रदत्त प्रलोभनों से फुटबाल की भांति खेलते रहे। अद्वैतवाद और मानववाद `निराला` दर्शन को दो मूल धाराएं हैं। व्यष्टि और समष्टि की अभिन्नता में विश्वास होने के कारण ही कवि का मानव मात्र के प्रति इतना अगाध प्रेम और समाजोन्मुखी सेवा भाव था। वस्तुत: विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदांत का उदात्त स्वर `निराला` की भावभूमि में मानवतावाद का रूप धारण कर सका। कवि द्वारा प्रयुक्त दार्शनिक साधना में केवल स्वयं की ही मुक्ति की आकांक्षा नहीं, उनकी करुणा मानव मात्र के लिए प्रवाहित हुई थी। `निराला` का मानववाद उनके सैद्धांतिक दर्शन का ही व्यावहारिक स्वरूप है। उन्होंने रामकृष्ण विवेकानन्द और गांधी की विचारधारा से रस संचय करते हुए आधुनिक समाजवाद के छोर को भी पकड़ने का प्रयास किया था। प्रारम्भिक कविता `अधिवास` में मनुष्य मात्र के प्रति करुणा का ही आवेग था।

१४. प्रत्येक धर्म में मानव मात्र में समानता और प्रेम स्थापित करने का प्रयास रहता है। `निराला` के धर्म का यही स्वरूप है, जो विवेकानन्द द्वारा मान्य था, स्वामी जी के अनुसार " धर्म यदि मानवता का कल्याण करना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक है, कि वह मनुष्य की सहायता उसकी प्रत्येक दशा में कर सकने में तत्पर और सक्षम हो। चाहे गुलामी हो या आजादी, घोर पतन हो अत्यन्त पवित्रता, उसे सर्वत्र मानव की सहायता कर सकने में समर्थ होना चाहिए। केवल तभी वेदांत के सिद्धांत अथवा धर्म के आदर्श उन्हें किसी भी नाम से पुकारो कृतार्थ हो सकेंगे।"[१] कवि की सामाजिक संवेदना में

१- Religion, to help mankind, must be ready and able to help him in whatever condition he is, in servitude or in freedom, in the depths of degradation or on the heights of purity, everywhere equally, it should be able to come to his aid. The principles of Vadanta, or the ideal of Religion, or whatever you may call it, will be fulfilled by its capacity for performing this great function. The complete works of Swami Vivekananda, Vol. II, page 298-299.

मुख्यता धर्म प्रेरकता का आग्रह इस मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण ही था। वह निष्काम कर्म के पक्षपाती थे, और उनको यह संस्कार स्वामी जी से धरोहर के रूप में प्राप्त हुए थे। `सेवा आरम्भ` और `प्रकाश` कविताओं में दीन-दुखियों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट की है। समाज से उपेक्षित पीड़ित मानव वर्ग पर उनके हृदय की करुणा का अजस्र प्रवाह उद्वेलित हो उठा। दुखी जन किसी कृष्ण के उर की अनुपम गीता से कम नहीं --

रोक रहे थे जिन्हें
नहीं अनुराग मूर्ति वे
किसी कृष्ण के उर की गीता [१]

विवेकानन्द ने उसी एकमात्र ब्रह्म का आभास समग्र मानव जाति में देखा था, अतः `निराला` की यह उक्ति मनुष्य मात्र की महत्ता की प्रतिष्ठा करती है --

है चेतन का आभास
जिसे, देखा भी उसने कभी किसी को दास? [२]

जिसमें उस सूक्ष्म ज्ञान का उदय नहीं हुआ, वह उस एकमात्र सत्य के `प्रकाश` को नहीं पा सकता, "जो आत्म विश्वास नहीं रखता वही नास्तिक है, किन्तु यह विश्वास क्षुद्र `मैं` को लेकर नहीं है, क्योंकि वेदांत एकत्ववाद की भी शिक्षा देता है। इस विश्वास का अर्थ है, सब के प्रति विश्वास क्योंकि तुम सब एक हो। अपने प्रति प्रेम का अर्थ है, सब प्राणियों से प्रेम --क्योंकि तुम सब एक हो।"[३] मानवमात्र की वेदना को कम करने के लिए वह वेदनापूरित गान गाना चाहते हैं -- प्रभा के बुझे हुए प्रकाश को पुनः प्रज्ज्वलित करने के लिए वह स्वयं जल उठना चाहते हैं --

---

१- अनामिका, पृ० १८६

२- वही०, पृ० १८६

३- विवेकानन्द साहित्य? जन्म शती संस्करण, अष्टम खंड: अद्वैत आश्रम, पृ०१२-१३।

भर गया है जहर से
संसार जैसे हार खाकर
देखते हैं लोग, लोगों को
सही परिचय न पाकर
बुझ गई है लौ पृथा की
जल उठो फिर सींचने को
गीत गाने दो मुझे तो
वेदना को रोकने को ।[1]

'निराला' की करुणा जमी साधना अद्वैत दर्शन के माध्यम से ही प्रतिफलित हो सकी है ।

१५. कवि ने कभी भी अपनी चिन्तना को जाति, वर्ण, राष्ट्र की सीमाओं में आबद्ध नहीं किया । उनकी प्रार्थनापरक कविताओं में मानव मात्र के लिए ज्ञान, प्रेम, सुख और मुक्ति की कामना प्रकट हुई है । यहां तक कि जड़ पदार्थों के प्रति भी उनकी अपूर्व सहानुभूति और प्रेम था । 'निराला' मुख्यत: अद्वैतवादी थे, लेकिन व्यावहारिक रूप से वह पूर्णतया अद्वैत की स्थापना न कर सके । उनकी दार्शनिक पृष्ठभूमि समन्वयात्मक थी, फलत: दार्शनिक भावभूमियों में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव परिलक्षित हो जाता है । उन पर विवेकानन्द की विचारधारा, वैष्णव कवियों और बंग भाषा की गीति पद्धति का प्रभाव था । उन्होंने द्वैत-अद्वैत विशिष्टाद्वैत आदि दार्शनिक भाव-भूमियों का चित्रण किया है । योग दर्शन के समर्थन के साथ साथ वैष्णवीय भक्ति साधना में भी रस लेते उनको देखा जा सकता था । दार्शनिक दृष्टि से उनकी रूढ़ मान्यताएं कभी भी नहीं थीं । सच तो यह है कि वह किसी भी दर्शन पर पूर्णतया चिपके नहीं रहे, लीक छोड़ तीनों चले सायर सिंह सपूत की उक्ति को केवल उन्होंने छन्द, शैली एवं विषय में ही पूर्ण नहीं किया वरन् दार्शनिक विचारों में भी उनका व्यक्तित्व इन्हीं विरोधाभासों से निर्मित हुआ था ।

१- अर्चना, गीत ५६, पृ० ७५ ।

१६. औपनिषदिक आधार पर ही 'निराला' ने ब्रह्म जीव, माया तथा जगत की स्थिति को स्वीकार किया था । लेकिन विवेकानन्द की तरह उनका दृष्टिकोण समन्वयात्मक था । विवेकानन्द ने ज्ञान,भक्ति,कर्म तीनों में सामन्जस्य स्थापित किया , इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति 'निराला' के 'पंचवटी-प्रसंग' में देखी जा सकती है --

> भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही है
> यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं
> एक ही, दूसरा नहीं है कुछ[1]
> द्वैत भाव ही है भ्रम ।

मनुष्य की स्थूल बुद्धि होने के कारण ही वह इस सूक्ष्म भाव को सहज ही समझ नहीं पाता । यह तीनों मार्ग एक ही निरंजन सच्चिदानन्द के पास ले जाने के मार्ग हैं । कोई सगुण उपासना द्वारा उस लक्ष्य तक पहुंचा है,तो कोई योग-साधना में अधिक आनन्द अनुभव करता है,तो कोई चिन्तन , मनन द्वारा उस निराकार पर-ब्रह्म का साक्षात्कार करने को प्रवृत्त होता है ।

१७. 'निराला' की दार्शनिक अभिव्यक्तियों में सैद्धांतिक आग्रह स्पष्ट रूप से हैं यही कारण है कि दार्शनिक अभिव्यक्तियों में हृदय और मस्तिष्क का मणि कांचन संयोग नहीं हो सका । दार्शनिक निरूपण में सैद्धांतिक नीरसता और शुष्कता का स्वभावत: समावेश हुआ है । दार्शनिक अभिव्यक्तियों में 'कविवर 'निराला' विचारक, तार्किक उपदेशक का रूप धारण कर लेते हैं । अद्वैत और काव्य की रागात्मक भावभूमि का संयोग व स्थापित करने में उनको सफलता नहीं मिली । वस्तुस्थिति में ऐसा होना स्वाभाविक ही था । बौद्धिकता से बोझिल होने के कारण ही दुरूहता और क्लिष्टता भी आ गई है और इसकी पृष्ठभूमि में 'निराला' का गहन चिन्तन और अध्ययन शीलता की वृत्ति का आभास मिलता है ।

१- निराला : परिमल, पंचवटी-प्रसंग, पृ० २२०

१८. `निराला` का जीवन के प्रति दृष्टिकोण आस्थावादी था अस्तु उन्हें निवृत्तिवादी न मान कर प्रवृत्तिवादी कर्मयोगी स्वीकार करना होगा । प्रवृत्तिवादी होने के कारण ही वह निरन्तर अखण्ड कर्म योग में विश्वास रखते थे । देश-काल, परिस्थिति अनुसार विद्वजन वेदांत की नवीन व्याख्या कर अपनी समस्या का समाधान पाते रहे हैं । शंकर की वेदांती व्याख्या यदि निवृत्ति की ओर संकेत देती है तो विवेकानन्द, तिलक, ने उसमें प्रवृत्तिवादी मार्ग को ढूंढ निकाला । वस्तुत: १६ वीं शती के नावोत्थान काल में प्रवृत्तिवादी विचारधारा का विशेष महत्व रहा था । इस धारा के मुख्य प्रवर्तक विवेकानन्द थे, उन्होंने व्यावहारिक वेदांत खोज निकाले जो व्यावहारिक वेदांत की संज्ञा से विभूषित किए जाते हैं । `निराला` पर विवेकानन्द के इस `व्यावहारिक वेदांत` का अप्रतिम प्रभाव है । कवि की दार्शनिक विचारधारा विवेकानन्द की दार्शनिक व्याख्या से ही निर्मित हुई थी ।

-0-

आलोचना खण्ड : गद्य

अध्याय -- ८

`निराला` का कथा-साहित्य

(१) उपन्यास

१. `निराला` का व्यक्तित्व एक प्रबुद्ध जागरूक साहित्यकार का व्यक्तित्व है । उनमें बहुमुखी प्रतिभा का साक्षात्कार होता है । वह उदात्त भावों तथा महान आदर्शों के सृजनकर्ता रहे हैं । वह युग-स्रष्टा एवं युग- चेता कवि के रूप में ख्यात हैं, लेकिन उनका गद्य पक्ष भी कम समृद्ध, सबल तथा कम आकर्षक नहीं है । उनका गद्य साहित्य विचारोत्तेजक तथा यथार्थ पर आधारित है । निबन्धों में उनका मस्तिष्क-पक्ष प्रधान है तो कथा-साहित्य में उनके हृदय पक्ष का आग्रह स्वत: द्रष्टव्य है । निबन्ध को `निराला` ने साहित्य का ज्ञान काण्ड माना है । काव्य भाव पक्ष है तथा कथा-साहित्य क्रिया-पक्ष । यह तीनों पक्ष समान रूप से निराला वांगमय में विकासोन्मुख रहे हैं । `निराला` के कथा-साहित्य में प्रधानत: दो विरोधी पृष्ठभूमियां विकसित और पल्लवित हुई हैं -- एक, स्वच्छन्दतावाद तथा दूसरा, ग्रामीण जीवन का नग्न यथार्थवाद । कथा-साहित्य में कल्पित भाव-भूमि को लेकर लेखक ने भविष्य की सम्भाव्य जीवन को चरितार्थ करने का प्रयास किया है । `निराला` के कथा-साहित्य को उपन्यास और कहानियों के अन्तर्गत विवेचित किया जा सकता है । प्रस्तुत परिच्छेद में उनके उपन्यासों की ही विवेचना की जायगी तथा आगामी परिच्छेद में उनकी कहानियों पर विचार किया जायगा ।

२. `निराला` मुख्यत: कवि थे । काव्य के क्षेत्र में उनको जो असाधारण सफलता मिली उसका अंशांश भी गद्यकार के रूप में नहीं । स्वभावत: जिज्ञासा होती है कि उनका झुकाव गद्य-क्षेत्र की ओर क्यों हुआ ? इस सम्बन्ध में सम्भावित दो ही उत्तर हो सकते हैं --

(क) `निराला` अत्यधिक संवेदनशील और जागरूक साहित्यकार थे, देशकालगत परिस्थितियों और समस्याओं ने अवश्य उनके कोमल हृदय को मथा होगा, लेकिन सामयिक समस्त समस्याओं की अभिव्यक्ति कविता के माध्यम द्वारा सम्भव नहीं । इसके लिए गद्य ही उपयुक्त साधन है -- फिर चाहे वह कहानी हो, उपन्यास हो या निबन्ध । `निराला` का सम्पूर्ण गद्य-साहित्य उनके समय का खुला हुआ चित्र है ।

(ख) जनरुचि तथा `निराला` की आर्थिक परिस्थितियां भी गद्य-लेखन के लिए कम उत्तरदायी नहीं रहीं । जनरुचि काव्य की अपेक्षा कथा-साहित्य की ओर अधिक उन्मुख होती है । काव्यास्वादन के लिए एक विशिष्ट मन:स्थिति का होना आवश्यक है । जन रुचि के कारण प्रकाशकों की मांग भी जनसाधारण के अनुकूल ही रहती है । प्रकाशकों के निरन्तर आग्रह तथा स्वयं की दुर्बल आर्थिक परिस्थिति ने उनके कथा-साहित्य की ओर उन्मुख किया । `निराला` की जीविका का एकमात्र साधन उनका सृजन था , लेकिन उन्होंने कभी भी अपने सृजन को व्यावसायिक नहीं होने दिया । इन समस्त परिस्थितियों का पुंजीभूत फल ही कहानी और उपन्यास के रूप में दृष्टिगत हुआ । गद्य के क्षेत्र में अधिक सफल न होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जिस क्षेत्र में भी उन्होंने पदार्पण किया उसमें अपनी विशिष्टता तथा मौलिकता की अमिट छाप छोड़ते गये हैं ।

३. `निराला` द्वारा प्रस्तुत उपन्यासों की उपलब्ध संख्या सात है -- `अप्सरा` (१९३१), `अलका` (१९३३), `प्रभावती` (१९३६), `निरुपमा` (१९३६), `कालेकारनामे` (१९५०), `चोटी की पकड़` (१९५८) तथा `चमेली` (नया साहित्य पत्रिका के निराला अंक में प्राप्त अपूर्णांश) । `चोटी की पकड़` तथा `काले-कारनामे` अपूर्ण उपन्यास हैं । `चोटी की पकड़` को लेखक का बृहद् आकार में प्रकाशित करने का विचार था । निवेदन में स्वयं लेखक के कथन से इसकी पुष्टि हो जाती है," इसकी चार पुस्तकें निकालने का विचार है । मुमकिन, दूसरी इससे कुछ बड़ी हो , चरित्र इसमें मुन्नाबांदी का निखरा है । अगले में प्रभाकर का ।"

उपर्युक्त वक्तव्य से इस बात की भी स्थापना होती है कि लेखक का प्रत्येक भाग में किसी विशिष्ट पात्र के चरित्रोद्घाटन का विचार था । यही कारण है कि `चोटी की पकड़` की स्वदेशी आन्दोलन से सम्बन्धित कथावस्तु के प्रधान पात्र प्रभाकर की अपेक्षाकृत प्रासंगिक कथा की नायिका मुन्ना का चरित्र अधिक विस्तार पा गया है ।

वर्गीकरण
----

४. `निराला` के इन उपन्यासों को स्पष्ट ही दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -- एक, रोमाण्टिक, दूसरा, यथार्थवादी । `प्रभावती` और `अप्सरा` में रोमान्स प्रधान है । `अलका` तथा `निरुपमा` में रोमान्स के साथ साथ आदर्श का भी पर्याप्त आग्रह दिखता है । अतएव इन्हें आदर्शवादी उपन्यास की भी संज्ञा दी जा सकती है । `काले कारनामे` ,`चोटी की पकड़` तथा `चमेली` विशुद्ध रूप से यथार्थवादी धरातल पर आधारित हैं । रोमाण्टिक उपन्यासों में कल्पना-विलास है और यथार्थवादी उपन्यासों में वस्तुन्मुखी आग्रह । `अप्सरा` का निर्माण तो उस कल्पनामय वातावरण में हुआ था, जब छायावाद की छाया सर्वत्र व्याप्त थी । अतः छायावाद की समस्त कोमलता , मधुरता, मसृणता तथा कल्पना-वैभव का इसमें साक्षात्कार हो जाता है । कथावस्तु भाषा-शैली, वातावरण सभी में अपूर्व सूक्ष्मता और कोमलता का आभास होता है । `अलका` तथा `निरुपमा` में लेखक क्रमशः यथार्थोन्मुखी होता गया है ।

५. विषय वस्तु की दृष्टि से `प्रभावती` तथा `चोटी की पकड़` के अतिरिक्त अन्य उपन्यासों की पृष्ठभूमि सामाजिक है । `काले कारनामे` तथा `चमेली` की पृष्ठभूमि प्रधानता ग्रामीण है, पर यह भी सामाजिक विषयवस्तु के अन्तर्गत ही आ जाते हैं । सामाजिक शब्द को व्यापक अर्थ में लेना होगा । सामाजिक विषयवस्तु के अन्तर्गत समाज में अनेक स्तर और विविध प्रकार के क्रिया-कलापों को कथा का केन्द्रबिन्दु बनाया जा सकता है, परिवार, ग्राम, प्रदेश, सामाजिक प्रथाएं, व्यक्ति और समूह की समस्याएं, आर्थिक परिस्थितियां एवं दार्शनिक सिद्धान्त आदि अनेक विषय हैं, जिनमें से किसी को भी उपन्यास में प्रधानता दी जा सकती है । यों तो आंचलिक उपन्यास भी सामाजिक ही

माना जायगा , क्योंकि इसमें किसी विशिष्ट प्रदेश के रीति-रिवाज,आचार - विचारों का ही वर्णन रहता है । `काले कारनामे` तथा `प्रभावती` में आंचलिकता का आनन्द भी मिलता है । `प्रभावती` मुख्यत: ऐतिहासिक उपन्यास है, पर इसमें एक विशिष्ट अंचल के नदी-नालों , वन-उपवन,रहन-सहन, रीति-रिवाज का वर्णन किया गया है । ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास की दृष्टि से `प्रभावती` अपवाद स्वरूप है । उनके पूर्ववर्ती या समकालीन किसी भी लेखक में मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती है । `प्रभावती` के पश्चात् ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा वृन्दावनलाल वर्मा से ही प्रारम्भ होती है । अतएव ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि से `प्रभावती` सराहनीय प्रयास है । `चोटी की पकड़` में स्वदेशी के साथ सामन्ती वर्ग का चित्रण किया गया है । यह मुख्यत: स्वदेशी आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है तथा इसमें ऐतिहासिक आधार भूमि का आग्रह है ।

६. उपन्यास के तत्वों के आधार पर `निराला` के यह उपन्यास घटना प्रधान हैं । चरित्र-प्रधान उपन्यास के अन्तर्गत केवल `अलका` का ही उल्लेख किया जा सकता है । शैली के आधार पर भी विभाजन की परम्परा है , यद्यपि किसी निश्चित शैली की स्थापना कर सकना बहुत ही कठिन कार्य है, कारण एक तो प्रत्येक सृजनकर्ता की अपनी विशिष्ट शैली होती है, दूसरा वह सदैव एक ही शैली का उपभोग करता हो, ऐसी स्थापना नहीं की जा सकती । लेकिन फिर भी प्रधान शैली को विभाजन का आधार बना लिया जाता है । इस दृष्टि से `निराला` के उपन्यासों में ऐतिहासिक शैली की ही प्रधानता है । अब क्रमश: `निराला` के रोमाण्टिक और यथार्थवादी उपन्यासों की कथावस्तु तथा उनमें अन्तर्निहित समस्याओं पर विचार किया जायगा । `निराला` के सभी उपन्यास सोद्देश्य हैं । उनके रोमाण्टिक उपन्यास भी इस दृष्टि से अछूते नहीं हैं ।

रोमाण्टिक उपन्यास

उन्मुक्त प्रेम

७. रोमाण्टिक उपन्यासों में प्रेम को लेखक ने समस्या रूप में लिया है । जीवन के समुचित विकास के लिए निस्वार्थ प्रेम -- जिसको कि वह मनुष्य की नैसर्गिक

प्रवृत्ति कोष मान्यता देते थे -- आवश्यक माना है । `अप्सरा` की वेश्या पुत्री कनक तथा `अलका` की विधवा वीणा का विवाह लेखक इसी को लक्ष्य में रखकर करवाता है । `अप्सरा` में वेश्या की समस्या को लेकर लेखक अग्रसर हुआ है, पर वह वेश्या के प्रति किसी भी प्रकार को घृणा या ग्लानि का स्फुरण नहीं करवाता, और न उसके विकृत पक्ष को उघाड़ने का उसका मन्तव्य ही था, वरन् उसके उस स्वस्थ एवं मार्मिक पक्ष को लेखक प्रकाश में लाता है, जो बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है । वेश्या के हृदय में भी सामान्य नारी की भांति कोमल भावनाएं विद्यमान हैं, ऐसे दृष्टिकोण को लेकर ही लेखक हमारे सम्मुख आता है ।`अप्सरा` की कनक वेश्यापुत्रि पुत्री होने पर भी दाम्पत्य सूत्र में बंध कर समाज में आदरपूर्ण सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहती है । अपनी आत्मिक शान्ति के लिए वह सब उन्मुक्तता तथा स्वच्छन्दता का भी परित्याग कर सकती है क्योंकि समाज में सभी सम्मानित और मानवीय क्षण जीने की लालसा रखते हैं । प्रणय को नैसर्गिक प्रवृत्ति स्वीकार करने के साथ-साथ लेखक अन्तर्जातीय विवाह का भी समर्थन करता है । `निरुपमा` और कुमार का, कनक तथा राजकुमार का वैवाहिक सम्बन्ध वह इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर करवाता है । केवल विवाह से जीवन सुखी नहीं हो सकता । वैचारिक साम्य न होने से जीवन में तनाव अवश्यम्भावी है और न इससे जीवन का समुचित विकास ही सम्भव है । पुरुष हो या नारी , विवाह एक ऐसा संधि - पत्र हैजिसका निर्वाह उन्हें जीवनपर्यन्त करना पड़ता है । प्रस्तुत वैवाहिक सम्बन्धों से जातीय अहमन्यता पर भी कुठाराघात हुआ है । कुलीन राजकुमार तथा वेश्या-पुत्री कनक के वैवाहिक सम्बन्ध को दैवी संयोग की संज्ञा दी गई है । इसी प्रकार `निरुपमा` में नीरू का विवाह ब्राह्मण कुमार से कराकर साथ ही ब्राह्मण कुमार से जूते पालिश का काम कराकर जातीय अहमन्यता का खंडन कराया गया है । `निराला` श्रम के पक्षपाती थे । निष्क्रियता से उनको घृणा थी । । यद्यपि तत्कालीन समय में देश की ऐसी विकट परिस्थिति नहीं थी कि लन्दन के डी०लिट् को जूता पालिश करने की आवश्यकता पड़ती । इसी तरह १६३१ में एक कुलीन राजकुमार का वेश्या-पुत्री से विवाह करा देने का साहस `निराला` में ही था । `निराला` की कल्पना सदैव ही भविष्यती रही है, वस्तुत: वह जैसी स्थापना चाहते थे,

उसकी पुष्टि अपने लेखन द्वारा करते हैं ।

शिक्षा

८. देश में जागृति के लिए शिक्षा की प्रथम आवश्यकता है । नेताओं के जेल जाने की अपेक्षा शिक्षा का प्रसार करने का कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है । 'अलका' में नेत शंकर के माध्यम से 'निराला' ही बोल रहे हैं -- 'वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर जिले में जितने हों, उतने केन्द्र करें, अर्थात् उतने गावों में, इन किसानों को केवल प्रारम्भिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेलवास से ज्यादा उपकार हो और यह शिक्षा की सच्चाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या वृद्धि कर दे । किसी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क में होता है । जहां मस्तिष्क ही न हो वहां नेता की आवाज का क्या असर हो सकता है ।...जेल में व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है । जनता मुंह फैलाए संवाद पत्रों में स्वतन्त्रता की राह देखती है[१] ।' गांवों में शिक्षा के प्रसार-विस्तार के लिए लेखक अजित जैसे वीतरागी और कर्मठ कार्यकर्ता की अवतारणा करता है । अजित तथा विजय अपने जीवन के अंत में ही सब कुछ त्याग कर देश में जागरण का शंखनाद करते हैं । विजय किसानों में शिक्षा का प्रचार करता है । किसानों की शिक्षा तथा स्वस्थ जीवन के लिए लेखक कतिपय प्रस्ताव रखता है -- 'जमीदारों के उपद्रवों से बचने के लिए गांव के लोगों को किस प्रकार संगठित होना चाहिए, एक अलग कोष सर्वसाधारण की भलाई के लिए एकत्र कर रखने पर मौके पर काम देता है । नहीं तो उपाय शून्य गरीब रियाया जमींदार का मुकाबला नहीं कर सकती। फुट कर एक-एक आदमी जमींदार से कमजोर होने के कारण लड़ नहीं सकते, इसलिए उनका संगठन जरूरी है । जो भीख भगवान के नाम पर भिक्षुक को दी जाती है, प्रति दिन यदि उतना अन्न निकाल कर हंडी में रख दिया जाय और महीने के अन्त में गांव भर का अन्न एकत्र कर बेच दिया जाय तो उसी अर्थ से एक शिक्षक रख कर वे अपने बालकों को प्रारम्भिक शिक्षा दे सकते हैं .... जब तक रियाया अपने अर्थ को पूरी मात्रा में नहीं समझती तब तक दूसरे ~~जमींदार-का~~ समझदार का जुआ उसके कंधे पर रखा रहेगा, अज्ञान के अंधेरे गढ़े से बाहर उजाले में खिले हुए सुधार का ज्ञान प्राप्त करना यहां के किसानों के लिए बहुत जरूरी है[२] ।'

१- निराला : अलका, १६६१, लखनऊ, पृ० ४७

९. स्त्री-शिक्षा के `निराला` प्रबल पक्षपाती थे। समय की परिवर्तित मान्यताओं के साथ नारी में भी परिवर्तन होना चाहिए, इसका समर्थन उन्होंने अपने निबन्ध संग्रह `प्रबन्ध प्रतिमा` में किया है --`अब घर के कोने में समाज तथा धर्म की साधना नहीं हो सकती। ज़माने ने रुख बदल लिया है। हमारे देश की लड़कियों पर बड़े-बड़े उत्तरदायित्व आ पड़े हैं। उन्हें वायु की तरह मुक्त रखने में ही हमारा कल्याण है। तभी वे जाति, धर्म तथा समाज के लिए कुछ कर सकेंगी। उन्हें दबाव में रखकर इस देश के लोग अपने जिस कल्याण की चिन्ता में पड़े हैं, वह कल्याण कदापि नहीं है, प्रत्युत निरी मूर्खता ही है।... विद्या के न रहने से हमारे देश की स्त्रियां बुद्धि तथा कला-कौशल को भी खो चुकी हैं[१]।` स्त्रियां लक्ष्मी तथा सरस्वती का स्वरूप हैं, अतएव उनमें इतना साहस तथा आत्मबल हो कि वे अपने प्रति किए गए बुरे व्यवहारों का प्रतिशोध ले सकें। `अलका` की शोभा में अदम्य साहस तथा धैर्य है, अपने सतीत्व की रक्षा हेतु वह ज़मींदार के यहां से निकल कर स्नेह शंकर के यहां आश्रय पाती है। वहां बड़े अध्यवसाय से अपनी शिक्षा पूरी कर सभ्य, सुसंस्कृत नारी के रूप में हमारे सम्मुख आती है। यही `अलका` बाद में लखनऊ के मजदूरों के मध्य शिक्षा का दान देती है, ऐसी प्रबुद्ध, सुशिक्षित, स्वावलम्बी नारी ही `निराला` की आदर्श नारी है। `अप्सरा` उपन्यास में हिन्दी भाषा की स्थिति पर भी लेखक खेद प्रकट करता है। `हिन्दी की स्टेज पर लोग ठीक-ठीक हिन्दी उच्चारण नहीं करते व` उर्दू उच्चारण की नकल करते हैं, इससे हिन्दी का उच्चारण बिगड़ जाता है। हिन्दी के उच्चारण में भी जीभ को स्वतन्त्र गति होती है, यह हिन्दी ही की शिक्षा द्वारा दुरुस्त होगी।` हिन्दी भाषा के प्रति लेखक की सम्माननीय भावना प्रकट हुई है।

शोषक एवं शोषित

१०. `अलका` उपन्यास में ताल्लुकेदारों, ज़मींदारों के अनैतिक जीवन तथा उनकी शोषक वृत्ति का खुलकर चित्रण हुआ है। आंग्ल शासकों का भारतीय जनता के प्रति दुर्व्यवहार उसके विपरीत भारतीय अफसरों की चाटुकारिता आदि समस्त समस्याओं पर प्रच्छन्नरूप से लेखक दृष्टिपात करता है। `अलका`

उपन्यास जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों के शोषण कुकृत्यों का जीता-जागता कहानी है। ताल्लुकेदारों के रूप में मुरलीधर के अध: पतन का चित्रण सजीव हुआ है। अपनी वासना की तृप्ति तथा यश प्राप्ति के लिए वह कुछ भी उठा नहीं रखता। "जब से मुरलीधर पैतृक व सिंहासन पर अपने नाम की मुरली धारण कर बैठे बराबर सनातन प्रथा के अनुसार सरकारी अफसरों की सौहानी छेड़ते जा रहे हैं।[1]" यहां तक कि वह अपने अफसरों को प्रसन्न करने के लिए गांव की लड़कियों का सतीत्व दांव पर लगाने से नहीं चूकता। "देहाती रूपसियों की निर्दोषिता साहबों को पसन्द आयी, इसलिए धीरे-धीरे गावों पर धावे होने लगे। देहात की सुन्दरी विधवाएं, भ्रष्ट की हुई अविवाहित युवतियां एकमात्र माता जिसकी अभिभाविका थी, अपना खर्च नहीं चला सकती थी और इस तरह के लब्ध अर्थ से लड़की का धोके से विवाह कर देना चाहती थीं, लगान की छूट, माफी आदि पाने की गरज से, कुटनियों के बहकावे में आकर चली जाती या भेज दीजाती थी। लौट आने पर किसी रिश्तेदारी की जगह जाने वाले कारण गढ़ लिए जाते थे। जमींदार के लोग स्वयं सहायक होते थे। कोई डर वाली बात न होने पाती थी। विश्वासी जिलेदार इस तरह के मामले में सुराख लगाने वाले, सौदा तय करने वाले थे।[2]" पुराने रईसों के तथाकथित कारनामे और अंग्रेज सरकार की खिताब देने की नीति का भी 'अलका' उपन्यास में पर्दा फाश किया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं के स्वार्थ पर तीखा व्यंग्य है। अंग्रेजों ने भारत में आकर जो कुछ भी किया वह एकमेव अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए ही, अत: वह खिताब भी उन महानुभावों को देती थी जो उनका समर्थन करते थे। वास्तव में भारत-भाग्य को अंधकारमय करने वाले तथा आंग्ल शासकों के सबसे अधिक समर्थक यह देशद्रोही जमींदार तथा ताल्लुकेदार ही थे।

११. आदर्श जमींदार के रूप में 'निराला' ने स्नेहशंकर की अवतारणा की है, ऐसे सच्चरित्र एवं निश्छल जमींदारों द्वारा ही किसानों की उन्नति संभव है।

१- अलका, पृ० १६

२- वही०, पृ० २५

दो विरोधी चरित्रों के उद्घाटन द्वारा विरोधी मनोवृत्तियों की सूक्ष्मता का विश्लेषण हुआ है । `स्नेह शंकर `निराला` की चिन्ता धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, उनके दृष्टिकोण में," देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है.... देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक शरीर संगठित नहीं हो सकता ।... हमारे यहां तो कानून के बल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है । संवाद पत्रों में कानून के जानकारों का विज्ञापन होता है, वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं । उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य है ।[1]" कांग्रेस या किसी भी राजनीतिक दल की अवसरवादिता तथा स्वार्थप्रियता के कारण लेखक अपने पात्रों को राजनीतिक दलों से स्वतन्त्र होकर कार्य करने की तरफ उन्मुख हुआ दिखाते हैं । देश की उन्नति के लिए वह असीम त्याग तथा मानवता की आवश्यकता मानते थे । यही कारण है कि उनके नायक सन्यासियों की तरह वीतरागी होते हैं ।

१२. `अलका` उपन्यास में न्याय व्यवस्था की विकृत स्थिति का चित्रण हुआ है । मृत रामनाथ की निस्सहाय लड़की सरयू पिता की सम्पत्ति से इसलिए वंचित है कि उसे मियाचार, ज़मींदार, हाकिम, पटवारी के षड्यन्त्र से गवाह नहीं मिलते कि वह सिद्ध कर सके कि वह रामनाथ की लड़की है । न्याय के नाम पर इतना अन्याय, नैतिकता का इतना पतन, देश के लिए एक समस्या बन गया है । बंगालियों की प्रान्तीयता का चित्र तो बहुत स्वाभाविक एवं मार्मिक है । इंग्लैण्ड का डी०लिट् कुमार भिन्न प्रांतीय होने के कारण यामिनी बाबू की व्यावसायिक प्रांगण में पछाड़ नहीं पाता है । `निराला` बंगालियों की इस तुच्छ साम्प्रदायिकता पर प्रच्छन्न रूप से व्यंग्य करते हैं । भारत की अखण्ड राष्ट्र के रूप में कल्पना तभी सम्भव है, जब इन तुच्छ स्वार्थों का परित्याग किया जायगा ।

१३. `प्रभावती` उपन्यास ऐतिहासिक होने के नाते उसमें तत्कालीन देश की राजनैतिक तथा सामाजिक समस्या पर लेखक ने प्रकाश डाला है । देश में अनेकों स्वतन्त्र राज्य हो गए थे जो अपने छोटे से छोटे स्वार्थ के लिए परस्पर संघर्षरत

१- अलका, पृ० ४४

रहते थे, यहां तक कि विदेशियों को भी बुलाकर अपने देश की स्वतन्त्रता को रौंदने में उनको लज्जा नहीं प्रतीत होती थी । ऐतिहासिक दृष्टिकोण होते हुए भी इसमें रोमान्स की प्रधानता है । प्रत्येक उपन्यास में, चाहे उसमें किसानों की समस्या हो या क्रान्तिकारियों की अथवा सामाजिक कोई भी समस्या हो, मुख्य कथावस्तु रोमान्स सम्बन्धी ही है ।

कथावस्तु

१४. `निराला` के सभी रोमाण्टिक उपन्यासों में प्रेम कथा वर्णित है । नायक-नायिका स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक हैं तथा अपने प्रेमी को पाने के लिए निरन्तर संघर्षशील रहते हैं । `अप्सरा` की कनक वेश्या पुत्री होने पर भी राजकुमार से प्रणय करने का साहस रखती है और अपने चरित्र की दृढ़ता से उसे पति रूप में पाने में सफल भी हो जाती है । रंगमंच पर दुष्यन्त के रूप में उसका वरण करती है और एक बार हृदय में पति की भावना आने पर एकनिष्ठ होकर उसी के ध्यान में अवस्थित रहकर भारतीय नारी के आदर्श को प्रस्तुत करती है । राजकुमार को कारागार से छुड़ाने के लिए वह पुलिस कप्तान हेमिल्टन तथा दरोगा सुन्दर सिंह को मूर्ख बनाती है । कारागार से छूटने पर राजकुमार के हृदय में प्रेम तथा देश-सेवा में द्वन्द्व होता है -- क्योंकि वह साहित्यिक होने के साथ-साथ देश सेवा का भी व्रत लिए हुए हैं । अन्त में वह कनक का मोह त्याग कर चला जाता है । जिससे कनक के जीवन में नैराश्य की घटाएं छा जाती हैं, प्रतिक्रिया स्वरूप एक बार न गाने का निश्चय करने पर भी वह विजयपुर के राजकुमार के राजतिलक में जाना स्वीकार कर लेती है । वहां जाकर पुन: राजकुमार को देखकर उसका प्रेम सक्रिय हो उठता है और वह वहां से निकलने का मार्ग खोजने लगती है । लेखक एक ऐसे पात्र चन्दन सिंह का सृजन करता है जो राजकुमार की ही प्रति छवि है , अत: उसके द्वारा कनक विजयपुर के महल से निकलने में सफल हो जाती है, तारा के प्रयास द्वारा राजकुमार का कनक से विवाह हो जाता है ।

१५. `अलका` का कथानक भी प्रेमपूर्ण है, यद्यपि शोभा बाद की `अलका` विजय की परिणीता है, पर उसका अभी पति से साक्षात्कार नहीं

हुआ है । शोभा के मायके तथा ससुराल के परिजन इन्फ्लुएंजा में काल कवलित हो जाते हैं । वह अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए स्नेहशंकर के यहां आश्रय पाती है। विजय बम्बई से शोभा के खोज के लिए गांव आता है, उसके न मिलने पर वह किसान आन्दोलन में भाग लेता है और एक वर्ष की सजा पाता है । उसके पश्चात् वह पुन: लखनऊ मजदूर आन्दोलन में सक्रिय दिखायी पड़ता है -- शोभा भी जो स्वयं लखनऊ में थी , बिना उसे पतिरूप में पहचाने इस कार्य में उसे सहयोग देती है और उसके प्रणय में बंधती जाती है । उपन्यास के अन्त में विजय के मित्र अजित द्वारा दोनों का परस्पर भेद खुलता है, और पाठक सन्तुष्ट हो जाते हैं । इसमें प्रासंगिक कथा-- अजित और वीणा की भी प्रणय सम्बन्धी है । `निरुपमा` में नीरू अपने से भिन्न जाति के कुमार से प्रेम करती है । अपने मामा द्वारा निश्चित यामिनी बाबू से विवाह करने को उसकी आत्मा किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं करती । उसके हृदय में द्वन्द्व होता है, किन्तु समाज तथा अपने मामा का विरोध करने की वह शक्ति अपने हृदय में संजो नहीं पाती । अन्त में कमल के सहयोग से निरु का कुमार के साथ विवाह सम्पन्न हो ता है ।

१६. `प्रभावती` उपन्यास का कथानक जयचन्द कान्यकुब्जेश्वर सम्राट के समय का है । इसकी कथावस्तु मध्य युग की मुस्लिम राज्य-काल से सम्बन्धित है । `प्रभावती` तथा नायक देव के उन्मुक्त प्रणय के तन्तुओं से इस उपन्यास की कथावस्तु निर्मित हुई है । नायक देव लालगढ़ का राजकुमार है । लालगढ़ के राजा महेन्द्रपाल कान्यकुब्ज को स्वल्प   मात्र कर तथा युद्ध के समय पांच हजार सेना से सहायता देने वाले मित्र हैं, प्रभावती दलमऊ की राज कन्या महेश्वर की पुत्री ,कुमार देव की परिणीता धर्म पत्नी है । कुछ राजनैतिक कारणवश तथा परम्परा से चले आ रहे वैमनस्य के कारण प्रभा के पिता लालगढ़ को नीचा दिखाने हेतु प्रभा का बलवंत से विवाह करना चाहते थे । प्रभावती उस विवाह को स्वीकार नहीं करती, और स्वेच्छा से कुमार देव का वरण कर लेती है । फलत: उसका संघर्ष प्रारम्भ होता है । देव तथा प्रभावती के प्रणय की कथावस्तु मुख्य है, इसके अतिरिक्त प्रासंगिक कथाएं-- वीरसिंह तथा यमुना, रामसिंह एवं विद्या,संयोगिता एवं पृथ्वीराज-- आदि कथायें भी प्रणय सम्बन्धी हैं ।

१७. उन्मुक्त प्रेम का समर्थन करते हुए भी उच्छृंखलता का समावेश नहीं होने पाया है । सर्वत्र मर्यादित प्रेम का ही समर्थन है । प्रेमिका इतना ज्ञात कर

हार्दिक संतोष पाती है कि उसके प्रेमी के हृदय में उसके लिए स्थान है । इसके पश्चात् तो वह स्वेच्छा से अपने प्रेमी का दूसरे से विवाह भी करा सकती है । प्रभावती जब रत्ना का कुमारदेव के प्रति झुकाव देखती है, तो वह परस्पर दोनों का विवाह करा देने का उपाय सोचने लगती है --" एक कर्तव्य उसकी दृष्टि में रह गया है, वह यह कि वह राजकुमार की दृष्टि से दूर पृथ्वी में कहीं अदृश्य हो जाय, जिससे उनके गले में रत्नावली के हार पड़ने में कोई संशय न रहे । वह उसे प्यार करते हैं, इतनी स्मृति उसके लिए बहुत है । पत्नी को इससे अधिक और चाहिए ही क्या ?[१] " अपने अन्तिम क्षणों में भी वह देव की चरण-धूलि लेकर रतन का नाम लेती है । `निराला` के पात्र अपने प्रेमी के लिए सर्वस्व उत्सर्ग का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । उनके समस्त उपन्यासों में अश्लीलता वर्जित चित्रण हुआ है । मांसलता का पूर्णतया अभाव है उनके काव्य में भी ऐसे शुद्ध, पवित्र चित्रों की बहुलता है ।

प्रारम्भ

१८. `निराला` के लगभग सभी रोमाण्टिक उपन्यासों में नायक-नायिका की अवतारणा रोमाण्टिक तथा नाटकीय व ढंग से होती है । प्रथम दृष्टि विनिमय में ही उनका परस्पर प्रणय हो जाता है ।`अप्सरा` में प्रारम्भ में लेखक ने रोमाण्टिक वातावरण की सृजना की है," ईडेन- गार्डेन में, कृत्रिम सरोवर के तट पर, एक कुंज के बीच, शाम सात बजे के करीब, जलते हुए एक प्रकाश-स्तम्भ के नीचे पड़ी हुई एक कुर्सी पर, सत्रह साल की चम्पे की कली सी एक किशोरी बैठी हुई , सरोवर के लहरों पर चमकती हुई चांद की किरणें और जल पर खुले हुए, कांपते, बिजली की बत्तियों के कमल के फूल एक चित्र से देख रही थी । और दिनों से आज उसे देर हो गई थी ।.... युवती एकाएक चौंक कर कांप उठी । उसी बेंच पर एक गोरा बिलकुल सट कर बैठ गया । युवती एक बगल हट गई फिर कुछ सोच कर , इधर-उधर देख, घबराई हुई , उठकर खड़ी हो गई । गोरे ने हाथ पकड़ कर जबरन बेंच पर बैठा लिया । युवती चीख उठी । .... गोरा कुछ निश्छल प्रेम की

१- प्रभावती : आवृत्ति, १८८३ शकाब्द , इलाहाबाद, पृ० ११०

बातें कह रहा था कि पीछे से किसी ने उसके कालर में उंगलियां घुसेड़ दीं और गर्दन के पास कोट के साथ पकड़ कर साहब को एक बित्ता बेंच से ऊपर उठा लिया जैसे चुहे को बिल्ली । साहब के कब्जे से युवती छूट गई ।[1] इसके बाद नाम बताना अनावश्यक समझ कर वह युवक आगे बढ़ जाता है । ईडन गार्डेन का रमणीय स्थल, उसमें रूप की साक्षात् प्रतिमा, सत्रह साल की चम्पे की कली सी किशोरी ईडन गार्डेन का सौन्दर्य निहार रही है, एकाएक एक गोरे द्वारा संत्रस्त होकर चिल्ला उठती है, यही उपयुक्त स्थल है, जहां लेखक नायक को एकाएक रंगमंच पर लाता है । उसके द्वारा गोरे की पिटाई तथा नायिका का बचाव होता है । `निराला` साहित्य में सम्पूर्ण महिला-जाति के प्रति समस्त युवती समाज के प्रति ऐसा शालीन सम्य,सुसंस्कृत एवं शिष्ट व्यवहार सर्वत्र व्याप्त दिखायी देता है ।

१६. `प्रभावती` में नायक-नायिका का प्रथम साक्षात्कार भी प्रकृति की सुरम्य स्थली में ही होता है । नायिका प्रभा से नायक देव की भेंट राजवेश से सज्जित युवक के रूप में होती है । ~~`निरुपमा` में~~ `निरुपमा` में नायक-नायिका की भेंट विचित्र ढंग से होती है । प्रथम दृष्टि विनिमय में ही नायक को प्रसाद स्वरूप `धूचो, गौरु,गाधा` जैसी संज्ञाएं प्राप्त हो जाती हैं । कुमार भज गोविन्द, भज गोविन्द गाता हुआ शान्त हो जाता है । `अलका` का कथानक भी रोमाण्टिक है, पर उसके नायक-नायिका का मिलन प्रारम्भ में न होकर अन्त में दोनों का परस्पर भेद खुलने पर होता है । पर एक-दूसरे को एक-दूसरे से अनदेखे ही प्रेरणा मिलती रहती ,` अलका को ऐसा दिन नहीं जाता जब एक बार अपने अन्तरतम प्रदेश में पिता की आंख बचा चुपचाप अपने अनदेखे पति से वार्तालाप न करती हो । कितनी शक्ति वह मौन तन्मयता में प्रियतम के हृदय में भर देते हैं , किसी दार्शनिक को क्या मालूम । किस प्रकार बार-बार विजय अपने कार्य के लिए एक अपराजिता प्राणों की पूर्ण शक्ति का प्रवाह प्राप्त करता, जहां से वह आती है, वहां--उस तपस्या, शान्ति, जीवन की चिर-संगिनी की ओर उसे न फेर कर, दूसरी ओर लोक-कल्याण के लिए, किस तरह फेरता है, इसकी दार्शनिक व्याख्या करने में कौन समर्थ है ? जिसका अलका द्वारा अज्ञात इंगितों से विजय को सत्य-प्रेम का यह

१- निराला : `अप्सरा`, १९६०, लखनऊ, पृ० ६-१०।

बलय प्राप्त होता है[१]।" `निराला` पति-पत्नी के प्रेम को शुद्ध आत्मिक सम्बन्ध ही मानते थे।

नाटकीय संयोग और चमत्कार

२०. `निराला` के लगभग सभी उपन्यासों की कथावस्तु नाटकीय संयोगों से अग्रसर होती है। यही कारण है कि उनके रोमाण्टिक उपन्यासों से चलचित्रों का-सा आभास होने लगता है। `अप्सरा` घटना-प्रधान उपन्यास है। घटनाओं की संयोजना आकर्षक ढंग से हुई है। कहीं-कहीं घटनायें ऐसी अतिरंजित हैं कि उन पर सहसा विश्वास नहीं होता। १६३१ में एक नवयुवती की रक्षा हेतु एक भारतीय युवक का अंग्रेज हैमिल्टन पर आघात करना साधारण घटना नहीं थी। स्वभावत: पाठक राजकुमार की भविष्य-चिन्ता में अभिभूत हो उठते हैं। नायक-नायिका के आकस्मिक मिलन के पश्चात् कथा अनेक प्रकार के नाटकीय मोड़ लेती है। उपर्युक्त घटना के पश्चात् राजकुमार की कनक से पुन: भेंट कोहनूर थिएटर में होती है। राजकुमार वहां गिरफ्तार कर लिया जाता है। पर कनक के प्रपंच से वह छूट जाता है। हैमिल्टन का धोती पहन कर नृत्य स्वीकार करना, रोबिनसन का कनक की प्रतिमा से प्रभावित होना अस्वाभाविक तो अवश्य लगता है, पर इससे कथानक में अतिरंजना के साथ-साथ मनोरंजकता का भी समावेश हो सका है। संयोग से पुन: कनक और राजकुमार की भेंट विजयपुर के राजकुमार के राजतिलक में होती है। जहां कनक राजकुमार को अपने षड्यन्त्र में फंसाती है। वह राजकुमार को बन्दी बनवाने का प्रयास करती है, इसी समय लेखक कुमार की प्रति छवि चन्दन सिंह की अवतारणा करता है, क्योंकि नायिका द्वारा प्रयुक्त सभी षड्यन्त्र सफल होने ही चाहिए अतएव राजकुमार को बन्दी न बनाकर लेखक चन्दन सिंह को बन्दी बनवाता है। चन्दन सिंह के प्रयास से ही कनक वहां से निकलने में सफल हो पाती है। अन्त में लेखक राजकुमार का विवाह दैवी-संयोग की मान्यता के अन्तर्गत ही कराता है," मैंने परिपूर्ण पुरुष-देह देकर सम्पूर्ण स्त्री-मूर्ति प्राप्त

१- अलका, पृ० ६७

की है , आत्मा और प्राणों से संयुक्त, सांस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रस से ओत-प्रोत ,चंचल स्नेहमयी । तत्व के मिलने पर जिस तरह संतोष होता है, राजकुमार को वैसी ही तृप्ति हुई ।'[1]

२१. 'अलका' उपन्यास चरित्र प्रधान उपन्यास है । इसका कथा संगठन दोषयुक्त है । कथावस्तु में सर्वत्र एक बिखराव-सा दिखता है । लेखक कथावस्तु के बिखराव को समुचित रीति से समेटने में असमर्थ रहा है । इसमें मुख्य कथा शोभा तथा विजय की है । वीणा अजित की कथा प्रासंगिक कथा है । प्रासंगिक कथा गौण होने पर भी सशक्त है । प्रासंगिक कथावस्तु सदैव ही मुख्य कथावस्तु की अनुवर्तिनी या सहायक होकर आती है । स्थान-स्थान पर अपने आदर्श में लेखक इतना बह गया है कि उसके कथन अति विस्तार पा गए हैं जिससे कथावस्तु में शैथिल्य दोष भी आ गया है । नाटकीय संयोग और ~~अविश्वसनीय~~ अतिरंजित घटनाओं का समावेश इसमें भी किया गया है । मात्र चमत्कार उत्पन्न करने के लिए ही लेखक अपने कुछ पात्रों का नाम परिवर्तित कर जाता है, अन्यथा नाम परिवर्तन की आवश्यकता कहीं अनुभव नहीं होती । ग्रामीण वीणा का मिसलैले (इंग्लैण्ड) का पार्ट करना,अलका का प्रथम बार में पिस्तौल का लक्ष्य अचूक बैठना, मोटर दुर्घटना के पश्चात् अलका का सुरक्षित निकल आना आदि घटनायें अतिरंजना संयुक्त हैं । प्रस्तुत उपन्यास का अन्त भी अति नाटकीय है । कथावस्तु में शैथिल्य एवं बिखराव होने पर भी नाटकीय संयोगों तथा अतिरंजित घटनाओं के कारण सरसता एवं मनोरंजकता की उद्भावना हो सकी है ।

२२. 'प्रभावती' उपन्यास की कथावस्तु असम्बद्ध है । घटनाओं तथा पात्रों की संख्या पर्याप्त है अत: घटनाओं तथा चरित्रों का सम्बन्ध बनाये रखने के लिए लेखक को प्रयास करना पड़ा है । नायक देव का अति अल्प सक्रिय रूप प्रस्तुत उपन्यास में आया है । नारी तथा पुरुष पात्र सभी राजनीतिक दांव पेंच में दक्ष हैं । सम्पूर्ण कथा राजनैतिक षड्यन्त्रों से परिपूर्ण है । अतिरंजना तो इतनी है कि जिन पात्रों को लेखक की सहानुभूति प्राप्त हुई है, उनके द्वारा सोचे

१- अप्सरा, पृ० २२१ ।

हुए सभी षड्यन्त्र सफलीभूत हो जाते हैं । साधु वेश में वीर सिंह के कृत्य, नर्तकी विद्या का छद्म रूप से कार्य--कल्पित राज राजेश्वरी की अवतारणा -- आदि घटनायें ऐसी हैं जो चमत्कार उत्पन्न करती हैं । संयोग एवं नाटकीयता के लिए भी पर्याप्त अवकाश है ।

`निरुपमा` की कथावस्तु अस्पष्ट तथा उलझी हुई है, यद्यपि नाटकीय संयोगों का श्रृंखला इसमें भी मिलती है । उपन्यास आदर्शवादिता तथा भावुकता से बोझिल है । नायक-नायिका की भेंट विचित्र संयोग से होती है । अन्त भी नाटकीय है । कमल के षड्यन्त्र द्वारा नायक-नायिका दोनों परस्पर वैवाहिक सूत्र में बंध जाते हैं । कमल द्वारा यामिनी बाबू का मिस दुबे के साथ छल द्वारा विवाह सम्पन्न कराना अपूर्व चमत्कार की संयोजना करता है ।

पात्र
----

२३. रीतिकाल की परम्परा की तरह `निराला` ने अपने नायक-नायिका के गुण, वय आदि का सुनिश्चित मापदण्ड बना दिया है । अथ से इति तक उनके पात्र एक ही आचरण करते दिखाई देते हैं । किसी घटना या परिस्थिति की ऐसी अवतारणा नहीं होती, जिससे किसी पात्र के चरित्र की धारा एकाएक दूसरी ओर उन्मुख हो जाए । प्रारम्भ से ही पात्रों के निश्चित चरित्र की गतिविधि की रेखायें खींची जा सकती हैं । `अलका` के पात्रों में कोई विचित्रता नहीं, अजित तथा विजय एक-सा आचरण करते हैं , सावित्री, अलका, वीणा सभी में समान शील एवं सहृदयता है । इसी प्रकार सभी उपन्यासों के पात्रों के सम्बन्ध में हम प्रारम्भ में ही निश्चित धारणा बना सकते हैं ।`निराला` की नायिकायें सोलह या सत्रह साल की , अलौकिक सौन्दर्य से पूर्ण सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत हैं । एक तरह से इन नायिकाओं को बुद्धिजीवी की संज्ञा दी जा सकती है । `अप्सरा` की कनक सोलह साल की है । हिन्दी, अंग्रेजी एवं ललित कलाओं में पर्याप्त योग्यता रखती है । `अलका` की शोभा भी जब स्नेहशंकर के यहां आश्रय पाकर अध्ययन करती है तो बड़ी द्रुत गति से सुशिक्षित समाज के सभी आचार-व्यवहार ग्रहण कर लेती है ।`निराला` के नारी पात्र अत्यन्त वाक्पटु, चंचल, साहसी तथा कठिन से कठिन परिस्थिति में भी घबराने वाले नहीं हैं , यहां तक कि `अलका` की गौण पात्र

वीणा आवश्यकता पड़ने पर मिस्लेल्ले का पार्ट भी बड़ी दक्षता से निभा लेती है। सभी नायिकायें धनी वर्ग की हैं।प्रभावती राजकुमारी ही है,प्रभावती की गौण पात्र यमुना राजनीतिक दांव पेंच में असाधारण दक्षता दिखाती है। प्रभावती की वह मार्गदर्शक भी है। वैसे वास्तव में वह भी राजघराने की राजकुमारी है।

२४. नायिकाओं के समान नायक भी सर्वगुण सम्पन्न हैं। प्रणयी होने के साथ-साथ उनमें क्रान्तिकारी एवं समाजसेवी होने की क्षमता भी है। वह संगीतज्ञ तथा खिलाड़ी भी है।`अप्सरा` का नायक तो क्रिकेट में सेन्चुरी कर चुका है।`अलका` का प्रभाकर (विजय) टेनिस में विपक्षियों को पछाड़ चुका है। राष्ट्र के लिए यह नायक सर्वस्व उत्सर्ग के लिए उत्सुक रहते हैं। `जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी` इनके जीवन का लक्ष्य है। राष्ट्र के हित में वह अपने भविष्य की भी चिन्ता नहीं करते। व्यक्ति से राष्ट्र बड़ा है, इस ध्येय को लेकर वह अग्रसर होते हैं, अपने कार्य की सिद्धि के लिए पात्र अपना स्वरूप परिवर्तन भी कर लेते हैं, `अप्सरा`, `अलका`, `प्रभावती` में वह क्रम देखा जा सकता है। मुख्य रूप से वह साधु वेश को ही प्रधानता देते हैं, ` विजय और अजित अपने स्वाभाविक परिच्छेद में न थे। स्वेच्छा से नहीं लोगों पर प्रभाव डाल कर पक्ष समर्थन के लिए भी नहीं, केवल कर्म के प्रसार द्वारा सहानुभूति और सत्य के विस्तार के लिए इन्होंने गेरुए वस्त्र धारण किए थे।[1]` `अलका` का विजय तथा अजित, `प्रभावती` का वीर सिंह सभी साधु वेश धारण करते हैं।`प्रभावती` में वेश बदलने का क्रम अधिक स्वाभाविक लगता है, क्योंकि तत्कालीन राजनीति में ऐसा होता था। `निराला` के उपन्यासों में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है।`अलका` और `प्रभावती में अवश्य पात्रों की संख्या कुछ अधिक हो गई है। फलत: चरित्रों का समुचित विकास नहीं हो सका है।` अलका` में मुख्य कथा विजय तथा शोभा के अतिरिक्त वीणा और अजित, स्नेहशंकर और अलका, मुरलीधर तथा उनके साथी आदि की प्रासंगिक कथायें भी चलती हैं। अत: इतने पात्रों का समुचित विकास सम्भव नहीं हो सका है।

अलका : १९५१, लखनऊ, पृ० ६९

~~समाव नहीं सो सका है।~~

२५. नारी पात्रों में परम्परागत पवित्रतावादी तथा सतीत्व धर्म का आग्रह दिखता है। वह स्वच्छन्द प्रेम को बुरा नहीं समझती है, एक बार वरण करके जीवन पर्यन्त उसके प्रति एकनिष्ठ पति-भक्ति धारण किये रहती है। 'निरु' 'कुमार' से प्रेम करती है उसके विरुद्ध उसके मामा अपने स्वार्थवश उसका विवाह यामिनी बाबू से करना चाहते हैं, निरु के हृदयासन पर कुमार अवस्थित हो चुका है, जब वह मामा आदि के दबाव के कारण यामिनी बाबू के सम्पर्क में आती है, तो उसको ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह अपवित्र हो गई है, "निरु ने अपनी साड़ी की ओर देखा, घृणा हो गई। इसका यामिनी के वस्त्रों से स्पर्श हुआ है। इससे उस गृह में प्रवेश नहीं हो सकता। वस्त्र बदल कर हाथ जोड़ कर भगवान को प्रणाम किया और प्रार्थना की कि अब कभी ऐसे दूषित संग में न फंसना पड़े। हृदय में एक अपूर्व साहस आया। जो साहस लेकर वह कुमार के घर एक दिन गयी थी, वह फिर मिला।[१]"

२६. स्त्री पात्रों की अपेक्षा पुरुष पात्रों में स्थिरता का अभाव है। 'अप्सरा का राजकुमार कनक के प्रति कभी अच्छी धारणा बनाता है तो कभी घृणा से भर उठता है। उसमें झूठा अहं तथा दम्भ है, " उसके जैसे निर्भीक वीर के लिए जिसने स्वयं ही यह आफत बुला ली है, यह कितने लज्जा की बात है कि वह एक बाजारू स्त्री की कृपा से मुक्त हो सके और घृणा से उसका सर्वांग मुरझा गया[२]।" लेकिन फिर उसी राजकुमार का बिना किसी प्रम प्रकार भी की हिचकिचाहट के कनक का अनुसरण करते हुए उसके घर पहुंचना और वहां जाकर कुछ समय के लिए सब कुछ भूल जाना, उसके चरित्र की दुर्बलता को प्रकट करता है। राजकुमार साहित्य तथा देशसेवा के लिए आत्म समर्पण कर चुका था। अतएव तनिक सी उत्तेजना पर उसकी सुप्त वृत्तियां सतर्क हो उठती हैं, उसके हृदय में द्वन्द्व होता है, " साहित्यिक तुम कहां हो? तुम्हें केवल रस

१- निरुपमा, पृ० १३५।

२- अप्सरा, पृ० ६२।

प्रदान करने का अधिकार है, रस ग्रहण करने का नहीं[1]।" उसका हृदय उसको धिक्कारने लगता । इस ऊहापोहात्मक स्थिति में वह अपने समर्थन में अनेक तर्क निकाल लेता है और अपने हृदय की दुर्बलता को छिपाने के लिए कनक में ही बुराई देखता है," घृणा से राजकुमार का अंग-अंग जल उठा । इन बातों से क्या उसके चरित्र पर कहीं भी सन्देह करने की जगह रह गई है । इससे भी बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि इतना पतन भी राजकुमार जैसा दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुष कर सकता है । उसे मालूम हुआ कि किसी अंध कारागार से मुक्ति स मिली । उसका इतनी देर के लिए रौरव भोग था समाप्त हो गया है[2]।" `अलका` का विजय ग्रामीण जनों के असंतुलन से रुष्ट होकर अपना कार्य-क्षेत्र ही बदल लेता है । उसमें आत्म बल का अभाव है । एक स्थान से निराश होने पर वह दूसरी तरफ अग्रसर हो जाता है । वह व्यक्ति कभी भी सफल समाज सेवी या सुधारक नहीं हो सकता जिसमें धैर्य या दृढ़ता न हो । `राजकुमार` की देश-सेवा तथा उसका कुण्ठा अहं स्वयं में व्यंग्य बन गया है । लेकिन क्रमश: `निरुपमा` तक आते आते उनके पात्र अधिक यथार्थोन्मुखी होते जाते हैं । उनमें अपूर्व दृढ़ता और निष्ठा दृष्टिगत होती है । `निरुपमा` का नायक कुमार अन्त तक दृढ़ निष्ठावान व्यक्तित्व के रूप में दिखाई पड़ता है । वह नूतन सामाजिक व्यवस्था का सन्देशवाहक है ।

२७. `निराला` के प्रधान पात्र तो टाइप की श्रेणी में नहीं आते पर `अप्सरा` के विजयपुर के राजकुमार `अलका` के मुरलीधर तथा `निरुपमा` में निरु के मामा योगेश बाबू को अवश्य टाइप पात्रों की संज्ञा दी जा सकती है । विलायत से लौटे डा० यामिनी बाबू का चित्र प्रारम्भ से लेकर अन्त तक व्यंग्य से सरस है । विजयपुर के राजकुमार का एक चित्र देखिए," विजयपुर के कुंवर साहब भी उन दिनों कलकत्ते की सैर कर रहे थे । उन्हें स्टेट से छ: हजार मासिक जेब खर्च के लिए मिलता था । वह सब नई रोशनी, नये फैशन में फूंक कर ताप लेते थे । आपने भी एक बाक्स किराये पर लिया । थियेटर की मिसों को प्राय: आपकी

१-वही०, पृ० ८८

२- वही०, पृ० ६३

कोठी में दाखिल होती थी और तरह तरह के तोहफ़े आप उनके मकान पहुंचा दिये करते थे। संगीत का आपको अजहद शौक था। खुद भी गाते थे। पर आवाज़ जैसे ब्रह्म भोज के पश्चात् कराह रगड़ने की। लोग इस पर भी कहते थे, क्या मंजी हुई आवाज़ है। आपको भी मिस कनक का पता मालूम न था। इसी और उतावले हो रहे थे। जैसे ससुराल जा रहे हों और स्टेशन के पास गाड़ी पहुंच गई हो।[1]

१८. लेखक ने केवल प्रधान पात्रों को ही आदर्शमय नहीं बनाया है, वरन् गौण पात्रों तक में आदर्श का आग्रह है। यहां तक कि गौण से गौण पात्र भी आदर्शमय हैं। 'अलका' की राधा 'अप्सरा' के हरपाल और तारा, 'निरुपमा' की मल्लिका की मां और कमल तथा 'प्रभावती' की यमुना इनका थोड़े समय का वार्तालाप भी हृदय में अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। 'निराला' के पात्रों में कर्मण्येवाधिकारस्ते की प्रधानता है। बड़े से बड़े कष्ट में भी वे किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होते लेकिन उनके पात्रों के इस महान गुण को भी कुछ आलोचक चरित्र की दुर्बलता मानते हैं। कुमार का समाज द्वारा इतनी उपेक्षा तथा प्रताड़ना सहने के बाद भी आत्म हत्या न करना साधारण व्यक्तित्व का चिह्न नहीं मानते वरन् उसे पारलौकिक भावगम्य कवि का हृदय मानने को प्रस्तुत हैं।[2] 'निराला' ने 'निरुपमा' के द्वितीय पृष्ठ पर स्पष्ट कर दिया है, "योरप से लौटे हुए कुमार की दृष्टि में 'कर्मण्य वाधिकारस्ते' का ही महत्व है, इसलिए मन में हार नहीं मानी।" प्रस्तुत चरित्र की व्याख्या लेखक द्वारा होने पर कुमार के चरित्र का आदर्श स्पष्ट हो जाता है। अत: बिना मनन किये या आद्योपान्त उपन्यास पढ़े और लेखक के दृष्टिकोण को न समझते हुए इस प्रकार की उद्घोषणा करना लेखक के प्रति अन्याय तो होगा ही अपनी अज्ञानता की भी स्पष्ट घोषणा होगी। लेखक ने अपने उपन्यासों में स्त्री पात्रों को प्रधानता दी है यहां तक कि रोमाण्टिक उपन्यासों तथा कहानियों का शीर्षक भी स्त्री वाची है। यद्यपि पुरुष पात्रों को भी लेखक ने समान रूप से सहानुभूति दी है, लेकिन स्त्री पात्र

१- अप्सरा, पृ० १८

२- श्री इन्द्रदत्त शर्मा: माधुरी, अक्तूबर १९३७, पृ० ४०९।

अधिक प्रबुद्ध, उज्ज्वल तथा जाग्रत है । `प्रभावती` जैसे ऐतिहासिक उपन्यास में भी स्त्री वर्ग अधिक सक्रिय है । राजनीति के दांव-पेंच में भी स्त्री वर्ग अपनी बाजी मार ले जाता है । यमुना की दृष्टि अद्वितीय है । इसके चरित्र के सम्मुख `प्रभावती` का व्यक्तित्व भी मन्द पड़ जाता है । प्रभावती में सौन्दर्य की प्रतिमा बने रहने की क्षमता तो है, पर यमुना की दूरदर्शिता तथा असाधारण दृढ़ता तथा साहस का अभाव है । `प्रभावती` में एक पुरुष पात्र अवश्य है ऐसा है, जिसकी रेखायें स्पष्ट रूप से उभरी हैं, वह हैं पंडित शिवस्वरूप ।

चरित्र-चित्रण

२६. पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण हुआ है । `निरुपमा` का कुमार के प्रति आकर्षण था, परन्तु अपनी मित्र कमल का कुमार के प्रति स्वच्छन्द व्यवहार देखकर `निरु` कमल से खिंच जाती है । कुमार तथा कमल के सम्बन्ध के संदेह मात्र से वह अव्यवस्थित हो उठती है । पुरुष हो अथवा नारी, कोई भी प्रणय के मार्ग में अपना प्रतिद्वन्द्वी स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होता, अतएव निरु का कमल से खिंचाव स्वाभाविक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी है । निरु के स्वयं के वक्तव्य से इसकी पुष्टि हो जाती है --` मैं खुद अपने मर्ज की दवा के लिए चली थी । पर रास्ते में तुमने बाधा दी ।

`मैंने बाधा दी कैसी बाधा ?`

`तुम कुमार को प्यार करती हो ?`

कमल आश्चर्य की दृष्टि से निरु को देखती रही, कहा प्यार करती हूं, इसका एक ही अर्थ मेरे पास है, उससे विवाह का कोई ताअल्लुक है, यह मैं नहीं जानती दूसरे अलबत्ता यही अर्थ संयोग लेते हैं ।` निरु उदास होकर मुरझा गई फिर एकाएक अपनी प्रभा से चमक उठीं, बोली --` कुमार बाबू के यहां तुम्हें उनके साथ देखकर मैंने वैसा ही निश्चय किया था, इसीलिए अपने दर्द की दवा से मैंने अपना हाथ खींच लिया, मैं नहीं चाहती थी कि मैं तुम्हारी प्रतिद्वन्द्वी बनूं, नहीं तो कुमार की मां का ऐसा स्वभाव है, मैं जानती हूं वे मुझे अवश्य ही आश्रय देतीं, मैंने जान बूझकर यह जहर पिया है, मुझे भ्रम था ही[१] ।`मुख्यत:

१- निरुपमा, पृ० १३२ ।

सभी पात्र स्पष्टवादी तथा सुलझे हुए हैं। किसी भी अन्य के वह प्रतिद्वन्द्वी नहीं बनना चाहते। 'प्रभावती' की प्रभा भी रत्नावली का देव की तरफ झुकाव देखकर उन दोनों का विवाह सम्पन्न कराने के स्वप्न देखने लगती है। इसके अतिरिक्त स्त्री पात्र एक-दूसरे के हृदयस्थ भाव समझने की हार्दिक क्षमता रखते हैं। कनक राजकुमार के साथ दो-एक दिन रह कर ही देख लेती है "उड़ता हुआ स्वभाव है, यह पींजड़े वाले नहीं हो सकते।..... दिल में एक आग है, जिसे मैं बुझा नहीं सकती और मेरे विचार से उस आग को बुझाने की कोशिश में मुझे अपनी मर्यादा से गिर जाना होगा, मैं ऐसा नहीं कर सकती, चाहती भी नहीं, बल्कि देखती हूं, मैं स्वभाव के कारण कभी-कभी उसमें हवा का काम कर जाती हूं।"[1]

३०. 'निराला' के पात्र साधारण मनुष्य की श्रेणी से उठकर वीतरागी एवं सन्यासी के मार्ग का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। 'अलका' का विजय साधारण मनुष्य है, लेकिन उसका आचरण ऐसा है कि वह उसके चरित्रानुकूल नहीं। बम्बई में अपनी पत्नी का पत्र पाकर वह उसे लाने के लिए प्रवृत्त होता है। पर गांव आकर शोभा को न पाकर वह निर्द्वन्द्व होकर किसानों की दशा सुधारने में व्यस्त हो जाता है। मानो शोभा का न मिलना कोई विशेष महत्व की बात न थी, और न किसी प्रकार का संघर्ष ही लेखक उसके हृदय में दिखाता है। जिस उत्तेजना से वह बम्बई से चला था, उसका वेग गांव आते-आते पूर्णतया शान्त हो जाता है। अपनी परिणीता पत्नी को जिसका कि अब सुरक्षित होना सन्देहात्मक है, उसको इतने सहज ढंग से विस्मरण कर देना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। क्या उसके लिए शोभा की अपेक्षा किसानों का सुधार अधिक आवश्यक था? यदि ऐसा दिखाना ही था तो विजय के हृदय के द्वन्द्व को भी प्रकट करना चाहिए था, कि किस मनःस्थिति से प्रेरित होकर वह किसानों के सुधार के लिए प्रवृत्त होता है। यद्यपि विजय के चरित्र की लेखक ने स्वयं व्याख्या की है, "शोभा के..... लिए विजय के हृदय में स्थान है....

१- अप्सरा, पृ० ६४

पर ज्यादा झुकाव देश-सेवा की तरफ है शोभा को प्राप्त कर गार्हस्थ्य सुख की लालसा उसे नहीं, केवल शोभा को सम्मान की दृष्टि से देखने से वह विरत न होगा[1]। क्या यही उसके पतित्व की इतिश्री है। यह तो कोई आदर्श नहीं है। इसके विपरीत उसका मित्र अजित शोभा को ढूंढने में अधिक सक्रिय है। लेकिन वह भी वीणा के प्रणय में उलझ जाता है। सबसे अद्भुत बात यह है कि इतने त्यागी वीतरागी आदर्श चरित्र होने पर भी बीड़ी के टुकड़े उनके कमरे में अवश्य प्राप्त हो जाते हैं। अपने आदर्श के प्रकटीकरण में लेखक इतना बह जाता है कि वह उच्च से उच्च विचार अत्यधिक सुसंस्कृत भाषा में दासी के मुख से कहलवा देता है, बाद में इस त्रुटि को अनुभव कर उसका मार्जन करता है। एक बार मार्जन करने के पश्चात् पुनः भाव में 'निराला' उस त्रुटि को पुनरावृत्ति कर बैठते हैं। सम्भवतः लेखक यमुना के दासीत्व को भूल जाता है। इस प्रकार का मार्जन अविश्वसनीय तो क्या हास्यास्पद लगता है। वस्तुतः ऐसी खटकने वाली भूल को पाठक अस्वीकार नहीं कर सकता।

३१. इसी प्रकार 'अलका' की वीणा जो कि एक गांव की सीधी और सरल नारी है, एकाएक मिस लेले (इंग्लैण्ड) का पार्ट करने को तैयार हो जाती है, और मुरलीधर जैसा घाघ व्यक्ति भी उससे मात खा जाता है, एवं अपनी पिस्तौल खो बैठता है। पाश्चात्य सभ्यता में जहां नारी इतनी स्वतन्त्र तथा प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के समान व्यवहार करती है वहां मिस लेले का एकांत चुप होकर बैठना असंगत लगता है। मात्र कपड़े पहनाने से कोई भिन्न देशीय नहीं बन सकता, तथाकथित देश का आचरण प्रदर्शित करने के लिए उस विशिष्ट भाषा तथा व्यवहार का ढंग भी कुछ आना चाहिए। यदि कुछ दिन इसका अभ्यास लेखक दिखा देता तो सम्भवतः इतना अस्वाभाविक न प्रतीत होता। इसी प्रकार तत्कालीन परिस्थिति में जब कि देश में आंग्ल शासन था, कनक का अंग्रेज हैमिल्टन को धोती पहना कर नचाना, तथा राबिन्सन का कनक के सम्मुख अंग्रेज आफिसर को दोषी स्वीकार करना अत्युक्तिपूर्ण लगता है। इस तरह के प्रसंग - कथा में

१- अलका, पृ० ७४।

अतिरंजना और चमत्कार की तो उद्भावना करते हैं, पर वह बिल्कुल भी स्वाभाविक नहीं प्रतीत होते । परन्तु क्रमश: `निराला` पर से काल्पनिक छाया का आवरण कम होता प्रतीत होने लगता है । `अप्सरा`, `अलका` तथा `निरुपमा` के विवेचन से इस मन्तव्य का स्पष्टीकरण होता है । `निरुपमा` के समस्त पात्र यथार्थ का छोर पकड़े दिखते हैं । `अप्सरा` तथा `अलका` के पात्र क्रांतिकारी, राजनीतिक कार्यकर्ता तथा सुधारक सभी हैं । पर उनके द्वारा जीवन के लिए प्रयुक्त मार्ग कल्पना में तो सम्भव है, पर वास्तविक जीवन के लिए असम्भव है ।

३२. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से `निराला` अधिक सफल नहीं है । पात्रों का स्वयं घटनाओं तथा परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से चरित्र उद्घाटित नहीं होता, वरन पात्र लेखक के बताए हुए मार्ग पर ही अग्रसर होते देखे जा सकते हैं । लेखक ने पात्रों के चारित्रिक विकास को एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत ही रखा है । यथा-- प्रारम्भ में किसी के प्रणय में नाटकीय ढंग से फंसना पुन: उस प्रणय की भावना के साथ-साथ देश-सेवा की तरफ अग्रसर होना और अन्त में देश-सेवा की भावना पर प्रेम-भावना का आधिपत्य स्थापित हो जाता है । `निराला` ने चरित्र-चित्रण में मुख्यत: विश्लेषणात्मक आत्म-विश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक शैलियों का प्रयोग किया है । जहां कहीं भी पात्रों की मानसिक वृत्तियों में लेखक ने संघर्ष दिखाया है, वहां चित्रण अद्वितीय बन गया है । वस्तुत: इस प्रकार के आत्म विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण में `निराला` को अपूर्व सफलता मिली है । `अप्सरा` के राजकुमार के हृदय में राष्ट्र-भावना और प्रणय भावना को लेकर द्वन्द्व होता है, `साहित्यिक ! तुम कहां हो ? तुम्हें केवल रस प्रदान करने का अधिकार है, रस ग्रहण करने का नहीं ।` उसी की प्रकृति उसका तिरस्कार करने लगी --` आज आंसुओं में अपनी शृंगार की छवि देखने के लिए आए हो ? -- कल्पना के प्रसाद-शिखर पर एक दिन एकाकी, देवी के रूप से, तुमने पूजा की, आज दूसरी को प्रेयसी के रूप से हृदय से लगाना चाहते हो ? -- छि: छि: , संसार से सहस्रों प्राणों के पावन संगीत तुम्हारे कल्पना से निकलने चाहिए । कारण वहां, साहित्य की देवी सरस्वती ने अपना अधिष्ठान किया जिनका सभी के हृदयों में सूक्ष्म रूप से वास है । आज तुम इतने संकुचित हो गए कि उस तमाम प्रसार को सीमित कर रहे हो ? श्रेष्ठ को इस प्रकार बंदी करना असम्भव है, शीघ्र ही तुम्हें उस स्वर्गीय शक्ति से रहित होना होगा । जिस

मेघ ने वर्षों की जलद राशि वाष्प के आकार से संचित कर रखी थी, आज वह एक ही हवा चिरकाल के लिए उसे तृष्णार्त भूमि के ऊपर से उड़ा देगी।[1] राजकुमार के हृदयस्थ संघर्ष का मूर्त रूप स्वयं पात्र के आत्मविश्लेषण से प्रकाश में आता है।

३३. स्वयं लेखक द्वारा भी पात्रों की सूक्ष्म से सूक्ष्म मन:स्थिति का विश्लेषण अन्यतम बन सका है। 'निरुपमा' के हृदय में अपने मामा के प्रति श्रद्धा है, लेकिन कुमार के प्रति अपनी कोमल भावनाओं को भी वह भुला नहीं पाती, " निरुपमा कुछ देर सांस रोके बैठी रही। सोचा यह स्नेह का फंदा है। मन ही मन उलझती हुई, इस पाश को पार कर जाना चाहा पर सब जगह उसने अपने को बंधी हुई देखा। कुमार को चाहती है, पर वह पहुंच के बाहर है। समर्थ मन बराबर पहुंच से बाहर की चीज़ लड़ कर भी लेना चाहता है वह मानसिक समर करती है, प पर अपनी संस्कृति से आप परास्त हो जाती है। मामा, भाई आदि के प्रति हुए स्नेह और संस्कारों के माया-जाल में बंध कर नहीं बढ़ पाती। कुमार भी हर तरह उसकी पहुंच के बाहर है। अन्त में पहले की तरह निश्चय बंध गया, एक सांस छोड़कर यथार्थ ही कमज़ोर होकर समझी -- मेरे लिए यामिनी ही है, सुबह का कुमार नहीं।[2] ग्रामीण जनों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक, सजीव एवं सप्राण है। ग्रामीण जीवन से लेखक का घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण ग्रामीण जनों की प्रवृत्तियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। ग्रामीण जन अत्यधिक धर्म-भीरु, सरल तथा शीघ्र विश्वास करने वाले होते हैं। किसी द्वारा उनके अधिकारों का ज्ञान कराने पर वह तुरन्त ही वैसा करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं लेकिन परम्परा से दबाए जाने वाली दास वृत्ति या संस्कार जब ऊपर प्रभाव डालते हैं तो उनकी वह उत्तेजना कपूर के सदृश उड़ जाती है।

कथोपकथन

३४. कथोपकथन अत्यन्त सजीव, सप्राण, अर्थमय प्रभावोत्पादक तथा मनोरंजक है। निरर्थक वार्तालाप का पूर्णतया अभाव है। वस्तुत: उनके द्वारा

१- अप्सरा, पृ० ८८-८९।

२- निरुपमा, पृ० ७२।

मेघ ने वर्षा की जलद राशि वाष्प के आकार से संचित कर रखी थी, आज वह एक ही हवा चिरकाल के लिए उसे तृष्णार्त भूमि के ऊपर से उड़ा देगी[1]। राजकुमार के हृदयस्थ संघर्ष का मूर्त रूप स्वयं पात्र के आत्मविश्लेषण से प्रकाश में आता है।

३३. स्वयं लेखक द्वारा भी पात्रों की सूक्ष्म से सूक्ष्म मन:स्थिति का विश्लेषण अन्यतम बन सका है। `निरुपमा` के हृदय में अपने मामा के प्रति श्रद्धा है, लेकिन कुमार के प्रति अपनी कोमल भावनाओं को भी वह भुला नहीं पाती, "निरुपमा कुछ देर सांस रोके बैठी रही। सोचा यह स्नेह का फंदा है। मन ही मन उड़ती हुई, इस पाश को पार कर जाना चाहा पर सब जगह उसने अपने को बंधी हुई देखा। कुमार को चाहती है, पर वह पहुंच के बाहर है। समर्थ मन बराबर पहुंच से बाहर की चीज़ लड़ कर भी लेना चाहता है वह मानसिक समर करती है, पर अपनी संस्कृति से आप परास्त हो जाती है। मामा, माई आदि के प्रति हुए स्नेह और संस्कारों के माया-जाल में बंध कर नहीं बढ़ पाती। कुमार भी हर तरह उसकी पहुंच के बाहर है। अन्त में पहले की तरह निश्चय बंध गया, एक सांस छोड़कर यथार्थ ही कमज़ोर होकर समझी -- मेरे लिए यामिनी ही है, सुबह का कुमार नहीं[2]।" ग्रामीण जनों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक, सजीव एवं सप्राण है। ग्रामीण जीवन से लेखक का घनिष्ठ सम्पर्क होने के कारण ग्रामीण जनों की प्रवृत्तियों का मार्मिक चित्रण हुआ है। ग्रामीण जन अत्यधिक धर्म-भीरु, सरल तथा शीघ्र विश्वास करने वाले होते हैं। विजय द्वारा उनके अधिकारों का ज्ञान कराने पर वह तुरन्त ही वैसा करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं लेकिन परम्परा से दबाए जाने वाली दास वृत्ति या संस्कार जब ऊपर प्रभाव डालते हैं तो उनको वह उत्तेजना कपूर के सदृश उड़ जाती है।

कथोपकथन

३४. कथोपकथन अत्यन्त सजीव, सप्राण, अर्थमय प्रभावोत्पादक तथा मनोरंजक है। निरर्थक वार्तालाप का पूर्णतया अभाव है। वस्तुत: उनके द्वारा

१- अप्सरा, पृ० ८८-८९।

२- निरुपमा, पृ० ७३।

प्रयुक्त वार्तालाप चरित्र या परिस्थितियों को ही प्रकाश में लाते हैं । देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त वार्तालाप कुछ नीरस तथा अधिक विस्तार पा गए हैं , पर वह `निराला` की गम्भीर चिन्तनशीलता के परिचायक भी हैं । `अलका` में स्नेहशंकर का कथन दीर्घ हो गया है किन्तु वह देश की तत्कालीन विषम परिस्थिति का निचोड़ भी है, स्वतन्त्रता के नाम पर देश घोर परतन्त्र है । संवाद पत्र एक दल-विशेष, व्यक्ति विशेष की नीति के प्रचारक हैं । वे उस तरह अपने पत्र का भी प्रचार करते हैं । जिसे अभ्युदय शील जनता में आकर्षक और लोकप्रिय समझते हैं , बराबर उसी का प्रचार करते रहते हैं । जनता बड़ी असमर्थ होती है , वह मनुष्य को बिना स्याह दाग का ईश्वर भी समझ लेती है । जो कमज़ोर को और भी कमज़ोर पराश्रयी कर देता है । संवाद पत्रों में स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है । सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं , जो केवल बजते हैं , बोल के अर्थ, ताल , गति नहीं जानते अर्थात् उनके भीतर वैसे ही पोल भी हैं । वे दूसरे के हाथों की थपकियों से मधुर बोलते हैं -- जनता वाह वाह करती है और बजाने वाले देवता को पुष्प-माला लेकर यथाभ्यास जैसा समझा गया, पूजने को दौड़ती है । यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं है ।[1]" प्रस्तुत कथन कितना गूढ़ार्थ व्यंजित करने में समर्थ है , यह कहने की आवश्यकता नहीं । वर्षों से दासता की शृंखला में जकड़े हुए भारतीय कुंठित हो रहे हैं । `निराला` एक मात्र राजनीतिक अधिकारों को पूर्ण स्वराज्य नहीं मानते,वह देश की समग्र रूप से उन्नति चाहते हैं ।जब सर्वसाधारण नव चेतना से जाग उठेगा, तभी वास्तविक रूप से स्वतन्त्रता मिल सकेगी ," देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए... क्योंकि देश की स्वतन्त्रता एक भिन्न विषय है ।[2]" स्नेह शंकर के कथन न केवल समस्याओं पर ही प्रकाश डालते हैं, वरन उनका उचित समाधान भी देते हैं । कहानी कहना `निराला` का उद्देश्य

१- अलका, पृ० ४५

२- वही०, पृ० ४४

कभी नहीं रहा, यही कारण है कि उनकी चिन्ताधारा प्रच्छन्न रूप से सर्वत्र व्याप्त है ।

३५. चरित्रानुकूल संवादों का प्रयोग हुआ है । कनक, सुशिक्षित, शिष्ट वारांगना है । स्वयं कविता का जैसा साकार रूप है, वैसी ही उसकी भाषा भी काव्यात्मक है , यथा--" अच्छा अम्मा, किसी पत्ते पर कीमती-- ~~[illegible]~~ खूबसूरत पत्ते पर पड़ी हुई ओस की बूंद अगर हवा के झोंके से ज़मीन पर गिर जाय, तो अच्छा, या प्रभात के सूरज से चमकती हुई उसकी किरणों से खेल कर फिर अपने मकान, आकाश को चली जाय, तो अच्छा ?"[1] `प्रभावती` में अजमान शिवस्वरूप के संवादों में स्थानीय भाषा तथा शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । पात्रानुकूल संवादों से चरित्र-चित्रण में जीवन आ गया है । रामसिंह का छुनियां धोबी के रूप में एवं यमुना का छुनिया की भौजी के रूप में प्रयुक्त संवाद `निराला` की सूक्ष्मता के परिचायक हैं, --" महाराज अपना काम करता हौं, आप लोगन के कपड़े धोता हौं । ..." मैं का जानों, का लिखा है ? ... छुनिया रे कहां मरा था ? सरदार भीम बाबा से कितनी रोई बहुरिया तेरे लिए, अब तेरी भौजी भी आई है, गई थी उसके साथ, बेचारी रोती रहती है जब से आई है ।" .... भौजी तुम्हारी किरपा से बच गया । यहां आते तुमको बड़ी तकलीफ हुई होगी । मइया का मेरे ऊपर बड़ा स्नेह है, नहीं तो तुमको आने न देते ।" .... धैर्य रखते इतना कष्ट यमुना को कभी नहीं पड़ा । कंधे पर हाथ फेरती हुई बोली--" देवर राजा, अपने भाग बचे, अपना भाग फूलो फलो, हमें भी आंखों से देखे का सुख है ।"[2]

३६. ग्रामीण समाज से `निराला` की घनिष्ठता होने के कारण ग्रामीण समाज, रहन-सहन, रीति-रिवाज का तो चित्रण स्वाभाविक हुआ ही है, ग्रामीण जनों के संवादों से और भी रोचकता आ गई है । `निरुपमा` में ग्रामीण स्त्रियों की परस्पर चुहलबाजी तथा परिहास का मनोरंजक चित्रण हुआ है " र गुइयां, ब्याह के गीत तो नहीं सुनने की इच्छा" सुनावो ।" मंद हंस कर देखती हुई निरु बोली ।" तुम्हारा ब्याह कब हो रहा है ?" चपला सखी ने स्वर में दूरदर्शिता सूचित की ।

१- अप्सरा, पृ० २६

२- प्रभावती, पृ० ११८-११६ ।

"बहुत जल्द ।" निरु गम्भीर होकर बोला ।

"बड़ी उतावली होगी, मर्मज्ञता से देखती हुई ।

रात को नींद नहीं आती, तारे गिना करती हूं, कमरे में धन्नियां ।"

वैसी ही गम्भीरता से निरु ने कहा ।

...... बहु ने फिर प्रश्न किया --" तो इतना बेचैनी क्यों सहती हो ब्याह कर लिया होता ।" चलते गीत के महोच्च स्वर की छाया में रह कर पूछा ।

"इच्छा तो थी, पर अच्छा कोई देख हो नहीं पड़ा[1] ।"

"अप्सरा" में हैमिल्टन का वार्तालाप भी रोचक है ।

"टब टुमबी आओ, कियां डांसिंग स्टेज कहां ?"

यहीं नाचो मुझे नाचना नहीं आता, मैं तो सिर्फ गाती हूं ।

अच्छा टुम बोल्टा हो हम नाच सकटा[2] ।"

३७. सरसता तथा मनोरंजकता के लिए लेखक के कथोपकथन में हास्य-व्यंग्य का सहारा लिया है । विजय तथा अजित का परस्पर सम्भाषण रोचक है," विजय लेकिन जाने क्यों, कुछ दिनों से पुलिस पीछे लगी है । यहां रहूंगा तो मुमकिन है तुम पर भी शक करें ।"

अजित --" और यहां तो छ: महीने से मधुर जी की बेटी जवान है, रोज देखने आते हैं ।"

विजय --" तब यही बात होगी, जो मुझ पर सन्देह है । तुम्हारे पत्र के कारण है ।"

अजित --" लेकिन तुम्हें मैंने कोई ऐसी बात तो नहीं लिखा ।"

विजय --" पत्र लिखा । सम्बन्ध है । शिकारी हो राह चलता, व्याघ्र की बू मिली ।"

अजित बड़े भाग्य हैं जो, एक शरीर-रक्षक हमारे साथ रहेगा । विजय हंसने लगा, ये गुप्त विभाग वाले बकरे चुन चुन कर पौधों के सिर काट कर खाते हैं --पत्ते नहीं,

----

१- निरुपमा : पृ० ८५

२- अप्सरा : पृ० ५३

नए कोंपल वाले डंठल । एक बार मर जाने पर फिर पौधा नहीं पनपता,धीरे धीरे मुरझाता हुआ लुप्त हो जाता है ।[1]

३८. एक-दो स्थलों पर स्वगत कथनों का प्रयोग हुआ है पर वह अस्वाभाविक तथा खटकने वाले हैं । अलका का बिना किसी परिचय के स्वगत कथन द्वारा प्रभाकर को लक्ष्य करना, 'पिंजड़े में रहना बड़ा अच्छा, चारा आप मिलता है बेचारा तोता व बाज़ फटकारने की मेहनत से बच जाता है ।'[2] अटपटा-सा प्रतीत होता है । इसी प्रकार 'प्रभावती' में यमुना द्वारा प्रयुक्त स्वगत विस्तृत होने के साथ-साथ व्यर्थ है ।

३९. नाटकीय कथोपकथनों की सृजना भी लेखक ने की है -- रत्नावली कुछ देर तक बैठी रहकर स्वस्थ होकर सस्नेह कुमार को देखती हुई बोली,--' आप चिन्ता न कीजिएगा, चांद देर तक बादलों में न ढंका रहेगा ।'

'आप अकारण मेरे लिए कलह न कीजिए ।'

'मैं कलह नहीं कर रही, कलह दूर कर रही हूं ।'

'फिर भी भाई से बैर होगा ।'

'नहीं स्वभाव से भाई बैरी था, उसे मित्र बनाऊंगी ।'

'नहीं, मैं कल यहां से चला जाऊंगा' मैं समझता हूं यमुना देवी को भूमिका आने मेरे लिए बांधी है ।'

'वामा' रत्नावली ने सेविका को आवाज़ दी' सब फाटकों में कह आ, कुमार आज्ञा के अनुसार चले जाना चाहते हैं,वे जाने न पायें, जब तक निर्णय न होगा, वे यहीं बन्दी रहेंगे ।'[3] नाटकीय कथोपकथनों का प्रयोग लेखक ने सफलतापूर्वक किया है ।

वातावरण

४०. देश-काल का चित्रण लेखक ने तत्कालीन मनोवृत्ति तथा परिस्थितियों के आधार पर किया है । 'प्रभावती' ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण उसमें

१- अलका : पृ० ५२-५३ ।

२- वही०, पृ० १७९ ।

३- प्रभावती : पृ० १३०-१३१ ।

मध्यकालीन समाज का वातावरण मुखर हो उठा है । तथाकथित समय की दुरवस्था एवं विशृंखलता के लिए लेखक क्षत्रियों के दर्प अहं तथा स्वार्थ को दोषी ठहराता है, "क्षत्रियों में स्पर्द्धा से दबाने का जो भाव बढ़ा हुआ है, यह उन्हें ही दबाकर नष्ट कर देगा,.....वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा में बौद्धों पर विजय पाने वाले क्षत्रिय कदापि इस धर्म की रक्षा न कर सकेंगे , क्योंकि साधारण जातियां इनके तथा ब्राह्मणों के घृणा-भाव से पीड़ित हैं । ये आपस में कट कर क्षीण हो जायेंगे ।"[1] यमुना का प्रस्तुत कथन देश की तत्कालीन स्थिति को प्रकट करने में पूर्णतया सक्षम है । मध्यकालीन राजनीतिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रांकन हुआ है । "समान धर्म वालों का मैत्री सम्बन्ध में बंधना स्वाभाविक नियम है । ... प्राय: पास-पड़ोस के रहने वाले एक-एक, दो-दो दुर्गों के मालिक आपस में मिले रहते थे । उनका तकरार भी इन्हीं में होती है थी । तब उनमें भी दो दल हो जाते थे या दो दलों में वैमनस्य चलता था , कुछ तटस्थ रहते थे । मारपीट, लड़ाई-दंगे, यहां तक कि युद्ध भी होते थे । न बड़े राजाओं को युद्ध से फुर्सत थी, न उन्हें । ऐसा ही गांव गांव तथा टोले-टोले में था । खास तौर से सुनाई भी न होती थी । महाराज अपने लड़े हुए सरदारों की इसलिए न सुनते थे कि उन्हें घर तथा सम्मान दोनों ओर से मिलता रहता था । उनके स्वार्थ में बाधा न लगती थी, फलत: ऐसे झगड़ों का आपस में फैसला होता था, या पुश्त-दर-पुश्त शत्रुता चलती थी, या महाराज के कान भर कर बदला चुकाने की सोची जाती थी । कोई बड़ी बात हो जाने पर अधिक सरदारों के रुख को देखकर महाराज साधारण न्याय करते थे ।"[1] देव के पिता के विरुद्ध कान्यकुब्ज का रुख यही प्रदर्शित करता है । वास्तव में तत्कालीन देश की ऐसी स्वार्थपूर्ण विघटित स्थिति को देखकर ही विदेशी भारत में पदार्पण करने का साहस कर सके । वातावरण की दृष्टि में 'प्रभावती' उपन्यास पूर्ण सफल है ।

४१. 'अप्सरा' उपन्यास में तत्कालीन युवक समाज की मनोवृत्ति के चित्रण द्वारा वातावरण का निर्माण किया गया है । तथाकथित युवक समाज की

१- प्रभावती : पृ० ५०

विद्रोही प्रवृत्ति उसे समाज की झूठी रूढ़ियों को तोड़ने के लिए उत्साहित करती है , तो उसके संस्कार उसको ऐसा न करने के लिए बाध्य करते हैं । फलत: संस्कार तथा भावना में द्वन्द्व होता है, उनमें आत्मिक शक्ति का अभाव है । वे अपने संस्कारों को सहसा त्यागने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पाते । `अप्सरा` अपने समय के युवक वर्ग की मन:स्थिति का प्रतिबिम्ब है । राजकुमार का मानसिक द्वन्द्व बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है, बौद्धिक आग्रह रहने पर भी वह अपने मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने में पूर्णतया असमर्थ है । `अलका` उपन्यास में किसान - आन्दोलन, मजदूर-आन्दोलन आदि का चित्रण है । किसानों की दुर्दशा, जमींदारों द्वारा शोषण , अंग्रेजों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा उनकी धूर्तता आदि के द्वारा तद्युगीन परिस्थितियों की अवतारणा हो सकी है ।

४२. प्राकृतिक चित्रण द्वारा वातावरण का निर्माण सुन्दर बन पड़ा है । `प्रभावती` उपन्यास में स्थानीय प्राकृतिक चित्रण हुआ है, "लवणा एक छोटी बरसाती नदी है । उन्नाव के पास ऊसर से निकली ससुरगांव से कुछ दूर गंगा में मिली है । उपनिषदों की तरह सैकड़ों व्यक्त नाले इसमें आकर मिले हैं । बरसात में शोभा देखते ही बनती है । बस्ती और ऊसरों का तमाम पानी इसमें होकर गंगा में जाता है । पहले इसके तटों पर नमक बनता था । लवणा इसका शुद्ध नाम है, यों इसे लोना कहते हैं ... इस समय इस प्रान्त की आबादी बहुत बढ़ गई है फिर भी कहीं-कहीं लवणा के तट काफी भयावने, हिरन, भेड़िये और जंगली सुअर आदि के अड्डे हो रहे हैं । तब,जब कान्यकुब्ज का दोपहर का प्रताप सूर्य पूर्ण स्नेह की दृष्टि से अपनी पृथ्वी को देख रहा था,इसके तट ऊसर वृक्षों तथा झाड़ियों से पूर्ण, अंधकार से ढके रहते थे । स्थानीय राजकुमार तथा वीर क्षत्रियों का यह प्रिय मृगयास्थल था ।"[१] प्रथम महायुद्ध के पश्चात् की विभीषिका पर भी लेखक प्रकाश डालता है,"गंगा के दोनों ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं, उनमें एक-एक दिन में दो-दो हजार तक लाशें पहुंचती हैं । जलमय दोनों किनारे शवों से ठसे हुए , बीच में प्रवाह की बहुत ही क्षीण रेखा, घोर

१- प्रभावती : पृ० ५

घोर दुर्गन्ध, दोनों ओर एक-एक मील तक रहा नहीं जाता[1]।"

शैली

४३. 'निराला' के उपन्यासों में मुख्यत: ऐतिहासिक शैली का ही प्रयोग हुआ है। पर स्थान-स्थान पर विश्लेषणात्मक तथा नाटकीय शैली के भी दर्शन हो जाते हैं। कवि और वह भी छायावादी होने के कारण उनकी भाषा-शैली में अपूर्व कोमलता, मृदुलता, मधुरता एवं उन्मुक्तता का सम्मिश्रण मिलता है। वह अपनी भावना के प्रवाह में कभी-कभी इतने बह जाते हैं कि उनमें कविता जैसा रस आने लगता है। भाषा में ओज तथा सौष्ठव का भी अभाव नहीं है, पर सब प्रकार से सुन्दर तथा असाधारण होने पर भी उनकी भाषा औपन्यासिक भाषा की दृष्टि से असफल ही कही जायगी। यद्यपि भाषा पर लेखक का असाधारण अधिकार था। लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है, जिससे मनोरंजकता तथा सजीवता आ गई है। व्यंग्य कहीं-कहीं कटु भी हो गया है, 'अलका' से एक उदाहरण प्रस्तुत है, " स्थानीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्रिय और कायस्थों का दल था, जो गोल पेंदे वाले लोटे की तरह सब तरफ लुढ़कते हैं, ज़रा इशारा चाहिए, उनका भरा जल ढल जाता है, उसकी उन्हें परवा नहीं, वे खाली रहकर ज्यादा ठनकना चाहते हैं-- आवाज़-आवाज़ पर बोलना[2]" 'निराला' की भाषा-शैली न केवल व्यंजनात्मक, चित्रात्मक ही है, वरन् वह हास्य व्यंग्यपूर्ण भी है। आप यदा-कदा हास्य की फुलझड़ी भी छोड़ देते हैं, "सुना है गिरगिट दिन भर में बहुत रंग बदलता है, आप तो आदमी हैं, एक रोज़ कोट उतार कर कमीज़ पहने हुए खेल लीजिए, हम लोग खिजां के बदले बहार समझ लेंगी[3]।" अलका द्वारा तेजनारायण का जो कि अप्रत्यक्षरूप से अलका के प्रति आकर्षित है-- इस प्रकार उपहास करना हास्य उत्पन्न करता है।

१- अलका : पृ० ६

२- वही०, पृ० १२७

३- वही०, पृ० १५६

उद्देश्य

४४. लेखक का कोई भी उपन्यास निरुद्देश्य नहीं है । किसी-न-किसी समस्या को लेखक अवश्य प्रकाश में लाया है । यही कारण है कि रोमाण्टिक उपन्यासों में भी लेखक समस्याओं के प्रति उदासीन नहीं है । साहित्यकार सदैव ही समय से आगे होता है, वह न केवल द्रष्टा ही होता है, वरन् सृजनकर्ता भी होता है । अतएव 'निराला' जैसे प्रबुद्ध साहित्य-चेता से निरुद्देश्य सृजन की आशा करना भी हास्यास्पद है । 'निराला' जीवनपर्यन्त क्रान्तिकारी रहे, साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने क्रान्ति का उद्घोष किया । 'निराला' साहित्यकार के गुरुतर उत्तरदायित्व को समझते थे, यही कारण है कि उन्होंने व्यावसायिक दृष्टिकोण को सदैव ही उपेक्षा की दृष्टि से देखा है था । आर्थिक संकट तथा जन-रुचि का सम्मान करते हुए वह कथा-साहित्य की ओर उन्मुख अवश्य हुए थे पर उन्होंने अपने स्वर की अवहेलना नहीं की । सृजन उनके आदर्श का माध्यम रहा है ।

यथार्थवादी उपन्यास

४५. 'निराला' के यथार्थवादी उपन्यास अभिव्यक्ति तथा विषयवस्तु की दृष्टि से रोमाण्टिक उपन्यासों से भिन्न हैं । वस्तुत: इन उपन्यासों में लेखक का कलात्मक स्तर भी गिरा है । न तो विषयवस्तु में रोमांस का आग्रह रह गया है और न भाषा शैली में काव्यात्मक सौन्दर्य के स्फुरण की आवश्यकता । जैसे-जैसे विषयवस्तु में वस्तुन्मुखता का आधिक्य होता गया, प्रस्तुतीकरण का ढंग भी सरल और वस्तुन्मुखी हो गया । लेखक रोमाण्टिक कल्पना विलास से निकल कर यथार्थ के धरातल पर अवस्थित हो गया है -- उसका संवेदनशील मानव-हृदय समाज के पीड़ित मानव समुदायों को देखकर विह्वल हो उठा । फलत: 'निराला' ने अपने सृजन के माध्यम से तद्युगीन समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है, मुख्यत: ग्रामीण समाज की समस्याओं का उद्घाटन हुआ है । 'काले कारनामे' तथा 'चमेली' में ग्रामीण चित्रण की ही प्रधानता है । 'चोटी की पकड़' अवश्य बंगाल के स्वदेशी

आन्दोलन की भूमिका पर आधारित है । परन्तु इसमें भी तद्युगीन विकृतियां पर्याप्त उभारी गई हैं । `निराला` के यथार्थवादी उपन्यास उस विशिष्ट परिस्थिति में लिखे गए हैं, जब स्वयं लेखक मानसिक असन्तुलन से पीड़ित थे, ऐसी स्थिति में रचित उपन्यासों की कथावस्तु के शिल्प में बिखराव और उलझाव होना पूर्ण स्वाभाविक है । `निराला` के यथार्थवादी उपन्यास विभिन्न समस्याओं की अभिव्यक्ति के माध्यम बने हैं । अतएव उन समस्याओं पर विचार करते हुए उनके शिल्प पर विचार किया जायगा ।

जमींदार

४६. `काले कारनामे` तथा `चमेली` में मुख्यत: ग्रामीण समस्यायें उठाई गई हैं । ग्रामीण निर्धन जनता किस प्रकार जमींदार, पटवारी तथा पंडितों के शोषण का शिकार होती है । इस सत्य का उद्घाटन दोनों उपन्यासों में द्रष्टव्य है । `काले कारनामे` उपन्यास का तो सम्पूर्ण कथानक जमींदारों तथा पुलिस के कुचक्रों तथा षड्यन्त्रों से आतंकित है । वस्तुत: इसका शीर्षक भी जमींदारों के काले कारनामों का प्रतीक है । यह शोषक जमींदार वर्ग निरंकुश तानाशाह के समान ग्रामीण समाज पर शासन करता है, इसकी पुष्टि के लिए एक उद्धरण पर्याप्त होगा --`जमींदार राजा है । उसका हिसाब पहले । सरकार के यहां उसका कहना । वह नेकमाश को बदमाश करार दे सकता है । सरकार उसकी बात मानेगी । बदमाश की निगरानी वह अपने जिम्मे ले सकता है । सरकार को उस पर विश्वास है । सरकार से समझौता उसी का होता है ।`[१] इतना ही नहीं, इस मात्र धनी वर्ग की आय का साधन भी यह निर्धन ग्रामीण जनता ही है । इनकी गृद्ध दृष्टि सदैव इसकी खोज में रहती है, कि किस प्रकार दूसरों का रुपया हथियाया जाय,` धनी वर्ग की आमदनी का उपाय देहात में यही है । कौन परदेशी है, कितना कमा लाया, कौन किसान आलू या गन्ने की खेती से दो-चार सौ रुपये जोड़ चुका, कौन दुकानदार अपने व्यवसाय में फायदा उठा रहा है, ये लोग पूरी जानकारी रखते हैं ।

१- निराला : काले कारनामे, १९५०, प्रयाग, पृ० २०

उनके घरों के जवान बेटो-बेटों, पतोहू और दामादों को फंसा कर रिश्वत ले लिवा कर या मुकदमे लड़वा कर या गवाहियां दिलवा कर अपनी जेबें भरते हैं।[1] ग्रामीण समाज के लिए "जमींदार की जात ब्रह्म राक्षस से बढ़कर है जिससे पीछा कभी नहीं छूटता।"[2]

सामन्त

४७. जमींदार, राजा, जागीरदार इत्यादि की शोषक वृत्ति तथा पुलिस की अन्यायपूर्ण हरकतों का मार्मिक चित्रण 'चोटी की पकड़' में भी हुआ है, "राज्य की क्रिया का ढंग सब स्थानों में एक-सा रहता है। सब जगह एक ही प्रकार के नाटकीय नाटक, षड्यन्त्र, अत्याचार किये जाते हैं। सब जगह रैयत की नाक में दम रहता है। चोरी का प्रबन्ध ही सत्यानाश का कारण बनता है। अत्याचार से बचने की पुकार ही अत्याचार को न्यौता भेजती है। जमींदार हो, ताल्लुकेदार, राजा हो या महाराज, कृपा कभी अकारण नहीं करता। जिस कारण से करता है, वह उसको जड़ मजबूत करने के लिए, मुनाफे की निगाह से, दूने से बढ़ी हुई होनी चाहिए। उसका कोप भी साधारण उत्पात या प्रतिकार के जवाब में असाधारण परिणाम तक पहुंचता है। सारे राज्य में उसके खास आदमियों का जाल फैला रहता है। वह और उसके कर्मचारी प्रायः दुश्चरित्र होते हैं, लोभी, निकम्मे, दगाबाज। फैले हुए आदमी प्रजाजनों की सुन्दरी बहू-बेटियां, विरोधी कार्रवाइयां, संघटनों और पुलिस की मदद से जमींदार के आदमियों पर किए गए अत्याचारों की खबर देने वाले होते हैं। निर्दोष युवतियों की इज्जत जाती है, रिश्वत के रुपए लिए जाते हैं, काम में आराम चलता है, वचन देकर रैयत से पीठ फेर ली जाती है, बहाना बना किया जाता है। पुलिस भी साथ दी जाती है। कभी बढ़ा-उतरी की प्रगति में दोनों अपने-अपने हथियारों के प्रयोग करते

१- वही०, पृ० ३५

२- वही०, पृ० ७

रहते हैं।[1]" इसके अतिरिक्त वर्ण-वैषम्य की समस्या पर भी 'निराला' ने दृष्टिपात किया है। द्विजों की अहमन्यता पर प्रहार करते हुए शूद्रों की उन्नति के लिए सहानुभूति प्रकट की गई है,। वस्तुत: आज का ब्राह्मण वर्ग अपनी मर्यादा और ब्राह्मणत्व को त्याग कर निरन्तर शूद्रत्व की ओर अग्रसर हो रहा है। शूद्रों के सामाजिक क्रम की उच्चता के लिए संस्कृत का अध्ययन आवश्यक समाधान माना गया है।

४८. 'चोटी की पकड़' उपन्यास में स्वदेशी आन्दोलन के सूत्रों का संचयन किया गया है। पराधीन भारत में स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जो स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था, उसी का चित्रण इसमें किया गया है। स्वदेशी आन्दोलन का प्रसार-विस्तार किस सीमा तक हुआ, किस किस वर्ग ने उन्मुक्त रूप से इसमें सहयोग दिया, व्यक्तिगत स्वार्थों का किस वर्ग का आग्रह अधिक रहा इन समस्त सूक्ष्म बातों का भी विश्लेषण किया गया है। निस्सन्देह यह ऐतिहासिक सत्य है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के घोर संघर्ष काल में जब स्वाधीनता देवी के सक्रिय सेनानी सर्वस्व बलिदान के लिए अग्रसर हो रहे थे, तब भी यह तथाकथित मान्य धनिक वर्ग अपने स्वार्थ की चिन्तना में ही व्यस्त रहा था। इस वर्ग ने स्वाधीनता संग्राम में तभी सहयोग दिया था जब इनके स्वार्थों पर आघात हुआ था। इन जमींदारों के " अगर स्वार्थ को गहरा धक्का न लगा होता तो यह जमींदार स्वदेशी आन्दोलन में कदापि शरीक न हुए होते। इन्होंने साथ भी पीठ बचाकर दिया था।[2]" प्रस्तुत उपन्यास के जागीरदार राजेन्द्रप्रताप सिंह इस विशिष्ट वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। उनको भी जब इस बात का विश्वास हो जाता है कि उनको इस आन्दोलन में सहयोग देने से किसी प्रकार का खतरा नहीं है तथा पुलिस को इसकी किसी प्रकार सूचना नहीं मिल सकती तभी वह प्रभाकर को गुप्तरूप से अपने यहां रह कर कार्य करने की अनुमति देते हैं। देश के

१- निराला : 'चोटी की पकड़', १९५८, इलाहाबाद, पृ० ५१

२- वही०, पृ० १६।

स्वाधीनता सम्बन्धी पुण्य कार्य में भी यह वर्ग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों पर ही केन्द्रित रहा । सामन्त वर्गीय समाज की भोग-विलास की प्रवृत्ति का भी चित्रण हुआ है । धनी-मानी जमींदार वर्ग में व्याप्त ऐयाशी, विलास, अकर्मण्यता अन्याय आदि विषयों को भी पाठकों के सम्मुख रखा गया है । असंख्य रुपया मदिरा वेश्या तथा खान पान पर व्यय किया जाता है । वस्तुत: धनी और निर्धन वर्ग की विषमता को प्रदर्शित करना ही `निराला` का लक्ष्य था ।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

४६. तत्कालीन समय में उभरती हुई हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है । मुस्लिम व्यक्तियों के हृदयगत भावों को बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है । ऐसे पात्रों के अन्तर्गत मुख्य नामोल्लेख यूसुफ दरोगा तथा अली का किया जा सकता है । `यूसुफ` के कतिपय वाक्यों से मुस्लिम जनता के हृदयगत भावों की कल्पना सहज ही की जा सकती है," सरकार ने बंगाल के दो हिस्से उस उसूल से किये हैं कि मुसलमान रैयत को तकलीफ है, मौरूसी बन्दोबस्त वाली ६६ हर सदी जमीनों पर हिन्दुओं का दखल है, यह आगे चलकर न रहेगा । इससे मुसलमानों की रोटियों का सवाल हल होता है ।"[१]

वैवाहिक सम्बन्ध : स्तर भेद

५०. भिन्न स्तरीय वैवाहिक सम्बन्ध की समस्या को भी उठाया गया है ।`चोटी की पकड़` में बुआ से सम्बन्धित प्रसंग इसी ओर संकेत करता है । उच्च स्तर में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने पर निम्न स्तरीय सम्बन्धियों को कितनी उपेक्षा का सामना करना पड़ता है, इसका जीवन्त उदाहरण इस उपन्यास की बुआ है । धनीवर्ग की झूठी अहम्न्यता, घमण्ड तथा अभिमान ही इस वैषम्यपूर्ण स्थिति का एकमात्र कारण है । वस्तुत: `निराला` की मानववादी प्रवृत्ति तो

१- वही०, पृ० ३३ ।

मानवमात्र में भेद नहीं स्वीकार करती । वर पक्ष का होने का जो एक अभिमान होता है, उस पर भी कुठाराघात किया गया है । भारतीय परम्परा के अनुसार वर पक्ष के लोगों को अधिक मान्यता दी जाती है, जिसका वह लोग अनुचित लाभ उठाने का प्रयास भी करते हैं । बुआ के मन में स्वाभाविक संस्कार गत यह मनोभाव दृढ़ था कि "उनका भतीजा ब्याहा हुआ है, जिसके उन्होंने पैर पुजे हैं । ये उससे और उसकी मां से बराबरी का दावा नहीं कर सकते, बुआ तो उनके इष्ट देवता से भी बढ़कर हैं ।[1]" क्योंकि वह मान्य की मान्य जो हैं । वर पक्ष के होने का जो एकस्वाभाविक अभिमान लोगों में व्याप्त है, उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है । इस समस्या को उठाने का 'निराला' का एकमात्र लक्ष्य परस्पर वैषम्यपूर्ण स्थिति का प्रतिकार ही था । समाज में ~~मनुष्य~~ मनुष्य के वैषम्य का निराकरण होना ही चाहिए तभी स्वस्थ, उन्मुक्त और निर्द्वन्द्व वातावरण का विकास सम्भव होगा ।

कथावस्तु

५१. कथात्मक दृष्टि से इन उपन्यासों में कोई नवीनता और आकर्षण नहीं है । रोमाण्टिक उपन्यासों की तरह इनमें नाटकीय संयोगों को अवतारणा नहीं हुई । 'काले कारनामे' की अपेक्षाकृत 'चोटी की पकड़' का कथावस्तु कुछ आकर्षक है । 'काले कारनामे' उपन्यास में कथात्मक तत्व अल्पमात्रा में है । जो थोड़ा -बहुत कथा का अंश है , वह भी अस्पष्ट और धुंधला है । जमींदारों के षड्यन्त्रों, चालों तथा कुचक्रों से इसकी कथावस्तु का विकास होता है । निर्दोष रामसिंह जमींदार का शिकार बनता है, उसका एकमात्र अपराध यही था कि वह जमींदार रामरतन के सम्बन्धी मनोहर को, बिना उनसे परामर्श और आज्ञा लिए अखाड़े में ज़ोर कराता था । इससे एक ज़मींदार का राज़ दूसरे ज़मींदार के पास जाता है । ज़मींदारों को अपना कर गुज़रने के लिए इतना संकेत पर्याप्त था । रामसिंह पर चोरी का झूठा आरोप लगा कर रुपया ऐंठने का षड्यन्त्र किया गया । इस षड्यन्त्र में पुलिस भी सहायक थी क्योंकि इसमें उसका भी हिस्सा रहता था । यही कारण है कि ज़मींदार सब प्रकार के जघन्य कर्मों को निःसंकोच

१- वही०, पृ० १०

रूप से करते थे । वह पहले स्वयं झूठे अपराध का जाल फैलाते थे, फिर स्वयं उसके समर्थक बनकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे । `निराला` ने इसकी पुष्टि दो वाक्यों में कर दी है --" जिस तरह चोरी का न होना एक सरकार का धर्म है, उसी तरह चोरी का होना भी उसका धर्म कहा जा सकता है ।[1]" निर्दोष मनोहर को भी इन षड्यन्त्रों के कारण बाध्य होकर प्रवासी होना पड़ता है । वह वाराणसी में जाकर निम्नवर्ग के उत्थान का सक्रिय कार्यकर्ता बन जाता है । शूद्रों की स्थिति सुधारने के लिए वह विशेष रूप से प्रयत्नशील था ।

५२. `चोटी की पकड़` में स्वदेशी आन्दोलन को कथावस्तु का मुख्य विषय मानते हुए भी `निराला` मात्र विषय पर अधिक ध्यान केन्द्रित न कर सामंत वर्गीय समस्याओं के उद्घाटन में अधिक व्यस्त हो जाते हैं । जागीरदार राजेन्द्रप्रताप सिंह अपनी लड़की का विवाह एक निर्धन लड़के से जिसको उन्होंने सामंतीयरीति-नीति से दीक्षित किया था, करते हैं । उपन्यास का बुआ तथाकथित राजा साहब के दामाद को बुआ है । राजा राजेन्द्र प्रताप सिंह का अधिकांश समय कलकत्ते में ऐशोराम में व्यतीत होता था । उन्होंने दो हजार मासिक वेतन पर प्रसिद्ध वेश्या एजाज को रखा हुआ था । रानी साहिबा की अपेक्षा एजाज के साथ ही उनका समय व्यतीत होता था । इन्हीं राजा साहब के यहां गुप्त रूप से रहकर स्वदेशी का सक्रिय कार्यकर्ता प्रभाकर स्वदेशी का कार्य करता है । राजा साहब स्वयं भी स्वदेशी के छिपे तौर पर समर्थक थे । प्रासंगिक कथा में मुन्ना बांदी के कुकृत्यों का वर्णन है, यह रानी की चहेती दासी है । इसी के माध्यम से रानी साहिबा बुआ को झुकती है । वह जमादार सिपाहियों सभी पर अपना रौब गांठे रहती है । मुन्ना अपने षड्यन्त्रों में इसलिए सफल होती है, क्योंकि वह राजा को रानी साहिबा के पक्ष में ला देने की ओट लेती है । रानी साहिबा ने केवल मुन्ना को बुआ से अपने अपमान का बदला लेने का कार्य सौंपा था,लेकिन वह आगे बढ़कर खजाने का धन निकालने का षड्यन्त्र भी करती है तथा धन निकालने में सफल भी हो जाती है ।

१- निराला : काले कारनामे, पृ० ६८

५३. 'निराला' के इन दोनों उपन्यासों की कथावस्तु में कलात्मकता का एकांत अभाव है। 'काले कारनामे' उपन्यास को तो निम्न कोटि की रचना कहा जा सकता है। 'चोटी की पकड़' में आधिकारिक कथावस्तु के साथ-साथ प्रासंगिक कथावस्तु की भी अवतारणा हुई है। प्रासंगिक कथावस्तु, आधिकारिक कथा के समानान्तर चलती है। तथा पर्याप्त विस्तार पा गई है। स्वदेशी आन्दोलन से सम्बन्धित कथावस्तु प्रधान है तथा मुन्ना बांदी से सम्बन्धित प्रासंगिक। साधारणतया प्रासंगिक कथा मुख्य कथा के विकास में या तो अवरोधक बनती है या सहायक। लेकिन इसमें प्रासंगिक कथा न तो अवरोधक ही है और न सहायक ही। इस प्रासंगिक कथा का मुख्य कथा से कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं यदि इस प्रासंगिक कथा की संयोजना नहीं भी की जाती तो मुख्य कथावस्तु के विकास में कोई अन्तर नहीं पड़ता। सामंती ऐश्वर्य तथा कुचक्रों का अवश्य इसमें जीवन्त प्रमाण मिलता है। हां इतना संकेत अवश्य लेखक दे देता है कि रानी साहिबा तथा मुन्ना की सहानुभूति स्वदेशी के प्रति अंकुरित हो गई है। 'चमेली' उपन्यास अपूर्ण है, अतएव उसके शिल्प के सम्बन्ध में कुछ निश्चित स्थापना कर सकना सम्भव नहीं, पर जितना अंश उपलब्ध है, वह सुंदर है। मुख्य बात जो ध्यान आकर्षित करती है, वह है -- दो विरोधी प्रवृत्तियों की अवतारणा। जवाहर और चमेली विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं, वह शोषण का विरोध और प्रतिकार करते हैं। चमेली का पिता दुखिया परम्परा से शोषण को सहन करता आया है, वह अधिकारी वर्ग के षड्यन्त्रों को समझते हुए भी संस्कारवश अधिकारी वर्ग को हां में हां मिलाता है। वह जमींदारों के शोषण के प्रतिकार का साहस नहीं रखता। इसके विपरीत चमेली में शोषण के विरुद्ध प्रतिकार की भावना है। चमेली अत्यन्त साहसी और निडर है। वस्तुस्थिति समझते हुए भी दुखिया जमींदार के चरणों में टोपी रख अभयदान पाने का आकांक्षी है, 'मालिक मेरा कोई कसूर नहीं, दुखी रिआया हूं, किसी तरह जीता हूं। तुम्हारी झूठी रोटी तोड़ कर, मुझ पर नेक निगाह रखो मर जाऊंगा नहीं तो कहीं का नहीं रहूंगा।'[1] जवाहर चमेली के विद्रोही भावों से उभरती हुई नव-चेतना का संकेत मिलता है।

१- नया साहित्य : चमेली, भाग १, निराला अंक, पृ० ४८।

प्राचीन मान्यतायें अब टूट रही हैं उसके विपरीत नवीन स्वस्थ, उन्मुक्त वातावरण के सृजन की ओर संकेत किया गया है, जिसका प्रतिनिधित्व जवाहर और कैली करते हैं ।

चरित्र-चित्रण

५४. चरित्र-चित्रण का कथा संगठन में महत्वपूर्ण सहयोग रहता है । उपन्यास के पात्रों के क्रिया-कलाप से ही कथावस्तु का निर्माण होता है । अतएव पात्र जितने ही अधिक सजीव और यथार्थ होंगे, कथानक में उतना ही आकर्षण लाया जा सकेगा । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी 'निराला' इन उपन्यासों में अधिक सफल नहीं रहे । 'काले कारनामे' उपन्यास तो इस दृष्टि से पूर्णतया असफल है, चरित्र-चित्रण नाममात्र को भी नहीं हुआ यदि ऐसा कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी । 'कैली' तथा 'चोटी की पकड़' में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'निराला' को किंचित सफलता मिली है । पात्रों का जमघट नहीं है । प्रधानता चार-पांच पात्रों की है । चरित्र-चित्रण का जो मुख्य आकर्षण है, वह यह कि पात्र विशिष्टतर क- स्तर के अनुसार ही कार्य करते हैं , ऐसा नहीं कि पात्र अनपढ़ और निम्नवर्ग का है तथा उसका व्यवहार सुसंस्कृत वर्ग के सदृश्य हो । 'निराला' के उपन्यासों में कोई-न-कोई पात्र ऐसा अवश्य रहता है, जो लेखक की मानवतावादी विचार धारा का प्रतिनिधित्व करता है --'चोटी की पकड़' में प्रभाकर तथा 'काले कारनामे' में मनोहर उल्लेखनीय हैं । वस्तुत: यह देश के सुधार के पोषक हैं । प्रभाकर राष्ट्र के स्वाधीनता आन्दोलन में सर्वस्व अर्पण करने को प्रस्तुत हैं । मनोहर भी सामाजिक व्यवस्था के उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहता है । प्रभाकर का व्यक्तित्व, साहसी, निष्ठावान देशभक्त का चरित्र है । उसके व्यक्तित्व से सभी प्रभावित हैं । 'एजाज', 'मुन्ना' और रानी साहिबा अन्ततोगत्वा उसको सहयोग देने के लिए प्रस्तुत होती हैं । प्रभाकर का एकमात्र लक्ष्य जाति की भावनाओं में राजनीतिक रक्त प्रवाहित कर एक राजनीतिक जातीयता लाने का था । वह घर घर स्वदेशी वाला भाव प्रसारित कर देना चाहता था ।

५५. मुन्ना का चरित्रोद्घाटन उसके व्यक्तित्व के अनुकूल ही हुआ है । वह कूटनीतिज्ञ, अवसरवादी, वाचाल तथा दुस्साहसी प्रकृति की चित्रित की गई है । यहां तक कि वह राजा तक को अपशब्द कहने से नहीं चूकती --' जो रानी का सम्मान

रंडी को ~~मिलकर-के~~ पिलाता है, वह राजा नहीं भड़वा है ।.... तुम इस राजा के बच्चे से पूछ सकते हो कि रानी की सलामी उसको क्यों दी जाती है[1] ।" इस तरह का आक्षेप एक साधारण बन्दी का राजा के प्रति करना बहुत ही अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है । राजा राजेन्द्रप्रताप सिंह का व्यक्तित्व टाइप व्यक्तित्व है । उनका व्यक्तित्व अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है , इनमें वह समस्त गुण विद्यमान हैं, जो इस वर्ग में मिलते हैं । `एजाज` का व्यक्तित्व भी उसके पेशे के अनुकूल ही है ।

५६. चरित्र-चित्रण में मुख्यत: विश्लेषणात्मक, आत्मविश्लेषणात्मक तथा अभिनयात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है । या तो चरित्र स्वयं के क्रिया-कलापों द्वारा अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करते हैं अथवा स्वयं लेखक उनके हृदयस्थ भावों का उद्घाटन करता चलता है । मुन्ना के व्यक्तित्व की रेखाएं खींचने के लिए लेखक विश्लेषणात्मक शैली का आश्रय लेता है," मुन्ना की उतनी ही उम्र है जितनी बुआ की । उतनी ऊंची नहीं, पर नाटी भी नहीं । चालाकी की पुतली । चपल शोख । श्याम रंग । बड़ी-बड़ी आंखें । कपाल के लम्बे-लम्बे बाल । विधवा, बदचलन, सहृदय । प्राय: हर प्रधान सिपाही की प्रेमिका । भेद लेने में लासानी । कितने ही रहस्यों की जानकार । प्रधान-अप्रधान नायिका, दूती, सखी । रानी साहबा ने ब जब-जब रंडी रखने के जवाब में पति को प्रेमी चुनकर फुकाया, तब तब मुन्ना ने प्रधान दूती का पाठ अदा किया[2] ।" एजाज का प्रभाकर से प्रथम साक्षात्कार उसके हृदय में अपूर्व संघर्ष और द्वन्द्व का सूत्रपात करता है, वह अपने भूत और भविष्य के सम्बन्ध में विश्लेषण करती है" आजकल जैसे उस छुटपन वाले बड़प्पन से उसका छुटकारा न था । आज के परिवर्तन के साथ प्रभाकर का प्रकाश उसके दिल में घर करता गया । खेल और मज़ाक दिल नहीं सौदा है जो कुछ भी अब तक उसने किया वह एक बजत थी । असलियत क्या थी, कहां थी, वह नहीं समझ पाई । आज भी नहीं समझी । सिर्फ उसे दिल नहीं माना । टूटी जा रही थी । असलियत असलियत से मिल गई । प्रभाकर की जैसी शालीनता उसने किसी में नहीं देखी[3] ।"

१- चोटी की पकड़, पृ० ६८, ७० ।
२- वही०, पृ० ८
३- वही०, पृ० ६६ ।

'निराला' के चरित्र-चित्रण में एक प्रधान दोष यह है कि उन्होंने गतिशील चरित्रों की अवतारणा नहीं की । मुन्ना के चरित्र में किंचित् गतिशीलता का संकेत मिलता है । चरित्र परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में पड़कर अपनी नवीन दिशा का निर्माण नहीं करते । आरम्भ से अन्त तक वह एक विशिष्ट ढंग से ही व्यवहार करते हैं । वस्तुत: प्रारम्भ से ही उनके चरित्रों की एक निश्चित धारणा बनाई जा सकती है ।

कथोपकथन

५७. कथावस्तु के विकास में कथोपकथनों का भी असाधारण सहयोग रहता है । इसके माध्यम से चरित्र-चित्रण को ही परिपूर्णता नहीं मिलती वरन् कार्य-व्यापार को भी गति मिलती है । संवादों की संयोजना में 'निराला' को पर्याप्त सफलता मिली है । संवादपात्रानुकूल ही हैं । मुस्लिम पात्रों के वार्तालाप में उर्दू-फारसी के शब्दों का आग्रह है, संवादों के माध्यम से उस विशिष्ट चरित्र का भी संकेत मिल जाता है । उदाहरण के लिए मुस्लिम कोचमैन अली के संवाद को ले सकते हैं, " अबे उल्लू के पट्ठे, वहीं ढेर हुआ जहां दुश्मन । ये बक्काल बात पर आसे । ये बड़े आदमी हैं । इनका राज बड़ों में रहता है । यों पर बंध जाते हैं । भेद खुल जाएगा । बात मान, महुआ बाजार के गुण्डों से काम ले शिकायत लिखवा , देख, कैसी खबर की उड़ाते हैं । उनका भी कुछ राज लिया या सातुन समझ बैठा ?[1]" 'काले कारनामे' तथा 'चमेली' की कथावस्तु ग्रामीण है, अतएव ग्रामीण पात्रों के कथोपकथनों में ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग है । कथोपकथनों में सहजता और स्वाभाविकता है, उदाहरण के लिए दो मुस्लिम पात्रों --यूसुफ और नजीर के संवादों को यहां प्रस्तुत किया जा सकता है --

> "मेरे तो मामू ही नहीं । खुदा के फ़ज़ल से अब्बा जान के सालियां चार थीं, साला एक भी नहीं ।"
>
> "आपको हम बनाये हुए हैं, यह आप समझे या नहीं ?"
>
> "हां यह तो है ।"

१- चोटी की पकड़ , पृ० २३

"और आप नहीं गए, यह भी साबित है ।"

"हां, यह भी ।"

"आपको ज़िल्लत गवारा करनी पड़ी, इसका हमको अफसोस है[1] ।"

५८. कथोपकथन संक्षिप्त और दीर्घ दोनों ही प्रकार की संयोजना की गई है । नाटकीय संवादों की भी अवतारणा हुई है - उदाहरण के लिए 'चमेली' का कुछ अंश दिया जा सकता है - चमेली तथा उसके पिता का परस्पर वार्तालाप है-- चमेली को देखते ही दु:खी ने कहा -- 'क्यों री नाक काट ली न तूने ?' 'अंधेरे में तुम्हें अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है ?' चमेली ने बाप को जवाब दिया । दु:खी हैरान हो गया । कहा --'अरी, ज़मीन पर पैर रख कर चल ।' 'तो तू क्या देखता है, किसी के सर पर पैर रखकर चलती हूं ज़मींदार के सिपाही की तरह ?' दुखी डरा फिर ज़मींदार के प्रताप का सहारा लेकर बोला --' अरी आंख में माड़ा न आए-- कुछ देख ।'' मैं खूब देखती हूं । माड़ा छाया है लोगों की आंखों में और तेरी भी ।' चमेली बदल कर खड़ी हुई, दूसरी तरफ मुंह करके ।[2] प्रस्तुत कथोपकथनों में ग्रामीण शब्दों का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ है । साथ ही यह पात्रगत मनोभावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल है ।

परिस्थिति और वातावरण

५९. देश-काल परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही कथावस्तु और पात्रों की सत्यता का आभास मिलता है । वस्तुत: कथानक की घटनाओं के घटित होने की सम्पूर्ण परिस्थिति, उनका स्थान और समय इस प्रकार मूर्त किया जाना चाहिए जिससे कथावस्तु और पात्रों की सजीवता पर विश्वास सम्भव हो । देश-काल चित्रण का तात्पर्य यह है कि उपन्यास की घटनायें जिस स्थान और समय की हों उसका ज्यों-का-त्यों चित्र उपस्थित कर दिया जाय । 'काले कारनामे' उपन्यास में स्थानीय रंग ही उभरे हैं । विशिष्ट ग्राम-विशेष का चित्रण ही उसके वातावरण को मूर्त करता है । उपन्यास का आरम्भ ग्रामीण प्रकृति-चित्रण से होता है । 'सावन का महीना आंख पर तरी बरसा रहा है । खेत लहालोट हैं,

---

१- वही०, पृ० ११८

२- निराला : चमेली, नया साहित्य(पत्रिका)भाग६,(निराला अंक),पृ०४६ ।

हरे-भरे,ज्वार,अरहर,उड़द,सन,मक्का और धान लहरा रहे हैं । आम , जामुन के दूर तक फैले हुए बगीचे फल दे चुके हैं, उस समय विश्राम की सांस ले रहे हैं । चिड़ियां के पर भीगे हुए हैं । फड़काकर पानी भाड़ लेती हैं और मधुर-मधुर चहकती हुईं, उस पेड़ से उस पेड़ पर उड़ जाती हैं, नीचे डिहडे जैसे कीड़ों पर नज़र रखती हुईं , बुल बुल ,गलार, पिद्की, रुकमिन, सतभैये, कोयल, पपीहा, ~~बक~~ कबूतर और बरसात की काले की जात वाली अनेक प्रकार की चिड़ियां, तालाब के किनारे के ऊंचे पीपल और इमली के पेड़ पर बसेरा लिए हुए । ताल पर सिंघाड़े की बेल फैलती हुईं । लड़के अखाड़े कूदते हुए औरतें काम-काज से घर और बाहर आती जाती हुईं । गांव में चहल-पहल ।"[1] यही नहीं, तत्कालीन जमींदारों के षड्यन्त्र और मनोवृत्ति भी खूब उभर कर आई है । जिससे तत्कालीन परिस्थितियों की पुष्टि होती है । ग्राम्य वातावरण के चित्रण में तत्कालीन ग्रामीण जीवन और परिस्थितियां खूब उभर कर आयी हैं ।

६०. परिस्थिति और वातावरण `चोटी की पकड़' में अधिक उभर कर आया है । बंग -विभाजन के समय की परिस्थिति का चित्रण किया गया है," यह बीसवीं सदी का प्रारम्भ ही था । लार्ड कर्जन भारत के बड़े लाट थे कलकत्ता राजधानी थी । सारे भारत पर बंगालियों की अंग्रेजी का प्रभाव था ।.... इसी समय लार्ड कर्जन ने बंग भंग किया ।.... विभाजन की आग छोटे-बड़े सभी के दिलों में एक साथ जल उठी । कवियों ने सहयोगपूर्वक देश-प्रेम के गीत रचने शुरू किये । सम्वाद-पत्र प्रकाश्य गुप्त रूप से उत्तेजना फैलाने लगे । जगह-जगह गुप्त बैठकें होने लगीं । कामयाबी के लिए विधेय-अविधेय तरीके अख्तियार किये जाने लगे । संघबद्ध होकर विद्यार्थी गीत गाते हुए लोगों को उत्साहित करने लगे । अंग्रेजों के किए अपमान के जवाब में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञायें हुईं ,लोगों ने खरीदना छोड़ा । साथ ही विदेशी के प्रचार के कार्य भी परिणत किए जाने लगे ।"[2] उपर्युक्त उद्धरण से तत्कालीन परिस्थिति का चित्र साकार हो उठता है ।

१- काले कारनामे, पृ० १

२- चोटी की पकड़, पृ० १४-१५ ।

मुस्लिम और हिन्दुओं की परस्पर तनावपूर्ण स्थिति का भी संकेत दिया गया है। वस्तुत: इस प्रकार की मनोवृत्ति का सूत्रपात भी आंग्ल सरकार द्वारा ही हुआ था। मुस्लिम जनता में सरकार द्वारा यह धारणा बनायी जा रही थी कि बंग-भंग मुस्लिम जनता के हितों की सुरक्षा को लक्ष्य में रखकर ही किया जा रहा है। आंग्ल सरकार कूटनीति का आश्रय लेकर अपने स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न थी। मुस्लिम जनता में व्याप्त मनोभाव की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों से हो जाती है -- 'अली की आंख खुल गई। यह मिलने का नतीजा है कि चारों तरफ हिन्दू मंडला रहे हैं। सरकार हर एक की है। मुल्लों मरने वाले मुल्लों न मरेंगे अगर सरकार को साथ दिया। सरकार ने बंगाल के दो हिस्से किए हैं, यह मुसलमानों के फायदे के लिए आये दिन ये जमीनें मुसलमानों की। जमींदारी का यह कानून न रहेगा। नवाबों से सारी मुसलमान रैयत को फायदा नहीं पहुंचा।'[1] परिस्थिति और वातावरण के सजीवांकन में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

६१. प्रत्येक लेखक की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है, लेकिन उस वैविध्य को दृष्टि में रखकर किसी कृति की निश्चित शैली की स्थापना कर सकना सम्भव नहीं। लेखक ने यथार्थवादी उपन्यासों में मुख्यत: ऐतिहासिक, वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। रोमाण्टिक उपन्यासों के समान यथार्थवादी उपन्यासों के प्रस्तुतीकरण में काव्यात्मकता और अलंकृति का एकांत अभाव है। वस्तुत: 'निराला' के यह यथार्थवादी उपन्यास एकमात्र तथाकथित सामाजिक विषमताओं और विकृतियों के उद्घाटन के माध्यम की हैं। इन उपन्यासों में लेखक ने नग्न यथार्थवाद का आश्रय लिया है। रोमाण्टिक उपन्यासों की अपेक्षाकृत यथार्थवादी उपन्यासों के पात्र कठोर धरातल पर विचरण करते हैं। वस्तुत: यथार्थवादी तथा रोमाण्टिक उपन्यास दो एकान्त विरोधी भाव-भूमियों पर निर्मित हैं। रोमांटिक तथा यथार्थवादी उपन्यासों की विषयवस्तु अधिक स्पष्ट हो सके, इस दृष्टि से दोनों पर पृथक-पृथक विचार किया गया है। रोमाण्टिक उपन्यासों के समानान्तर यदि यथार्थवादी उपन्यासों के शिल्पगत वैशिष्ट्य का विश्लेषण किया जाता तो दोनों के परस्पर विषय और शिल्प के महान अन्तर को अधिक स्पष्ट नहीं किया जा

१- चोटी की पकड़, पृ० २१।

सकता था । यद्यपि पृथक-पृथक विवेचन में कतिपय शीर्षकों की पुनरावृत्ति तो अवश्य हुई है, परन्तु विवेचन की दृष्टि से यह पृथक्करण अधिक उपयोगी और अधिक सुविधाजनक रहा है ।

अध्याय -- ६

`निराला` का कथा-साहित्य

(२) कहानी

१. उपन्यास-साहित्य की भाँति `निराला` की आख्यायिकायें भी समृद्ध, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक चिन्तन से परिपुष्ट हैं । मौलिकता ही उनकी कहानियों का उल्लेखनीय विषय है । संख्या की दृष्टि से `निराला` की बाइस कहानियां हैं, जो उलट-फेर कर विभिन्न संग्रहों में प्रकाशित होती रही हैं । परन्तु मुख्यत: उनके तीन कहानी-संग्रह हैं :-

(१) `लिली` (१९३३ ई०) -- इस संग्रह के अन्तर्गत आठ कहानियां हैं `पद्मा और लिली`, `ज्योतिर्मयी`, `कमला`, `श्यामा`, `अर्थ`, `प्रेमिका-परिचय`, `परिवर्तन` तथा `हिरनी` ।

(२) `चतुरी चमार` (१९३४ ई०)-- इसमें भी आठ कहानियां संकलित हैं -- `चतुरी चमार`, `सखी`, `न्याय`, `राजा साहब को ठेंगा दिखाया`, `देवी`, `स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं`, `सफलता` तथा `भक्त और भगवान`

(३) `सुकुल की बीवी` (१९४१ ई०) -- इसमें चार कहानियां हैं -- `सुकुल की बीवी`, `गजानन्द शास्त्रिणी`, `कला की रूप रेखा` तथा `क्या देखा` । `क्या देखा` `निराला` की सर्वप्रथम कहानी है । यह १९२३ ई० में `मतवाला` में प्रकाशित हुई थी ।

उपर्युक्त संग्रहों के अतिरिक्त दो कहानियां और उपलब्ध होती हैं --
(१) `चिया` (सितम्बर १९५८ की `सरस्वती` में प्रकाशित)
तथा
(२) `दो दाने` (`नई कहानियां` के १९६१ के दीपावली विशेषांक में प्रकाशित ।
अभीतक यह दोनों कहानियां किसी भी संग्रह के अन्तर्गत स्थान नहीं पा सकी हैं ।
एक कहानी `आवारा` शीर्षक से `सुधा` (अगस्त १९३२) में देखने को मिलती है
परन्तु वह `लिली` कहानी संग्रह की `श्यामा` कहानी को ही भिन्न नाम से
प्रकाशित किया गया है । अतएव `निराला` के तीन कहानी-संग्रह हैं तथा गणना
में बाईस कहानियां ।

२. `निराला` की कहानियों की मुख्यत: दो कोटियां की जा सकती हैं --
(१) उन्मुक्त प्रेम सम्बन्धी -- (रोमाण्टिक विषय-वस्तु के साथ आलंकारिक चित्रण और कल्पना का उन्मुक्त विलास ।)
(२) यथार्थवादी -- (यथार्थ पर आधारित विषय-वस्तु, चित्रण की सरलता, सुबोधता और सहजता ।)

उन्मुक्त प्रेम सम्बन्धी कहानियों के अन्तर्गत -- `पद्मा और लिली`, `ज्योतिर्मयी`,
`श्यामा`, `प्रेमिका-परिचय`, `गजानन्द शास्त्रिणी` तथा `सुकुल की बीवी`
प्रभृति कहानियां आती हैं । ।
यथार्थवादी कहानियों के अन्तर्गत -- `चतुरी चमार`, `देवी`, `राजा साहब को
ठेंगा दिखाया` एवं `दो दाने` आदि कहानियां ली जा सकती हैं ।

३. कहानी-कला के विभिन्न तत्वों के आधार पर `निराला` की
कहानियां मुख्यत: चरित्र-प्रधान हैं । `निराला` की अधिकांश कहानियां संयोगों
और घटनाओं से युक्त हैं । `प्रेमिका-परिचय`, `क्या देखा`, `परिवर्तन`, `हिरनी`
`कला की रूप रेखा`, `सुकुल की बीवी` और `ज्योतिर्मयी` आदि कहानियों में
घटनाओं और संयोगों का आश्रय लिया गया है । `हिरनी` कहानी में तो दैवीय
घटना का तक का समावेश कर दिया गया है, इस आधार पर इनको घटना-प्रधान
भी कहा जा सकता है, लेकिन लेखक का एकमात्र उद्देश्य चरित्रांकन करना ही था ।
निस्सन्देह `निराला` की रोमाण्टिक कहानियों में संयोगों और घटनाओं को

अवतारणा हुई है, परन्तु यह संयोग और घटनाएँ मूलत: चरित्रोद्घाटन के माध्यम ही बने हैं। केवल चमत्कार की सृष्टि के लिए ही उनका समावेश किया गया हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्थूल रूप से बहिरंग आधार पर अवश्य उन्हें घटना-प्रधान की संज्ञा दी जा सकती है। परन्तु अन्तरंग दृष्टि से उनकी कहानियाँ प्रधानत: चरित्र प्रधान ही हैं। चरित्र प्रधान कहानियों में चरित्र-चित्रण और चरित्र-विश्लेषण होता है, इस दृष्टि से यह पूर्ण सार्थक हैं।

४. विषय की दृष्टि से विवेचन करने पर "निराला" की कहानियों को सामाजिक कहानियों की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। कहानियों में अन्तर्निहित विचारधारा सामाजिक है। लगभग समस्त कहानियाँ तत्कालीन समाज की विकृत स्थितियों तथा समस्याओं पर प्रकाश डालती हैं। मूलत: सामाजिक होते हुए भी "निराला" ने धर्म, राजनीति, कला, आदि अन्य विषयों को भी स्पर्श किया है। विधवा विवाह, विजातीय विवाह, अनमेल विवाह, समाज की अंध रूढ़ियाँ, दहेज प्रथा, अछूतोद्धार, जमींदारों की शोषण वृत्ति, अनियन्त्रित प्रेम, वेश्या-समस्या, न्याय का दुरुपयोग, तथा पुलिस वालों की धांधली, साहित्यकार एवं प्रकाशकों के तनाव आदि समस्याओं को बहुत ही सुलभे ढंग से उठाया गया है। लेखक की सहानुभूति सदैव ही शोषित तथा दलित वर्ग की ओर रही। वह स्वयं भी शोषित तथा प्रताड़ित रहे हैं, अत: अनुभूति की तीव्रता का होना स्वाभाविक ही था, परन्तु उनमें विद्रोह तथा क्रान्ति की भावना का अभाव नहीं था। उनके दलित वर्ग के पात्र उनकी ही विद्रोह-भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। लेखक की कहानियाँ समाज के सभी स्तरों को छूती हैं। "निराला" ने जीवन को परम स्वस्थ, व्यापक, प्रगतिशील और यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ अंकित किया है। उनकी कहानियों का मनन करने पर ऐसा भान होता है, मानों वे इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि अब पुरानी रूढ़ियाँ तथा मान्यताओं का विघटन होना तथा नवपरिष्कृत, नवजागृत, स्वस्थ जीवन का सृजन होना अत्यधिक आवश्यक है। कथा-संगठन पर विचार करने से पूर्व उनकी कहानियों में उठाई समस्याओं पर दृष्टिपात कर लेना अधिक संगत होगा। लेखक ने समस्याओं को उठाने तथा उनका समाधान करते समय व्यंग्य और विद्रूप का सहारा लिया है। लेकिन उनके व्यंग्य व्यक्ति-विशेष पर न होकर सामाजिक व्यवस्थाओं पर है। यह तो निर्विवाद रूप

से कहा जा सकता है कि जितनी भी सामाजिक रूढ़ियाँ हैं, उनका निर्माण व्यक्ति ही करता है , वस्तु व्यक्ति भी अछूता नहीं रह सकता, फिर भी लेखक बड़ी ही तटस्थ भाव से व्यंग्यों का प्रयोग करता है ।

अन्तर्जातीय विवाह

५. 'पद्मा और लिली' एवं 'कुकुल की बीवी' में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या पर लेखक ने प्रकाश डाला है । ब्राह्मण कन्या 'पद्मा' क्षत्रिय युवक 'राजेन्द्र से प्रेम करती है, पर समाज- भीरु उसके माता-पिता इस बात की सम्मति उसे नहीं देते । यहाँ तक कि पद्मा के पिता परलोक में भी वहाँ का कुलनाशक दृश्य को न देख सकें । मरने से पूर्व 'पद्मा' को यह आज्ञापत्र दे जाते हैं , -- 'राजेन्द्र या किसी अपर जाति के लड़के से विवाह न करना ।[१]' फलत: पद्मा ने भी 'लड़कियों को अपने आदर्श पर लाकर पिता की दुर्बलता से प्रतिशोध लेने का निश्चय कर लिया ।[२]' राजेन्द्र भी आजीवन अविवाहित रह कर देश-सेवा का व्रत ग्रहण करता है । इस तरह दोनों अपने प्रेम को विशृंखल न करते हुए अपने लक्ष्य पर डटे रहते हैं । प्रस्तुत कहानी का समाधान यद्यपि प्राचीन आदर्शवाद के धरातल पर ही हुआ है, पर नायिका की प्रतिज्ञा भविष्य के लिए आशा की किरण का संदेश अवश्य देती है । पर 'कुकुल की बीवी' तथा 'श्यामा' में लेखक अधिक व्यावहारिक हो गया है , वह विजातीय विवाह कराने में सफल हो जाता है । 'कुकुल की बीवी' कहानी की कथावस्तु एक ऐसी नारी पात्र की कहानी है, जो आश्रय न मिलने के कारण पथभ्रष्ट हो जाती है, उसकी की लड़की कुंवर अपने अदम्य साहस द्वारा विजातीय और विवाहित कुकुल से विवाह करने में सफल हो जाती है ।

६. 'श्यामा' कहानी में लेखक ने मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना कराई है । मनुष्यत्व से प्रेरित होकर ही नायक बंकिम शोषित तथा दलित कुछुवा और श्यामा की सहायता करता है । विडम्बना देखिए, समाज मनुष्यता के मार्ग पर चलने वाले को 'बेवकूफ' की संज्ञा से अभिहित करता है । नि:स्वार्थ सेवा में

१- लिली : पद्मा और लिली , पृ० २१

२- वही०, पृ० २१

भी लोग गुढ़ार्थ निकाल लेते हैं । लोगों की इस कलुषित दृष्टि पर 'निराला' ने व्यंग्य किया है," बुधुआ के जबड़े जकड़ गये थे, दोनों खोल कर दवा पिलाने के प्रयत्न में थे । वहां ब्राह्मण और लोध में सामाजिक ~~[illegible]~~ जितने स्तरों का भेद है, वह नहीं था । लोग खड़े यही देखते रहे थे । लोगों की निगाह में श्यामा और बंकिम के सामीप्य का जो अर्थ था उसके साथ बुधुआ का सहयोग बिल्कुल न था । वह मर रहा है, लोग यह नहीं देखते थे वह क्या कर रहा है, इसका दुरान्वय कर रहे थे[1] ।" इस कहानी का नायक बंकिम जाति विशेष ब्राह्मण न होकर एक मानव है जो विपत्ति में मनुष्य मात्र की सहायता करना अपना धर्म समझता है । ~~आर्य समाज की सत्यता [illegible] समझता है । आर्य समाज~~ की छत्र छाया में लोध कन्या श्यामा से विवाह करके वह समाज को मुंहतोड़ जवाब देता है एवं रिश्वत का त्याग करके सत्यनिष्ठ कर्मचारी होने का आदर्श भी प्रस्तुत करता है । जाति तथा माता-पिता द्वारा बहिष्कार भी उसे विचलित नहीं कर पाते । 'निराला' की कहानियों में ऐसे वीर्यवान तथा आदर्श पात्रों का अभाव नहीं है ।

विधवा विवाह

७. 'ज्योतिर्मयी' तथा 'सफलता' में विधवा-विवाह समस्या को उठाया गया है । 'ज्योतिर्मयी' की नायिका ज्योतिर्मयी अत्यधिक विद्रोहिणी एवं साहसी है और नायक विजय परम भीरु तथा कायर । 'ज्योतिर्मयी' उन्मुक्त प्रेम की समर्थक है तथा उसके विचार समाज के तिनके के लिए आग है । उसकी आत्मा विद्रोह कर उठती है कि 'ससुराल नहीं गई जानती भी नहीं कि पति कैसा और विधवा हो गई[2] ।" इसके विपरीत नायक को विधवा विवाह करते लाज लगती है ।" यदि नायक विजय को समाज का भय है तो क्या 'फूटे हुए बर्तन की तरह वह भी समाज में एक तरफ निकाल कर न रख दी जाती ।

१- लिली : 'श्यामा' पृ० ७५

२- वही०,पृ० २४

क्या उसने यह सब नहीं सोच लिया[1]।" नायिका अपनी नैसर्गिक इच्छाओं को बुरा नहीं मानती । अन्त में छल द्वारा विजय का मित्र वीरेन्द्र ज्योति का विवाह विजय से करवा देता है ।"सफलता" की भी विधवा आभा समाज के अपमान से संत्रस्त हो उठती है तथा नरेन्द्र से उपयुक्त आश्रय तथा परामर्श की आशा करती है । नायक नरेन्द्र भी शोषण का शिकार है, साहित्यकार है । वह जीवन-निर्वाह के लिए अनेक संघर्ष करता है, पर उसका उसको खेद नहीं क्योंकि वह साहित्य का सुधार कर रहा था , पर साहित्य के लिए व्यापारिक नीति का प्रयोग उसे विद्रोह करने के लिए बाध्य करता है । प्रकाशक तथा साहित्यकार के तनाव का बड़ा ही मार्मिक तथा सजीव चित्रण हुआ है । उसे बड़ा दु:ख है कि " जो नाम स्वरूप वैभव का भोक्ता हो, वह कौड़ी कौड़ी को मुहताज भी रहे[2]।" यह अनुभूति "निराला" की अपनी अनुभूति थी । अत: अनुभूति की प्रधानता है । दोनों कहानियां "ज्योतिर्मयी " तथा "सफलता" में विधवा विवाह का समर्थन करके भी अन्त में लेखक वैधव्य को ही श्रेष्ठता देता है । ऐसा प्रतीत होता है , विद्रोहात्मक तथा क्रान्तिकारी प्रवृत्ति होते हुए भी संस्कारवश लेखक ऐसा कर गया है । दोनों कहानियों का अंत यहां उद्धृत करना अनुचित न होगा :-

"विवाह का यही सुख है ।" ज्योतिर्मयी की आंखों से घृणा मध्याह्न की ज्वाला की तरह निकल रही थी ।... इसके साथ अब अपराधी की तरह सिकुड़ कर घर के एक कोने में मुझे सम्पूर्ण जीवन पार करना होगा । इससे मेरा वैधव्य शत गुण, सहस्र गुण अच्छा था । वहां कितनी मधुर मधुर कल्पनाओं में पल रही थी[3]।" इसी तरह "सफलता" कहानी में भी " आभा ने नरेन्द्र के पास एकांत में बैठकर हाथ में हाथ लेते हुए कहा," नरेन्द्र बुरा तो नहीं मानोगे, मैं देखती हूं, दु:ख बहुत है बढ़कर, पर मंदिर का वह दीप जलाने वाला जीवन मुझे बड़ा सुखमय लग रहा है[4]।"

१- वही०, पृ० २८

२- निराला : चतुरी चमार,"सफलता" , १९५१, इलाहाबाद, पृ० ६४ ।

३- लिली : ज्योतिर्मयी, पृ० ३६ ।

४- चतुरी चमार,"सफलता" , पृ० ७० ।

जातीय असमता

८. "ममता" कहानी में समाज के ढोंग पर व्यंग्य किया गया है । नायिका झूठा लांछन लगा कर पति द्वारा परित्यक्त कर दी जाती है । पर वह पातिव्रत धर्म पर आरूढ़ रहती है और विषम परिस्थिति में अपने तथाकथित पति की नव विवाहित पत्नी और बच्चे की रक्षा कर मानवता का आदर्श प्रस्तुत करती है । ममता चाहती तो उस समय अपने प्रति किये गए अत्याचार का प्रतिशोध ले सकती थी, पर वह भारतीय नारी के आदर्श के विरुद्ध होता है । इस कहानी में व्यंग्य बड़ा ही तीखा है , मुसलमानों द्वारा रमाशंकर की पत्नी तथा बहन को भगा लिए जाने पर उनके भैयाचार उनको अपने यहां आश्रय नहीं देते," तुम लोग गधे बन गये हो लाख धोने पर घोड़े नहीं बन सकते इसलिए अब अपना परिवार लेकर अलग रहो[1] ।" समाज की इस रूढ़िबद्ध , झूठी मर्यादा से मन सहसा क्षुब्ध हो उठता है ।

अन्धविश्वास

९. "अर्थ" कहानी में ईश्वर पर अंध विश्वास रखने वाले सरल एवं भोले व्यक्ति की कथा है । कर्क नायक की सरलता हास्य की सृष्टि करती है । रात ग्यारह बजे तक पांच हजार जप पूरा कर गुटके में लिखकर रखना अपने जप की मजदूरी के लिए और प्रात: पांच हजार नाम जप की मजदूरी भरत जा पर नहीं रख गए हैं यह देखना, बड़ा ही मनोरंजक है । फिर चित्रकूट भगवान के नाम पत्र लिखना ऊपर लिफाफे में "श्री रामचन्द्र सिंह, रामघाट, चित्रकूट, सीतापुर , बांदा लिखकर पत्र डाकखाने में छोड़ना एवं पत्र का वापिस आना हास्य का उद्रेक करता है । अन्त में उसको ज्ञान हो जाता है " उसके राम इस संसार के स्वामी हो सकते हैं पर वास्तव में इस संसार के स्वामी उसके राम नहीं ।" उसका विवेक उसको इस बात का भान कराता है कि "ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उसमें सूक्ष्म अर्थ बनकर रहते हैं जिससे स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है[2] ।"

१- लिली : ममता , पृ० ५४-५५

२- वही०, अर्थ, पृ० ९६, १०७ ।

'प्रेमिका परिचय' भी हास्य प्रधान कहानी है जिसमें एक विलासी, कामातुर विद्यार्थी की चेष्टाओं का प्रेम प्रधान कहानी द्वारा चित्रण किया गया है । नायक यथा नाम तथा गुण की उक्ति को चरितार्थ करता है ।

१०. 'गजानन्द शास्त्रिणी' में अनमेल विवाह का प्रसंग आया है । इसकी नायिका सुपर्णा नायक मोहन से प्रणय निवेदन करती है तथा उपेक्षित होने पर प्रतिशोध की ज्वाला से जलने लगती है । अपमान एवं उपेक्षित नारी की प्रतिहिंसा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण हुआ है । मोहन को उचित शिक्षा देने हेतु ही वह वृद्ध वैद्य से विवाह तक स्वीकार कर लेती है । उसके चरित्र के अन्तर्विरोध की कड़ियां बड़ी ही सूक्ष्मता से खुली हैं । पातिव्रत पर लेख लिखना, छायावाद का विरोध करना, अन्त में पिकेटिंग करके एम०एल०ए० होने में सफल होना आदि सभी कार्यों के पीछे एक ही मनोवृत्ति काम करती है, वह है मोहन को आहत करना । इसमें धर्म के ठेकेदारों पर व्यंग्य किया है : अनमेल विवाह, विवाह कराने वाले दलाल, नवयुवती पत्नी की वृद्ध पति के प्रति दृष्टि, यौवन की उच्छृंखलतायें, पातिव्रत पर लिखे उपदेश, ख्याति की कामना हेतु जेवर बेचकर गांधी जी को थैली भेंट करना, छायावाद की कविता को व्यभिचार कहना— आदि प्रसंगों पर व्यंग्य किया गया है ।

शोषित वर्ग

११. यथार्थवादी कहानियों में दलित तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति 'निराला' की वेदना मुखर हुई है । जो वर्ग समाज द्वारा सदैव से ही उपेक्षित रहा, उससे लेखक ने अपने साहित्य के लिए प्रेरणा ही नहीं पाई, वरन् उसे अपना साहित्य भी दिया है । 'चतुरी चमार', 'देवी', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'दो दाने' आदि इसी वर्ग की कहानियां हैं । 'चतुरी चमार' में संघर्षरत चतुरी का जीवन चरित है । वह संत साहित्य का मर्मज्ञ है और भी अनेक कारणों से वह स्मरणीय है, अतः लेखक चाहता है कि वह उसके लिए 'गौरवे बहु वचनम्' लिखे । वह क्रमशः किसान आन्दोलन से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेता है । उसकी पीढ़ियों से कुंठित कामनायें तथा अभिलाषायें क्रमशः उठती हैं । गांव का सहयोग न मिलने पर वह अकेला ही संघर्ष करता है । जिस दिन उसे मनुष्यत्व का ज्ञान

होता है, उसमें असाधारण शक्ति का समावेश हो जाता है । चतुरी की कहानी शुद्रत्व के अन्त की कहानी है । अब्दुल अर्थ में जूतों के दर्श न होने पर चतुरी की जो प्रसन्नता होती है, वह इसलिए कि उसकी दास-भावना मिट रही है ।

१२. `पगली` जैसी पात्र को भी `निराला` ने अपनी सहानुभूति दी है । उसको `देवी` जैसे पावन और पवित्र नाम से अभिहित किया गया है । लेखक को अत्यधिक खेद है कि " जिसकी पूजा होनी चाहिए वह नहीं पुजता है, जो कुछ पुजता है, वही अधिक पुजने लगता है[1] ।" इस कहानी में न केवल समाज पर वरन् अपने पर भी लेखक व्यंग्य करता है । " उसे देखते ही मेरे बड़प्पन वाले भाव उसी में समा गए[2] ।" पगली का जीवन कवि ही नहीं, समाज के नेताओं, उसके संचालकों, उसकी संस्कृति व कला और साहित्य पर एक तीखा व्यंग्य है । नित्य प्रति पगलियाँ गली कूचों में घूमती मिल जाती है, लेकिन `निराला` की तरह उन पर द्रवित होने वाले विरले ही हैं । लेखक सोचता है और क्षुब्ध हो उठता है " यह कितनी बड़ी शक्ति है । कोई नहीं सोचता । सब इसे पगली कहते हैं, पर इसके परिवर्तन के क्या यही लोग कारण नहीं[3] ।" `राजा साहब को ठेंगा दिखाया` कहानी में वर्ग-वैषम्य की पराकाष्ठा दिखाई है । एक तरफ पैसा पानी की तरह बहाया जाता है, दूसरी तरफ पेट भरने के भी लाले हैं, विशम्भर द्वारा प्राणों की भाषा में भी दुःख दैन्य का स्पष्टीकरण उसको सिपाहियों द्वारा पिटाई तथा नौकरी से मुक्ति प्रदान करा देता है ।

१३. `हिरनी` तथा `दो दाने` कहानियां भी शोषक तथा शोषित की कथा है । पेट की ज्वाला को शान्त करने के लिए मानव पशु से भी निम्न स्तर पर उतर आता है , यह `दो दाने` की कथा का मूल है । बंगाल दुर्भिक्ष के समय की दुर्दशा का चित्रण बड़ा ही हृदय विदारक है । परिवार का मूल मिटाने के लिए `चम्पा` का रूप सहायक सिद्ध होता है । चम्पा की माँ कमला की वेदना अनुभव की जा सकती है । चम्पा को रूप के बाजार में बैठाने के लिए उसका हृदय

१- चतुरी चमार : देवी, १९५३, इलाहाबाद , पृ०४८ ।
२-वही०, पृ० ४०
३- वही०, पृ० ४१

विदीर्ण हो उठता है, पर दूसरी तरफ धूर्त तथा लम्पट धनवानों का बन जाता है । चारों तरफ त्राहि-त्राहि होने पर भी उनके कु-ऐश्वर्य ,भोग-विलास में कोई अन्तर नहीं पड़ता । श्री वर्ग वैषम्य को मिटाने के लिए जीवनपर्यन्त `निराला` संघर्ष करते रहे । `न्याय` कहानी में पुलिस की धांधली तथा अवैज्ञानिकता पर लेखक व्यंग्य करता है `युवक दोषी है, ऐसा प्रमाण तो न था पर निर्दोष है, ऐसा भी प्रमाण न था, बल्कि एक झूठ साबित हो चुका है । ऐसो हालत में संदेह को ही श्रेय देना उचित है । हत्या का एक विश्वसनीय कारण पुलिस को दिखाना पड़ता है, यदि प्रमाण अप्राप्त रह गया[१] ।`

कला का स्वरूप

१४. `कला की रूप रेखा` में कला की विवेचना है । `पाठक` के द्वारा कला क्या है, पूछने पर लेखक उत्तर देता है` जो अनन्त है, वह गिना नहीं जा सकता । ..... कला उसी तरह की सृष्टि है, जैसे आप सामने देखते हैं, बल्कि यही सृष्टि लिखने की कला की अधीन है । अनादि काल से अब तक सृष्टि को गिनने की कोशिश जारी है, पर अभी तक वह गिनी नहीं जा सकी , अधिकांश में बाकी है । वह एक एक सृष्टि एक एक कला है । फलत: कला क्या है, यह बतलाना कठिन है ।` कला की सूक्ष्मता, व्यापकता और अनन्तता पर लेखक ने ध्यान आकर्षित किया है । `परिवर्तन`कहानी में परस्पर क्षत्रियों की प्रतिशोध की भावना का दिग्दर्शन किया गया है । `भक्त और भगवान` `क्या देखा` तथा `विधा` कहानी में लेखक कोई समस्या लेकर नहीं प्रस्तुत हुआ है ।

वस्तु योजना

१५. कहानी कला की दृष्टि से `निराला` की कहानियां उच्चकोटि की नहीं हैं, अपनी कहानियों में किसी निश्चित क्रम योजना को लेकर लेखक अग्रसर नहीं हुआ है । `विधा` तथा `स्वामी सारदानन्द जी महाराज और मैं` कहानियों को

१- चतुरी चमार : न्याय, १९५३, इलाहाबाद, पृ० ३१

कहानी कहने में भी आपत्ति अनुभव होती है । `विधा' कहानी तो `निराला' के जीवन के सांध्यकाल की मानसिक स्थिति का द्योतन करती है, यह उनके असम्बद्ध विचारों एवं भावनाओं का संकलन-मात्र प्रतीत होती है । अपने जीवन के सान्ध्य-काल में `निराला' अंग्रेज़ी तथा संस्कृत में असम्बद्ध वार्तालाप किया करते थे । इस कहानी में भी दो पात्र हैं -- विधा और श्याम, जो क्रमश: अंग्रेज़ी में तथा संस्कृत में वार्तालाप करते हैं । सम्पूर्ण कहानी दोनों के परस्पर वार्तालाप से ही निर्मित होती है । दोनों पात्र `निराला' की तत्कालीन मानसिक स्थिति के प्रतीक हैं, ऐसा कहना असंगत न होगा । `चतुरी चमार' संग्रह की कहानी `स्वामी सारदानंद जी महाराज और मैं' कहानी की अपेक्षा लेख अधिक है । कहानी में आधुनिक अर्थों में कथा-वस्तु न भी हो तब भी एक विशिष्ट भाव, बोध, संवेदना को लेकर विभिन्न पक्षों को संयोजित किया जाता है, यहां कुछ भी नहीं, श्री सारदानन्द जी से सम्बन्धित अनुभव को लेखक ने वर्णन कर दिया है । कहानी एक शैली भी होती है, जिसकी झलक भी नहीं । निबन्ध जैसा स्फलत फैलाव है । यह कहानी की अपेक्षा आत्मचरितात्मक शैली का निबन्ध प्रतीत होता है ।

१६. `निराला' की कहानियों का भाव पक्ष अत्यधिक सबल है । सूक्ष्म बाह्य शरीर की अपेक्षा उनका उसकी आत्मा पर अधिक आग्रह दिखता है । कविता की तरह आपकी कहानियां भी स्वत: स्फुरित हैं, अर्थात् जिस भाव, परिस्थिति या व्यक्ति ने आपके मर्म को छुआ, बस उसके प्रति अपने भावों को व्यक्त कर दिया है । फिर भी गम्भीरतापूर्वक यदि उनकी कहानियों के कलात्मक उत्कर्ष का विश्लेषण किया जाय तो अधिक निराशा नहीं होगी । कथानक के विकास के लिए क्रमश: शीर्षक, आरम्भ, मध्य, चरम सीमा तथा अन्त आदि पर विचार किया जाता है, `निराला' की कहानियों को इसी आधार पर विवेचित किया जायगा ।

शीर्षक

१७. कहानियों के अनुसार ही शीर्षकों की संयोजना की गई है । एक दो शीर्षक कुछ दीर्घ हो गए हैं, जैसे `राजा साहब को ठेंगा दिखाया' अन्यथा अधिकांश शीर्षक छोटे-छोटे हैं । नायिका प्रधान कहानियों के शीर्षक अधिकतर नायिकाओं के नाम पर ही रखे गए हैं, यथा `पद्मा' और लिली' , `ज्योतिर्मयी'

'कमला', 'श्यामा', 'मुकुल की बीवी', 'गजानन्द शास्त्रिणी', 'विधा' तथा 'हिरनी'। कुछ कहानियों का शीर्षक कहानियों की मूल संवेदना या भाव पर रखा गया है, यथा -- 'अर्थ', 'प्रेमिका परिचय', 'कला की रूप रेखा', 'न्याय', 'देवी', 'सफलता', 'क्या देखा' तथा 'दो दाने'। घटना के आधार पर रखे हुए शीर्षकों के अन्तर्गत 'परिवर्तन' तथा 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानियां रख सकते हैं। नायक के आधार पर एक ही शीर्षक प्राप्त होता है, वह है 'चतुरी चमार'। साधारणतया शीर्षक कहानियों के उपयुक्त ही हैं।

आरम्भ

१८. कहानियों का आरम्भ ऐतिहासिक शैली के साथ-साथ नायिकाओं के रूप-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा घटना से भी हुआ है। 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'भक्त और भगवान', 'श्यामा', 'विधा', 'अर्थ', 'प्रेमिका परिचय', 'सखी' तथा 'गजानन्द शास्त्रिणी' का आरम्भ ऐतिहासिक शैली में हुआ है। ऐतिहासिक शैली द्वारा आरम्भ आकर्षक नहीं है, केवल 'गजानन्द शास्त्रिणी' को अपवाद स्वरूप ले सकते हैं। आरम्भ ऐतिहासिक शैली में होते हुए भी वह जिज्ञासा उत्पन्न करने में पूर्ण सफल है, पांच बार धर्म की रक्षा के लिए वाक्य दुहरा कर पाठक की जिज्ञासा को जागृत किया गया है, और वह धर्म की रक्षा की फिलासफी को समझने के लिए तत्पर हो उठता है। 'मुकुल की बीवी', 'कला की रूपरेखा' 'क्या देखा', 'चतुरी चमार' और 'देवी' कहानियों का आरम्भ लेखक के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं से हुआ है। 'मुकुल की बीवी' तथा 'क्या देखा' कहानी का आरम्भ कुछ रोचक अवश्य है, अन्यथा 'चतुरी चमार', 'देवी', 'कला की रूप रेखा' आदि का आरम्भ ऐतिहासिक शैली से आरम्भ कहानियों की तरह अनाकर्षक तथा चमत्काररहित है।

१९. नायिका प्रधान कहानियों का आरम्भ नायिका के रूप-चित्रण से हुआ है। 'पद्मा और लिली', 'सफलता' तथा 'कमला' को उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं। उदाहरण स्वरूप 'पद्मा और लिली' का आरम्भिक अंश देख सकते हैं। 'पद्मा के चन्द्रमुख पर षोडश कला की शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुंज की कली सी प्रणय के वासंती मलय स्पर्श से हिल उठती विकास के लिए व्याकुल हो रही है।[१] 'परिवर्तन' तथा 'ज्योतिर्मयी' का आरम्भ नाटकीय ढंग से नायिका के संभाषण से हुआ है, 'ज्योतिर्मयी' का आरम्भ रोचक होने के साथ-साथ विचारोत्तेजक भी है।

१- लिली : 'पद्मा और लिली', पृ० ६।

" मानते रहे, आप ही के बनाये हुए शास्त्रों ने जो हमारे प्रतिकूल हैं, हमें जकड़ने गुलाम बना रखा है। कोई चारा भी तो नहीं -- कैसी बात है।" कमल की पंखड़ियों से उज्ज्वल बड़ी-बड़ी आंखों से देखती हुई युवती ने कहा। " नहीं, पतिव्रता पत्नी तमाम जीवन-तपस्या करने के पश्चात् परलोक में अपने पति से मिलती है।" सहज स्वर से कहकर युवक निरीक्षक की दृष्टि से युवती को देखने लगा।"....
वात्सल्य का दरिद्रता।" युवती मुस्कराती हुई बोली --" अच्छा बतलाइए तो, यदि पहले ब्याही स्त्री इसी तरह स्वर्ग में अपने पुण्यपाद पति देवता की प्रतीक्षा करती है और पतिदेव क्रमश: दूसरी, तीसरी, चौथी पत्नियों को मार कर प्रतीक्षार्थ स्वर्ग भेजते रहें तो खुद मर कर किसके पास पहुँचेंगे ?" युवती खिलखिला दी[1]।

२०, किसी-किसी कहानी का आरम्भ घटना से हुआ है जैसे `हिरनी` कहानी का --" कृष्णा की बाढ़ बह चुकी है, सुतीक्ष्ण, रक्त लिप्त अदृश्य दांतों का लाल चिह्न, योजनों तक, क्रूर भीषण मुख फैलाकर प्राण चुरा पीती हुई मृत्यु ताण्डव कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, छाया क्लिष्ट, निःस्व, जीवित, कंकाल यातायात पथों से इधर-उधर घूम रहे हैं, आर्तनाद, चीत्कार करुणानुरोधरों में सेनापति अकाल की पुनः शंखध्वनि हो रही है। इसी समय सजीव शान्ति की प्रतिमा सी एक निर्वाक्-बालिका शून्यमना दो शवों के बीच खड़ी हुई चिदम्बर को देख पड़ी[2]।" प्रस्तुत कहानी का आरम्भ कहानी की मूल संवेदना का जैसा देने में पूर्ण सक्षम है। `न्याय` कहानी का आरम्भ प्रकृति के सजीव चित्रण से हुआ है, "अभी उषा की रोशनी लाल साड़ी प्रत्यक्ष हो रही है, भास्कर मुख अपर प्रांत की ओर है, कमल केशों को सघन व्योम नीलिमा ऊपर से स्पष्ट मुख कर मृदु-स्पर्श, प्रकाश, लघुतम तुलि जैसे पर दिगन्त व्योम से उतर तंद्रा के से अलस पांवों को जगा रहा है। खिली अमलतास की डालियों शाखायें-- तरुणी-बालिकाओं सी स्वागत के लिए झुककर खड़ी हैं। पवन पुनः पुनः ऊषा का दर्शन शुभ मधुर संदेश दे रहा है। निविड़ नीड़ाश्रय से विहंग प्रभाती गा रहे हैं[3]।"

१- निराला : ज्योतिर्मयी, पृ० २३
२- निराला : हिरणी, पृ० १३७
३- बहुरी कुमार : न्याय, १९५३, इलाहाबाद, पृ० २६।

विकास

२१. 'निराला' जी की अधिकांश कहानियों का विकास नाटकीय संयोगों से होता है । 'पद्मा और लिली', 'ज्योतिर्मयी', 'कमला', 'श्यामा', 'अर्थ', 'प्रेमिका-परिचय', 'हिरनी', 'सखी', 'न्याय', 'सफलता', 'कुल्ली की पोथी' एवं 'कला की रूप रेखा' आदि में किसी न किसी रूप में नाटकीय संयोगों का सहारा लिया गया है । 'चतुरी चमार', 'देवी', 'गजानन्द शास्त्रिणी', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' आदि कहानियां समतल धरातल पर निर्मित हुई हैं । 'ज्योतिर्मयी' की कथावस्तु नाटकीय मोड़ लेती हुई अग्रसर होती है । नायिका बाल विधवा है । उसकी अपनी नैसर्गिक इच्छायें हैं । नायक 'विजय' से उसका विवाह हो सकना सम्भव नहीं, अत: 'विजय' का मित्र छल द्वारा उसका विवाह कराकर नाटकीयता की सृष्टि करता है । लेखक पाठकों के औत्सुक्य को उभारने में पूर्ण सफल रहा है । 'कमला' कहानी का विकास भी संयोगों तथा घटनाओं से होता है । कमला के पति रमाशंकर का आना तथा कमला को लांछित समझ बिना विदा कराये एकाएक चले जाना । 'रमाशंकर' के पुनर्विवाह की सूचना पा 'कमला' की मां के देहान्त के बाद कहानी दूसरा मोड़ लेती है तथा कानपुर से सम्बन्धित कथावस्तु का विकास होता है । कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगे के रूप में एक घटना घटित होती है । मुस्लिम गुण्डों द्वारा रमाशंकर की नव विवाहित पत्नी तथा बहन पकड़ी जाती है तथा कमला के यहां आश्रय पाती है । प्रस्तुत घटना के पश्चात् ही कहानी तीव्रता से अपने चरम बिन्दु की ओर अग्रसर होती है, यह मोड़ कहानी का ऐसा मोड़ है, जिसका सीधा सम्बन्ध कहानी की चरम सीमा से है । यहां से पाठकों का औत्सुक्य बढ़ने लगता है । अन्त में विवाह प्रस्ताव पर औत्सुक्य चरम सीमा पर पहुंच जाता है । पाठक निश्चय नहीं कर पाते कि कमला विवाह-प्रस्ताव स्वीकार करेगी या नहीं । प्रत्येक घटना के साथ औत्सुक्य के स्तर को क्रमश: लेखक ने बढ़ाया है, जो कथा-वस्तु का बड़ा भारी गुण है ।

२२. 'पद्मा और लिली' कहानी का विकास भी क्रमिक रूप से हुआ है । पद्मा का राजेन्द्र से विवाह करने का निश्चय, माता-पिता द्वारा विरोध होने पर कथावस्तु एकाएक नाटकीय मोड़ लेती है : पद्मा तथा राजेन्द्र आजीवन अविवाहित रहने का व्रत लेते हैं । कहानी के विकास में तीव्रता न होने पर भी शैथिल्य का भान नहीं होता । 'श्यामा' की कथा-वस्तु में भी संयोगों का अभाव

नहीं है । नायक-नायिका का आचरण ही संयोगों की सृजना करता है । नायक पंडित का नीच कन्या के सम्पर्क में आना, एवं उसके शोषित जीवन से सहानुभूति रखने के कारण पिता तथा समाज द्वारा तिरस्कृत होना, अन्त में कानपुर जाकर समर्थ होकर परस्पर विवाह करना -- इत्यादि संयोगों से कथा की संयोजना होती है । 'अर्थ' कहानी का विकास बड़ा ही शैथिल्यपूर्ण है । हां, नायक के क्रिया-कलापों द्वारा हास्य की सृष्टि अवश्य होती है । अन्त में नाटकीय ढंग द्वारा लेखक नायक को संकेत दिलवाता है : ईश्वर ही अर्थ है, वह जिस भक्त पर कृपा करते हैं, उनमें सूक्ष्म अर्थ बन कर रहते हैं, जिससे वह स्थूल अर्थ पैदा करता रहता है ।' 'प्रेमिका-परिचय' का विकास उत्तरोत्तर जिज्ञासा की सृष्टि करता है । इस कहानी में भी क्रमिक रूप से उत्सुकता के स्तर को बढ़ाया गया है । 'हिरनी' का कथानक भी संयोगों से पूर्ण है । संयोग से बाद में 'हिरनी' की रक्षा होना, राजकुमार से बचाव हेतु कहार से उसका विवाह कराना, अन्त में निरपराध हिरनी को क्रोधित रानी का मारने को प्रस्तुत होते ही दैवीय संयोग द्वारा बचाव करा दिया जाता है । 'सखी' में भी नाटकीयता लाने में लेखक पूर्ण सफल रहा है । संयोग से ही लीला की भेंट जोत के भावी पति श्यामलाल से होती है । जोत द्वारा लीला का वैवाहिक सम्बन्ध नाटकीय ढंग से जुड़ता है और इसका माध्यम बनता है जोत का पत्र -- 'तीसरे दिन बाबू श्यामलाल को जोत का उत्तर मिला, लिखा था -- जनाबवाला लीला दीदी से आपसे मिलने की सांगोपांग बातें मालूम हुईं । जिस मजनू की जो लैला होती है, वह इस तरह उसे आप मिलती है । अपनी लैला की आप हमेशा रक्षा करें, आपसे सविनय मेरी प्रार्थना है । तब मेरा-आपका रिश्ता और भी मधुर हो जायगा, क्योंकि बहन जिससे ब्याहती है, वह अगर पत्नी की बहन को साली कह सकते हैं तो पत्नी की बहन भी उन्हें वही पुरुष संबोधन कर सकती है ।'[1]

२३. 'न्याय' में आरम्भ से ही संयोगों की शृंखला जुड़ी है । संयोग से ही राजीव घायल व्यक्ति को देखता है, तथा उसकी सहायता करने को तत्पर होता है

१- चतुरी चमार : सखी, १९५३, इलाहाबाद, पृ० २५

वह पुलिस द्वारा हत्या के प्रमाण के अभाव में पकड़ा जाता है । नायक प्रतिमा द्वारा मृत्यु से बचाये जाने में नाटकीयता का समावेश होता है । 'बुद्धू की बीबी' का कथानक शैथिल्य दोष से मुक्त तथा कुतूहल करने वाला है । जैसा कि उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह बुद्धू की बीबी की कथा है । वह स्वयं उसमें पात्र रूप में आई है , तथा स्वयं अपनी कथा नाटकीय ढंग से सुनाती है । 'कला की रूप रेखा' , कथानक का विकास समतल धरातल पर हुआ है । पाठक जी द्वारा किये 'कला क्या है' प्रश्न का उत्तर देने के लिए संयोग से लेखक की कला का जीवन्त रूप प्राप्त हो जाता है और पाठकों की जिज्ञासा की तृप्ति हो जाती है । 'क्या देखा' कहानी में तो तिलस्मी कहानियों का-सा रंग मिलता है । नायक को नायिका 'हीरा' से भेंट होना, तत्पश्चात् नायक का अस्वस्थ होना एवं शान्ता द्वारा पुरुष भेष में उसकी सेवा-सुश्रुषा करते हुए पहचाना न जाना, हीरा के हत्याकाण्ड का समाचार फैलना आदि घटनाओं से कहानी में मनोरंजकता का समावेश हो सका है । अन्त में हीराका भेद खुलते ही कहानी का भी अंत हो जाता है । यह कहानी १९२३ में प्रकाशित हुई थी, और तत्कालीन कथा-साहित्य की प्रवृत्ति का आभास इसमें परिलक्षित होता है ।

२४. 'चतुरी चमार' , 'देवी' , 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' , 'सफलता' , 'गजानन्द शास्त्रिणी' तथा 'वे दो दाने' आदि कहानियों में संयोग और नाटकीयता का अभाव है । 'चतुरी चमार' में लेखक तथा चतुरी की जीवन घटनायें समानान्तर चलती हैं । 'चतुरी चमार' में जीवन की विविधता है । नायक के चरित्र के दो पक्ष दृष्टिगत होते हैं— चतुरी के संघर्ष के पूर्व का जीवन तथा उसका संघर्षरत जीवन । इसमें लेखक एक चित्रकार के रूप में हमारे समक्ष आता है । चतुरी के जीवन की कड़ियाँ स्वाभाविक रूप से खुलती चलती हैं । 'देवी' कहानी का विकास क्षिप्र नहीं है । इसमें लेखक पात्र रूप में तो आया है, पर उसका चरित्र टीकाकार के रूप में अधिक है । वह दूर बैठ कर समाज का विश्लेषण और छिद्रान्वेषण करता है । तथाकथित पगली के माध्यम से लेखक का समाज पर आक्रोश तथा समाज की विडम्बनाओं का पर्दाफाश हुआ है । 'सफलता' कहानी का विकास यद्यपि क्षिप्र तो नहीं है, पर सजीवता सप्राणता का पर्याप्त समावेश हुआ है , क्योंकि यह तो स्वयं भुक्तभोगी लेखक तथा प्रकाशक के संघर्ष की कहानी

का आख्यान है। 'राजा साहबको ठेंगा दिखाया' और 'गजानन्द शास्त्रिणी' के आरम्भ का अंश व्यर्थ-सा प्रतीत होता है। वास्तविक कथा तो दूसरे भाग से प्रारम्भ होती है। कथावस्तु के सब भाग स्वाभाविक क्रम से न आकर आगे-पीछे आते हैं। कहानी का कलेवर व्यर्थ में बढ़ाया गया है।

चरम सीमा और अन्त

२५. 'निराला' की अधिकांश कहानियों का अन्त चरम सीमा के तुरन्त बाद आ जाता है। उनकी प्रारम्भिक कहानियाँ-'पद्मा और लिली', 'ज्योतिर्मयी', 'कमला', 'श्यामा', 'प्रेमिका'-परिचय', 'हिरनी', 'परिवर्तन' एवं 'क्या देखा' आदि को उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं। 'पद्मा और लिली' में पद्मा का आजीवन अविवाहित रहने का निश्चय ही इस कहानी की चरम सीमा है। इसके बाद कहानी का अन्त भी हो जाता है। इसी प्रकार 'ज्योतिर्मयी' में दुलहिन के रूप में ज्योतिर्मयी का भेद खुलना इसकी चरम सीमा है। इसके तुरन्त बाद कथा का अन्त हो जाता है। 'कमला' कहानी की चरम सीमा वहाँ आती है, जहाँ वह अपने पति की बहन को मामी रूप में स्वीकार कर लेता है। 'श्यामा' में शोषण के प्रतिशोध स्वरूप जमींदार की कान पकड़ कर निकालना ही प्रस्तुत कहानी का चरम परिणति है। 'प्रेमिका'-परिचय' की चरम सीमा पत्र द्वारा नायक को मूर्खता का प्रमाण-पत्र मिलने के पश्चात् होती है --

मूर्खाधिराज,

तुम्हें गोमती में भी चुल्लू भर पानी नहीं मिला ?

तुम्हारी शान्ति

प्रस्तुत कहानी का अन्त हास्य का उद्रेक करने में पूर्ण समर्थ है। 'हिरनी' में रानी का हिरनी को मारने के लिए प्रस्तुत होना, 'सखी' में जीत द्वारा लीला का विवाह-सम्बन्ध स्थापित करना, 'न्याय' में प्रतिमा द्वारा राजीव को बचाया जाना, 'क्या देखा' में हीरा के पत्र द्वारा अमरसिंह तथा हीरा का भेद खुलना ही इन कहानियों की चरम सीमायें हैं। इसके तत्काल बाद ही कहानियों का अन्त हो जाता है।

२६. `निराला' की यथार्थवादी कहानियों में चरम सीमा की स्थितियों को खोजना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है, इन कहानियों में किसी भी प्रकार का उतार-चढ़ाव हम नहीं पाते हैं। एकमात्र चरम सीमा का बिन्दु वहां स्थापित किया जा सकता है, जहां शोषित पात्रों के अदम्य साहस तथा वीरत्व का उद्घाटन होता है या जहां शोषण की पराकाष्ठा दिखाई जाती है। `राजा साहब को ठेंगा दिखाया' में अब तुम्हारी नौकरी की सरकार को आवश्यकता नहीं रही[1]। `प्रस्तुत कहानी की चरम परिणति तथा अन्त दोनों ही मान सकते हैं। `देवी' कहानी की चरम सीमा व्यंग्यात्मक है : `एक रोज सुबह उसी तरह कांख में मुट्ठी दबाये हुए संगम ने आकर कहा, "बाबू आपका बैंक डुबाकर मैनेजर साहब भग गए हैं।" "नहीं संगम, मैंने समझाया "मैनेजर साहब बड़े अच्छे आदमी हैं। घर रुपए लेने गए हैं। उन्हें कई सौ रुपए देने हैं -- लकड़ी, घी, आटा, दूध और किराये के। लौट कर रुपए दे देंगे।" संगम वैसा ही फिर हंसा[2]। `सफलता' कहानी की चरम सीमा का बिन्दु वहां है जहां नायक अपने शोषकों से प्रतिकार लेता है। `चतुरी चमार' में "जूता और पुरवाली बात अब्दुल अर्थ में दर्ज नहीं।" यह चतुरी का जानना ही उसकी चरम सीमा है। `सुकुल की बीवी' कहानी में लेखक द्वारा सुकुल के विवाह सम्पन्न कराना तथा `गजानन्द शास्त्रिणी' में शास्त्रिणी द्वारा मोहन को यह चेताना कि तुम गलत रास्ते पर थे इन कहानियों की चरम सीमायें मान सकते हैं।

पात्र

२७. "निराला" ने अपनी कहानियों में पात्रों की अवतारणा कहानी की मुख्य संवेदना तथा भाव के अनुकूल ही की है। पात्र सभी सर्वसुलभ तथा सप्राण हैं, किसी भी ऐसे पात्र की सृष्टि नहीं हुई जो मानवोचित न प्रतीत होता हो। प्रत्येक पात्र अपने चरित्र के अनुकूल ही कार्य करता है, वह लेखक के हाथ की कठपुतली

१- चतुरी चमार : `राजा साहब को ठेंगा दिखाया', १९५३, इलाहाबाद, पृ० ३८।

२- वही०, `देवी', पृ० ५०

नहीं प्रतीत होते, वरन् अपनी विशिष्टता रखते हैं । पात्र उच्च,मध्य तथा निम्न वर्ग से लिए गए हैं । `परिवर्तन` में उच्चवर्ग, पद्मा और लिली`, `कलकत्ता`, `कुल्ली की बीबी` एवं `सखी` आदि के पात्र मध्यवर्ग तथा `श्यामा`, `देवी`, `चतुरी चमार` आदि के पात्र निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । कहानियों में पात्रों का जमघट नहीं है । तीन, चार और अधिक से अधिक पांच पात्रों का समावेश हुआ है । पात्रों की न्यूनता ही पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक सिद्ध हुई है । उनकी यथार्थवादी कहानियों में अर्थात् जिनमें लेखक का महत्वपूर्ण स्थान है, दो ही पात्र हैं । यदि लेखक की गणना न की जाय तो एक ही पात्र की अवतारणा पायेंगे । `कुल्ली की बीबी`, `कला की रूपरेखा`, `देवी` तथा `क्या देखा` ऐसी ही कहानियां हैं जिनमें मुख्य पात्र एक ही हैं ।

२८. `निराला` ने समस्त पात्रों की रचना सौष्ठव्य की है, पात्रों में व्यक्तित्व,भाव, निरन्तर संघर्ष रत रहने की भावना, उत्तरोत्तर ऊपर होने की शृंखला गुंथी है । पात्रों के गुण-अवगुण का सँकेत घटनाओं तथा परिस्थिति द्वारा स्वयमेव होता है । लेकिन कहीं-कहीं लेखक पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व प्रकट करने में चूक गया है, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन करते समय उनकी मनःस्थिति का विश्लेषण बहुत ही कम हुआ है । लेकिन फिर भी पात्रों की सजीवता तथा सप्राणता में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा , किन्तु चरित्र-चित्रण का दुर्बल पक्ष तो मानना ही होगा । गौण पात्रों तक में सजीवता का पूरा ध्यान रखा गया है । `कमला` की `वेदवती` ऐसा ही गौण पात्र है, उसके क्रान्तिकारी विचारों से स्वभावतः ही ध्यान आकर्षित होता है "तुम लोग कमज़ोर हो किस्मत को कोसती हो । मैं होती, तो चपत का जवाब दूने वस की चपत कस कर देती -- उन्हीं की तरह अपना भी दूसरा विवाह साथ-साथ करती ऊपर से न्यौता देती कि आइए, जनाबमन, मेरे शौहर से मुलाकात कर जाइए । तुम्हीं लोगों ने अपने सिर स्त्रियों का अपमान उठा रखा है ।" वेदवती का थोड़े समय का वार्तालाप हृदय में हलचल पैदा कर देता है ।

१- लिली : कमला , पृ० ५६

२९. 'निराला' के सामान्य पात्रों से पूरा साधारणीकरण हो जाता है । पर वे उनके पात्र टाइप न होकर अपने व्यक्तित्व में विशिष्टता रखते हैं । वह वर्ग के प्रतिनिधि अवश्य हैं, पर उनकी अपनी विशिष्टता भी है जो उनको टाइप होने से बचाती है । 'श्यामा' की श्यामा लोध-कन्या है, जातिगत संकोच तथा हीनता उसके वर्ग गुण की ओर संकेत करते हैं परन्तु अपने साहस द्वारा समर्थ होकर प्रतिशोध लेना उसके व्यक्तित्व की विशिष्टता है । 'कुल्ली की बीवी' सुशिक्षित तथा सुसंस्कृत वर्ग की प्रतिनिधि है, परन्तु उसमें कुछ ऐसे गुण हैं, जो उसे अपने वर्ग से भिन्न अस्तित्व रखने को बाध्य करते हैं । लगभग सभी पात्रों की विचारधारा प्रारम्भ से अन्त तक एक-सी रहती है । किसी विशेष घटना अथवा परिस्थिति में पड़कर उनके विचारों में परिवर्तन हम नहीं पाते । किसी ऐसी परिस्थिति का निर्माण नहीं होता, जिसके फलस्वरूप पात्रों का दृष्टिकोण, विचारधारा बदल जाती है । प्रारम्भ की लगभग दो-तीन कहानियों में पात्रों में हम आंग्ल भाषा के प्रति अधिक आग्रह पाते हैं । 'पद्मा और लिली' कहानी की पद्मा, 'ज्योतिर्मयी' का नायक विजय तथा 'कमला' का नायक रमाशंकर, इसके अतिरिक्त उनकी अंतिम कहानी 'विधा' की नायिका विधा, इनमें से कोई शोध छात्र है तो कोई एम०ए० ।

चरित्र-चित्रण

३०. चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी 'निराला' सफल रहे हैं । चरित्र-चित्रण के लिए वर्णन, कथोपकथन, घटना तथा कार्यव्यापार का आश्रय लिया गया है । विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण भी उपलब्ध है, पर पात्रों द्वारा आत्मविश्लेषण तथा मानसिक ऊहापोह द्वारा विश्लेषण का तो एकान्त अभाव है । वार्तालाप द्वारा चरित्रों पर काफी प्रकाश पड़ता है । 'बंकिम' की मानवता वादी प्रवृत्ति तथा जमींदार की शोषक वृत्ति, दोनों का चरित्र परस्पर वार्तालाप से स्पष्ट हो जाता है — 'ये सब बच्चे हैं । बाहरी ऐसा रूपक न बांधे तो भीतर की बात खुल जाये ।' दयाराम ने जनता की तरफ रुख करके कनखियों से राय ली । एक ही अर्थ की भिन्न भिन्न अनेक ध्वनियां हुईं : 'मालिक को सब मालूम है ।' 'पेट की बात ताड़ लेते हैं ।' 'तभी तो भगवान ने भाग्यवान बनाया है ।' आदि आदि । प्रसन्न होकर उन्हीं लोगों से दयाराम फिर कहने लगे — 'अभी यह लड़के हैं, दुनियादारी का हाल तो कुछ मालूम नहीं, स्कूल में पढ़ते हैं बस पढ़ गए ।'

'बंकिम' को असहाय हो गया । बोला -- "आप लोग मज़ाक करते हैं, उधर उसके मुंह में चुल्लू भर पानी छोड़ना भी रोक रखा है, वह मर रहा है आप लोग दुनियादारी समझा रहे हैं । " आपकी इच्छा हो, तो घड़ा पानी उसके मुंह में छोड़िए पर रुपया भी आप दें या सिर्फ पानी छोड़ने के लिए आए हैं ।" कुछ गर्म पड़कर कुछ मज़ाक के स्वर में दयाराम ने कहा[1] ।

३१. वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण से लगभग समस्त कहानियां भरी पड़ी हैं । यथार्थवादी कहानियों में चरित्र-चित्रण पूर्णतया समतल धरातल पर हुआ है तथा स्थान-स्थान पर लेखक पात्रों का विश्लेषण करता चलता है," सब उसे पगली कहते हैं पर इसके इस परिवर्तन के क्या यही लोग कारण नहीं ? किसे क्या देकर, किससे क्या लेकर लोग बनते बिगड़ते हैं, यह सूक्ष्म बातें कौन समझा जा सकता है । वह पगली भी क्या अपने बच्चे की तरह रास्ते पर पड़ी है । सम्भव है पहले सिर्फ गूंगी रही हो, विवाह के बाद निकाल दी गई हो या खुद तकलीफ पाकर निकल आई हो[2] ।" पात्रों के हृदयस्थ संघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व को 'निराला' अधिक उभार नहीं पाये हैं, यद्यपि उसे विश्लेषण तथा वर्णन द्वारा स्पष्ट करने का लेखक ने काफी प्रयास किया है । यही कारण है कि उनके पात्रों को जड़, निर्जीव और निरानन्द आदि संज्ञा से अभिहित नहीं कर सकते । कठिनाई तथा संघर्ष में भी पड़कर चरित्र अपना मनुष्यत्व नहीं त्यागते , कष्टों एवं संघर्षों के मध्य 'निराला' ने पात्रों के चरित्र की महानता का उद्घाटन कर मानवता की विजय घोषित की है ।

कथोपकथन

३२. 'निराला' की कहानियों में कथोपकथन पात्रानुसार ही हुए हैं । कथोपकथन अधिकतर संक्षिप्त तथा सोद्देश्य हैं किन्तु कहीं-कहीं अधिक विस्तार भी पा गए हैं पर वह प्रभाव में अवरोध नहीं उत्पन्न करते हैं । सुशिक्षित पात्र शिष्ट

१- लिली : श्यामा , पृ० ६९-७० ।
२- चतुरी चमार : देवी, पृ० ५१ ।

तथा सुसंस्कृत भाषा में वार्तालाप करते हैं तथा निम्नवर्ग के पात्र ग्रामीण भाषा में उनके संवादों में अत्यधिक स्वाभाविकता आ गई है । 'मुकुल की बीवी' का कथोपकथन सुशिक्षित स्त्री के अनुरूप ही है । उसके कथोपकथन रहस्यपूर्ण, सारगर्भित तथा हास्यपूर्ण हैं :--

'मुझे चुपचाप बैठा अनमेल दृष्टि से देखता हुआ देखकर वह बोलीं --'आप बुरा नहीं मानें, मैंने देखा है, मर्दों में एक पैदायशी नासमझी है, वह खासतौर से खुलती है जब औरतों से वह बातचीत करते हैं ।'

मान लेने में ही खैरियत मालूम दी । मैंने कहा --' जी हां, औरतों के सामने उनकी समझ काम नहीं करती ।'

'हां ।' वह बोलीं -- 'मुकुल को आदमी बनाते बनाते मैं हार गई । 'बीबी' को ही लीजिए । बीबी तो मैं मुकुल की भी हो सकती हूं, हूं ही, आपकी भी हो सकती हूं ।'

मैं खुल तो गया , पर प्रसन्नता फिर आई । मैंने बिना कुछ सोचे एक उद्वेग में कह दिया --' हां' 'आप नहीं समझे' वह बोलीं --आप साहित्यिक हैं तो क्या, फिर भी मुकुल के दोस्त हैं, बीबी की बहुत व्यापकता है ।'

'जरूर' मैंने कहा ।

उन्होंने ध्यान नहीं दिया कहती गईं --

'छोटी बहन, भतीजी, लड़की, बहू (छोटे भाई की स्त्री) सब के लिए बीबी शब्द आता है । आपकी हां किस अर्थ के लिए है ।'[१८]

३३. 'सखी' कहानी में नवयुवती छात्राओं के अनुकूल ही कथोपकथनों का सृजन किया गया है : ' तुम तो आज म्यान से निकली तलवार-सी चमक रही हो जीत । क्या खुशी है ।' लीला ने धीरे से मीठेकण्ठ से कहा । 'महाशय जी, जो किसी के हलक से नीचे उतर कर घर चढ़ी हो, वह शराब है सब अब ।' मुस्करा कर उमा ने कहा ।

'नहीं' कमला बोली --' अभी तो देख लो न उनकी तरफ होठों पर हंसी , नाक पर सब, इसलिए इकरार भी है, इनकार भी है ।'

---

१८ मुकुल की बीवी: पृ० २२-२३

"बात क्या है ।" अनजान की तरह देखते हुए लाला ने पूछा ।

"पूरा रहस्यवाद उर्फ छायावाद ।" निर्मला ने कहा । "वाद विवाद में देर हो रही है प्रकाशवाद यह है कि उनके पास मिस्टर श्यामलाल आई०सी०एस० का पत्र आया है कि आप अगर मंजूर करें आपको अपना पर्सनल तीन हजार माहवार--प्रेम का परमानेण्ट सिक्रेटरी के लिए देकर नियुक्त करने की प्रार्थना करता हूं । अब तो आया समझ में ।"[1]

निम्न वर्ग के पात्र भी अपने चरित्रानुकूल ही वार्तालाप करते हैं । 'चतुरी' का कथोपकथन "काका जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है । एक जोड़ा महतवा देता है, एक जोड़ा पंचमा । जब मेरा ही जोड़ा मजे में दो साल चलता है, तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बरबादी क्यों करे[2] ।"

३४. केवल एक ही कहानी में बालकों का चित्रण हुआ है, उसमें पर्याप्त स्वाभाविकता है । चतुरी चमार कहानी में 'निराला' के पुत्र का भी उल्लेख आया है --

"मेरे पुत्र की आवाज आयी --

"बोल रे, बोल ।" इस वीर रस का अर्थ मैं समझ गया । अर्जुन बोलता हुआ हार चुका था, पर चिरंजीव को रस मिलने के कारण कुदाते हुए हार न हुई थी । चूंकि बार-बार बोलना पड़ता था, इसलिए अर्जुन बोलने से ऊब कर चुप था । डांट कर पूछा गया तो सिर्फ कहा --

"क्या ?"

'वही' -- गुण, बोल ।"

'अर्जुन ने कहा --' गुड़' ।

बच्चे के अट्टहास से घर गूंज उठा । भरपेट हंसकर, स्थिर होकर फिर उसने आज्ञा दी -- " बोल -- गणेश ।"

रोनी आवाज में अर्जुन ने कहा --" गड़ेस" खिलखिला कर, हंसकर चिरंजीव ने डांट कर कहा --" गड़ेस-गड़ेस करता है -- साफ नहीं कह आता क्यों रे, रोज दातौन करता है ।"

1- चतुरी चमार : वही , पृ० २१

2- वही०, पृ० ६

अर्जुन अप्रतिभ होकर दबी आवाज़ में एक छोटा-सा "हूं" करके सर झुका कर रह गया। मैं दरवाजा धीरे से खोल कर भीतर सामने की आड़ से देख रहा था। मैं चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं। ज़रा देर चुप रह कर फिर आज्ञा की -- "बोल वर्ण" ......

उसके मुंह बनाने का आनन्द लेकर चिरंजीव ने फिर डांटा -- "बोलता है या लगाऊं झापड़। नहा लूंगा, गर्मी तो है।"[1]

प्रस्तुत कथोपकथन में लेखक के पुत्र के सम्भाषण से उच्च वर्ग की अहंवादी प्रवृत्ति जो कि बचपन से ही बच्चे के हृदय में अंकुरित हो जाती है तथा अर्जुन के माध्यम से शोषित की पीढ़ी दर पीढ़ी अपने को हीन समझने की भावना का सुन्दर प्रस्फुटन हुआ है।

३५. कथोपकथन देश-काल, पात्र, परिस्थिति और कहानी की गति के अनुकूल ही है। कथोपकथनों में यथा स्थान हास्य, विनोद और व्यंग्य का समावेश भी है। पात्रों की मुद्राओं के संकेत के साथ कथोपकथन आगे बढ़ते हैं अर्थात् कथोपकथन के मध्य में लेखक पात्रों की मुद्राओं तथा स्थिति का भी संकेत करता चलता है जिससे संवाद अधिक मार्मिक हो गए हैं :

"मैं निश्चय कर चुका हूं, जबान भी दे चुका हूं, अब के तुम्हारी शादी कर दूंगा।" पंडित रामेश्वर जी ने कन्या से कहा।

"लेकिन मैंने भी निश्चय कर लिया है। डिग्री प्राप्त करने से पूर्व विवाह न करूंगी।" सिर झुका कर पद्मा ने जवाब दिया।

"मैं मजिस्ट्रेट हूं बेटी, अब तक अक्ल ही की पहचान करता रहा हूं, शायद इससे ज्यादा सुनने की तुम्हें इच्छा न होगी।" गर्व से रामेश्वर जी टहलने लगे।

पद्मा के हृदय के खिले गुलाब की कुछ पंखड़ियां हवा के एक पुरजोर झोंके से कांप उठीं। मुक्ताओं-सी चमकती हुई दो बूंदें पलकों के पत्तों से झड़ पड़ीं। यही उसका उत्तर था।...."

१- मधुरी कमार : पृ० १३

"चुप रहो । तुम्हें नहीं मालूम ? तुम ब्राह्मण-कुल की कन्या हो, वह क्षत्रिय घराने का लड़का है -- ऐसा विवाह नहीं हो सकता ।"
रामेश्वर की सांस तेज चलने लगी, आंखें भौंहों से मिल गयीं ।

"आप नहीं समझे मेरे कहने का मतलब ।" पद्मा की निगाह कुछ उठ गई ।[1]

३६. पूर्णतः नाटकीय ढंग के संवाद भी यत्र-तत्र मिल जाते हैं :

वीरेन्द्र ने पूछा -- "यार, तुम तो ज्योतिर्मयी को भूल ही गए अपने गल गए उस विवाह में ।"

"बात यह है कि उस तरह की स्त्रियां समाज के काम की नहीं होतीं ।"

"और तुमने स्वर भी बदल लिया ।"

"क्या किया जाय ?"

"और जहां विवाह करने जा रहे हो, वही बड़ी सती सावित्री निकलेगी, इसका क्या प्रमाण मिला है ?"

"क्वांरी और विधवा में फर्क है भई ?"

"यह मानता हूं ।"

"कुछ संस्कृति का भी ख्याल रखना चाहिए ।...

"और तुम तो पूरे पंडित हो गए ।"[2]

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि 'निराला' की कहानियों में कथोपकथन ही एक ऐसा हेतु है, जिसके द्वारा पाठक कहानी की मूल संवेदना का आभास पाता है ।

देशकाल

३७. 'निराला' जी की कहानियां सामाजिक हैं, अतएव तत्कालीन समाज का वातावरण उचित परिमाण में अभिव्यक्त हो सके, इसके लिए लेखक ने परिस्थिति तत्व तथा तत्कालीन समस्याओं पर विशेष बल दिया है । देशकाल का चित्रण उतना नहीं, जितना चरित्रों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों

१- लिली : पद्मा और लिली, पृ० १३-१४

२- वही०, ज्योतिर्मयी, पृ० ३३-३४ ।

का उद्घाटन हुआ है, उसी के आधार पर तत्कालीन वातावरण का अनुभव किया जा सकता है। 'कमला' कहानी में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के माध्यम से तत्कालीन परिस्थिति तथा वातावरण का चित्र मूर्त हो उठा है :

"उसी समय कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों में दंगे की बुनियाद पड़ी। एक रोज बड़ा हंगामा भी हुआ। दोनों तरफ के अनेक घर लुटे, फुंके और ढा दिए गए। हजारों बच्चे काम आए जो हिन्दू मुसलमानों की बस्ती में थे, उनके घर फुंक कर, माल लूट कर आदमियों को मार कर या जख्मी कर मुसलमानों ने उनकी स्त्रियों को अपने घरों में डाल लिया। ऐसा ही हिन्दुओं ने भी किया। अपने मसरफ़ में न आने लायक जानकर उन्होंने मुसलमानों की महिलाओं का भी वध कर डाला।"[1]

३८. दो-एक स्थानों पर ग्रामीण तथा नगर के वातावरण का चित्रण सुन्दर हुआ है। 'श्यामा' कहानी में ग्रामीण वातावरण सजीव हो उठा है : "किसान आमों की अच्छी फसल होने से खुश हैं। सभी के सुर्ख कपोलों पर हंसी खेलती है। दो-एक दौंगरे गिर चुके हैं। हल चल रहे हैं। कहीं-कहीं जुवार, अरहर, तिलों एवं बाजरे आदि बोये जा चुके हैं, कहीं बोये जा रहे हैं। छोटे छोटे कपास के पौधे किसी किसी खेत में उग रहे हैं। ऊख लहरा रही है--उठाई मेड़ें बारिश से कहीं-कहीं टूट गई हैं। देहात बरसात के आगम से प्राणों के सुख-आनन्द पाकर प्रसन्न हैं। बागों में हरी भरी घास के मखमली गलीचों पर गांव के गरीब बच्चे हुई हुल्लड़, गुल्लड़, गिल्ली डण्डा खेलते अखाड़े गोड़ कर कूदते, कुश्ती लड़ते हुए अपने अपने आमों की रखवाली कर रहे हैं।"[2] 'प्रेमिका-परिचय' में नगर का वातावरण मुखर हो उठा है : "बाबू प्रेमकुमार कैनिंग कालेज, लखनऊ में बी०ए० क्लास के विद्यार्थी हैं। मेस्टनहॉस्टल में रहते हैं। इस समय लखनऊ की बादशाहत अंग्रेजी हुकूमत में बदल गयी है, पर उन्हें बादशाह बागु की सी हवा लग रही है। चमन, बहार, गुल और बुलबुल के परिस्तान में पैर रखते, सैर करते हैं। उर्दू शायरी का

१- लिली : कमला, पृ० ५१-५२।

२- वही० : श्यामा, पृ० ६१।

अनुरुद्ध गोष्क, लेखक का नाम उठाते हुए चलो, पत्नों पर एक नदी पढ़ने का यत्न । उर्दू के शुद्ध भी कुछ अशआर लिखे हैं, कभी-कभी हौज़ की बगल में बैठकर पढ़ते हैं ।[१]

उद्देश्य

३९. 'निराला' की लगभग सभी कहानी उद्देश्यपूर्ण है । सभी कहानियों में कोई-न-कोई समस्या या उद्देश्य लेकर ही वह सम्मुख आए हैं । समाज की नाना परिस्थितियों एवं समस्याओं के प्रति लेखक पूर्णतया जागरूक है, तथा उन समस्याओं के प्रति लेखक का दृष्टिकोण, उनके समाधान के ढंग तथा उनके निर्णय ही कहानी के उद्देश्य बनते हैं, अतएव इस दृष्टि से लेखक की समस्त कहानियाँ उद्देश्यपूर्ण हैं । यह तो हम पहले ही स्पष्ट कर आए हैं, कि कहानी के लिए कहानी 'निराला' ने नहीं लिखी है । उनके द्वारा उठाई गई समस्याओं की पुनरावृत्ति यहां करना संगत न होगा ।

शैली

४०. 'निराला' ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक, आत्म कथात्मक तथा पत्रात्मक शैली का प्रयोग किया है । पर मुख्य शैली उनकी ऐतिहासिक ही है । जिनमें लेखक स्वयं पात्र रूप में आया है, उनमें मुख्यतः आत्मकथात्मक शैली का ही प्रयोग हुआ है । पर साथ-साथ में ऐतिहासिक शैली भी यदा-कदा प्रयुक्त हुई है-- इसके अन्तर्गत 'चतुरी चमार', 'देवी', 'सुकुल की बीवी', 'कला की रूप रेखा' तथा 'क्या देखा' कहानियां हैं । 'क्या देखा' में आत्म कथात्मक तथा ऐतिहासिक शैली के अतिरिक्त नाटकीय तथा पत्रात्मक शैली का भी समावेश हुआ है । 'प्रेमिका परिचय' तथा 'अर्थ' में पत्रात्मक तथा ऐतिहासिक ये दोनों शैलियां दृष्टिगत होती हैं । 'श्यामा', 'कमला', 'पद्मा और लिली', 'सखी', 'ज्योतिर्मयी', 'सफलता', 'न्याय', 'हिरनी' एवं 'विद्या' में प्रमुखता नाटकीय शैली की है, परन्तु सुविधानुसार

१- लिली : प्रेमिका-परिचय, पृ० १०८ ।

ऐतिहासिक शैली भी प्रयुक्त हुई है । 'गजानन्द शास्त्रिणी' 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' , 'भक्त और भगवान' में प्रधान रूप से ऐतिहासिक शैली है । वैसे 'निराला' की कहानियों को मिश्रित शैली के अन्तर्गत रखना ही अधिक उपयुक्त होगा । उनकी लगभग समस्त कहानियों का अध्ययन करके ऐसा प्रतीत होता है कि उनका स्वयं का आग्रह भी मिश्रित शैली की ओर ही था । रोचकता की दृष्टि से भी मिश्रित शैली ही उपयुक्त होती है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने भी मिश्रित शैली को ही प्रधानता दी है -- "रूप विधान की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियां मिश्रित शैली में ही लिखी जा सकती हैं, क्योंकि इसमें कहानीकार को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है । इस शैली के माध्यम से कहानी में सम्यक् विकास और इसमें व्यापकता उपस्थित होती है[1] ।"

४१. 'निराला' की समस्त कहानियों का अवलोकन करने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनका सम्पूर्ण कथा-साहित्य मानवतावादी आधार से पुष्ट है । मनुष्य मनुष्य है, जाति,धर्म,वर्ग या स्तर भेद से किसी को उच्च या निम्न की मान्यता देना वह स्वीकार नहीं करते थे । स्वमात्रमनुष्यता ही ऐसी तुला है, जिसके द्वारा मनुष्य के अच्छे-बुरे की पहचान हो सकती है । यही कारण है कि 'निराला' की कहानियों में उठाई गई समस्त समस्याओं का समाधान लेखक ने मानवतावादी आधार पर किया है । लोध कन्या 'श्यामा' का विवाह ब्राह्मण युवक से कराने का साहस 'निराला' का ही था, वह इसको अनुचित नहीं मानते वरन् मनुष्य होने के नाते ऐसा होना स्वभाविक ही था । आज समाज की स्थिति तथाकथित समाज से पर्याप्त भिन्न है, लेकिन फिर भी किसी ब्राह्मण का किसी इतर जाति से वैवाहिक सम्बन्ध आज भी अनुचित माना जाता है । समाज इसको मान्यता नहीं देता । 'निराला' की विचारधारा से पुष्ट पात्रों में मुख्य बात यह है कि उनमें मनवांछित मनुष्यता का समुचित विकास दिखता है ।

४२. 'निराला' की कहानियां 'निराला' जैसे सचेत तथा क्रान्तिकारी कलाकार के व्यक्तित्व के अनुरूप ही निर्मित हुई हैं । निःसन्देह कलात्मक दृष्टि से

१- हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास ? डा० लक्ष्मीनारायण लाल, पृ० ३५१ ।

यह उच्चकोटि की नहीं है, पर वैचारिक दृष्टि से तत्कालीन कथा-साहित्य में नवीन भाव-बोध की सृष्टि करने में वह पूर्ण सक्षम रही है । अतएव उसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता । उनकी कहानियों का भाव पक्ष अत्यधिक पुष्ट और सबल है । यद्यपि यह निर्विवाद है कि कला पक्ष की गौणता के कारण वह कथा-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान न बना सकी । परन्तु कतिपय कमियों के होते हुए भी यह अपनी महत्ता में कम नहीं हैं, उनका प्रयास स्तुत्य तथा उद्देश्यपूर्ण माना जायगा ।

कथा-साहित्य की भाषा

४३. 'निराला' के उपन्यासों तथा कहानी की भाषा में एकरूपता होने के कारण उनका पृथक-पृथक विवेचन न करते हुए, एक साथ ही विचार किया जा रहा है । 'निराला' के कथा-साहित्य की भाषा के दो स्वरूप दृष्टिगत होते हैं, एक, काव्यात्मक संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं दो, सरल,सुबोध भाषा का रूप । 'निराला' के रोमाण्टिक उपन्यास तथा कहानी की भाषा काव्यात्मक,चित्रात्मक तथा संस्कृतनिष्ठ है एवं यथार्थवादी उपन्यास तथा कहानी की अपेक्षाकृत सरल और सुबोध । आलोच्य कवि के कथा -साहित्य की भाषा विषयानुरूप अपना स्वरूप परिवर्तित करती गई है, कथा-साहित्य की विषय-वस्तु के अनुसार ही भाषा के उपर्युक्त दो स्वरूप निर्धारित किए गए हैं । यथार्थवादी कथा-साहित्य की भाषा में रोमाण्टिक कथावस्तु की भाषा के समान तरलता,कोमलता तथा अलंकृति का एकान्त अभाव है । वस्तुत: यह भाषा जनसाधारण के स्तर का स्पर्श करती है । छोटे-छोटे वाक्यों तथा जनसाधारण में प्रचलित शब्दों का ही अधिकांशत: प्रयोग हुआ है । परन्तु दोनों प्रकार के भाषा-रूपों में अपूर्व प्रवाह और सहजता है । लेखक की भाषा-शैली पात्रों के हृदयगत मनोभावों तथा स्थिति को स्पष्ट करने में पूर्ण सक्षम है । 'काले कारनामे' में पहलवान रामसिंह की मन:स्थिति का चित्रण अपूर्व स्वाभाविकता और सहजता से अभिव्यक्ति पा सका है," पहलवान ने कई दफे अपने निश्छल हृदय का परिचय देना चाहा मगर हुमस हुमस कर रह गए । सरकारी मजबूरी छाती पर सिपाह की तरह बराबर कमों पर जैसे जम कर बैठी थी, धार्मिक प्रतिक्रिया छाती के निचले हिस्से में । हाथ मला किए, कांपा किए,हुमस

हुमस कर रहा किए, आंसू लाने की कोशिश करती आंखों देखा किए[1]।"

४४. उपर्युक्त काव्यात्मक भाषा का प्रयोग पर्याप्त मिलता है, "मुरलीधर के रस की रास-लीला ऐश्वर्य की शुभ्र शारद ज्योत्स्ना में सारंगी में सप्त स्वरों, नूपुर निक्वणों और नेत्र वीक्षणों से मधुमय क्षण-क्षण मर्त्य की लोगों की चिर-कामना के स्वर में बदलने लगी[2]।" काव्यात्मक भाषा की अपूर्व छटा प्रकृति-चित्रण तथा नायिकाओं के रूप-चित्रण में अपूर्व सफलता पा सका है, वस्तुतः जैसी उनकी नायिकाएं अनिंद्य सुन्दरी तथा रूप की आगार हैं, उसी के अनुकूल उनका रूप-चित्र उतारा गया है," प्रभा उतरने लगी। अकूल ज्योत्स्ना के शुभ्र समुद्र में आकुल पदों की नूपुर ध्वनि-तरंगें कितने प्रिय अर्थों से दिगन्त के उर में गूंजने लगीं। प्रभा का हृदय अनेक सार्थक कल्पनाओं से द्रवीभूत होने लगा। बार-बार पुलक में पलकों तक डूबती रही। सोपान-सोपान पर कुंचिता, शिंजिता चरण उतरती हुई, प्रतिपद पीत भंकार कम्प कमल पर, चापल्य से लज्जित कमल-सी रुकती रही। उरोजों से सुगन्ध-चिह्न जैसे बार बार भीने चित्रित समीर-चंचल उत्तरीय को दोनों हाथों से पकड़ उड़ते अंचलों से, प्रिय के लिए स्वर्ग से उतरती अप्सरा सी रही थी[3]।" नायिकाओं के रूप-चित्रों को उतारने के लिए ही लेखक ने रूपकों का सहारा नहीं लिया है, वरन जहां कहीं भी वह भावना या कल्पना के प्रवाह में बहे हैं, वहां स्वभावतः भाषा काव्यात्मक हो गई है।

४५. प्रकृति का सजीव रूप मानवीकरण द्वारा प्रस्तुत किया गया है" प्रकृति की सृष्टि में नया वसन्त फूट चुका है। वन्य वासन्ती, हरी साड़ी पहने प्रिय की अपलक प्रतीक्षा कर रही है। कोई मालिनी उसकी लतायित कबरी में फूल खोंस कर हार पहना चुकी है[4]।" चित्रात्मक भाषा का प्रयोग तो 'निराला' की अपनी विशेषता है," तीन-चार दिन तक निरु तूफान के समय की नौका विहारिणी की तरह कूल से बंधी नाव के भीतर बैठी रहीं, पैर कुछ

१- काले कारनामे, पृ० ५६

२- अलका, पृ० २५

३- प्रभावती, पृ० २९-३०

४- वही०, पृ० ६

शान्त होने पर नाव को विहार के उद्देश्य पर नहीं, जैसे स्वास्थ्य, शरीर, नियमन, दिनचर्या आदि के विचार से कुछ ही कुछ वाहित करने लगी[1]।" काव्यात्मक रूपकों की संयोजना करने में `निराला` गद्य में भी नहीं चूके हैं। यथा, "अचपल मंद-मृदु चरण चाप मूर्तिमति महिमा सी, अनावृत मुख बढ़ती हुई माता के पास लौट आई।" ....." शतपथ वाहिनी शतद्रु जैसे पर्वत पिता के वक्षस्थल में मुख्वास[2] अन्तर्हित कर रही..... ।"

४६. `निराला` ने अपने कथा-साहित्य में पात्र तथा परिस्थिति के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग किया है। प्रेमिका-परिचय का प्रेमकुमार लखनऊ का रहने वाला है तथा उसे उर्दू भाषा से रुचि भी है, वह अपने वार्तालाप में अधिकांश उर्दू के शब्दों का ही प्रयोग करता है, "यह सब इस चेहरे की करामात है। दुनिया में कामयाबी हासिल करना चाहते हो तो पहले चेहरा उभारो। मैं कहता हूं तुम मनहूस मुहर्रमी सूरत बनाए फिरते हो, तुम्हारी बीवी भी तुम्हें नहीं प्यार कर सकती[3]।" ग्रामीण अशिक्षित जन की भाषा उनके विशिष्ट व्यक्तित्व के अनुकूल ही प्रयुक्त की गई है, "मातादीन ने जवाब दिया, मैं ढाई रुपये की नौकरी के मत्थे नहीं हूं, दुहाई इस पट्टर साहब की, और आपसे कहता हूं कि अगर उस मौके में अपनी बल्ली गाड़ लें इस मामले में बिना मेरी मदद के,तो मैं अपने बाप का पैदा किया हुआ मातादीन नहीं[4]।"

४७. हास्य-व्यंग्यमय फुलझड़ियों से अपूर्व सफलता का समावेश हो सका है, "कुल्ली जैसे चोटी के स्मान्त उपासकों में चोटी की आध्यात्मिक व्याख्या कई बार सुनी थी। पर संप्रति वालों के बल्ब में आध्यात्मिक इलेक्ट्रिसिटी का प्रकाश न मुझे कभी देख पड़ा न मेरी समझ में आया। फलतः कुल्ली की तथा मेरी अलग अलग टोलियां हुई.... कुल्ली का खेल अलग होता था, मेरा अलग,कभी कभी मैं मित्रों के साथ सलाह करके कुल्ली की झांकी देखने जाता था और सहर्ष सुविस्मय

१- निरुपमा, पृ० ८२

२- अलका, पृ० १२,१६

३- लिली: प्रेमिका-परिचय, पृ० १११

४- काले कारनामे, पृ० ४७

उनकी भाषा-शैली में रवानगी आ गई है, उर्दू मुहावरे भी स्वतः आ गए हैं, जिनमें ही बहार समझना, मातहत, अख्तियार, कैफियत, तलब, दस्तन्दाजी, शिनाख्त, नामजद, तजवीज, इत्तिफाक, शोहरत, हिफाजत, वहमक, तामील, तौफ, आमदरफ्त, फरियाद, वाजिब-उल- अर्ज आदि ऐसे ही शब्द हैं। इसी प्रकार आंग्ल भाषा के डाक्टर होल्ड, इन्सपेक्टर, कुइन्स इंगलिश, इत्यादि शब्द भी सहज रूप से प्रयुक्त हुए हैं। ग्रामीण धरातल पर आधारित कथा-वस्तु में ग्रामीण कहावतों तथा मुहावरों की नियोजना हुई है जैसे पेले का कुछ टका हुआ काढ़ै, घोड़ा फेरना, बौर फूटना, उल्टा चोर कोतवाल को डांटे, रांड की तरह रोना, पेट में पानी पड़ना, काट चलना, पहुली गठना, ताल कटना, कानों पानी चढ़ना, पैंठ बांधना, तथा आंट पर चढ़ना।

४९. यत्र-तत्र कतिपय ऐसे भी कठिन शब्दों की सृजना हुई है, जो भाषा की बोधगम्यता में बाधक हैं, पश्चाद्वर्ती, पतिंग, अनिमेषवाण, जड रोक, दौरात्म्य, आशिरस्वरण[1], आदि ऐसे शब्द हैं, जो दैनिक जीवन की भाषा में नहीं आते हैं। काव्य भाषा के समान गद्य भाषा में भी लेखक ने नव उपमानों की सृजना की है, 'अप्सरा' में एक उद्धरण उल्लेखनीय है," आवाज़ जैसे ब्रह्म भोज के पश्चात् कराह रहा हो[2]।" विजयपुर के राजकुमार की कर्णकटु आवाज़ के लिए इससे अधिक उपयुक्त उपमान और होभी क्या सकता था। कहीं-कहीं शब्दों की तोड़-मरोड़ भी की गई है तथा नवीन शब्द गढ़े गए हैं, लोक-लोचन, जल से क, कृपाकांक्षित आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

५०. भाषा पर असाधारण अधिकार रखते हुए भी ऐसी अशुद्धियां हो गई हैं, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती यथा 'अलका' में एक सौ आठ पृष्ठ पर एक वाक्य दृष्टिगत होता है," राजा उनके घर में रखे हुए हैं[3]।" इसी प्रकार 'प्रभावती' में भी यह त्रुटि दिखाई पड़ती है," महाराज को दाहिने रखकर कक्ष से बढ़ती हुई कक्ष के बाहर हो गई[4]।" एक सजीव और सप्राण प्राणी के लिए इस

१- अलका, पृ० ३४,३६,६४,११०,१६०, २०० ।

२- अप्सरा, पृ० ८ ।

३- अलका, पृ० १०८ ।

४- प्रभावती, पृ० १०४

प्रकार का प्रयोग एकान्त अद्भुत है ।

५१. यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि 'निराला' का भाषा पर असाधारण अधिकार था, उनकी भाषा विषयानुरूपिणी तथा भावानुरूपिणी रही है, यही कारण है कि उनके यथार्थवादी कथा-साहित्य तथा रोमाण्टिक कथा-साहित्य की भाषा-शैली में असाधारण अन्तर है--दोनों की विषय-वस्तु तथा भाव-भूमियां तो एकांत भिन्न हैं ही अभिव्यक्ति में भी उतना ही वैषम्य दृष्टिगत होता है । पहले में भाषा अत्यन्त सरल और सुबोध है तथा दूसरे में काव्यात्मक भाषा का सौन्दर्याभिलिप्सन ।

अध्याय--१०

विचारधारा

१. साहित्यकार की मौलिक चिन्तना -शक्ति तथा उसकी वैचारिक प्रक्रिया वस्तुत: उसके सृजन की पृष्ठभूमि बनती है । साहित्यकार की स्वयं की अनुभूति ही सृजनात्मक क्षणों में मूल्यों और मान्यताओं का रूप धारण करती है । व्यक्ति,समाज तथा उसमें व्याप्त विभिन्न मान्यताओं के प्रति साहित्यकार का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण होता है, जिसके सम्बन्ध में वह परोक्ष या अपरोक्ष रूप से स्थापनायें करता चलता है । समाज में किस प्रकार के मूल्यों व मान्यताओं का वह आकांक्षी है, उसका संकेत भी वह प्रच्छन्न रूप से देता है । `निराला` की मूल प्रवृत्ति चिन्तन प्रधान है, अतएव उनकी सामाजिक,राजनीतिक , साहित्यिक तथा धार्मिक मान्यतायें तथा स्थापनायें गहन,गम्भीर चिन्तन से अनुप्राणित हैं ।

सामाजिक

२. `निराला` की चिन्तन शक्ति किसी भी वाद-विशेष से प्रभावित नहीं थी । वह मुख्यत: मानवतावादी विचारधारा के पोषक थे । संगठित मनुष्य-समुदाय को समाज की संज्ञा दी जाती है । सामाजिक परम्पराओं राजनीति के प्रति `निराला` का स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण रहा है । वस्तुत: वह अद्वैतवादी विचार-धारा के समर्थक थे, अतएव वह मानवमात्र में एकत्व और समानता के कांक्षी रहे । पुरुष और नारी दोनों के उन्मुक्त विकास से ही स्वस्थ,सुन्दर एवं कल्याण कर समाज का निर्माण होता है । समाज-व्यवस्था में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है, वह समाज-व्यवस्था का एक सशक्त आधार स्तम्भ है । नारी के प्रति जागरण शील भावों का उन्मेष `निराला` वाङ्मय में

मिलता है । उनके सम्पूर्ण साहित्य में भुवनमोहिनी ज्योतिस्वरूपा नारी की ही ज्योति प्रकाशित हो रही है, "साहित्य के प्रत्येक पृष्ठ में एक विकच नारी-मूर्ति तम के अतल प्रदेश से मृणाल-दंड की तरह अपने शत-शत दलों को संकुचित व संपुटित लेकर, बाहर आलोक के देश में, अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ता है । जहाँ में प्राण संचरित हो जाते, अरूप में भुवन-मोहिनी ज्योतिस्वरूपा नारी ।"[1]

३. 'निराला' के साहित्य में नारी का आदर्शमय रूप ही लिया गया है , लेकिन वह आदेश के बोझ से बोझिल नहीं हो गई है, वरन् उसमें स्वच्छन्द व्यक्तित्व और अस्तित्व का आलेखन भी 'निराला' ने किया है । वह भावनात्मक स्तर पर सोचती और मनन करती भी दृष्टिगत होती है । उन्होंने नारी के स्वतन्त्र उन्मुक्त व्यक्तित्व की कल्पना ही नहीं की वरन् काव्य और गद्य साहित्य में ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व से युक्त नारी-पात्रों को जिया भी है । नारी अक को शक्ति और प्रेरक के रूप में ही लिया गया है । नारी आवश्यकतानुसार शक्ति, देवी और सौन्दर्य की विभूति द्वारा समाज की मार्गदर्शिका भी बन जाती है, "नारी भावनामयी बन रूप के शिखर पर चिरकाल बैठी रहती है, अमर आक्रांत वह अनुपम मूर्ति माइकेल ऐंजेलो की भावना मूर्ति की तरह मनुष्य जाति के हृदय की जाग्रत देवी, शक्ति की अपार महिमा, सौन्दर्य की प्रेयसी प्रतिमा बनकर मनुष्य-समाज को स्वतन्त्र विचारों व की ओर मौन इंगित से बढ़ाती हुई ।"[2] वस्तुत: यही नारी-रूप सम्पूर्ण साहित्य में 'निराला' ने साकार किया है ।

४. पुरुष और नारी समाज-जीवन के दो अनिवार्य अंग हैं । पुरुष और नारी का परस्पर आकर्षण नैसर्गिक और मनोवैज्ञानिक है, यही कारण है कि 'निराला' ने उन्मुक्त प्रणय को प्रश्रय दिया है । पर उसमें उच्छृंखलता और अमर्यादा के लिए अवकाश नहीं है । उनके काव्य,कथा,निबन्धों आदि में उन्मुक्त प्रेम का यही स्वरूप देखा जा सकता है । प्रणय मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, अतएव प्रेम के त्यागमय उदात्त रूप को ही 'निराला' ने साकार किया है ।

१- निराला:प्रबन्ध पद्म, पृ० १५६

२- प्रबन्ध-पद्म: रूप और नारी, १९३४ई०, पृ० १५७

समाज की उन्मुक्त, स्वच्छन्द एवं निर्मल प्रगति के लिए वह नारी स्वतन्त्रता के पक्षपाती रहे हैं। उन्मुक्त प्रणय के लिए वह सामाजिक समस्त रूढ़ मान्यताओं का विरोध भी अवांछनीय नहीं मानते हैं। प्रेम का अलौकिक दैवी, मनसपरक रूप ही सर्वत्र व्याप्त है।

५. 'निराला' व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के समर्थक हैं, लेकिन उसकी सम्भावना कुंठाररहित वातावरण में ही सम्भव है, स्वतन्त्र होकर ही व्यक्ति और समाज का पूर्ण विकास सम्भव है। सामाजिक क्षेत्र में आलोच्य कवि सर्वाधिक क्रान्तिकारी और विद्रोही रहा है। उसने उन समस्त अमानवीय रूढ़ियों और सामाजिक अहमन्यताओं पर प्रहार किया जो मानवीय सद्गुणों के विकास में बाधक हैं। उसने मनुष्य-मात्र में सद् और असद् वृत्तियों का उद्घाटन किया है, क्योंकि दोनों का होना मनुष्य जीवन में अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति नितान्त बुरा या अच्छा नहीं होता, लेकिन सद्वृत्तियों का उद्घाटन ही सृजनकर्ता का गुण है। 'निराला' के उच्छिष्ट पात्र कुल्ली भाट, बिल्लेसुरबकरिहा, चतुरी चमार आदि में मानवता का चरमोत्कर्ष दिखाया गया है। लेखक को कुल्लीभाट में मानवता रह रह कर विकसित होते दृष्टिगत होती है। यह निम्नवर्गीयपात्र मानवमात्र की एकता तथा मनुष्यमात्र के प्रति सहानुभूति रखते हैं। कुल्ली भाट, पासी, चमार आदि के बच्चों की शिक्षा के लिए पाठशाला का निर्माण करता है, 'कुल्ली के कुटीनुमा बंगले के भीतर टाट बिछा है। उसपर अछूत लड़के श्रद्धा की मूर्ति बने बैठे हैं, आँखों से निर्मल रश्मि निकल रही है। कुल्ली आनन्द की मूर्ति साक्षात् आचार्य। काफी लड़के।.... बिल्कुल तपोवन का दृश्य।.... अधिक न सोच सका। मालूम दिया जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है, व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है, इतने गीदड़ों में वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं। उसने जो कुछ किया है, सत्य समझ कर मुख-मुख पर उसकी छाप लगी हुई है। ये इतने दीन दूसरे के द्वार पर क्यों नहीं दिखते।'[१] समाज के उपेक्षित वर्ग

१- कुल्लीभाट, पृ० १०५-१०६।

के प्रति लेखक की हार्दिक सहानुभूति और संवेदना की उद्घोषणा करता है । दीन दुखियों , पददलितों में मानवता का अद्वितीय विकास का आभास पाना `निराला` की ही क्षमता थी । वह उन धनी मानी अहंवादी व्यक्तियों के प्रति सदैव ही अनुदार रहे हैं जो निम्न और उपेक्षित वर्ग को सदैव हेय दृष्टि से देखते हैं । इसी पृष्ठभूमि पर उन्होंने तथाकथित शोषक जमींदार, महाजन, जागीरदारों,राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य प्रहार किया है ।

६. स्वच्छन्द उन्मुक्त वातावरण के पक्षपाती `निराला` वर्ग - वैषम्य तथा रंगभेद की नीति को किस प्रकार प्रश्रय दे सकते हैं थे । जातीयता के संकीर्ण गह्वर में आबद्ध होना उन्हें उचित नहीं प्रतीत होता, इनके निराकरण की कामना करते उनको देखा जा सकता है --

`दूर हो अभिमान,संशय,
वर्ण-आश्रम-गत महामय,
जाति-जीवन हो निरामय
वह सदाशयता प्रखर दो ।`[१]

वह किसी विशिष्ट जाति में जन्म लेने के कारण उस जाति के गुणों के अभाव में ही उस विशिष्ट वर्ण की संज्ञा देने के पक्षपाती नहीं थे, वरन् वह कर्मानुसार ही वर्णों का विभाजन चाहते थे । यद्यपि वर्ण-व्यवस्था को उन्होंने सामाजिक - व्यवस्था के लिए आवश्यक माना है । `निराला` का जीवन-दर्शन अत्यन्त स्वस्थ, यथार्थ एवं मानवीय था । मनुष्यमात्र में उन्होंने साधना,तपस्या और त्याग को महत्व प्रदान किया है । `अलका` उपन्यास में स्नेहशंकर का वक्तव्य आलोच्य साहित्यकार की इसी मान्यता की पुष्टि करता है, `शक्ति के संयम में जितना दु:ख जितनी साधना है, उतना दु:ख, उतनी साधना केवल शक्तियों की प्रतिक्रिया में नहीं ।`[२] त्याग,तपस्या और उत्सर्ग मनुष्य-जीवन को महानतम बनाते हैं,वस्तुत: `निराला` द्वारा कल्पित समाज व्यवस्था में मानवमात्र के उन्मुक्त विकास की आशंसा है ।

१- अणिमा, पृ० १६

२- अलका, पृ० ५८-५९ ।

राजनीतिक

७. राजनीति के सम्बन्ध में 'निराला' ने कोई निश्चित स्थापना नहीं की है, परन्तु तथाकथित राजनीतिक नेताओं के प्रति व्यंग्य-प्रहारों तथा राष्ट्र की प्रगति के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये समाधानों से उनकी राजनीतिक विचारधारा का अनुमान लगाया जा सकता है । उनकी राजनीतिक विचारधारा व्यावहारिक होने की अपेक्षा भावात्मक अधिक है । वस्तुत: वह बाह्य राजनीतिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती नहीं थे । उनकी दृष्टि में राजनीतिक नेताओं द्वारा जो निजी स्वार्थ को लक्ष्य में रखकर कार्य होता है, उससे देश को लाभ होता हो, ऐसी बात नहीं है, वरन् उससे कुछ विशिष्ट मान्य लोगों को ही लाभ रहता है । जन-जागृति के लिए वह राजनीतिक नेताओं द्वारा रचनात्मक कार्य को अधिक मान्यता देते हैं अपेक्षाकृत उनके जेल जाने के । उनके जेल वास से देश का कुछ भी हित-साधन होता हो, ऐसी बात नहीं है । यदि यही नेता निश्छल तथा नि:स्वार्थ भाव से दृढ़ निष्ठा और आस्था से तथा जन कल्याण की मंगल कामना से प्रेरित होकर जन-जन की सुख-सुविधा का लक्ष्य अपनाएंगे तो 'निराला' की दृष्टि में राष्ट्र की और भी सम्यक तथा द्रुतगति से उन्नति सम्भव हो सकेगी । देश स्वावलम्बी बनेगा, देश का प्रत्येक नागरिक स्व अधिकारों और कर्तव्यों से अवगत होगा । राष्ट्र का सर्वाधिक प्रामाणिक सेवक वही है, जो ईमानदारी के साथ अपने कार्य में दत्तचित्त रहता है । 'अलका' उपन्यास में स्नेहशंकर के माध्यम से 'निराला' की इसी विचारधारा को समर्थन मिला है । 'लेखक के नेता सम्बन्धी विचारों से राजनीतिक विचारधारा की ही स्थापना होती है, यथा' सभी विषयों की संकलित ज्ञान-राशि का भाव नेता है । इसीलिए किसी भी तरफ का भरा-पुरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है । पर देश में यह बात हो नहीं रही है ।....एक को पैतृक सम्पत्ति मिलेगी । पिता जज थे । पूर्ण शिक्षा भी मिली क्योंकि अब रुपये से शिक्षा का ताउल्लुक है। वह इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देशों से शिक्षोत्कर्ष पदवियों के हीरों का हार पहन कर स्वदेश लौटे । बैरिस्टर हुए । दो करोड़ रुपया अर्जित किया । अन्त में दस लाख देश को दान कर दिया , कोने कोने तक नाम फैल गया । पत्र यशोगान करने लगे । वह देश के नेता हो गए । एक-दूसरे को केवल बैल, हल और

मुसल पैतृक चल सम्पत्ति मिली, और शिकमी जोत सिर्फ दस बीघे जमीन । वह हल और माची कंधे पर लाद कर, एक प्रहर रात रहते, खेतों में जाता, शाम तक जोतता, दोपहर वहीं नहा कर भोजन करता, घंटे भर छांह में बैल चारा खाते, तब तक अपनी प्रिया से खेती की बातचीत करता । शाम को काम कर घर लौटता है । एड़ी-चोटी का पसीना एक करके, मुश्किल से भरपेट खाने को पाता । लगान चुकाता । भिक्षुक को भीख देता और फसल न होने पर जमींदार के कोड़े सहता । कभी-कभी उन्हीं की कृपा से कचहरी जा बैरिस्टर साहब को भी कुछ देता । जमींदार, पुलिस, कचहरी समाज, सभी जगह वह नीच अधम मनुष्य की पदवी से रहित, ठोकरें खाने वाला है । कोई देख न ले और रोने का मतलब और न सोचे इसीलिए खुलकर नहीं रोता । एकान्त में ईश्वर को पुकार, शून्य देख, दु:ख के आंसू पीकर रह जाता है । तमाम उम्र उसने ऐसे ही पार की । छोटी सी सीमा के बाहर कोई इसे नहीं पहचानता । सदा इसके सिर पर समाज, राजनीति, धर्म और मनुष्य रूप राक्षसों से मिले दु:खों का पहाड़ रखा हुआ है[1] ।" इस किसान को 'निराला' एक नेता के समान ही श्रेष्ठत्व प्रदान करते हैं । यह कर्मशील तपस्वी किसान उन गण्यमान्य नेताओं से राष्ट्र का अधिक सक्रिय कार्यकर्ता है जो वोट को लक्ष्य में रख टूट-फूट स्थूल कार्य करते हैं, 'कनबेला' तथा 'नये पत्ते' के कतिपय मुक्तकों में लेखक इन स्वार्थान्ध राजनीतिक नेताओं पर कटु व्यंग्य प्रहार करता है । इन स्वार्थी नेताओं का न तो अपने स्वदेश के प्रति अनुराग है और न अपने देशवासियों के प्रति लगाव ही ।

८. देश के गण्यमान्य नेताओं द्वारा आलोच्य साहित्यकार जन-जागरण का उद्घोष करना चाहता है, लेकिन इसके लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि, " किसी भी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क में होता होता है, जहां मस्तिष्क ही नहीं, वहां नेता की आवाज़ का क्या असर हो सकता है ।" देश की स्वतन्त्रता एक मिश्र विषय है, लेखक की मान्यता है कि केवल राजनीतिक स्वतन्त्रता ही देश के लिए पर्याप्त नहीं, वरन् समग्र क्षेत्रों में

१- अलका, पृ० ४६-४७

उसे स्वतन्त्र होना चाहिए, देश की व्यापक स्वतन्त्रता को सब तरफ की पुष्टि चाहिए। जब तक सब अंगों से समान पूर्णता नहीं होती, तब तक स्वतन्त्र शरीर संगठित नहीं हो सकता ।... हमारे यहां तो कानुन के बिल पर राजनीतिक स्वतन्त्रता हासिल की जा रही है । संवाद-पत्रों में कानुन के जानकारों का विज्ञापन होता है -- वे ही देश के सर्वोत्तम मनुष्य हैं...... संवाद पत्रों में स्वतन्त्रता का व्यवसाय होता है । सम्पादक ऐसी स्वाधीनता के ढोल हैं, जो केवल बजते हैं, बोल के अर्थ, ताल, गति नहीं जानते अर्थात् उनके भीतर वैसी ही पोल भी है । वे दूसरे के हाथों की थपकियों से मधुर बोलते हैं-- जनता वाह वाह करती है, और बजने वाले देवता को पुष्प माला लेकर यथाभ्यास जैसा झुकाया गया, पूजने को दौड़ती है । यह स्वतन्त्रता का परिणाम नहीं ।[1] `निराला` की राजनीतिक विचारधारा में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था का पूर्ण समाहार मिलता है । वह जीवन के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता और समानता के पक्षपाती रहे हैं, उनकी राजनीतिक विचारधारा में राष्ट्र के समग्र जीवन के विकास का आलेखन है ।

साहित्यिक

६. `निराला` की सृजनात्मक विचारधारा अत्यन्त व्यापक और उदार रही है । उनका किसी भी क्षेत्र में संकुचित दृष्टिकोण नहीं रहा । साहित्य में मानव मात्र के उत्कर्ष का भाव अन्तर्निहित रहता है, यही कारण है कि `निराला` ने सभी भावों का समाहार एक उच्चकोटि के साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है, साहित्य में अनेक दृष्टियों का एक साथ रहना अत्यावश्यक है, नहीं तो दिग्भ्रम होने का डर है । इसलिए मैंने तमाम भावों को एक साथ पूजा करने का समर्थन किया है ।... साहित्य का उद्देश्य सार्वभौमिक करना है, संकीर्ण एकदेशीय नहीं ।[2] उत्कृष्ट साहित्य की स्थापना शाश्वत

१- अलका, पृ० ४४

२- चाबुक, पृ० ६२

मानव मूल्यों पर होती है, जो देश काल सीमा किसी भी आवरण में आबद्ध नहीं रहता। सत् साहित्य देव ही देश-काल रहित होता है। स्वदेशिकभाव से बोझिल साहित्य से मानवमात्र का साधारणीकरण नहीं हो सकता। 'निराला' की स्वयं की स्थापना है कि "साहित्य कभी भी दायरे की भावना में बांधकर सर्वोत्तम नहीं कहला सकता, न आजकल कहला सका। साहित्य के सामने मनुष्यमात्र के कल्याण का लक्ष्य है।...... साहित्य दायरे से छूटकर ही साहित्य है। साहित्य वह है जो साथ है, वह है जो संसार की सबसे बड़ी चीज़ है। साहित्य लोक से, सीमा से, प्रान्त से, देश से ऊंचा उठा हुआ है। इसीलिए वह लोकोत्तरानन्द दे सकता है। लोकोत्तर का अर्थ है, लोक जो कुछ देख पड़ता है, उससे और दूर तक पहुंचा हुआ। ऐसा साहित्य मनुष्य मात्र का साहित्य है, भावों से केवल भाषा का एक देशगत आवरण उस पर रहता है[1]।" इससे साहित्यकार के महत् उत्तरदायित्व की कल्पना सहज ही की जा सकती है। उसको अपने चिन्तन, अनुभूति तथा दृष्टिकोण को सार्वभौम आधार से पुष्ट करना होता है, इसीलिए साहित्यिक मनुष्य की प्रकृति को ही श्रेय देता है। उनके विचार से हर मनुष्य जब अपने ही प्रिय मार्ग पर चलकर अपनी स्वाभाविक वृत्ति को कला-शिक्षा के भीतर से अधिक मार्जित कर लेगा, और इस तरह देश में अधिक कृतिकार पैदा होंगे तब सामूहिक उन्नति के साथ ही साथ काम्य स्वतन्त्रता आप ही आप प्राप्त होती है। यौवन की परिणति की तरह[2]।"

१०. 'निराला' का साहित्य 'कला के लिए कला' की उक्ति को चरितार्थ नहीं करता। वे कला में सत् और असत् देव और असुर भावों का मिश्रण आवश्यक मानता है। मानव-मात्र में इन दो प्रधान भावों का अद्भुत सम्मिश्रण रहता है। किसी भी साहित्यिक कृति में इन विरोधी भावों की अवतारणा से अभिनव सौन्दर्य की सृष्टि होती है, लेकिन साहित्यिक के प्रधान साधन सत् चित और आनन्द तथा उसका लक्ष्य अस्ति, भाति तथा प्रिय पर ही केन्द्रित

१- प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० २५३,२५८-२५६।

२- प्रबन्ध पद्म, -- हमारे साहित्य का ध्येय, पृ० १५६।

रहता है । ~~स्वतः है~~ `निराला` ने स्वयं अपने काव्य में रूप को अरूप में तथा समष्टि की व्यष्टि के सुख-दु:ख में परिसमाप्ति की है । मनुष्य-मन की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति काव्य है । साहित्य किसी उद्देश्य की पुष्टि के लिए नहीं आता वह स्वयं सृष्टि है, ऐसी मान्यता को लेकर वह अग्रसर होते हैं ।

धार्मिक

११. धार्मिक क्षेत्र में भी उनका स्वच्छन्दतावादी और विद्रोही दृष्टिकोण रहा था । वह धार्मिक रूढ़ बाह्याडम्बरों के विध्वंसक रहे, उन्होंने तंत्र-मंत्र तथा मूर्ति-पूजा को मान्यता प्रदान नहीं की, धर्म के नाम पर स्थापित विधि-निषेधों की तो उन्होंने घोर निन्दा तथा विरोध किया । मनुष्यमात्र में ईश्वर की कल्पना करने वाले `निराला` पत्थर की भगवान की अर्चा को कैसे मान्यता प्रदान कर सकते थे । बानर में हनुमान का रूप साकार करने वाले विप्रवर की उन्होंने `अनामिका` की `दान` शीर्षक कविता में खूब ~~खिल्ली~~ खिल्ली उड़ाई है, जिसमें धार्मिक आस्था से युक्त विप्रवर क्षुधा से पीड़ित जर्जर हुए मानव की उपेक्षा कर अपनी कामना पूर्ति के लिए बानर को सहर्ष पुए खिलाता है ।

१२. कतिपय धर्म के नाम पर होने वाले बाह्याचारों तथा रूढ़ विधानों की भी उपेक्षा की गई है । `लिली` संग्रह की `अर्थ` कहानी में एक ऐसे अंध विश्वासी नायक की कथा है, जो मात्र जप और पूजा-पाठ के आधार पर ही अपनी जीविका चलाना चाहता है । लेखक ने इसमें हास्य-व्यंग्य की स्थापना कर इस बात की पुष्टि की है कि कर्म किए बिना संसार में सफलता पा सकना सम्भव नहीं । धर्म के नाम पर होने वाले कुकृत्यों और कर्मकाण्डों को उन्होंने घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखा है । बाह्य आचार-विचार की अपेक्षा `निराला` आत्मिक शुद्धि और सत्यता पर आग्रह रखते थे । उन्होंने स्वयं अपने जीवन में बहुत से धर्म के नाम पर होने वाले कार्यों की अवमानना की थी । इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह नास्तिक थे और भगवान के अस्तित्व को स्वीकार न करते हों, परन्तु वह विवेकानन्द की तरह प्रत्येक मानव में उस ब्रह्म का ही साक्षात्कार करते थे । उनकी धर्म की पृष्ठभूमि अत्यधिक व्यापक और विस्तृत थी ।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा धार्मिक किसी भी क्षेत्र में वह रूढ़ मान्यताओं के अनुगामी नहीं रहे । पुरातन और नवीनता के वह अभिनव सम्मिश्रण थे, केवल विध्वंसक ही नहीं, सर्जक भी थे ।

तृतीय खण्ड

निबन्ध तथा स्फुट गद्य-साहित्य

अध्याय -- ११

'निराला' का निबन्ध-साहित्य

निबन्ध

१. निबन्ध गद्य-साहित्य की सर्वाधिक सशक्त कसौटी है, तथा साहित्यकार के व्यक्तित्व की पूर्ण प्रामाणिकता । अभिव्यक्ति की आत्मीयता निबन्ध की सहजता का आवश्यक लक्षण है । निबन्धों के माध्यम से सृजनकर्ता का व्यक्तित्व उन्मुक्त रूप से अभिव्यक्ति पाता है । निबन्ध अंग्रेज़ी शब्द 'एसे' का पर्याय है । यह एक ऐसी विधा है, जिसको एक निश्चित परिभाषा के अन्तर्गत बांध सकना सम्भव नहीं, क्योंकि इस विधा में प्रत्येक निबन्धकार अपनी मौलिक पद्धति का अनुसरण करता है । जानसन ने 'एसे' को मुक्त मन की मौज अनियमित, अपक्व-सी रचना न कि नियमबद्ध और व्यवस्थित कृति की परिभाषा में प्रयुक्त किया है । स्पष्ट है, निबन्ध जैसी रचना में लेखक को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, स्वच्छन्दतापूर्वक हृदय की बात को अभिव्यक्त करने का अवकाश रहता है । स्वच्छन्दता, सरलता, आडम्बरहीनता तथा आत्मीयता निबन्ध के अनिवार्य अंग हैं पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें कोई नियम नहीं रहता वस्तुतः इसका नियमराहित्य ही इसका सबसे बड़ा बन्धन और व्यवस्था है ।

२. विषय या शैली की दृष्टि से निबन्धों का क्षेत्र बहुत व्यापक है । अतएव इनका वर्गीकरण भी विभिन्न वर्गों में किया जाता है । प्रधान रूप से निबन्धों को दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है -- एक, आत्मपरक दूसरी, वस्तुपरक । निबन्ध में व्यक्तित्व के प्रकाशन का पर्याप्त अवकाश रहता है । लेखक के स्व की प्रधानता ही उसे आत्मपरकता की संज्ञा प्रदान करती है । तथा वस्तु

की प्रधानता वस्तुपरकता की । पर इसका यह आशय नहीं कि वस्तुपरक निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की उपस्थिति रहती ही नहीं । दोनों ही श्रेणी के निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की उपस्थिति निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है । आत्मपरक निबन्धों में भावात्मक तथा विचारात्मक दो प्रकार होते हैं । इसी प्रकार वस्तुपरक निबन्धों के भी विवरणात्मक तथा वर्णनात्मक दो भेद हो जाते हैं । विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्धों में व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रभाव रहता है । विवरणात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध निर्वैयक्तिक होते हैं , लेखक पृष्ठभूमि में रहता है, एवं विषय की प्रधानता रहती है । शैली के अतिरिक्त निबन्धों में वर्णित विषयवस्तु के आधार पर भी निबन्धों का विभाजन किया जाता है । यदि निबन्ध में वर्णित विषय सामाजिक हुआ तो उसे सामाजिक निबन्ध से अभिहित कर दिया जाता है, यदि वर्णित विषय दर्शन प्रधान हुआ तो उसे दार्शनिक निबन्ध की संज्ञा दे दी जाती है । इसी तरह राजनीतिक, साहित्यिक निबन्धों की भी कोटियां बना दी जाती हैं ।

३. `निराला` उच्चकोटि के कवि ही नहीं, सफल गद्य-लेखक भी थे । उनके सृजन को कहानी , उपन्यास, निबन्ध सभी में हम बिखरा हुआ पाते हैं । प्रस्तुत परिच्छेद में उपर्युक्त निबन्धों की परिभाषा के अन्तर्गत ही `निराला` के निबन्धों की विवेचना अभिप्रेत है। `निराला` के पांच संग्रह हैं -- `प्रबन्ध पद्म(१६३४) `प्रबन्ध-प्रतिमा` (१६४०), `चाबुक` (?), `चयन` (१६५७) तथा `संग्रह` (१६६२)। `हिन्दी निबन्ध का विकास`[१] नामक पुस्तक में डा० ओंकारनाथ शर्मा ने `प्रबन्ध पूर्णिमा`, `समीक्षात्मक कृति` तथा `प्रबन्ध पद्म` (दो भाग), निबन्ध संग्रहों का भी उल्लेख किया है । परन्तु दुर्भाग्यवश पर्याप्त खोज के पश्चात् भी यह संग्रह उपलब्ध न हो सके । इन निबन्ध संग्रहों के अतिरिक्त कतिपय सामग्री पत्र-पत्रिकाओं में भी उपलब्ध होती है । निबन्धों के साथ-साथ संस्मरण तथा पुस्तक-परिचय भी उनकी लेखनी द्वारा निःसृत हुए हैं । पुस्तक-परिचय ~~भी उनकी लेखनी~~ निबन्ध कोटि के न होते हुए भी लेखक की गद्य आलोचना शैली का एक पक्ष अवश्य है । `निराला` ने संपादन

१- डा० ओंकारनाथ शर्मा: हिन्दी निबन्ध का विकास ,कानपुर,१६६४,पृ० २२२

की प्रधानता वस्तुपरकता की । पर इसका यह आशय नहीं कि वस्तुपरक निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की उपस्थिति रहती ही नहीं । दोनों ही श्रेणी के निबन्धों में लेखक के व्यक्तित्व की उपस्थिति निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है । आत्मपरक निबन्धों में भावात्मक तथा विचारात्मक दो प्रकार होते हैं । इसी प्रकार वस्तुपरक निबन्धों के भी विवरणात्मक तथा वर्णनात्मक दो भेद हो जाते हैं । विचारात्मक तथा भावात्मक निबन्धों में व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष प्रभाव रहता है । विवरणात्मक तथा वर्णनात्मक निबन्ध निर्वैयक्तिक होते हैं , लेखक पृष्ठभूमि में रहता है, एवं विषय की प्रधानता रहती है । शैली के अतिरिक्त निबन्धों में वर्णित विषयवस्तु के आधार पर भी निबन्धों का विभाजन किया जाता है । यदि निबन्ध में वर्णित विषय सामाजिक हुआ तो उसे सामाजिक निबन्ध से अभिहित कर दिया जाता है, यदि वर्णित विषय दर्शन प्रधान हुआ तो उसे दार्शनिक निबन्ध की संज्ञा दे दी जाती है । इसी तरह राजनीतिक, साहित्यिक निबन्धों की भी कोटियां बना दी जाती हैं ।

३. ‘निराला’ उच्चकोटि के कवि ही नहीं, सफल गद्य-लेखक भी थे । उनके सृजन को कहानी , उपन्यास, निबन्ध सभी में हम बिखरा हुआ पाते हैं । प्रस्तुत परिच्छेद में उपर्युक्त निबन्धों की परिभाषा के अन्तर्गत ही ‘निराला’ के निबन्धों की विवेचना अभिप्रेत है। ‘निराला’ के पांच संग्रह हैं -- ‘प्रबन्ध पद्म(१९३४) ‘प्रबन्ध-प्रतिमा’ (१९४०), ‘चाबुक’ (?), ‘चयन’ (१९५७) तथा ‘संग्रह’ (१९६२)। ‘हिन्दी निबन्ध का विकास’[1] नामक पुस्तक में डा० ओंकारनाथ शर्मा ने ‘प्रबन्ध पूर्णिमा’, ‘समीक्षात्मक कृति’ तथा ‘प्रबन्ध पद्म’ (दो भाग), निबन्ध संग्रहों का भी उल्लेख किया है । परन्तु दुर्भाग्यवश पर्याप्त खोज के पश्चात् भी यह संग्रह उपलब्ध न हो सके । इन निबन्ध संग्रहों के अतिरिक्त कतिपय सामग्री पत्र-पत्रिकाओं में भी उपलब्ध होती है । निबन्धों के साथ-साथ संस्मरण तथा पुस्तक-परिचय भी उनकी लेखनी द्वारा निःसृत हुए हैं । पुस्तक-परिचय ~~भी उनकी लेखनी~~ निबन्ध कोटि के न होते हुए भी लेखक की गद्य आलोचना शैली का एक पक्ष अवश्य है । ‘निराला’ ने संपादन

१- डा० ओंकारनाथ शर्मा: हिन्दी निबन्ध का विकास ,कानपुर,१९६४,पृ० २२२

कार्य भी किया था । अतएव उन्हें लेखकों द्वारा प्रेषित समालोचना की पुस्तकों के विषय में कुछ-न-कुछ अवश्य ही लिखना पड़ता था । मुख्य बात जो ध्यान आकर्षित करती है, वह है -- लेखक की ईमानदारी, निष्पक्षता तथा तटस्थ दृष्टिकोण ।

`निराला` निबन्ध की सामान्य प्रवृत्तियां

४. `निराला` निबन्धों के क्षेत्र में भी असाधारण सफलता प्राप्त कर सके हैं । उनके निबन्धों के माध्यम से उनका उद्दाम व्यक्तित्व स्वत: द्रष्टव्य है । किसी भी प्रकार का दुराव या आडम्बर नहीं, अपूर्व अपनापन, सरलता और घनिष्टता का बोध पाठकों को होता है । वह पाठकों के साथ आत्मीयता का निर्वाह सफलतापूर्वक कर सके हैं । यही कारण है कि निबन्धों के माध्यम से उनका व्यक्तित्व अबाध रूप से बिखरा है । कतिपय निबन्धों में तो कहानी की-सी रोचकता का आभास मिलता है । `मौन कवि` निबन्ध का अधिकांश भाग लेखक के स्वयं के रोचक संस्मरणों से पूर्ण है । रोचकता के साथ ही अपूर्व अपनत्व का भाव भी सहज ही अनुभव होने लगता है । निबन्धों के माध्यम से लेखक की चिन्ताधारा का ज्ञान हो जाता है । `निराला` के निबन्धों में पाण्डित्य प्रदर्शन का भाव नहीं प्रतीत होता, यद्यपि सूक्ष्म विवेचना के कारण किसी-किसी निबन्ध में अत्यधिक गाम्भीर्य का बोध होने लगता है, इसका कारण उनका अथाह ज्ञान-भण्डार है । परन्तु अधिकांशत: उन्होंने अपने प्रतिपाद्य विषय तथा प्रस्तुतीकरण में सहजता का समावेश करने का प्रयास किया है । लेखक के उद्दाम व्यक्तित्व की प्रामाणिकता स्वयं उनकी उद्घोषणा से मिल जाती है, --" लेखों में अज्ञान,हेकड़ी,असाहित्यिकता के भी निदर्शन हैं । मैं चाहता तो इस समय कुछ अंशों में उनकी नोकें मार देता, पर मनुष्य ज्ञान नहीं, इसलिए दुर्बलता की पहचान मैंने रहने दी । इसका दर्शन दुर्बलता न होकर सबलता भी हो सकता है, कारण उस भाषा- उस प्रकाशन का एक कारण भी तब निकलेगा ।[१]" प्रस्तुत उद्धरण से लेखक की ईमानदारी के साथ-साथ उसकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का भी परिचय हो जाता है तथा उनके व्यक्तित्व की सिद्धांतमयता

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा--भूमिका, सन् १९४०, पृ० २

और दृढ़ता की भी पुष्टि होती है ।

५. `निराला` ने व्यक्तिगत द्वेष से प्रेरित होकर कभी नहीं लिखा, केवल सैद्धांतिक पक्ष को लेकर ही उनकी आलोचना-प्रत्यालोचना चलती थी और सबसे मुख्य बात तो यह कि आलोचित व्यक्ति के प्रति किसी भी प्रकार की कटुता वह संजो नहीं पाते थे । राजनीतिक नेताओं से उनका वाक्-युद्ध हिन्दी के प्रश्न को लेकर ही हुआ था अन्यथा वह गांधी जी के प्रशंसक थे । हिन्दी के प्रश्न को लेकर गांधी जी से कटु व्यवहार करने वाला लेखक `चरखा` नामक निबन्ध में रवीन्द्र के विरोध में उनका प्रबल समर्थक बन जाता है । इसी तरह `चरखा` नामक निबन्ध में कटु रूप में आलोचित रवीन्द्रनाथ की श्रेष्ठता की स्थापना करते हुए उन्हें कतिपय स्थानों पर रख देखा जा सकता है । `रवीन्द्र कविता कानन` तो रवीन्द्र के प्रति उनकी श्रद्धा भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण ही है । रवीन्द्रनाथ को वह विश्व कवि की मान्यता देते हैं । लेखक की समालोचना केवल युक्ति पर ही आधारित रही है । यही कारण है कि उनके व्यवहार में विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय एक साथ मिलता है । महात्मा गांधी तथा रवीन्द्र नाथ की एक साथ विरोध और समर्थन इस सत्य की पुष्टि करता है । इसका समर्थन उनके स्वयं के कथन से भी हो जाता है --`...हमारे लिए दोनों ही आवश्यक हैं, दोनों ही हमारे अपने हैं । महात्मा जी इस जीर्ण जाति के प्राण हैं और कवि सम्राट इसके गौरव-मुकुट इसकी जीर्ण दशा में भी अपनी ज्योति संसार को चकित करने वाली दोनों की महत्ता के हम कायल हैं, किन्तु विचार प्रसंग छेड़कर हम युक्ति का साथ किसी तरह नहीं छोड़ सकते ।[1]` पंत जी भी केवल सैद्धांतिक रूप से ही आलोचित हैं, `मेरा मतलब पंत जी पर अकारण आक्रमण करना नहीं, जिस विषय पर `पल्लव` के `प्रवेश` में उन्होंने एक पंक्ति नहीं लिखी --उधर दूसरों की समालोचना में अत्युक्ति से अत्युक्ति कर डाली है, उस विषय का साहित्य में अनुल्लिखित रह जाना मुझे बुरा जान पड़ा ।[2]` वस्तुत: `निराला` का हृदय सत्य को सहज और निरपेक्ष भाव से ग्रहण करने की क्षमता रखता था ।

१- `निराला` : प्रबन्ध प्रतिमा--`चरखा`, १९४०, पृ० ७

२- निराला : प्रबन्ध पद्म--`पंत और पल्लव`, १९३४, पृ० ८१-८२

`निराला` : निबन्धों का वर्गीकरण

६. `निराला` के निबन्धों में व्याप्त सामान्य प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात कर लेने के पश्चात् समालोचना के लिए उनके निबन्धों का वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है । `निराला` के निबन्धों को विषय और शैली की दृष्टि से ही वर्गीकृत किया गया है । प्रथमत: शैली के अन्तर्गत उनके निबन्धों का विवेचन किया जायगा , तत्पश्चात् विषय-वस्तु के आधार पर ।

विचारात्मक निबन्ध

७. `निराला` के अधिकांशत: निबन्ध विचारात्मक और चिन्तन प्रधान शैली में लिखे गए हैं । इस प्रकार के निबन्धों में तर्क-वितर्क तथा मननशीलता की प्रधानता रहती है, किसी भी सामाजिक,ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक विषय पर लिखा निबन्ध इस श्रेणी में समाविष्ट किया जा सकता है । यदि उस निबन्ध में लेखक ने सूक्ष्म चिन्तन-शक्ति का प्रयोग किया हो । `निराला` के नाटक-समस्या` ,`अधिकार समस्या` , `रचना-सौष्ठव` , `भाषा विज्ञान` , `बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां` ,`साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म` , `मेरे गीत और कला`[१] , `शून्य और शक्ति` , `साहित्य और भाषा` , `एक बात` , `राष्ट्र और नारी` `पंत और पल्लव` , `रूप और नारी` , `हमारे साहित्य का ध्येय` , `काव्य में रूप और अरूप` , `साहित्य का फूल अपने ही वृन्त पर` , `मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य`[२] , `काव्य-साहित्य` , `कला और देवियां` , `वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति`[३], `भाषा की गति और हिन्दी की शैली` , साहित्य की समतल भूमि` , `हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति` , `खड़ी बोली के कवि और कवित्व`[५] , `काव्य साहित्य`[४] , `बाहर और भीतर` , `प्रवाह` , `दो महाकवि` तथा `सौन्दर्य दर्शन और कवि -कौशल`[६] आदि निबन्धों को विचारात्मक कोटि के निबन्धों में स्वीकृत

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा
२- ,, प्रबन्ध पद्म
३- ,, चाबुक
४- ,, चयन
५- ,, संग्रह
६- पत्रिका : `सरोज` (जून १६२८,पृ० ७४)

स्वीकृत किया जा सकता है । 'निराला' के इन निबन्धों में सूक्ष्म विश्लेषणात्मक बुद्धि के साथ-साथ विषय प्रतिपादन की सूक्ष्मता का अप्रतिम संकेत भी मिलता है ।

८. लेखक के राष्ट्रभाषा के विषय को दृष्टि में रखकर लिखे गए निबन्ध महत्वपूर्ण हैं । 'निराला' की दूरदर्शी बुद्धि ने भाषा सम्बन्धी उन सभी विषयों का आकलन कर लिया था, जिसका सामना देश को स्वाधीनता प्राप्ति के बाद करना पड़ा । हिन्दी को ही वह एकमात्र राष्ट्रभाषा पद का अधिकारी स्वीकार करते थे । 'राष्ट्रभाषा' पद को ग्रहण करने के पश्चात् हिन्दी का क्या स्वरूप होना चाहिए, हिन्दी के स्वरूप को व्यापक बनाने में किन किन रीतियों और प्रयोग की आवश्यकता है । भाषा सम्बन्धी उन सभी मूलभूत समस्याओं पर उन्होंने व्यापक सुझाव दिए हैं । वह कतिपय सुधारकों और राजनीतिज्ञों की तरह भाषा को सरल और असंस्कृत करने के पक्ष में नहीं थे, उसके विपरीत वह शिक्षा की भूमि को ही विस्तृत करना चाहते थे, "जिससे अनेक शब्दों का ज्ञान लोगों को हो, जनता ऊँचे सोपान पर चढ़े[1]।" साहित्य की दृष्टि से भी भाषा का सरलतम होना सम्भव नहीं । साहित्य का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है, उसको सीमा के अन्तर्गत नहीं बांधा जा सकता, "ऊंचा साहित्य यानी ऊंचे भावों से भरा हुआ साहित्य कभी देश-काल या संख्या में नहीं रहा, और उसी से देश,काल और संख्या का अब तक यथार्थ कल्याण हुआ है । उन प्राचीन बड़े-बड़े साहित्यिकों की भाषा कभी जनता की भाषा नहीं रही । सोलह आने में चार आने जनता के लायक रहना साहित्य का ही स्वभाव है[2]।" लेखक साहित्य में भावों की उच्चता पर ही बल देता है । जन-साधारण के स्तर को दृष्टिकोण में रख कर साहित्य के स्तर को गिरा कर अवनति ही होगी । आवश्यकता है, जनता के बौद्धिक विकास की । इसके विपरीत असमस्त शब्दों या सरल भाषा में लिखी हुई पुस्तकों से न तो राष्ट्रभाषा का उद्धार ही होगा और न हिन्दू-मुस्लिम भावना में समन्वय ही ।

६. 'निराला' का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण संकुचित नहीं था, इस

१- निराला: प्रबन्ध पद्म -- 'साहित्य और भाषा', १६३४, पृ०६

२- वही०, पृ० १०

सम्बन्ध में उनके बहुत ही उदार विचार थे, वह भाषा के विकास के लिए किसी भी प्रकार की लक्ष्मण रेखा स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। भाषा के उन्मुक्त विकास के लिए उसे भिन्न-भिन्न भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए। भाषा सदैव ही प्रगतिशील और परिवर्तन शील रही है, यह उसका स्वभाव है। उदाहरण के लिए चन्द,तुलसी,सूर,भूषण,मतिराम, आदि की भाषा का स्वरूप आज भी आधुनिक भाषा - शैली में नहीं उपलब्ध होता, 'हिन्दी की आधुनिक शैली में शब्द-योजना और पद प्रकरण अनेक प्रकार के किए गए हैं। पद प्रकरण में अधिक प्रभाव बंगला और अंग्रेजी का पड़ा है... अंग्रेजी का असर पड़ा उसके राजभाषा होने के कारण .... अंग्रेजी बंगला, उर्दू या किसी उन्नत भाषा की ओर हिन्दी की रुचि का होना उसकी प्राथमिक उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक था। इसके बिना उसके संकीर्ण शब्द-भंडार की पूर्ति असम्भव थी[१]।'

१०. लेखक की दृष्टि में विजातीय भावों और शब्दों के ग्रहण करने से हिन्दी का कलेवर पुष्ट हुआ है। किसी भी साहित्य की परम्परा और रुचि-परिवर्तन का श्रेय भी अपर भावों के प्राबल्य को ही मिलता है। जीवन को वर्णमय बनाने के लिए भाषा की गति को तीव्र करना होगा। भाषा का शैथिल्य जीवन को भी शैथिल्य प्रदान करता है। हिन्दी तभी राष्ट्रभाषा की मान्यता प्राप्त कर सकती है, जब भारत के समस्त प्रान्त उसके स्वरूप को संवर्द्धित करेंगे। राष्ट्रभाषा हिन्दी जिसके माध्यम से 'भारत की आर्थिक,सामाजिक, राजनीतिक,वैज्ञानिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक सभी शंकाओं का समाधान किया जाना निश्चित है, उसे उन्नत करने के लिए भिन्न-भिन्न शब्द गढ़ने तथा अपनाने के लिए उसे व्याकरण सम्मत स्थान देने के लिए भाषा-प्रवाह को वर्द्धित करने के लिए सभी प्रान्तवासियों का समानाधिकार है[२]।' राष्ट्रभाषा हिन्दी का जो स्वरूप होना चाहिए,इस सम्बन्ध में लेखक की स्थापनाएं स्तुत्य हैं।

१- निराला : चयन--भाषा की गति और हिन्दी की शैली',१९५७,वाराणसी, पृ० २२

२- वही०, पृ० २५-२६।

११. `साहित्य की समतल भूमि` तथा `मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार-साम्य` नामक निबन्धों में भाव की उच्चतम भूमि पर हिन्दू और मुस्लिम जातियों का एकत्व स्थापित किया गया है । बाह्यरूप से भिन्नता दृष्टिगत होने पर भी दोनों संस्कृतियों में अन्तत: विचार साम्य है और इस वैचारिक साम्य की अनुभूति होने पर ही दोनों जातियां एक देशिकता का आवरण त्याग कर समन्वयात्मक भाव-भूमि पर आ सकेंगी । दोनों के साहित्य में एक ही भाव-भूमि के साम्य को `निराला` ने `साहित्य की समतल भूमि` की संज्ञा प्रदान की है और इस मत की पुष्टि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम कवियों के साहित्य के उद्धरण प्रस्तुत करके की है । `हिन्दू और मुसलमान, दोनों जातियां ऊंची भूमि पर एक ही बात कहती हैं ।[1] `मानवीय सभ्यता जहां कहीं एक दूसरी सभ्यता से टक्कर लेती आई है, वहां उसके बाह्य रूपों में ही वैषम्य रहा है, वेश-भूषणों, आचार-व्यवहारों तथा उच्चारण और भाषाओं का ही बहिरंग भेद रहा है । उन सभ्यताओं के विकसित रूप देखिए, तो एक ही सत्य की अटल अपार महिमा वहां मिलती है[2] ।` दोनों ही एक ही चेतन सत्ता को स्वीकार करते हैं । संसार की नश्वरता का आख्यान भी दोनों जातियों के कवियों ने समान रूप से किया है । `एकमेवा द्वितीयम्` का भाव ही `ला इलाह इल्लिलाह` में ध्वनित होता है । सिन्धु और बिन्दु की भक्ति से ब्रह्म और जीव की जो बातें भारतीय साहित्य में मिलती हैं, वही मुसलमान कवियों की कविता में `दरिया और कतरे` के रूप में आयी हैं । इसी तरह स्वर्ग और नरक बहिश्त और दोजख के रूप में । `हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक आचार-व्यवहार और वेष-भूषा आदि निस्सन्देह एक-दूसरे से नहीं मिलते, परन्तु यह कोई बहुत बड़ा भेद नहीं । कारण मनुष्य की जांच उसकी मनुष्यता और उसके उत्कर्ष से होती है, और वहां ये दोनों जातियां एक ही पथ की पथिक तथा एक ही लक्ष्य पर पहुंची हुई जान पड़ती है[3] ।` दोनों जातियों के भाव-साम्य को `निराला` ने उद्धरण सहित

१- निराला : प्रबन्ध पद्म, १९३४ई०, पृ० १८

२- वही०, पृ० १९

३- वही०, पृ० ३८

पुष्ट किया है । लेखक की सूक्ष्म बुद्धि ने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या का समाधान खोज निकाला है , "हिन्दुओं और मुसलमानों में विरोध के भाव दूर करने के लिए चाहिए कि दोनों को दोनों के उत्कर्ष का पूर्ण रीति से ज्ञान कराया जाय[1] ।"

१२. 'चरखा' तथा 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म' 'निराला' की विवेचनात्मक शैली के परिचायक हैं । 'चरखा' नामक निबन्ध में रवीन्द्रनाथ द्वारा गांधी जी पर किए गए आक्षेपों को अवश्य तर्कों द्वारा काटा गया है, शैली व्यंग्य पूर्ण तथा मनोरंजक है । लेखक पाठकों का अपूर्व आत्मीयता के साथ 'ध्यान दीजिए' 'देखा आपने' आदि सम्बोधनों के द्वारा ध्यान आकर्षित किए रहता है । 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म' निबन्ध गम्भीर विश्लेषणात्मक शैली में लिखा गया है । यह निबन्ध भी 'विशाल भारत' के सम्पादक बनारसीदास चतुर्वेदी के आक्षेपों के प्रत्युत्तर में लिखा गया था । बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'निराला' के 'वर्तमान धर्म' निबन्ध की 'साहित्यिक सन्निपात' नाम से टीका-टिप्पणी की थी । प्रस्तुत निबन्ध में लेखक ने मूल निबन्ध के अंशों को उद्धृत करके विस्तृत टीका और व्याख्या की है । 'वर्तमान धर्म' निबन्ध की पृष्ठभूमि का एकमात्र लक्ष्य यह था कि पौराणिक रूपकों में कौन-सा सत्य छिपा हुआ है , इसका विश्लेषण करना । उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, "पौराणिक छायाओं से मुक्त कर साहित्य को सत्य लोक में ले जाने की कोशिश 'वर्तमान धर्म' में की गयी है[2] ।" वस्तुत: पौराणिक कथाओं की प्रतीकात्मकता को सिद्ध करने में उनके अप्रतिम ज्ञान और प्रतिभा का आभास मिलता है । ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न को लेकर किए गए प्रयास को भी चतुर्वेदी जैसे गण्यमान्य लोगों ने 'साहित्यिक सन्निपात' की संज्ञा दे डाली है । कतिपय विचारात्मक निबन्धों का विश्लेषण विषय की दृष्टि से किए गए विभाजन में किया गया है, अतएव यहां पर उनकी विवेचना स्थगित की जाती है ।

वर्णनात्मक निबन्ध

१३. वर्णनात्मक निबन्धों में वर्णन की प्रधानता रहती है, किसी भी वस्तु, घटना या चरित्र को लेकर यथातथ्य चित्रण की प्रधानता ही इस कोटि के

१- वही०, पृ० ४०

२- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, १९४०, पृ० ८२

निबन्धों की विशेषता है । `निराला` के `महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर`, `कविवर श्री चंडीदास`, `भौन कवि`, `श्री नन्द दुलारे वाजपेयी`[1], `श्री बलभद्रप्रसाद दीक्षित`, `श्री देव रामकृष्ण परमहंस`, `युगावतार भगवान श्री रामकृष्ण` `वेदांत केसरी स्वामी विवेकानन्द`, `छत्रपुर में तीन सप्ताह`, `मनकुला को उत्तर`, `पं० बनारसीदास का अंग्रेजी ज्ञान`, `श्री भुवनेश्वर की तारीफ` `कवि अंचल`, `तुलसी के प्रति श्रद्धांजलि` तथा महादेवी के जन्म दिवस पर` आदि वर्णनात्मक शैली में लिखे निबन्ध हैं । `कवि अंचल` तथा नन्ददुलारे वाजपेयी पर लिखित निबन्ध `निराला` के नवोदित कवियों के प्रति स्नेह के परिचायक हैं । `निराला` ने परिवर्तन शील परिस्थितियों में नवीन मार्ग प्रशस्त कर अग्रसर होने वाले कवियों में `अंचल` को प्रमुखमान्यता प्रदान की है । `श्री नन्ददुलारे वाजपेयी` की नयी आलोचना शैली का लेखक प्रशंसक है, " वाजपेयी जी नई आलोचना शैली को जीवन देते हुए उसे इस तरह आगे बढ़ाते हैं कि हिन्दी के अपर मौलिक साहित्य के उज्जीवन की तरह आलोचना भी अपने सच्चे अस्तित्व को आंखों से देखती है, अपनी सत्ता में प्रतिष्ठित होकर सांस लेती है । ... वाजपेयी जी की समीक्षा में साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रेरक शक्तियों की भी उपेक्षा नहीं है[2] ।"

१४. `भौन कवि` निबन्ध भी वर्णनात्मक कोटि का है, इसमें `भौन कवि` का परिचयात्मक विवरण दिया गया है, लेकिन अधिकांश भाग इस निबन्ध का लेखक के स्वयं के संस्मरणों से भरा हुआ है । `भौन कवि` की परिचयात्मक सूचना देकर उनकी रचनाओं के कतिपय पद्य प्रस्तुत किए गए हैं जिनका संकलन उन्होंने स्वयं किया था । सरल,सुबोध भाषा तथा अभिव्यक्ति की सहजता के साथ रोचक संस्मरणों से पाठक का मनोरंजन हो जाता है । `महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर` निबन्ध में `निराला` की दयानन्द जी के प्रति अगाध श्रद्धा अभिव्यक्त हुई है, " महर्षि दयानन्द जी से बढ़ कर भी मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता[3] " स्वामी जी के उपदेशों तथा महत् कार्यों को लेखक ने नवजागरण

१- माधुरी : फरवरी, १९४३, पृ० १३ ।
२- निराला : चाबुक, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३२ ।
३- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, `महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर`, १९४०, पृ०५४।

और युगान्तर का श्रेय प्रदान किया है । `आर्य समाज` की प्रतिष्ठा दयानन्द जी का बहुत ही क्रान्तिकारी पग था, "आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में एक नये जीवन की प्रतिष्ठा है, उसकी प्रगति एक दिव्य शक्ति की स्फूर्ति है । देश में महिलाओं, पतितों तथा ब्राह्मणेतर जातियों के अधिकार के लिए महर्षि दयानन्द तथा आर्य-समाज से बढ़कर इन नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया ।"[1]

१५. `कविवर श्री चंडीदास` निबन्ध में चंडीदास के जीवन सम्बन्धी घटनाओं के साथ-साथ उनकी कविता के विषय-वस्तु के सम्बन्ध में सूचनात्मक सामग्री प्रस्तुत की गयी है । माधुर्य की दृष्टि से `निराला` चंडीदास की कविता को प्रथम श्रेणी की स्वीकार करते हैं । रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द जी पर लिखे निबन्ध भी वर्णनात्मक प्रकार के हैं । `निराला` का रामकृष्ण मिशन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहने के कारण इन महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी घटनाओं का संकलन प्रामाणिक और सत्यता पर आधारित है ।

विवरणात्मक निबन्ध

१६. `निराला` के कतिपय निबन्ध विवरणात्मक शैली में भी लिखे गए[2] हैं जैसे- बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना, रामकृष्ण मिशन(लखनऊ) आदि निबन्ध इसी कोटि के हैं । `बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार वर्णना` निबन्ध में बंगाल के वैष्णव कवियों के शृंगार से पुष्ट मधुर सरस हृदयग्राही पदों को उद्धृत किया गया है । इन कवियों के आराध्य वृन्दावन विहारी श्रीकृष्ण थे, अतएव इन कवियों पर ब्रजभाषा-शैली का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा । इन कवियों की माधुर्य-भावना का रवीन्द्रनाथ पर कम प्रभाव नहीं था । शृंगार सम्बन्धी पदों को लेखक ने केवल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत ही नहीं किया वरन उसका अर्थ भी साथ में दिया है ।

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ५४

२- माधुरी, अक्तूबर, १९३५, पृ० ३८३

`श्री रामकृष्ण मिशन (लखनऊ)` जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, इस निबन्ध में लखनऊ में स्थापित रामकृष्ण मिशन के केन्द्र का विवरण मात्र दिया गया है। रामकृष्ण मिशन के महत् कार्यों का संकेत भी दिया गया है। साहित्यिक दृष्टि से इस निबन्ध का कोई महत्व नहीं है, केवल सूचनात्मक सामग्री मात्र है।

तुलनात्मक

१७. `निराला` के कतिपय निबन्ध तुलनात्मक शैली का भी अनुसरण करते हैं, इन निबन्धों के अन्तर्गत `विद्यापति और चंडीदास`, `कविवर बिहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र` तथा `दो महाकवि` निबन्धों का उल्लेख किया जा सकता है। इन तुलनात्मक शैली के निबन्धों में लेखक ने दो विभिन्न प्रान्तीय कवियों की विशिष्ट भाव-भूमियों को लेकर तुलनात्मक समालोचना की है। वस्तुत: इन निबन्धों की तुलनात्मक समालोचना में किसी भी कवि का श्रेष्ठत्व स्थापित करने के पूर्व उक्तियों, उद्धरणों तथा विश्लेषण का आश्रय लिया है। `निराला` की समालोचना सतही नहीं उसमें मर्म तक पहुंचकर तत्व चयन की क्षमता है। `दो महाकवि` निबन्ध में तुलसी और रवीन्द्रनाथ की तुलनात्मक समालोचना की गई है। शृंगारिक चित्रण में तुलसीदास दिव्य भाव की अवतारणा करने में पूर्ण सफल रहे हैं, जब कि रवीन्द्रनाथ का शृंगार मानवीय है उसमें दिव्य भाव-सौन्दर्य का स्फुरण नहीं हो सका। दोनों कवियों की कविता का उद्धरण देकर इसकी पुष्टि की गई है। भाव-चित्र प्रस्तुत करने में दोनों ही कवि अद्वितीय सफल रहे हैं। फिर भी लेखक की यह स्थापना है कि तुलसीदास साहित्य और साहित्य-दर्शन में रवीन्द्रनाथ से अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठत्व के अधिकारी हैं, "..... सब तरफ से केवल काव्य के सौन्दर्य पर विचार करने पर तुलसीदास ही बड़े ठहरते हैं -- भाषा साहित्य में रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में कहना पड़ता है कि भ्रम त्रुटियां मिल सकती हैं, पर तुलसीदास के सम्बन्ध में कोई शायद ही मिले। छायावाद, रहस्यवाद या अध्यात्मवाद की तुलना में रवीन्द्रनाथ किसी तरह भी तुलसीदास के सामने नहीं ठहरते[१]।" साहित्य की दृष्टि से रवीन्द्र की प्रतिभा में कोई सन्देह नहीं लेकिन दर्शन की

१- निराला : संग्रह, दो महाकवि, १९६२, प्रयाग, पृ० १५१

अवतारणा में वह इतने सफल नहीं रहे ।

१८. `विद्यापति और चंडीदास` निबन्ध में तुलनात्मक शैली अपनाने से पूर्व विद्यापति की जीवन-घटनाओं का सूचनात्मक परिचय दिया गया है । विद्यापति और चंडीदास सम सामयिक तथा घनिष्ट मित्र थे । दोनों को ही `निराला` ने अपने अपने क्षेत्र में श्रेष्ठत्व प्रदान किया है, विद्यापति कलात्मक के साथ-साथ भावुकता का भी समावेश कर सके हैं । इनके विपरीत चंडीदास में भावुकता का ही प्राबल्य है । दोनों कवियों के विशिष्ट भाव, विषय - निर्वाचन के वर्णन को लिया गया है -- नायिका के`पूर्व राग`तथा`अभिसार` यह दो विषय निबन्धकार ने उठाकर दोनों के भाव-सौन्दर्य को स्पष्ट किया है," चंडीदास के पदों से सौन्दर्य का आकर्षण विद्यापति के पदों से अधिक मिलता है।"[1] `कविवर विहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र` निबन्ध में विहारी और रवीन्द्र को महाकवि की संज्ञा प्रदान करते हुए भी वह रवीन्द्र को ही श्रेष्ठत्व प्रदान करता है क्योंकि वह भारत के ही नहीं, विश्व के महाकवि हैं । उनके चित्रण में सार्वभौमिकता के दर्शन होते हैं । विषय, भाव और शैली की दृष्टि से भी रवीन्द्र का साहित्य बहुत प्रशस्त है । इसके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ युगान्तर के प्रेरक हैं । विहारी से किसी नवीन युग का आविर्भाव नहीं हुआ । शृंगार-चित्रण में विहारी नायिका भेद का ही चित्रण करते हैं, पर रवीन्द्र का आग्रह स्त्रियोचित स्वभाव है, फलत: विहारी के चित्रण से विकार की उद्भावना होती है और रवीन्द्रनाथ की कविता „ से अनुराग ही बढ़ता है । विहारी केभाव चित्र कविता समाप्त होते ही समाप्त हो जाते हैं , मन पर से भी उसका प्रभाव समाप्त हो जाता है जब कि रवीन्द्रनाथ की कविता में ऐसा नहीं ,चित्र समाप्त होने के बाद भी मन पर उसका अव्यक्त प्रभाव रहता है । रवीन्द्र अपने भावों के साथ एकाकार हो जाते हैं जब कि विहारी का व्यक्तित्व तटस्थ रहता है ।

वार्तालापत्मक

१९. वार्ता शैली में लिखे निबन्धों में `मेहक जी से दो बातें` ,

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा-- विद्यापति और चंडीदास, पृ० १७०

'प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद', 'गान्धी जी से बातचीत' आदि निबन्ध हैं। तीनों निबन्धों में निबन्धकार के स्वच्छन्द व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। 'नेहरू जी से दो बातें' तथा 'गांधी जी से बात चीत' निबन्धों में हिन्दी के प्रश्न को लेकर ही 'निराला' का वार्तालाप हुआ था। लेखक नेहरू जी की हिन्दुस्तानी के पक्ष में नहीं था क्योंकि उसने यह अनुभव किया था कि उनको "जीवन के साधारण महलमें तक ही उसकी पहुंच है"।[1] 'राजनीतिक नेताओं' की हिन्दी साहित्य के प्रति अनभिज्ञता लेखक को मर्मान्तिक पीड़ा पहुंचाती थी। नेहरू जी से वार्तालाप करते समय वह खेद के साथ कहता है कि "पंडित जी यह मामूली अफसोस की बात नहीं कि आप जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति इस प्रान्त में होते हुए भी इस प्रांत की मुख्य भाषा हिन्दी से प्राय: अनभिज्ञ हैं। किसी दूसरे प्रान्त का राजनीतिक व्यक्ति ऐसा नहीं।"[2] राजनीतिक नेताओं का केवल नेतृत्व को लक्ष्य में रखकर हिन्दी भाषा का स्वरूप-निर्धारण उनको असह्य था, यही कारण है कि उसकी शैली व्यंग्यपूर्ण हो उठी है, "पंजाब में फारसी अर्बी बहुल हिन्दुस्तानी बोलिए, युक्तप्रान्त में खिचड़ी शैली, बिहार में कुछ अधिक संस्कृत, बंगाल वगैरह में प्रतिशत संस्कृत शब्द में पूछता हूं, उनकी निगाह के सामने नेतृत्व करने के सिवा जबान की सूरत संवारने का भी कोई ध्यान है?"[3] 'नेहरू जी से दो बातें' आरम्भ तथा 'गांधी जी से बातचीत' का अंत कथानक शैली में हुआ है। 'निराला' अपने निबन्धों में छोटे छोटे रोचक प्रसंगों का समावेश करके रोचकता का समावेश कर सके हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से भी 'निराला' के निबन्धों का धरातल वैविध्यपूर्ण रहा है अत: स्थूल रूप से उनके निबन्धों को साहित्यिक, सामाजिक एवं दार्शनिक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। यहां पर संक्षेप में विषय की दृष्टि से उनके निबन्धों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा : नेहरू जी से दो बातें, पृ० ४५

२- वही०, पृ० ४७

३- वही०, पृ० २८-२९

साहित्यिक

२०. साहित्यिक विषय में वे समस्त निबन्ध आ जाते हैं जिसका केन्द्र या आधार साहित्य रहता है यथा -- कवियों की काव्यात्मक आलोचना, साहित्य-विधाओं से सम्बन्धित समीक्षा तथा भाषा और साहित्य-रचना सम्बन्धी स्थापनाओं से युक्त निबन्ध । `निराला` के साहित्यिक निबन्धों में यह सभी रूप दृष्टिगत होते हैं । साहित्यिक-विधा पर प्रकाश डालने वाले निबन्धों के अन्तर्गत-- `नाटक समस्या` तथा `हिन्दी साहित्य में उपन्यास` निबन्धों को लिया जा सकता है । साहित्य-रचना और भाषा सम्बन्धी सामग्री में --`साहित्य और भाषा`, `एक बात`, `हमारे साहित्य का ध्येय`, `काव्य-साहित्य`, `रचना-सौष्ठव` और `साहित्य की समतल भूमि` आदि निबन्ध आ जाते हैं । कवियों की काव्यात्मक आलोचना से युक्त निबन्धों में --`दो महा कवि`, `पंत और पल्लव`, `मेरे गीत और कला`, `कविवर विहारी और कवीन्द्र रवीन्द्र` तथा विद्यापति और चंडीदास आदि का समावेश किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त `निराला` के दो कलात्मक सौन्दर्य पर लिखे निबन्ध भी हैं --`साहित्य का फूल अपने ही वृंत पर` तथा `काव्य में रूप तथा अरूप` । `परिमल` की प्रस्तावना रूप में लिखा हुआ समीक्षात्मक निबन्ध भी साहित्यिक कोटि का है । `निराला` के अनुवाद की समस्या को लेकर लिखे गए निबन्धों को भी साहित्यिक विषय के अन्तर्गत ही रखना होगा । अनुवाद में एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा न होने पर भी उसका स्वयं में साहित्यिक महत्व तो है ही । इस तरह के निबन्ध दो है --`बहता हुआफूल` तथा `चरित्र हीन` ।

२१. `बहता हुआ फूल` तथा `चरित्र हीन` दो बंगला पुस्तकें हैं । इन बंगला पुस्तकों के त्रुटिपूर्ण अनुवाद को लेकर लेखक ने आलोचना की है । लेखक को बंगला भाषा का असाधारण ज्ञान तो था ही वह उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे । एक साहित्यिक कृति की त्रुटिपूर्ण अनुवाद द्वारा दुर्दशा उनके लिए असह्य हो उठी हो तो कोई आश्चर्य नहीं । लेखक के अनुसार किसी भी कृति की आत्मा को ठीक उसी रूप में दूसरी भाषा में मूर्त कर सकना ही वास्तविक अनुवाद है । उन्होंने अनुवाद के मूलभूत लक्षणों पर प्रकाश डाला है । इसके अतिरिक्त अनुवादित अंशों को प्रेषित करके उसकी त्रुटियों का संकेत भी दिया है । कतिपय साहित्यिक कोटि के निबन्धों का गत पृष्ठों में विश्लेषण किया जा चुका है, अतएव उनका विश्लेषण

अन्यथा होगा , यहां पर केवल उन्हीं निबन्धों की चर्चा की जायगी, जिनका विवेचन नहीं हुआ है ।

२२. 'नाटक समस्या' निबन्ध के अन्तर्गत नाटक की व्यापकता पर प्रकाश डाला गया है । वस्तुत: पूर्ण साहित्य के समस्त गुण -- काव्य,संगीत,साहित्य, नृत्य, कला-कौशल, दर्शन, इतिहास, विज्ञान ,समाज, राजनीति एवं धर्म आदि विषय नाटक समस्या की पूर्ति के लिए लेखक ने आवश्यक बताए हैं । साहित्य के सर्वांग उत्कर्ष की सम्भावना लेखक ने केवल नाटक-साहित्य में ही स्वीकृत की है । 'निराला' के अनुसार नाटक एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से जाति का सम्पूर्ण जीवन पुष्ट होता है । लेकिन रंगमंच से इस महद् कार्य की पूर्ति नहीं हो सकी, क्योंकि अभी तक हिन्दी रंगमंच पर अभिनीत नाटक व्यावसायिक बुद्धि को लक्ष्य में रखकर ही खेले गए हैं । प्रस्तुत निबन्ध की रचना-तिथि सन् १६३४ है अतएव तभी तक के नाटक-विकास की स्थितियों को समझना चाहिए । सन् १६३४ तक के नाटक साहित्य में सामाजिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का पूर्णतया अभाव ही रहा । इन नाटकों से साहित्य की वृद्धि तो हुई ही नहीं, संगीत का भी पतन हुआ । हिन्दी में प्रसाद के नाटकों को लेखक सर्वाधिक महत्त्व देता है , परन्तु वह भी अभिनय की अपेक्षा काव्यात्मक गुण से दीप्त है । विषय की दृष्टि से नाटकों के लिए पुराण, इतिहास, समाज तीनों को 'निराला' ने मान्यता दी है तथा विषयानुसार ही भाषा का आग्रह प्रकट किया है । पौराणिक नाटकों में प्राचीनता की अवतारणा के लिए भाषा का प्रभावपूर्ण होना आवश्यक है । ऐतिहासिक नाटकों की भाषा जोरदार,थोड़े में अधिक भाव व्यंजित करने वाली होनी चाहिए तथा सामाजिक नाटकों की प्रचलित बामुहाविरा । चरित्रों की अवतारणा और विकास भी विषयानुकूल ही होनी चाहिए इसलिए नाटककार को साहित्य के सभी अंशों में थोड़ी-बहुत गति होनी चाहिए[1] और समाज के लिए किस प्रकार की प्रकृति आवश्यक है, इसका सच्चा अनुभव ।

१- प्रबन्ध प्रतिमा , नाटक समस्या , पृ० ७२

२३. `हिन्दी-साहित्य में उपन्यास` निबन्ध की रचना-तिथि सन् १९३३ है। प्रस्तुत निबन्ध में तत्कालीन समय तक साहित्य में उपन्यास के विकास की प्रक्रिया को मूर्त किया गया है। लेखक की दृष्टि में १९३३ तक उपन्यास-साहित्य में कोई युग प्रवर्तक उपन्यासकार नहीं हुआ। प्रेमचन्द इस दृष्टि से अवश्य उल्लेखनीय हैं पर वह भी कोई नवीन मार्ग को प्रशस्त न कर सके केवल आदर्श की स्थापना में ही व्यस्त रहे। ग्रामीण-चित्रण में अवश्य उन्हें सफलता मिली है। मनुष्य-मन की सूक्ष्म भावनाओं को भी वह चित्रित कर सके हैं। परन्तु `निराला` इसको समाज के ऊंचे अंग का चित्रण नहीं मानते हैं। वस्तुत: "चित्रों तथा मनोभावों को तमाम अंगों से लाकर एक मनोहर समाप्ति में विराम देना ऊंचे अंग की सृष्टि है।"[1] उपन्यास नवजीवन संचार का माध्यम है। दुर्भाग्य से वह उस महत् स्थिति तक पहुंच नहीं पाया है।

२४. `पंत और पल्लव` पंत जी पर लिखी समालोचना है। इस समालोचना का आशय पंत जी को ब्रतर घोषित करना नहीं था, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता थी कि प्रत्येक कृति में कुछ-न-कुछ विकार अवश्य ही रहते हैं। इस निबन्ध का लक्ष्य अनौचित्य का ही प्रतिकार करना मात्र था जिसकी पुष्टि लेखक के स्वयं के वक्तव्य से हो जाती है। "उन्हें कमजोर सिद्ध करने के अपराध में मैं उनसे क्षमा प्रार्थना करता हूं.... उनके अपराध की गुरुता को मैं सिर्फ इसलिए सहन न कर सका कि प्रतिमा के युद्ध में उन्होंने कपुर `निराला` को मारा और अपने सम्बन्ध में सब कुछ पी गए, यह सब मुझे निहायत असंयत, अन्याय के रूप में दिखलाई पड़ा।[2] "पल्लव" के `प्रवेश` में जिन विभिन्न विषयों पर पंत जी ने प्रकाश डाला है, उन विषयों के अतिरिक्त `निराला` ने इस बात का विश्लेषण भी किया है कि पंत जी ने छाया-चित्रों को कहां-कहां से ग्रहण किया है और इसकी पुष्टि उन्होंने विभिन्न बंगला और अंग्रेजी के उद्धरणों द्वारा की है। पहले वह विशिष्ट अंश को प्रस्तुत किया गया है, जहां से पंत जी ने प्रेरणा ग्रहण की है, फिर पंत जी की कविता का अंश लेकर यह भी सिद्ध किया गया है कि उनको भाव के उत्कर्ष में कितनी

१- वही०, पृ० २२५

२- प्रबन्ध पद्म: पंत और पल्लव, पृ० १३७

सफलता मिली है । `निराला` के अनुसार पंत दूसरों के भाव को ग्रहण करके भावगत सौन्दर्य की स्थापना नहीं कर सके हैं," दूसरे के भाव लेकर प्राय: सब कवियों ने कविताएं लिखी हैं परन्तु वहां हर एक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की, उससे बढ़कर अपना कोई विशेष चमत्कार दिखलाने की चेष्टा की है । पंत जी में यह बात बहुत कम है[1]।" इसका कारण भी लेखक ने बताया है, वह यह कि भाव की अपेक्षा पंत जी का ध्यान शब्दों के सौन्दर्य पर केन्द्रित रहता है ।

२५. `मेरे गीत और कला` निबन्ध में `निराला` ने स्वयं के गीत और प्रगीतों के कलात्मक सौन्दर्य की स्थापना की है । कला-सम्बन्धी उनका विवेचन बहुत सूक्ष्म है," कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु इन सभी से संबद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है[2]।" कविता में उपदेश की सृष्टि `निराला` की दुर्बलता मानते हैं, साधक जिस तरह विभूति में आकर इष्ट से अलग हो जाता है, कवि उसी तरह उपदेश करता हुआ कविता की दृष्टि से पतित हो जाता है[3]।" कविता निरुद्देश्य हो यह भी `निराला` को मान्य नहीं बल्कि कविता में उपदेश प्रच्छन्नरूप से रहना चाहिए । कलात्मक सौन्दर्य के माध्यम से उपदेश की किस प्रकार अवस्थिति रहती है, उसकी विवेचना उन्होंने कतिपय कविताओं द्वारा प्रस्तुत की है । चित्रण-सौन्दर्य ही कविता में प्रधान होना चाहिए, उपदेश नहीं । स्वयं की कविताओं के कलात्मक सौन्दर्य को सिद्ध करना ही इस निबन्ध का आशय था ।`निराला` की क्रान्तिकारी कविताओं का प्रारम्भ से ही विरोध हुआ था । मुक्त छन्द का विरोध बहुत समय तक लेखक को सहन करना पड़ा । वस्तुत: यह निबन्ध ऐसी आलोचनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप ही लिखा जा सका है ।

२६. `काव्य में रूप और अरूप` निबन्ध में कला के व्यापकत्व पर लेखक ने दृष्टिपात किया है । कला सदैव देश-काल निरपेक्ष हुआ करती है । रूप भाग

१- निराला : प्रबन्ध पद्म--`पंत और पल्लव`, पृ० ६३

२- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, `मेरे गीत और कला`, पृ० २७२

३- वही०, पृ० २८४ ।

में देशीय वैशिष्ट्य होने पर भी वह मनुष्य मात्र की ही संपत्ति सिद्ध होती है। सौन्दर्य रूप तथा भावनाओं का आदान-प्रदान परस्पर विभिन्न देशों की कलाओं में होता रहता है। यही कारण है कि 'निराला' ने 'काव्य में साहित्य के हृदय को दिगंत व्याप्त करने के लिए विराट् रूपों की प्रतिष्ठा[1]।' पर बल दिया है। कला देश विशिष्ट की सम्पत्ति नहीं है, वरन् विभिन्न देशों के लोग विभिन्न संस्कृतियों से प्रभावित होते रहते हैं।

सामाजिक निबन्ध

२७. सामाजिक निबन्धों के अन्तर्गत समाज सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। मुख्य समस्या 'नारी' और 'सामाजिक व्यवस्था' है। नारी-समस्या सम्बन्धी निबन्धों में नारी स्वाधीनता पर ही बल दिया गया है। नारी-दशा सम्बन्धी निबन्ध निम्न हैं -- 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां', 'कला और देवियां', 'राष्ट्र और नारी', 'रूप और नारी' तथा 'भारत की देवियां'[2]। समाज-व्यवस्था सम्बन्धी निबन्धों के अन्तर्गत 'अधिकार-समस्या', 'सामाजिक पराधीनता', 'वर्तमान हिन्दू समाज', 'हमारा समाज', और 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' आदि लिए जा सकते हैं।

२८. नारी स्वाधीनता के लिए 'निराला' ने स्त्री शिक्षा को आवश्यक माना है। कालगत परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों के कारण स्त्रियों को भी उन गुणों की साधना आवश्यक हो गई है जो पुरुषोचित है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वाधीन प्रवृत्ति का आना तभी सम्भव है जब स्त्री-शिक्षा पर बल दिया जायगा, 'विद्या ज्ञान की धात्री' कहलाती है। जितने प्रकार के दैन्य हैं, जितनी कमजोरियां हैं, उन सब का शिक्षा के द्वारा ही नाश हो सकता है। अशिक्षित,

---

१- निराला : प्रबन्ध पद्म, पृ० १६७।

२- चांद : नवम्बर १९३४, पृ० ३१।

अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक यातनाएं भोगनी पड़ती हैं -- उनके दुखों का अंतम नहीं होता[1]। `कला और देवियां` निबन्ध में `निराला` ने समुद्र मन्थन में निकली उर्वशी और लक्ष्मी के रूप में स्त्रियों की सनातन श्रेष्ठता की प्रतिष्ठा की है । उर्वशी और लक्ष्मी के गुणों का समाहार प्रत्येक
में रहता है । लक्ष्मी में दिव्य भाव तथा स्त्रियों के समा. गुण हैं और
स्त्री, उर्वशी कला, गति और गीति की प्रतिमा है । दोनों भाव ही वस्तुस्थिति में नारी की पूर्णता के द्योतक हैं । कला को `निराला` ने नारी का स्वाभाविक गुण स्वीकार किया है ।

२९. `राष्ट्र और नारी` निबन्ध में `निराला` ने नारियों को प्राचीन आदर्श अपनाने का परामर्श दिया है । राष्ट्रनायक भरत की जननी शकुन्तला त्याग, तपस्या, एकनिष्ठता एवं रूप-सौन्दर्य की प्रतिमा को लेखक भारत राष्ट्र की आदर्श नारियों के आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करता है । आधुनिक नारियों में बढ़ती हुई मृगतृष्णा अत्यधिक बहिर्मुखी स्वभाव, विदेशों की नारियों का अंधानुकरण उनकी स्वाधीनता का द्योतक नहीं है, वरन् आत्मिक दैन्य का परिचायक है । उनको अपने पूर्व आत्मगौरव और आत्म-प्रतिष्ठा को स्थापित करना चाहिए । `भारत की देवियां` निबन्ध भी समाज में नारी की स्थिति का दिग्दर्शन कराता है । समाज में नारियों के साथ घटित होने वाली अनाचार और अत्याचारों के प्रसंगों का समावेश करके `निराला` ने इस निबन्ध को अत्यधिक करुण बना दिया है । नारी-सुधार संबंधी आन्दोलनों पर भी `निराला` का आक्रोश प्रकट हुआ है, `आज सुधार के रूप में अधिकांश जितने कार्य हमारे सामने आदर्श स्थानीय होकर आते हैं, वे अधिक संख्या में दुर्बल हैं[2]।`

३०. `सामाजिक पराधीनता` निबन्ध में भारतीय-समाज की पराधीन वृत्तियों को लेकर लेखक ने विश्लेषण किया है । आज समाज में बाह्याचरण संबंधी कृत्यों पर जितना बल दिया जाता है, उतना सत्याचरणों पर नहीं । आचरण संबंधी भारतीयता, दिव्यता और सतीत्व आदि के जितने बन्धन समाज ने ओढ़ रखे हैं, वह वस्तुस्थिति में सब दिखावा मात्र हैं । आत्मा द्वारा भी यह सब स्वीकृत हो,

---

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियां, पृ० १३२

२- चांद : नवम्बर १९३४, पृ० ३४ ।

ऐसा नहीं क्योंकि इसके विपरीत भी आचरण होते देखे जाते हैं । किसी भी आचरण को केवल इसलिए नहीं मान्यता देते रहना चाहिए कि ऐसा होता आया है, वरन उसके औचित्य पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए । शास्त्रों तक में इस बात की शिक्षा है कि मनुष्य को स्वयं की मेधा के अनुकूल ही कार्य करना चाहिए । "मनुष्य शास्त्रों से अपने अनुकूल-विधान ही निकालता है । शास्त्रों में हर कानून को प्रतिकूलता देख पड़ती है । सच बोलना चाहिए, पर झूठ कहने के भी अवसर हैं[1] ।" 'निराला' के अनुसार समाज के समुचित विकास के लिए उसे किसी बाह्य आचरण ~~समाज के समुचित विकास के लिए उसे किसी बाह्य आचरण सम्बन्धी~~ नियमों के अन्दर नहीं बांधा जा सकता , समाज में रहन-सहन, खान पान, विवाह आदि का कोई निश्चित कानून नहीं रह सकता यदि ऐसा मान कर चला जायगा तो यह सामाजिक पराधीनता होगी । समाज में वास्तविक सुधार के लिए आवश्यकता है मनुष्यता के विकास की ।

३१. 'अधिकार-समस्या' निबन्ध में 'अधिकार' को मनुष्य जाति की सभ्यता का मूल स्वीकार किया गया है । अधिकार की सत्ता बहुत व्यापक है "जड़ और चेतन अधिकारों में ही मनुष्यों का इतिहास, दर्शन, समाज, साहित्य, राजनीति और विज्ञान आदि हैं[2] ।" प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं, यह सत्य अधिकारवाद के सम्बन्ध में भी है, जहां अधिकार की प्रेरणा ने स्वतन्त्रता की भावना का प्रसार किया वहां पराधीनता का जन्म भी इसके मूल से ही हुआ । राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े का भेद-भाव इसी अधिकार-भेद का कारण है । इसी प्रकार प्राचीन समय में वर्णाश्रम धर्म की महत्ता भारत के लिए अत्यधिक उपयोगी थी पर आज "हजार वर्ष के दूसरी जातियों और दूसरे धर्म वालों के शासन से इतने संस्कार दोष, संस्पर्श-कल्मष इस वर्णाश्रम धर्म के भीतर प्रविष्ट हो गए हैं कि कोई मूर्ख ही इसका अस्तित्व स्वीकार करेगा[3] ।" निबन्धकार ने वर्णाश्रम-धर्म के विभाजन को चिरन्तन स्वीकार किया है क्योंकि विभिन्न समाज इसी व्यवस्था पर संगठित होते हैं

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा -'सामाजिक पराधीनता' , पृ० १४१

२- वही०, पृ० ७४ ।

३- वही०, पृ० ७६ ।

चाहे प्रत्यक्ष रूप से वह इसको स्वीकार न करते हों । `वर्णाश्रम धर्म को `निराला` ने एकदेशिक नहीं, सार्वभौमिक स्वीकार किया है । लेखक कर्मों के अनुसार ही वर्णाश्रम धर्म के विभाजन को मान्यता देता है, जातिगत नहीं । उनके अनुसार शूद्र भी कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन सकते हैं । `अधिकार के बिना जीवन की भी कोई व्याख्या नहीं हो सकती । पर अधिकार के दान तथा सदुपयोग के लिए सत्याधिकारी का जीवन अपेक्षित है । सब मार्गों से इसी अधिकार का दान उन्नति अधिकारियों के लिए होना चाहिए ।`[1]

३२. `वर्तमान हिन्दू समाज` में भारतीय समाज में हुए उत्थान पतन का आलेख प्रस्तुत किया गया है । समय की माँग के अनुसार भारतीय समाज की दशा के सुधार हेतु विभिन्न महापुरुषों द्वारा धार्मिक सुधारवादी आन्दोलनों का सूत्रपात होता रहा । ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, जाति पाँति तोड़क मंडल ऐसे ही संगठन हैं जिन्होंने समाज की विकृतियों को समयानुसार दूर करने का प्रयास किया । विभिन्न धार्मिक मतावलम्बियों ने विभिन्न मतान्तरों का प्रचार किया लेकिन कालान्तर में सभी मतान्तरों में विकृतियाँ आती रहीं और उसके स्थान पर नवीन मत उद्भूत होते रहे । भगवान बुद्ध , भगवान शंकर तथा रामानुज आदि के स्थापित विभिन्न मत एक-दूसरे की प्रतिक्रिया स्वरूप ही जन्म ले सके थे । भारतीय समाज में ग्राहणीय तत्वों का अभाव है । दूसरी जाति में किए गए विवाह को हमारा समाज मान्यता नहीं देता । उनसे उत्पन्न सन्तान पिता के गुण-धर्म का अधिकारी नहीं माना जाता ,` दूसरी जातियों के प्रति यह नफरत ही भारत के पतन की धात्री है ।`[2] इसके अतिरिक्त ब्रह्म ब्राह्मण, क्षत्रिय, वर्णों की अहम्मन्यता तथा दर्प ही उनके पतन का कारण बना । आंग्ल शासन की स्थापना के साथ वर्ण-भेद कम होने लगा क्योंकि वह जाति-भेद स्वीकार नहीं करते थे, इससे उच्च जातियों की हानि हुई तथा शूद्र जातियों का उत्थान, `प्रकृति ने ही साम्य की स्थापना की कर दी, सब जातियों के एक ही कार्य तथा एक ही अधिकार कर दिए । भारत के लिए अंग्रेजी राज का यही महत्व है कि तमाम शक्तियों का साम्य हो गया ।

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, `अधिकार समस्या, पृ० ७७

२- वही०,पृ० २३५

.... इस समय भारत में न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय , न वैश्य न अपने ढंग की शिक्षा है न अपने हाथ में राज्य-प्रबन्ध, न अपना स्वाधीन व्यवसाय ।[1] सब कुछ अंग्रेजों के हाथ में है , अतएव म्लेच्छ प्रभाव में रहकर कभी कोई पूर्वोक्त त्रिवर्ण में से किसी का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता ।`निराला` की यह धारणा थी कि वर्ण समीकरण के द्वारा ही नवीन भारत का रूप संगठित हो सकेगा और यही भारत की दृढ़ शृंखला होगी । `वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति` निबन्ध में भी लेखक ने सम्पूर्ण विश्व के मनुष्यों के लिए संयोग की आवश्यकता पर आग्रह प्रकट किया है । वेदांतिक विचार इस दृष्टि से सर्वाधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वह संयोग करने वाले होते हैं तोड़क नहीं । `तोड़ ही हिन्दुस्तान को तोड़ रहा है ।``जाति-पांति तोड़क मंडल` आदि के किए कार्यों से संयोग की अपेक्षा विरोध की ही सम्भावना है । एकमात्र वेदान्त के आधार पर ही चतुर्वर्णों का समन्वय हो सकता है ।

दार्शनिक निबन्ध

३३. `निराला` के दार्शनिक निबन्ध वेदांतिक विचारों के द्योतक हैं । दार्शनिक निबन्धों के अन्तर्गत `बाहर और भीतर` ,`प्रवाह` तथा `शून्य और शक्ति` आदि निबन्ध आते हैं ।`प्रवाह` निबन्ध में ब्रह्म उसकी शक्ति, माया मुक्ति आदि दर्शन सम्बन्धी तत्वों पर लेखक ने दृष्टिपात किया है । ब्रह्म और उसकी शक्ति अभिन्न है । यह सर्वव्यापिनी महाशक्ति ही अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि में सहायक है, महाशक्ति की कल्पना से ही यह संसार दृष्टिगोचर हो रहा है ।[2] महाशक्ति की इस कल्पना शक्ति को लेखक `प्रवाह` की संज्ञा देता है । `प्रवाह` का गुण है कि वह निरन्तर परिवर्तनशील है और यही माया की संज्ञा पाता है । माया के कारण ही जीव को ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता । लेकिन जीवन के लिए परिवर्तन आवश्यक है ".... परिवर्तन व्यष्टि या समष्टि का जीवन है । जीवन भी प्रवाह है ।[3] मुक्ति की प्राप्ति माया से हटकर ही प्राप्त हो सकती है । प्रस्तुत

१- निराला : प्रबन्ध प्रतिमा, `वर्तमान हिन्दू समाज` , पृ० २३७ - 232

२- निराला : संग्रह, प्रवाह, १९६२, प्रयाग, पृ० ११ ।

३- वही०, पृ० १३ ।

निबन्ध में `निराला` की सूक्ष्म विवेचना शक्ति का आभास मिलता है ।

३४. `बाहर और भीतर` निबन्ध में जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, मनुष्यों की बाह्य और आन्तरिक प्रवृत्तियों की ओर लेखक ने संकेत किया है । प्रस्तुत निबन्ध में यह समस्या उठाई गई है कि वास्तविक स्वतन्त्रता की प्राप्ति बाह्य उपकरणों के माध्यम से भी प्राप्त हो सकती है या इसकी खोज आभ्यान्तर में ही सम्भव है ? `निराला` का आग्रह अभ्यान्तर की ओर उन्मुख होने का है, इसका कारण उन्होंने बताया है," स्वतन्त्रता के लिए बाहर मुड़ने से उस स्वतन्त्रता का स्वरूप भोग बन जाता है । उससे बहिर्जगत में संघर्ष पैदा होता है, और वही संघर्ष भोग और भोगी के नाश का कारण होता है[1]। "अन्तर्तम में शान्ति के समर्थक कहते हैं ,"न वहां सूर्य है, न चन्द्र, न मैं हूं, न तुम , वहां केवल आनन्द ही आनन्द है । तुम स्वयं आनन्द स्वरूप हो, अपने चिदानन्दमय शांति मय स्वरूप को तुम नहीं समझना चाहते, इसी से तुम दु:ख झेलते हो जब तुम बाहर का खेल त्याग दोगे अपने आनन्दमय स्वरूप को भीतर ढूंढोगे तो तुम्हें वह मिल भी जायगा । वहां तक मन की पहुंच है और न वाणी की । वह है `अवांङ्मन सो गोचरम्`[2]।" अन्तर्मुख होने पर ही ब्रह्म और सृष्टि का रहस्य ज्ञात हो सकता है । `शून्य और शक्ति` निबन्ध का प्रारम्भ ही लेखक दार्शनिक व्याख्या से करता है," शून्य या बिन्दु सब शास्त्रों में सब तरफ, सब समय स्वयं सिद्ध है । उद्भव, स्थिति और प्रलय का शून्य ही मूल रहस्य है । केवल शक्ति संसार को शून्य से अलग किए हुए है । दूसरे तरीके से शून्य की ही व्याख्या करने में सदैव तत्पर है[3]।" इन दार्शनिक निबन्धों की शैली शास्त्रीय विवेचनात्मक है तथा भाषा सुसंस्कृत गम्भीर ।

शैली

३५. `निराला` के निबन्धों की भाषा -शैली वैविध्यपूर्ण है । उनकी शैली पर बंगला का प्रभाव था । शब्दों के चुनाव, वाक्य-विन्यास और विशेषणों

१- निराला : संग्रह, प्रवाह, १९६२, प्रयाग, पृ० ७३ ५

२- वही०, ५-६ ,

३- निराला :प्रबन्ध पद्म, पृ० १

के प्रयोग के यह प्रभाव परिलक्षित होता है । बंगला के अतिरिक्त संस्कृत,उर्दू,फारसी अंग्रेजी का भी उन्होंने पर्याप्त प्रयोग किया है । इन भाषाओं का उनको भाषा सम्बन्धी ज्ञान ही नहीं था, वरन् साहित्यिक अध्ययन भी गहन था । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनके निबन्धों में प्रयुक्त काव्य सम्बन्धी उद्धरणों से ज्ञात होता है , `हिन्दू और मुसलमान, कवियों में विचार-साम्य` तथा `काव्य की समतल भूमि` निबन्धों से उनके उर्दू काव्य के तथा `पंत और पल्लव` निबन्ध से बंगला अंग्रेज़ी के गहन अवगाहन की कल्पना की जा सकती है । निबन्धों में संस्कृत बंगला और अंग्रेजी की उक्तियां तथा उद्धरणों का अबाध रूप से प्रयोग हुआ है । `पंत और पल्लव` निबन्ध में प्रतिपाद्य विषय की सिद्धता के लिए उद्धरणों की अनिवार्यता थी हो अन्य निबन्धों में भी इसका अबाध रूप से प्रयोग हुआ है । संस्कृत के उद्धरणों से तो उनके लगभग सभी निबन्ध सुशोभित हैं । सरल,सुबोध तथा संस्कृत गम्भीर भाषा-शैली का प्रयोग `निराला` के निबन्धों में हुआ है । कहीं वाक्य अत्यन्त छोटे हैं और कहीं इतने दीर्घ की तेरह तेरह पंक्तियों में वाक्य की पूर्ति होती है । दीर्घ वाक्यों में समास बहुलता तो है ही,काव्यात्मकता का भी समावेश हो गया है । `निराला` की मूल प्रवृत्ति काव्यमयी थी, लेकिन इस प्रकार की भाषा गद्य के लिए अधिक उपयुक्त नहीं होती । निबन्धों में संस्कृत की अत्यधिक उक्तियों का समावेश संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठकों के लिए दुरूहता का सृजन करता है । विभिन्न भाषायी शब्दों के ग्रहण में लेखक ने उपेक्षा नहीं की । उर्दू के शब्दों का उन्होंने सहज ढंग से प्रयोग किया है । `नेहरू जी से दो बातें` निबन्ध में अबाध रूप से उर्दू शब्दों का प्रयोग हुआ है । `निराला` के निबन्धों की शैली व्यंग्य से पुष्ट है । कथानक शैली के प्रयोग द्वारा निबन्ध सरस और रोचक बन गए हैं । छोटे छोटे प्रसंगों तथा घटनाओं से पाठकों का मनोरंजन भी होता है । `चरखा` तथा `गांधी जी से बातचीत` के अंत में `नेहरू जी से दो बातें` तथा कला के विरह में जोशी बन्धु` निबन्ध के आदि में शैली का प्रयोग कर रोचकता का समावेश हो सका है । `सामाजिक-पराधीनता` शीर्षक निबन्ध की समाप्ति भी एक कटु सत्य की व्यंग्य पूर्ण कहानी से होती है । मुख्यतः निबन्धों में तार्किक और व्याख्यात्मक कथानक शैली का प्रयोग किया गया है । `निराला` के निबन्धों की कोई आकार-सीमा नहीं है, एक तरफ `एक बात` ,`ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास` जैसे लघु आकार के निबन्ध हैं तो दूसरी तरफ `पंत और पल्लव`,

`दो महाकवि` , `साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म` जैसे दीर्घ निबन्ध भी दृष्टिगत होते हैं । संस्कृत शब्द प्रधान आलंकारिक भाषा से `निराला` की कविता का आभास तो अवश्य मिलता पर उससे निबन्ध की सहजता पर आघात पहुंचता है । निबन्धकार के रूप में `निराला` का प्रयास सराहनीय है वस्तुत: उनके निबन्ध किसी-न-किसी समस्या पर प्रकाश डालते दिखायी पड़ते हैं । उनके निबन्धों में बौद्धिक विलास ही नहीं, वास्तविक संवेदना अनुभूति का आभास भी मिलता है । उनके मौलिक चिन्तन का प्रत्येक निबन्ध जीवन्त प्रतीक है और सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने का विषय यह है कि उनके निबन्धों में बुद्धि पक्ष और हृदय-पक्ष का मणिकांचन संयोग हुआ है ।

-0-

अध्याय -- १२

`निराला' के हास्य-व्यंग्यमय रेखाचित्र

१. `बिल्लेसुर बकरिहा' (सन् १९४२) तथा `कुल्लीभाट' (१९३९) `निराला' द्वारा निर्मित दो सशक्त हास्य-व्यंग्यमय रेखाचित्र हैं। शिल्प की दृष्टि से इन कृतियों में वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। पिकारिस्क उपन्यासों के शिल्प की सार्थकता तो इनमें मिलती ही है साथ ही आंचलिकता का समावेश भी इनमें हुआ है। इस दृष्टि से आंचलिक उपन्यास की संज्ञा भी दी जा सकती है। `पिकारिस्क' उपन्यास स्पैनिश शब्द `पिकारो'[1] से बना है, जिसका प्रयोग धूर्त और असंयमी व्यक्ति के लिए किया जाता है। `पिकारो' ऐसे खलनायक के लिए प्रयुक्त होता है, जो लांछित जीवन व्यतीत करता है, लेकिन जो समय पर अपने को संभाल लेता है[2]। इन उपन्यासों के अन्तर्गत ऐसे भृत्य की आत्मकथा रहती है, जो विभिन्न स्वामियों की सेवा करता है। तथा उसमें साधारण मनुष्य के मानसिक स्तर का विशेष क्रमिक विकास प्रस्तुत किया जाता है[3]।

---

1. From the Spanish 'picaro' stands for a rogue and is a term applied to the class of romances that deal with rogue and knave The Oxford companion to English Literature, P. 617.
2. " ..... The picaro is the type of sining humanity whose life is bad but who may one day make a good choise and save him-self. Encyclopadia literature Vol. I, Page 420.
3. The typical picaresque novels then are autobiographies of a servant of many master in which the general state of mainkind is represented by a series of particular cases. Encyclopadia Literature Vol. I, P. 420.

२. हिन्दी-साहित्य में पाश्चात्य विधा `पिकारेस्क' उपन्यासों की परम्परा में `कुल्ली भाट' तथा ` बिल्लेसुर बकरिहा' की अवतारणा `निराला' का अन्यतम प्रयास है। वस्तुत: इस नवीन कथा रूप में उनको असाधारण सफलता भी मिली है। इनके नायक भी अपने कर्मों के कारण निम्न वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। `बिल्लेसुर' को अपनी जीविका के लिए स्थान-स्थान पर नौकरी करनी पड़ती है, फलत: वह बहुत सी व्यावहारिक बातें सीख जाता है। वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अनेक उपायों का सृजन करता है। नौकरी की प्राप्ति हेतु उसका अपने कमरेंथे में रुई रखना, पुरी जाकर अपने मालिक को गुरु रूप में स्वीकार कर मंत्र लेना, तथा गांव पहुंच कर किसी को भी अपने धनी होने का राज न देना, ऐसे कार्य हैं, जो उसको इस कोटि के नायकत्व में स्थान देने के लिए बाध्य करते हैं। `कुल्ली' भी अपने नीच कर्म के कारण उपेक्षित है, पर दोनों ही नायक अन्त में अपने गुणों, अपूर्व कार्य की क्षमता, त्याग, सेवा और अध्यवसाय के द्वारा अपने चरित को समाज में ऊंचा उठा लेते हैं। इस तरह गर्हित जीवन व्यतीत करने वाले वह पात्र अपने अध्यवसाय से प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुए, अन्तत: समाज में अपना विशिष्ट स्थान बना लेते हैं। `निराला' द्वारा प्रस्तुत यह दोनों नायक अशिक्षित हैं, लेकिन उनमें मानवसुलभ गुणों का अभिनव सम्मिश्रण हुआ है, जो समयानुसार पुष्पित और पल्लवित होते हैं। दोनों नायक समाज द्वारा उपेक्षित और प्रताड़ित हैं। पर दोनों ने ही अपने जीवन को निर्विवाद रूप से एक संघर्ष स्वीकार कर लिया है तथा समाज रूपी अग्नि में तप कर अन्त में वह खरे सोने के समान हमारे सम्मुख आते हैं।

३. आंचलिकता की दृष्टि से ` बिल्लेसुर बकरिहा' का उल्लेख किया जा सकता है। ` बिल्लेसुर बकरिहा' में स्थानीय रंग अवश्य सुन्दर उभरे हैं। स्थानीय भाषा, रीति-रिवाज तथा ग्रामीण चित्रण से आंचलिकता की पुष्टि होती है। आंचलिकता उपन्यासों में जन-जीवन का चित्रण अधिक रहता है, यह विशेषता भी इसमें मिल जाती है। लेकिन कतिपय स्थानीय चित्रण मात्र से इसको आंचलिक उपन्यास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। दोनों कृतियों में विभिन्न विधाओं के तत्वों का आग्रह रहने पर भी यह प्रधानता शिल्प की दृष्टि से यथार्थ की पृष्ठभूमि पर निर्मित रेखा-चित्र ही है। रेखा-चित्र की दृष्टि से इनका विश्लेषण

करने से पूर्व इस विधा पर सामान्यरूप से दृष्टिपात कर लेना अधिक न्यायसंगत होगा ।

रेखा चित्र

४. रेखाचित्र कहानी और निबन्ध के मध्य की कड़ी है जिसमें कहानी तथा निबन्ध के कतिपय तत्वों का सम्मिश्रण रहता है । न तो कहानी की तरह इसमें इतिवृत्त या कथानक का ही अधिक आग्रह रहता है, और न निबन्ध की तरह सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों का विश्लेषण हो । हां, कहानी की तरह क्षण, घटना तथा भाव-विशेष पर ही इसका लक्ष्य केन्द्रित रहता है । कहानी की सूक्ष्मता एवं संक्षिप्तता भी इसमें दृष्टिगत होती है । रेखाचित्र वह साहित्य-रूप है, जिसमें किसी व्यक्ति के बाह्यान्तर रूप सज्जा का विश्लेषण मुख्यरूप से रहता है । जीवन के बाह्यान्तर स्वरूप का इतना सजीव चित्रण गद्य-क्षेत्र में अन्य विधा द्वारा सम्भव नहीं । रेखा-चित्र में लेखक कुछ रेखाओं कुछ प्रधान महत्वपूर्ण घटनाओं का उपयोग करते हुए सुन्दर सजीव मूर्त-विधान प्रस्तुत कर देता है, वस्तुत: इसमें लेखक की कल्पना के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है , वह अपनी कल्पना की तूलिका से ही विभिन्न चित्र अंकित करता है । स्केच के लिए आवश्यक नहीं कि वह व्यक्तिपरक ही हो, किसी घटना , वस्तु या भाव का मर्मस्पर्शी सजीव अंकन भी इसके अन्तर्गत आ सकता है । लेकिन जिस किसी का भी रेखांकन किया जाए उसमें प्राणवत्ता का रहना अत्यावश्यक है । निर्जीव रेखाओं में सजीवता और प्राणवत्ता ला सकना ही लेखक की वास्तविक उपलब्धि है और इस विधा की पूर्ण सफलता । सजीवता और सुस्पष्टता के साथ इस विधा के अन्तर्गत सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण -- जिसमें मानव और मानवेतर दोनों प्रकार की प्रकृति सम्मिलित है तथा शब्द शिल्प की आवश्यकता होती है । यथार्थता का आग्रह भी इसमें रहना अनिवार्य है । पात्र या घटना , सत्य और कल्पित होते हुए भी उसका प्रस्तुत करने का ढंग ऐसा हो कि उसमें अयथार्थता या भ्रम का आभास न हो । सीमित चित्र-पटों पर ही इसका अंकन होता है । उपन्यास की तरह इसका कैनवेस विस्तृत नहीं होता और न इसमें उपन्यास की तरह समग्र जीवन का चित्रण ही रहता है । रेखाचित्र में कुछ निर्धारित

मानव सत्यों को प्रकाश में लाया जाता है । जीवन का सर्वांगीण चित्र न आकर एकांगी चित्र ही इसमें रहता है ।

रेखाचित्र: बिल्लेसुरबकरिहा, `कुल्लीभाट`

५. `कुल्लीभाट` तथा `बिल्लेसुर` के व्यक्तित्व को लेकर कथावस्तु का विकास होता है । इतिवृत्त का पूर्णतया अभाव है । दौनों पात्रों --`कुल्ली` और `बिल्लेसुर` के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का रेखाओं द्वारा खण्ड-चित्र प्रस्तुत किया गया है । जितनी भी घटनाओं तथा परिस्थितियों का सृजन हुआ है, वह दौनों के व्यक्तित्व को ही प्रकाश में लाती है । कथा का केन्द्रबिन्दु बिल्लेसुर और कुल्ली है, जिनकी सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृत्तियों का लेखक विश्लेषण करता है । `कुल्ली भाट` की कथा-वस्तु लेखक के सान्निध्य में आए हुए पात्र की है । लेखक ने स्वयं आरम्भ में इस बात को स्वीकार किया है,--" पं० पथवारीदीन जी भट्ट(कुल्लीभाट) मेरे मित्र थे,उनका परिचय इस पुस्तिका में है । उनके परिचय के साथ मेरा अपना चरित भी आया है और कदाचित् अधिक विस्तार पा गया है ।[१]" लेखक के जीवन में आए पात्र का चित्रण होने के कारण कुल्ली के जीवन की रेखायें स्पष्ट रूप से उभर सकी हैं । `निराला` ने वास्तविक घटना तथा ~~वस्तु को~~ व्यक्ति को इतनी प्रामाणिकता और सशक्तता के साथ अंकित किया है कि `कुल्लीभाट` में अन्यतम प्राणवत्ता आ सकी है । `बिल्लेसुरबकरिहा` में कल्पित पात्र बिल्लेसुर की संयोजना की गयी है, लेकिन लेखक ने उसको इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि प्रश्न के लिए कहीं अवकाश नहीं है ।बिल्लेसुर के जीवन से सम्बन्धित जितनी भी घटनायें आई हैं, वह स्वयं में पूर्ण और सजीव हैं । कुल्ली और बिल्लेसुरव के सम्बन्ध में लेखक ने जो कुछ भी लिखा है, वह स्वाभाविक और आकर्षक है ।

६- दौनों रेखा-चित्रों के नायक अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखते हैं । दौनों ही स्वस्थ जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं , वस्तुत: वह जीने की कला

१- निराला :`कुल्लीभाट` : भूमिका, सन् १९५३ ।

जानते । बिल्लेसुर ने निर्विवाद रूप से अपने जीवन को एक संघर्ष मान लिया है । वह जाति का ब्राह्मण `तरी` का कुकुल है, लेकिन वह ब्राह्मणों की जातीय अहमन्यता, परम्परा तथा रूढ़ि का त्याग करके बकरी-पालन का कार्य अपना लेता है । लोगों के आक्षेप का व्यंग्य सुनकर कि ब्राह्मण होकर बकरी पालोगे वह मन में सोच लेता है" जब जरूरत पर ब्राह्मणों को हल की मूठ पकड़नी पड़ी, जूते की दुकान खोलनी पड़ी तब बकरी पालना कौन बुरा काम है[1] ।" वर्तमान में भी सतीदीन के आश्रय में रहते हुए भैंस का सब काम करने से वह संकुचित नहीं होता । लेकिन वह सब मूक होकर सहन करता चलता है ।" गांव में बिल्लेसुर को बर्दाश्त करने की आदत पड़ी थी । कभी कुछ बोले नहीं । अपनी जिन्दगी की किताब पढ़ते गए । किसी भी वैज्ञानिक से बढ़कर नास्तिक[2] ।" स्वार्थ के लिए वह गधे को भी बाप बनाने की उक्ति को चरितार्थ करता है, उसका सतीदीन को अपना गुरु स्वीकार करना इसका ज्वलन्त उदाहरण है । अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए उसे तरह-तरह के ढंग आते हैं । अपने आश्रयदाताओं का अपने में विश्वास स्थापित करने के लिए वह कल्पना से स्वप्न का सृजन करता है । निशाना अचूक बैठता है । लेकिन जब उसकी स्थिति में कोई सुधार नहीं होता तो वह कंठी तथा मंत्र की पुनरावृत्ति करके अपने गांव का रास्ता नापता है । गांव आकर भी वह सब की उपेक्षा कर अपने लक्ष्य पर बढ़ता चलता है । उसमें मानवता का आग्रह है । वह व्यक्तिवादी नहीं है । उसको यह सोचकर हार्दिक कष्ट होता है कि "क्यों एक दूसरे के लिए नहीं खड़ा होता । जवाब[3] कभी कुछ नहीं मिला । मुमकिन, दुनिया का असली मतलब उन्होंने लगाया हो ।" `कुल्लीभाट` की विचारधारा भी इसी के अनुरूप है," आदमी, आदमी के लिए जरा भी सहनशील नहीं । वह अपने लिए सब कुछ चाहता है, पर दूसरे[4] को जरा भी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता । इसीलिए हिन्दोस्तान की यह दशा है ।" सब प्रकार की विषम परिस्थितियों संघर्ष में बिल्लेसुर अपने को संतोष दे लेता है," बकरे के मारे जाने

१- निराला : बिल्लेसुर बकरिहा --द्वितीय संस्करण,१९४५,इलाहाबाद, पृ०३२

२- वही०, पृ० १७

३- वही०, पृ० ३८

४- कुल्लीभाट , १९५३ई०, लखनऊ, पृ० १०८ ।

को उन्होंने `हानि-लाभ जीवन मरण` की फिलासफी में शुमार कर अपने भविष्य की ओर देखा ।[1]` बिल्लेसुर तथा कुल्ली का व्यक्तित्व निरन्तर संघर्ष का प्रतीक है । `बिल्लेसुर.... दुःख का मुंह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरत को बार-बार चुनौती दे चुके थे । कभी हार नहीं खाई ।[2]`

७. बिल्लेसुर के चरित्र में एक दुर्बलता है, जो पूर्ण मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है, वह है, उसकी विवाह करने की हार्दिक इच्छा । परन्तु उसका हृदय सदैव ही मस्तिष्क द्वारा परिचालित होता है । भावना पर विवेक का अंकुश बराबर देखा जा सकता है, यही कारण है कि वह यथार्थ से नाता नहीं तोड़ता । विवाह को वह एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में मान्यता देता है,` भूख लगती है इसीलिए खाना पड़ता है, पानी बरसता है, धूप होती है, लू चलती है, इसीलिए मकान में रहना पड़ता है । मकान की रखवाली के लिए ब्याह करना पड़ता है । मकान का काम स्त्री ही आकर सम्हालती है । लोग तरह-तरह की चीज-वस्तुओं से घर भर देते हैं, स्त्री को जेवर-गहने बनवाते है । ये सब ढकोसले हैं-- ढोल में सब पोल ही पोल तो है ।[3]` बिल्लेसुर ऊपर से सीधे तथा सरल पर भीतर से सावधान, अपने लक्ष्य पर सदैव तीक्ष्ण दृष्टि रखते हुए, कैसे जीवन-संघर्ष में सफल हुए, यह पढ़कर ग्रामीण चेतना का रूप साकार हो उठता है,` बिल्लेसुर दूसरे का अविश्वास करते-करते एक खास शक्ल के बन गए थे । पर अपना बल नहीं छोड़ा था, जैसे अकेले तैराक हो ।[4]` लेकिन गांव का एक सीधा एवं सरल व्यक्ति ऐसा क्यों बन गया, इसका समाधान भी `निराला` ने कर दिया है,` गांव में जितने आदमी थे, अपना कोई नहीं, जैसे दुश्मनों के गढ़ में रहना हो । भाई भी अपने नहीं ।[5]` बिल्लेसुर अपने जीवन में एक विशिष्ट दृष्टिकोण लेकर अग्रसर होता है । उसका जीवन मानवतावादी आधार से प्रेरित और पुष्ट है । जीवन के प्रति उसकी मान्यतायें एवं दृष्टिकोण उसको टाइप व्यक्तित्व से पृथक करती है ।

१- बिल्लेसुर बकरिहा, १९४५, इलाहाबाद, पृ० ८

२- वही०, पृ० ४६ ।

३- वही०, पृ० ५३ ।

४- वही०, पृ० १७

५- वही०, पृ० ३७-३८ ।

८. `कुल्लीभाट` में तो लेखक स्वयं उसकी विशिष्टता की उद्घोषणा कर देता है , " मैं तलाश में था कि ऐसा जीवन मिले जिससे पाठक चरितार्थ हों, उसी समय कुल्लीभाट मरे ।"[1] कुल्ली के जीवन को समझने के लिए लेखक एक ही व्यक्ति को उपयुक्त समझते थे , वह था गोर्की, " उनके जीवन का महत्व समझे, ऐसा अब तक एक ही पुरुष संसार में आया है, पर दुर्भाग्य से वह अब संसार में रहा नहीं -- गोर्की । पर गोर्की में भी एक खास कमज़ोरी थी, वह जीवन की मुद्रा को जितना देखता था, खास जीवन को नहीं ।"[2] कुल्ली कुछ भी रहे हों, वह सर्वप्रथम मानव हैं, मानवजन्य विशिष्टताओं तथा दुर्बलताओं का उनमें अभिनव-सम्मिश्रण है । क्रमशः लेखक उसके व्यक्तित्व में असाधारण गुणों का प्रकाश दिखाता है । राजनीति के क्षेत्र में भी उसने अप्रतिम शक्ति का परिचय दिया है । उसमें अदम्य पौरुष है, वह एक मुस्लिम नारी से प्रणय करता है तथा समाज की उपेक्षा की चिन्ता न करते हुए उससे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसको अपने घर में रखता है । हिन्दुओं की इस जातिवाद की संकुचित वृत्ति के कारण वह उनको नामर्द करार देता है । `निराला` उसको कुल्ली की पूर्ण परिणति तथा राजनीति और सुधार दोनों के पूर्णरूप थे , ऐसा मान कर चलते हैं । अछूतों की कारुणिक स्थिति कुल्ली को विचलित कर देती है और वह अछूत पाठशाला का निर्माण करते हैं । अछूतों की स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण लेखक ने किया है," इनकी ओर कभी किसी ने नहीं देखा । ये पुश्त-दर पुश्त से सम्मान देकर नतमस्तक ही संसार से चले गए , संसार की सभ्यता के इतिहास में इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते हमारे पूर्वज कश्यप,भारद्वाज,कपिल, कणाद थे, रामायण व, महाभारत इनकी कृतियां हैं, अर्थशास्त्र - काम-सूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन,पृथ्वीराज इनके वंश के हैं । फिर भी ये थे और हैं ।"[3] जितनी संवेदनशीलता तथा मार्मिकता `निराला` के वर्णन में है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है ।

१- कुल्लीभाट, पृ० ११

२- वही०, पृ० १२

३- वही०, पृ० १०६

६. समाज के मान्य समझे जाने वाले लोगों को कुल्ली का अछूतों को शिक्षित करना उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इससे उनको अपने स्वार्थों पर आघात होने की आशंका है, "अछूत लड़कों को पढ़ाता है, इसलिए कि उसका दल हो लोगों से सहानुभूति इसलिए नहीं जाता कि हेकड़ी है, फिर मूर्ख है, वह क्या पढ़ायेगा ? तीन किताबें भले पढ़ा है। ये जितने कांग्रेस वाले हैं, अधिकांश में मूर्ख और गंवार हैं ।"[१] लेकिन इसके विपरीत लेखक इसको कुल्ली को जीवन की सार्थकता स्वीकार करता है । स्वयं लेखक ही शब्दों में "अधिक न सोच सका । मालूम दिया, जो कुछ सोचा है, स्वप्न । कुल्ली धन्य है । वह मनुष्य है, इतने जड़ों में वह सिंह है । वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं, लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे बड़ा नहीं । उसने जो कुछ किया है, सत्य समझ कर ।"[२] कुल्ली का अधिकार पाने की दृढ़ता तथा उसका क्रान्तिकारी रूप दर्शनीय है । "कुल्ली की आग जल उठी, सच्चा मनुष्य निकल आया जिससे बड़ा मनुष्य नहीं होता । प्रसिद्ध मनुष्य नहीं । यही मनुष्य बड़े-बड़े प्रसिद्ध मनुष्य को भी नहीं मानता, सर्वशक्तिमान ईश्वर की भी मुलाकात के लिए सिर उठाता है, उठाया है । इसी ने अपने हिसाब से सब की अच्छाई और बुराई को तौला है और संसार में उसका प्रचार किया है । संसार में कब उतरा है ।"[३] अन्त में कुल्ली के घोर निन्दक कुल्ली के अथक परिश्रम तथा त्याग को देखकर उसके हृदय में प्रशंसक बन जाते हैं । यहां तक कि उसको देवता तथा अवतार तक की संज्ञा दे दी जाती है । लेखक तो कुल्ली में "कविता का दिव्य रूप और भाव सामने जड़ शरीर में देखकर पुलकित हो उठा ।.... मनुष्यत्व रह रह कर विकास पा रहा है ।"[४] दोनों नायकों की असाधारण दुर्बलतायें तथा विशेषतायें उनको वर्गगत प्रतिनिधित्व से भिन्न करती हैं । अत: निर्विवाद रूप से दोनों नायकों के चरित्र में विशिष्ट व्यक्तित्व की अवतारणा हुई है । कुछ वर्गगत साम्य होते हुए भी उनके व्यक्तित्व में कुछ ऐसे असाधारण तत्वों का सम्मिश्रण है कि उनके चरित्र ज्योति-पुंज की भांति अलग ही प्रकाशित होते हैं ।

१- वही०, पृ० १०५ ।

२- वही०, पृ० १०६ ।

३- वही०, पृ० ११४ ।

४- वही०, पृ० १२२-१२३ ।

१०. `निराला` के दोनों रेखा-चित्र यथार्थ के धरातल पर आधारित हैं, पात्र भी यथार्थवादी हैं। दोनों के जीवन-चरित्रों से पाठकों को स्वाभाविकता का आभास मिलता है। रेखा-चित्र में पात्र तथा घटना -- जिसका भी रेखांकन हो-- के सत्य होने पर अधिक आग्रह रहता है। वास्तविक जीवन के साथ प्रस्तुतीकरण का ढंग भी यथार्थवादी ही होना चाहिए। यथार्थता तथा वास्तविकता दोनों ही इसके प्राण हैं । बिल्लेसुर बकरिहा तथा कुल्ली भाट ने जिस रूप में जीवन को ग्रहण किया है, वह बड़ा ही स्वस्थ और स्वाभाविक है। दोनों कठिनाई या विकट परिस्थिति में हार मान कर टूट या बिखर नहीं जाते, वरन् उससे अदम्य उत्साह प्राप्त करते हैं। बिल्लेसुर का बिना टिकट कटाये मार्ग में उतरते पड़ते कलकत्ता पहुंचना वहां जा कर सत्तीदीन का आश्रम ग्रहण कर सब कुछ सहन करते जाना अन्त में पुरी जाकर अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु मंत्र मांगना, बाद में माला तथा मंत्र वापिस कर पुन: घर आ जाना तथा गांव में उसके विवाह से सम्बन्धित सभी घटनायें उसके व्यक्तित्व के अपूर्व साहस को प्रकट करती हैं। इसी तरह `कुल्ली भाट` में भी कुल्ली की `निराला` से भेंट द्वारा उत्पन्न घर में तनाव, कुल्ली की `निराला` पर आसक्ति, लेखक का कुल्ली के घर जाना और कुल्ली का समाज-सुधार तथा राजनीति की तरफ आकर्षण, मुस्लिम नारी से विवाह सम्बन्ध, मंत्र द्वारा उनकी शुद्धता, अछूतों के उद्धार के लिए अछूत पाठशाला की स्थापना, इस पवित्र काम के लिए लोगों की उपेक्षा तथा लांछन को दृढ़तापूर्वक सहना, गांधी तक पर व्यंग्य कर देना, तथा जीवन के अन्तिम समय में अपने इस असह्य रोग को वीर की तरह झेल ले जाना आदि समस्त घटनायें उसके वीरत्व का प्रतीक हैं।

११. बाह्य रूप-चित्रण की इतनी स्पष्ट रेखायें उभरी हैं कि उनमें चित्रात्मकता का स्वभावत: समावेश हो सका है। उदाहरण स्वरूप कुल्लीभाट में कुल्ली की वेश-भूषा का जो चित्रण हुआ है, वह बड़ा ही सजीव है `टिकट कलेक्टर के पास एक आदमी खड़ा था, बना चुना, बिलकुल लखनऊ ठाट, जिसे बंगाली देखते ही गुंडा कहेगा। तेल से जुल्फें तर, जैसे अमीनाबाद से सिर पर मालिश कराकर गया है । लखनऊ की दुपल्लिया टोपी, गोट तेल से गीली सिर के दाहिने किनारे

रही, ऐंठी मूंछें । दाढ़ी बनाई । चिकन का कुर्ता ऊपर वास्कट । हाथ में बेंत । काली मखमली किनार की कलकतिया धोती, देहात पहलवानी फैशन से पहनी हुई । पैरों में मेरठी जूते । उम्र पच्चीस के साल-दो साल इधर उधर । बस देखने पर अंदाजा लगाना मुश्किल है, हिन्दू है या मुसलमान । सांवला रंग । मंझे का डील-डौल । साधारण निगाह में तगड़ा और लम्बा भी ।[1] बिल्लेसुर बकरिहा में बिल्लेसुर की शारीरिक तथा मानसिक स्थिति का चित्रण सुन्दर है "बिल्लेसुर बरदाश्त करते थे, फिर चिट्ठी लगाते हुए रास्ता पार करते थे । लौटते थे हांफते हुए, मुंह का थूक सूखा हुआ, होंठ सिमटे हुए, पसीने-पसीने दिल धड़कता हुआ, यहां का बाकी काम करने के लिए । पहुंच कर ज़मीन पर ज़रा बैठते थे कि सत्तीदीन की स्त्री पूछती थीं कितना क्या लाए बिल्लेसुर ? ज़बान छुरी से पैनी मतलब हलाल करता हुआ । बिल्लेसुर उस गर्मी में बनावटी नरमी लाते हुए, सीस निपोड़ कर जवाब देते हुए, ज़रा सुस्ताकर गायों के पीछे तरह तरह के काम में दौड़ते हुए ।[2] अपने दोनों पात्रों की बाह्य तथा आन्तरिक सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रकृति का लेखक सहज और सरल ढंग से विश्लेषण करता है ।

१२. दोनों ही रेखा-चित्रों की प्रमुख विशेषता है, लेखक की अपूर्व तटस्थता । व्यक्तित्व-चित्रण की सफलता का रहस्य उनकी सच्चाई और यथातथ्यता है । 'बिल्लेसुर बकरिहा' में तटस्थता का असाधारण परिपाक हुआ है । बिल्लेसुर शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, लेकिन कहीं भी लेखक शोषक वर्ग की करतूतों तथा कुकृत्यों के प्रति घृणा उत्पन्न कराने का प्रयास करता नहीं दिखाई देता । सब कुछ सहज और स्वाभाविक है । नायक के माध्यम से लेखक ने किसी रचनात्मक शक्तियां अथवा सामाजिक दर्शन का प्रचार नहीं कराया है । बिल्लेसुर के सहज जीवन की अभिव्यक्ति ही इस पुस्तक कोअसाधारणत्व प्रदान करने में सहायक है । लेखक की एकान्त ईमानदारी ही कृति को उत्कृष्टता प्रदान कर सकती है । कुल्ली तथा बिल्लेसुर के जीवन की रेखाएं अपने में पूर्ण हैं, अतएव

१- कुल्लीभाट, पृ० २१

२- बिल्लेसुर बकरिहा, पृ० १६-१७ ।

उसकी प्रभान्विति समग्र रूप से हुई है ।

१३. `निराला` ने अपने पात्रों का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है । बिल्लेसुर ग्रामीण होते हुए भी प्रकृति से सरल नहीं, वह अपना भेद किसी को नहीं देता , वह भौतिकवादी है । उसमें धार्मिक आस्था भी है, लेकिन उसकी पृष्ठभूमि में भी भौतिकवादी प्रवृत्ति ही कार्य करती है । महावीर जी को परोक्षरूप से अपनी बकरियों की रक्षा का भार सौंपना इसी प्रवृत्ति का द्योतक है । उसकी इस धार्मिक आस्था पर जब आघात होता है, तो उसकी प्रतिक्रिया भी बहुत स्वाभाविक दिखाई गई है ," बिल्लेसुर डंडा लिए धीरे-धीरे गांव की ओर चले, ढाढ़स अपने-आप बंध रहा था । दूसरे काम के लिए दिल में ताकत पैदा हो रही थी, भरोसा बढ़ रहा था । गांव के किनारे आए । महावीर जी का वह मंदिर दिखा, अंधेरा हो गया था , सामने से मन्दिर के चबूतरे पर चढ़े । चबूतरे चबूतरे मन्दिर की उल्टी प्रदक्षिणा करके, पीछे महावीर जी के पास गए । लापरवाही से सामने खड़े हो गए और आवेग में भर कर कहने लगे -- "देख मैं गरीब हूं । तुझे लोग गरीबों का सहायक कहते हैं, मैं इसीलिए तेरे पास आता था और कहता , मेरी बकरियों को देखे रहना । क्या तूने रखवाली की, बता लिए थूथन सा मुंह खड़ा है ।" कोई उत्तर नहीं मिला । बिल्लेसुर ने आंखों से आंखें मिलाए हुए महावीर जी के मुंह पर वह डंडा दिया कि मिट्टी का मुंह गिल्ली की तरह टूटकर बीघे भर के फासले पर जा गिरा[१] ।" कुछ धार्मिक लोगों के हृदय पर इससे आघात हो सकता है, पर लेखक की इच्छा किसी को चोट पहुंचाने की नहीं है, वरन वह मनोवैज्ञानिक सत्य का ही उद्घाटन कर रहा है । मनुष्य के विश्वास तथा आस्था पर आघात होने पर प्रतिक्रिया स्वरूप मनुष्य ऐसा कर बैठता है । उस समय वह औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान भी भूल जाता है । मानवमनोविज्ञान के `निराला` ज्ञाता थे, गांव के लोगों का बिल्लेसुर को फलते-फूलते देखकर ईर्ष्या करना स्वाभाविक है, वह आन्तरिक रूप से उसको हानि पहुंचाने के प्रयास में रहते हैं ।" गांव वाले दिल का गुबार बिल्लेसुर को बकरिहा

१- बिल्लेसुर बकरिहा, पृ० ४५

ग्रह कर निकालने लगे प्रतिउत्तर में बिल्लेसुर बकरी के बच्चों के वही नाम रखने लगे जो गांव वालों के नाम थे[1]। ईर्ष्या और प्रतिशोध की मनोवृत्ति का अंकन अद्वितीय है।

हास्य

१४. दोनों रेखा-चित्रों में हास्य की प्रधानता होने के कारण प्राणवत्ता है। हास्य का निर्माण बाह्य रूप से ही हुआ है। मुख्यतया दोनों रेखाचित्र जीवन की गम्भीरता के दर्पण हैं। जीवन के स्वस्थ दृष्टिकोण को अपनाकर प्रत्येक परिस्थिति एवं संघर्ष को स्थिता-प्रज्ञ की तरह सहन करते हुए, प्रसन्न रहकर, जीने की कला सिखाते हैं। बिल्लेसुर तथा कुल्लीभाट विषमताओं में हंसने की क्षमता रखते हैं। हास्य की सृष्टि बाह्य रूप से निर्माण के लिए ही हुई है। वस्तुत: यह साध्य न होकर साधन रूप में प्रयुक्त हुआ है। दोनों में ही हास्य की सहजता है एवं उसके लिए ही लेखक को प्रयत्न नहीं करना पड़ा, हास्य की बहुत ही उन्मुक्त सहज निर्झरणी का प्रवाह प्रवाहित हुआ है। बिल्लेसुर बकरिहा में तो पात्रों का चरित्र-चित्रण भी हास्यपूर्ण है, 'निराला' ने ऐसे पात्रों की उद्भावना की है, जो स्वयं में ही हास्यमय हैं। बिल्लेसुर बकरिहा के भाइयों का चित्रण हास्य के उद्देश्य से ही किया गया है। उनके द्वारा किए गए कृत्यों तो हास्यपूर्ण हैं ही, उनके नामों की आधारशिला भी हास्यमय है," मुक्ता प्रसाद के चार लड़के हुए-- मन्नी, ललई, बिल्लेसुर और दुलारे। नाम उन्होंने स्वयं रखे, पर यह शुद्ध नाम हैं, उनके पुकारने के नाम गुणानुसार और और हैं। मन्नी पैदा होकर साल भर के हुए, पिता ने बच्चे की गर्दन उठाए बैठा झपकता देखा तो 'गपुआ' कहकर पुकारना शुरू किया आदर में 'गप्पू'। दूसरे लड़के ललई की गौराई रोयों में निखर आई थी आंखें भी कञ्जलोचन, स्वभाव में बदले बदले पिता ने नाम रखा 'भरा' आदर में 'भुरु'। बिल्लेसुर के नाम में ही गुण था, पिता 'बिलुवा' आदर में 'बिलू' कहने लगे। दुलारे अपना ईश्वर के यहां से खतना कराकर आए थे, पिता के नामकरण में आसानी हुई 'कटुवा' कहकर पुकारने लगे, आदर में 'कट्टू'[2]।"

१-वही०, पृ० ३९

२-वही०, पृ० २

१५. कहीं-कहीं परिस्थितियों की विषमता का हास्यपूर्ण चित्रण हुआ है, "सबेरे जगा, तब घर में बड़ी चहल-पहल थी, लाले साहब रो रहे थे। लाबु जी ने मारा का ससुर बुड्डी में गिर गए थे, नौकर नहला रहा था। घर में तीन जोड़े बैल घुस आए थे। श्रीमती जी लाठी लेकर हांकने गयी थीं, एक के ऐसी जमाई कि उसका एक सींग टूट गई। ज्योतिषी बुलाए गए कि बतलायें कि इसका क्या प्रायश्चित है। महरी पानी भरने गई थी, रस्सी टूट जाने के कारण पीतल का घड़ा कुयें में चला गया था।"[1] हास्य की स्थिति परिस्थिति में ही नहीं, वरन् लेखक की अभिव्यक्ति तथा वर्णनों में भी है। साधारण से तथ्य को भी लेखक इतने गम्भीरतापूर्वक प्रस्तुत करता है कि स्वत: हास्य की सृष्टि हो जाती है। बिल्लेसुर के नाम की व्याख्या करते समय लेखक ने व्याकरण का सहारा लिया है," बिल्लेसुर नाम का शुद्ध रूप बड़े पते से मालूम हुआ -- `बिल्लेसुर बिल्लेश्वर` है। पुरवा डिवीज़न में, जहां का नाम है, लोकमत बिल्लेसुर शब्द की ओर है। कारण पुरवा में उक्त नाम के प्रतिष्ठित शिव हैं। अन्यत्र यह नाम न मिलेगा, इसलिए भाषा तत्व की दृष्टि से गौरवपूर्ण है। `बकरिहा` जहां का शब्द है, वहां `बोकरिहा` कहते हैं। वहां `बकरी` को `बोकरी` कहते हैं। मैंने इसका हिन्दुस्तानी रूप निकाला है। `हा` का प्रयोग हनन के अर्थ में नहीं, पालन के अर्थ में है।"[2]

१६. कहीं-कहीं किसी छोटी-सी घटना का सामयिक किसी बड़ी घटना से साम्य बैठाकर हास्य की सृष्टि की गई है, "बिल्लेसुर बिना टिकट कटाए कलकत्ते वाली गाड़ी पर बैठ गए। इलाहाबाद पहुंचते पहुंचते चैकर ने कान पकड़ कर उतार दिया। बिल्लेसुर हिन्दुस्तान की जलवायु के अनुसार सविनय कानून भंग कर रहे थे, कुछ बोले नहीं चुपचाप उतर आए लेकिन सिद्धांत नहीं छोड़ा।"[3] "निराला" का भाषा पर असाधारण अधिकार था, उनकी शैली बहुत ही हास्यमय तथा सजीव है," कुछ हो, मैं ऐतिहासिक नहीं, समझा कि तुलसीदास जी पुरुष थे, महापुरुष नहीं, महापुरुष अकबर था -- दीन इलाही चलाया -- हर कौम की बेटी ब्याही--चेले

१- कुल्लीभाट, पृ० ६०

२- बिल्लेसुर बकरिहा, पृ० १

३- कुल्लीभाट, पृ० ११

बनार । अपने राम के लकड़दादा के लकड़दादा के लकड़दादा राजा बीरबल त्रिपाठी अकबर के चेले थे, अपनी बेटी साले के बाजपेयियों के घर ब्याही, तब से बाजपेयी वंश में भी महापुरुषत्व का असर है, यों ट्रिपिल लकड़दादा का प्रभाव कुल कनवजिया कुलीनों पर पड़ा-- खैर, `महापुरुष`, `पुरुष` का बढ़ा हुआ रंगा हिस्सा लेकर है, उसी तरह उसके `चरित` में एक `सत` और जुड़ गया है । साहित्यिक की निगाह में यह साबुन का उपयोगितावाद है, अर्थात् सिर्फ साफ होता है, वह भी कपड़ा, रास्ता, घर या दिमाग़ नहीं । अगर वाद लें, जैसे समाजवाद और बढ़ार हैं तो वह भी अकेला साहित्य नहीं ठहरता -- साहित्य पुरुष का एक रोयां सिद्ध होता[1] ।"

व्यंग्य

१७. दोनों रेखा-चित्रों में व्यंग्य की स्थान-स्थान पर फुलझड़ियां छोड़ी गयी हैं । कुल्ली का व्यंग्य कुछ कटु अवश्य हो गया है, पर `बिल्लेसुर` में व्यंग्य की तीखी धार नहीं है । व्यंग्य व्यक्ति विशेष पर न होकर समाज-सापेक्ष है । कुल्ली में समाज के माननीय व्यक्तियों तथा वर्ग पर लेखक व्यंग्य करता है । यह सम्मानित धनी वर्ग अपने स्वार्थ के सम्मुख कुल्ली की नि:स्वार्थ सेवा को भी अपने अधिकारों पर आघात समझते हैं । समाज के संगठन पर व्यंग्य है, जो गुणी व्यक्ति की उपेक्षा करता है । जीवित रहते कुल्ली को सम्मान नहीं मिला, पर उसकी मृत्यु पर लोग उसका जलूस निकालते हैं, मानों उनके कर्तव्य की इतनी ही इतिश्री है । कुल्ली की प्रवृत्ति विद्रोहात्मक है, वह गांधी तथा नेहरू को भी बुरा-भला कह सकता है । वह गांधी जी को बनिया भगवान की संज्ञा देता है," आपको बनियों ने भगवान बनाया है क्योंकि ब्राह्मणों और ठाकुरों में भगवान हुए हैं, बनियों में नहीं, जिस तरह बनियों ने आपको भगवान बनाया है, उस तरह आप बनिया भगवान है[2] ।" साधारण मनुष्य में भी मानवता है वह भी समाज का कल्याण कर सकता है, ऐसा स्वीकार कर लेखक अग्रसर हुआ है । बड़े तो वास्तव में नाम के बड़े होते हैं ।

१- वही०, पृ० १०-११ ।

२- कुल्लीभाट, पृ० १२५

१८. `कुल्ली` का व्यंग्य पूरे युग पर है । लेखक ने दो विरोधी परिस्थितियों का प्रच्छन्नरूप से चित्रण करके व्यंग्य को और भी घनीभूत कर दिया है । एक तरफ समाज से बहिष्कृत कुल तथा निम्नवर्ग है, तथा दूसरी तरफ समाज में मान्यता प्राप्त किए हुए उच्चवर्ग के लोग जिनमें मानवता का सर्वथा अभाव है और जिनमें हिन्दू-मुसलमान का तीव्र भेद-भाव है । बड़े-बड़े सत्ताधारी नेताओं में सच्ची सेवा के प्रति उपेक्षा है, कल्पना की उड़ान भरने वाले कवियों में क्रांति का दम्भ है । कुल्ली की पाठशाला सत्य का प्रकाश-स्तम्भ है, जिससे साहित्य तथा समाज के नेता आँखें चुराते हैं । समाज की रूढ़ मान्यताओं पर कुल्ली के माध्यम से कठोर व्यंग्य किया गया है । कुल्ली राजनीतिकों की भाँति उपदेश ही नहीं देते, वरन् व्यवहार में भी सक्रिय हैं । स्वच्छन्द प्रेम के वह समर्थक हैं, अतएव समाज के विरोध पर भी मुस्लिम महिला से विवाह कर लेते हैं । देश के लिए सर्वस्व होम करने वाले कुल्ली का अन्तिम संस्कार करने को किसी का प्रस्तुत न होना साथ ही मुस्लिम होने के कारण उसकी पत्नी को दाह-संस्कार का अधिकार न मिलना तथाकथित समाज की झूठे अहं की चरम-सीमा है । इसके विपरीत समाज के गण्य-मान्य व्यक्ति कुल्ली के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए अन्तिम संस्कार के समय जलूस में सम्मिलित हो जाते हैं क्योंकि उससे न तो उनका हुक्का पानी ही बन्द होगा और न बाल बच्चों के शादी-विवाह में ही किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न होगा उसके अतिरिक्त बड़ाई अलग से मिलेगी । रूढ़ियों की इतनी पराधीनता देखकर वितृष्णा होने लगती है । लेखक इन रूढ़ मान्यताओं का समर्थक नहीं है, तभी तो उसने स्वयं कुल्ली की सपिण्डी तथा दाह-संस्कार कराकर कुल्ली की पत्नी का उद्धार किया । समाज की झूठी मान्यताओं को तोड़ने के लिए ऐसे सिंह पुरुषों की आवश्यकता है । `बिल्लेसुर बकरिहा` में धार्मिक बाह्याचार तथा कर्मकाण्ड पर व्यंग्य किया है । `बिल्लेसुर` द्वारा ब्राह्मण वर्ग की रूढ़ियों का बहिष्कार करा कर लेखक ने बहुत ही साहसपूर्ण आदर्श प्रस्तुत किया है ।

शिल्प

१९. शिल्प की दृष्टि से दोनों ही कृतियों में कसाव है । कुल्ली में लेखक के चरित्र का विस्तार होने से कुछ विषयान्तर अवश्य होता है, पर लेखक तथा

नायक में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव लेखक तथा कुल्ली से सम्बन्धित सभी घटनाओं में सजीवता एवं सप्राणता का समावेश हो सका है । लेखक के जीवन के संस्मरणों से यह कृति अत्यधिक रोचक तथा मनोरंजक बन सकी है, क्यों कि कुल्ली लेखक के चरित्र से अत्यधिक प्रभावित है । लेखक के चरित्र से सम्बन्धित पृष्ठभूमि में नायक का चरित्र प्रस्फुटित हुआ है । `बिल्लेसुर बकरिहा` की कथा-वस्तु का संगठन अद्वितीय है, सम्पूर्ण कथा नायक बिल्लेसुर के चारों तरफ घूमती है, कोई भी प्रसंग या घटना ऐसी नहीं जो अनावश्यक प्रतीत हो । इसमें रोचकता का अभाव नहीं । बिल्लेसुर के कृत्य ही इस कृति के प्राण हैं । प्रासंगिक कथा के रूप में सतीदीन की कथा है, परन्तु उसका अपना पृथक अस्तित्व नहीं है । बिल्लेसुर के भाइयों का वर्णन अवश्य कुछ विषयान्तर करता है, लेकिन वह भी रोचकता बनाए रखने में सहायक है, अस्तु यह दोष न होकर गुण प्रतीत होता है । दोनों ही रेखा चित्र चरित्र-प्रधान हैं, कथावस्तु उतनी ही प्रयुक्त हुई है, जिससे दोनों के चरित्र की रेखायें स्पष्ट हो सकें । रेखाचित्र के शिल्प की दृष्टि से इनका संगठन अपूर्व है । कथानक का विशेष महत्व नहीं ।

चरित्र-चित्रण

२०. अभिनयात्मक तथा विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण की पद्धति का प्रयोग हुआ है । `कुल्लीभाट` में मुख्यत: विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण है और `बिल्लेसुर बकरिहा` में शुद्ध अभिनयात्मक चरित्र-चित्रण । कुल्ली लेखक के सम्पर्क में आया पात्र है, अत: विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण होना स्वाभाविक ही है । कुल्ली के चरित्र को समझने के लिए हमारे सम्मुख दो साधन हैं, लेखक द्वारा विश्लेषण तथा नायक के स्वयं के कृत्य । बिल्लेसुर का चरित्र केवल उसके स्वयं के व्यवहार तथा कृत्यों द्वारा अभिव्यक्त होता है ।

वातावरण

२१. वातावरण की दृष्टि से लेखक ने अद्वितीय क्षमता दिखायी है । बिल्लेसुर को दुखित देख मानो सम्पूर्ण वातावरण बिल्लेसुर की वेदना से आप्लावित हो उठा `सूरज डूब गया । बिल्लेसुर की ~~सन्य-सन्न-सन्न-करने-लगीं~~ आँखों में शाम की उदासी छा गई । दिशायें हवा के साथ सांय सांय करने लगीं । नाला बहा जा रहा

था, जैसे मौत का पैगाम हो। लोग खेत जोत कर, धीरे-धीरे लौट रहे थे, जैसे घर की दाढ़ के नीचे दब कर पिस कर मरने के लिए। चिड़ियां चहक रही थीं। अपने-अपने घोंसले की डाल पर बैठी हुई रोरो कर साफ कह रही थीं, रात को घोंसले में जंगली बिल्ले से हमें कौन बचाएगा। हवा चलती हुई इशारे से कह रही थी सब कुछ इसी तरह बह जाता है[1]।" बिल्लेसुर के दुःख से प्रकृति के साथ-साथ पशु-पक्षी तक दुःखित प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार अपनी मनःस्थिति के अनुकूल बिल्लेसुर को सम्पूर्ण वातावरण तथा प्रकृति सौन्दर्यमयी एवं प्रसन्न दिखती है।" आम और महुए की कतारें कच्ची सड़क के किनारे पड़ीं। जाड़े की सुहावनी सुनहली धूप छनछन कर आ रही थी। सारी दुनिया सोने की मालूम दी। गरीबी वाला रंग उड़ गया। छोटे बड़े झूपेड़ पर बड़ा मौसिम का असर उनमें भी आ गया। अनुकूल हवा से तने पाल की तरह अपने लक्ष्य पर चले गए। इस व्यवसाय में उन्हें फायदा-ही-फायदा है, निश्चय बंधा रहता है। चारों ओर हरियाली जितनी दूर निगाह जाती थी, हवा से लहराती हरी तरंगें ही दिखती थीं, उनके साथ दिल मिल जाता है और उन्हीं की तरह लहराने लगता था[2]।"

२२. तत्कालीन आन्दोलनों की तरफ भी लेखक ने संकेत किया है। लेखक का नायक कुल्ली तो राजनीतिक तथा सुधारवादी दोनों प्रकार के आन्दोलनों में सहयोग देता है। तत्कालीन सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन कलुतीदार एवं कांग्रेस की गतिविधियों का भी यथास्थान चित्रण हुआ है। गांधी जी तथा नेहरू देश के लिए सर्वस्व होम करने के लिए तत्पर थे। "प्लेग से हुई देश की स्थिति का हृदय विदारक एवं कारुणिक चित्रण हुआ है," एक ऊंचे टीले पर बैठ कर लाशों का दृश्य देखता था। मन की अवस्था बयान से बाहर। डलमऊ का अवधूत टीला काफी ऊंचा, ~~मशहूर-जगह~~ मशहूर जगह है। वहां गंगा जी ने एक मोड़ ली है। लाशें इकट्ठी थीं उसी पर बैठकर घंटों वह दृश्य देखा करता था। कभी अवधूत की याद आती थी, कभी संसार की नश्वरता की[3]।" बिल्लेसुर में स्थानीय चित्रण से वातावरण और

१-बिल्लेसुर बकरिहा, पृ० ४४-४५

२- वही०, पृ० ~~४४-४५~~ ७७

३-वही०, पृ० ~~७७०~~ ८०-८१।

भी सजीव एवं मुखर हो गया है, " नाला मिला । किनारे रियें और बबूल के पेड़ । पुरको पकड़े चले जा रहे हैं बनिया के ताल के किनारे से गुजरे । देखकर कुछ बगले इस किनारे से उस किनारे उड़ गए बिल्लेसुर बढ़ते गए । शमशेर -गंज का बेरहना बेरहना मिला । एक जगह कुछ खजूर और ताड़ के पेड़ दिखे । सामने खेत, हरियाली लहराती हुई । ओस पर सूरज की किरणें पड़ रही थीं ।"[1]

२३. प्रस्तुत रेखा-चित्रों में अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की ईमानदारी लेखक अपनी विशेषता है उसने जैसा अनुभव किया उसका सहज एवं यथातथ्य चित्रण हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर दिया । दोनों कृतियां 'निराला' की यथार्थ मनोवृत्ति की परिचायक हैं, किसी भी प्रकार की अस्पष्टता या गूढ़ता का आभास नहीं मिलता , यही कारण है कि इसकी संवेदना इतनी मार्मिक और प्रेषणीय है ।

मूल्यांकन

मूल्यांकन

`निराला` के सम्पूर्ण साहित्य का मन्थन अवगाहन कर लेने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि `निराला` की सृजनात्मक पृष्ठभूमि व्यापक,वैविध्यपूर्ण,क्रान्तिकारी तथा प्रयोगात्मक रही है । उनका यह वैविध्यपूर्ण परिवेश काव्य-साहित्य में ही नहीं,गद्य-साहित्य में भी द्रष्टव्य है । उनका कृतित्व नूतन दिशा को प्रशस्त करता है । काव्य में ही वह स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थोन्मुखी प्रवृत्ति लेकर नहीं अवतरित हुए,वरन् उनका कथा-साहित्य में भी स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थोन्मुखी दृष्टिकोण रहा है । काव्य में यदि वह मुक्त छन्द को लेकर अवतरित हुए तो कथा-साहित्य में उन्होंने स्वच्छन्दतावादी पात्रों की अवतारणा की है । साहित्य में छन्दों तथा रूढ़ मान्यताओं का बहिष्कार करके ही उनका काव्य अप्रतिम ओज तथा औदात्य से अभिसिक्त हो सका है । परन्तु यह भी ध्रुव सत्य है कि उनकी छन्दोबद्ध कवितायें भी श्रेष्ठत्व की अधिकारी रही हैं, `तुलसीदास`,`राम की शक्ति पूजा` एवं`गीतिका` के गीत छन्दोबद्ध हैं । मुक्त छन्द की सृष्टि उनकी सर्वाधिक क्रान्तिकारी उद्भावना है जिसमें सम्पूर्ण मुक्ति का आख्यान है । `निराला` वैयक्तिक स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे, जिसका उद्घोष उनके सम्पूर्ण काव्य से लेकर कथा-साहित्य एवं निबन्धों आदि से हो जाता है ।

साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में क्रान्ति का तुमुल नाद करने का श्रेय युग प्रवर्तक `निराला` को है । क्रान्ति, वैविध्य, ओज तथा व्यापकता , `निराला` कथा-साहित्य के ऐसे अनिवार्य लक्षण हैं, जो उनको उनके समसामयिक सभी साहित्यकारों से पृथक करते हैं । `परिमल` से लेकर `गीत-गुंज` कवि की प्रतिभा का अजस्रस्रोत निर्बाध रूप से प्रवाहित हुआ है । उनकी नवीनता मौलिकता

की छाप सर्वत्र देखी जा सकती है । छन्द, भाषा एवं भाव सम्बन्धी नवीनता और परिष्कार `निराला` साहित्य को अप्रतिम स्वरूप तथा महत्व संज्ञा प्रदान करने में पूर्ण सक्षम है । `परिमल` में यदि छन्दों की नवीनता और उद्भावना है, तो `गीतिका` में नव नव गीतों और राग-रागिनियों की सृजना । शास्त्रीय संगीत पद्धति तथा काव्य का अद्भुत परिष्कार `गीतिका` के गीतों की अप्रतिमता है । मुक्त छन्द की एकान्त स्वच्छन्दता तथा संगीतात्मकता एवं छन्दोबद्धता अपने परिष्कृत रूप में पूर्ण चरमोत्कर्ष पर इनके काव्य में दिखाई देते हैं । `निराला` की क्रान्ति की पृष्ठभूमि नवीनता के आग्रह से पुष्ट है , वह विध्वंसात्मक नहीं, वरन् नव निर्माण की आशंसा लिए हैं । वह समग्र मुक्ति का उद्घोष अवश्य करती है, विध्वंस का नहीं । वस्तुत: इस क्रान्ति की पृष्ठभूमि में स्वस्थ,सुन्दर एवं शिवत्वमय की स्थापना का भाव ही अन्तर्निहित है । उनके काव्य में पुरातन और नूतन का एक साथ समाहार मिलता है । वह विद्रोही और क्रान्तिकारी अवश्य रहे, लेकिन वह उन्हीं मान्यताओं और रूढ़ियों के विध्वंसक थे, जो जीवन या साहित्य को जड़त्व की ओर प्रेरित करती हैं अन्यथा उनके साहित्य में मूल परम्परा एवं सांस्कृतिक चेतना का सर्वाधिक स्फुरण हुआ है ।

आलोच्य साहित्यकार ने अपने सम्पूर्ण वांगमय सांस्कृतिक सूत्रों को भी पकड़ा है । `तुलसीदास` प्रबन्ध काव्य की तो पृष्ठभूमि मूलत: सांस्कृतिक ही है, लेकिन उनका सम्पूर्ण साहित्य भारतीयता, एवं सांस्कृतिक आधार से पुष्ट है । `दिल्ली` `खंडहर के प्रति` तथा `यमुना के प्रति` प्रभृति कविताओं में उनकी सांस्कृतिक चेतना का अवलोकन किया जा सकता है । `निराला` का राष्ट्रीय स्वर भी अत्यधिक सशक्त रहा है । उनकी राष्ट्रीय भावना अत्यधिक व्यापक एवं भावभूमि पर आधारित है, वह देश काल की संकीर्ण शृंखलाओं में आबद्ध नहीं की जा सकती, वरन् वह सम्पूर्ण विश्व के प्रति मंगल कामना के आशय को अभिव्यक्त करती है । `गीतिका` के कतिपय गीतों में स्वदेश-प्रेम की भावना का प्रकाशन हुआ है ।

`निराला` का स्वर कभी भी एकतान नहीं रहा-- न काव्य में और न गद्य में । प्रत्येक संग्रह में विरोधी स्वरों का समाहार एक साथ देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ `परिमल` के परिवेश में ही `जुही की कली` का उन्मुक्त प्रणय आख्यान है , `विधवा` तथा `भिक्षुक` का यथार्थवादी करुणापूरित

स्वर है, `यमुना के प्रति` कविता की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है, `जागो फिर एक बार` तथा बादलराग में क्रान्ति का तुमुल उद्घोष है और `शिवा जी के पत्र` की राष्ट्रीय भावना का स्फुरण । `अनामिका` में कवि को स्पष्ट ही दो एकान्त विरोधी भाव-भूमियों का स्पर्श करते देखा जा सकता है-- उसमें एक ओर स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मुखर हुई हैं तो दूसरी ओर यथार्थोन्मुखता का आग्रह भी रहा है । साथ ही महाकाव्य की गरिमा का संस्पर्श करते हुए भी उनको देखा जा सकता है । `सरोज-स्मृति` में स्वयं कवि के जीवन का प्रकाशन हुआ है, जो उनका एक पक्ष और समर्पित करता है । `कुकुरमुत्ता`, `बेला` तथा `नये पत्ते` में भी `निराला` का प्रयोगवादी एवं क्रान्ति पूर्ण स्वर रहा है । `नये पत्ते` तथा `कुकुरमुत्ता` में यथार्थवादी कला का स्वरूप ही दृष्टिगत होता है । `बेला` में क्रान्ति का उद्घोष विभिन्न गज़लों के प्रयोगरूप में हुआ । लोकगीतों की प्रकृत-भूमि का स्वर भी इसमें मुखरित होता देखा जा सकता है । `अर्चना`, `आराधना` तथा `गीत-गुंज` में कवि पुन: अपनी आधारभूमि को परिवर्तित करता है, उसमें भक्त और साधक का स्वरूप साकार हो उठा है । लेकिन भक्ति के स्वर की प्रधानता होते हुए भी विभिन्न क्षेत्रीय व्यंजना भी इन काव्य-संग्रहों में हुई है ।

`निराला` का सम्पूर्ण साहित्य अपूर्व दार्शनिकता से आविष्ट है । फलत: रहस्यमयता के साथ-साथ औदात्य का भी समावेश हो सका है । लघु से लघु शृंगार युक्त गीत में भी यह दार्शनिक पर्यवसान अन्यतम कुशलता से निहित है । `निराला` की कविता मात्र कल्पना का विलास या बौद्धिक श्रम ही नहीं, वरन् उसमें अपूर्व काव्यात्मक उत्कर्ष तथा दार्शनिक परिसमाप्ति है । चिन्तन तथा दर्शन से आपूरित होने के कारण आलोच्य कवि के काव्य की बोधगम्यता के लिए एक विशिष्ट मन:स्थिति का होना आवश्यक है । उच्चकोटि के विचारक तथा चिन्तक होने के परिणामस्वरूप स्वभावत: उनके साहित्य का वैचारिक पक्ष अत्यधिक सबल और कठिनतर हो गया है । लेकिन सर्वत्र उनका काव्य बौद्धिकता से बोझिल हो, ऐसा कहना उनके प्रति अन्याय होगा । वस्तुत: उनके काव्य में राग पक्ष तथा बुद्धिपक्ष का अभिनव सम्मिश्रण हुआ है ।

`निराला` का जीवन के प्रति दृष्टिकोण मानवतावादी आधार पर अवस्थित है । उनके साहित्य में विवेकानन्द की सम्पूर्ण शिक्षाओं का एक

पूर्ण प्रकाशन पाते हैं । वह एक अद्वैत वेदान्ती कवि हैं तथा प्रत्येक मानवमात्र में उस ब्रह्म का ही साक्षात्कार करते हैं । जन-जन के प्रति उनके साहित्य में सम्वेदना और सहानुभूति का प्रकटीकरण हुआ है । आलोच्य साहित्यकार का जीवन दर्शन अत्यन्त स्वस्थ है, वह मानव-मानव में भेद स्वीकार नहीं करते उन्होंने उपेक्षित से उपेक्षित मनुष्य में मानवता का अभिनव उत्कर्ष दिखाया है । परिणामत: उनके सम्पूर्ण साहित्य में, चाहे वह काव्य हो, कहानी हो, उपन्यास हो अथवा निबन्ध शोषित, दलित और कृषकों की विषम स्थिति का चित्रण मिलता है । जनता की विवशता तथा दु:ख-दैन्य को तो लेखक ने अभिव्यक्ति दी ही है, वरन् तथाकथित स्थिति को जन्म देने वाले धनी वर्ग तथा नेताओं पर भी कम आक्षेप और व्यंग्य प्रहार नहीं किया गया ।

`निराला` का सम्पूर्ण साहित्य युग-चेतना का प्रतिबिम्ब है । एक युग-चेता कवि से ऐसी आशा करना स्वाभाविक ही है । उन्होंने युगिन समस्याओं को स्वर दिया, उचित समाधान प्रस्तुत किए तथा नवीन संदेश और दिशा का निर्देशन भी किया । उनके कथा -साहित्य में युगीन चेतना अधिक स्पष्टरूप से उभर कर आयी है । `निराला` के व्यंग्य आक्षेपों ने व्यक्ति और समाज की सुप्त वृत्तियों को जाग्रत किया है । उनके व्यंग्य आक्षेपों की आधार-शिला परिष्कृत है । वह व्यक्ति विशेष पर न होकर उसकी विकृतियों तथा असमन्यताओं पर आधारित है । `निराला` का गद्य साहित्य कलात्मक उत्कर्ष तथा वैविध्य में काव्य-साहित्य के समानान्तर नहीं उतरता, लेकिन उसके वैचारिक पक्ष की सफलता में दो मत नहीं । उनके निबन्ध उनकी मौलिक चेतना के परिचायक हैं । निबन्धों में उन्होंने समाज,साहित्य,धर्म,राजनीति तथा कला -- सभी पक्षों का समानरूप से स्पर्श किया है । `निराला` का कथा-साहित्य काव्य-साहित्य के सम्मुख धूमिल अवश्य पड़ता है, लेकिन उसके अन्तर्गत जिस स्वस्थ जीवन दर्शन का उन्होंने आलेखन किया है, वह नवीन मूल्यों की स्थापना करता है । कथा-साहित्य में उनका धरातल प्रेमचन्द के समान आदर्शोन्मुखी नहीं है, वरन् यथार्थोन्मुखी है । उनके निम्न से निम्न तथा उपेक्षित पात्र में स्वस्थ, प्रबुद्ध मानव जीवन के रूप का आकर्षण है तथा वह सब और निरन्तर संघर्षशील तथा प्रवृत्त देखे जा सकते हैं ।

'निराला' जीवन, समाज तथा साहित्य तीनों क्षेत्रों में क्रान्तिकारी पुरोधा साहित्यकार रहे हैं । उनका प्रत्येक नव प्रयोग नव-निर्माण का अवदान लेकर प्रस्तुत हुआ है, वह एक युग-प्रवर्तक एवं युग निर्माता साहित्यकार हैं । वे पूरा एक युग हैं ।

-o-

परिशिष्ट

-0-

परिशिष्ट

`निराला` के काव्य-संग्रह तथा उनकी विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री

`परिमल`

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
नयन	मतवाला	२३ सितम्बर १६२३	५०
उसकी स्मृति में	,,	१३ अक्तुबर १६२३	७३
भारत की विधवा	,,	२७ अक्तुबर १६२३ (परिमल `विधवा)	१०१
अब पछताना	,,	३ नवम्बर १६२३ (परिमल पछिताना शीर्षक)	११३
उस पार		१० नवम्बर १६२३ (परिमल कविता)	१३३
भिक्षुक		१७ नवम्बर १६२३	१४३
सन्ध्या सुन्दरी	०	२४ नवम्बर १६२३	१५७
शरतपूर्णिमा की विदाई		१ दिसम्बर १६२३	१७३
प्रार्थना		१५ दिसम्बर १६२३ (परिमल अंजलि)	२०६
जूही की कली		२२ दिसम्बर १६२३	२३३
धारा		२६ दिसम्बर १६२३	२५७

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
आह्वान		५ जनवरी १६२४	२८५
वन कुसुमों की शैय्या		१२ जनवरी १६२४	३१३
रास्ते के मुरझाए हुए फूल से		२६ जनवरी १६२४	३६१
स्वप्न		२३ फरवरी १६२४	४५६
हमारी बहू		१ मार्च १६२४	४८१
		(परिमल बहू)	
विफल वासना		१५ मार्च १६२४	५२१
खोज और उपहार		२६ अप्रैल १६२४	६३३
तरंगों से		१० मई १६२४	६७७
		(परिमल :तरंगों के प्रति)	
क्या हूं		२४ मई १६२४	७२५
प्रपात के प्रति		७ जून १६२४	७७२
प्रथम प्रभात		७ जून १६२४	७७२
सिर्फ एक उन्माद		१४ जून १६२४	७६५
जागी		१४ जून १६२४(परिमल जागो)	७६५
यमुने		५ जुलाई १६२४ क्रमश:१२,२६	८७७
		(यमुना के प्रति)	
बादलराग		२६ जुलाई १६२४	६२७
वासन्ती		६ फरवरी १६२६	५
वसन्त समीर		१६ फरवरी १६२६	५
स्मृति चुम्बन		२३ फरवरी १६२६	५
दूत अलि ऋतु पति के आए		२७ अप्रैल १६२६	५
निशा के उर की खिली कली		२७ अप्रैल १६२६	५
अलि घिर आए घन पावस के		४ मई १६२६	५
हमें जाना है जग के पार		११ मई १६२६	१०
माया	समन्वय	पौष संवत् १६७६	५५०-५५२
जलद	,,	श्रावण संवत् १६८०	२६६
		(परिमल: जलद के प्रति)	

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
प्रिय मुद्रित दृग खोलो (प्रभाती)	समन्वय	वैशाख संवत् १९८५	१५५
विस्मृत भोर	सुधा	जनवरी १९२९	७८२
अध्यात्म पुष्प	प्रभा	१ नवम्बर १९२१ (परिमल अध्यात्म फल)	२९४

अनामिका

तट पर (महा०रवीन्द्रनाथ की विजयिनी का अनुवाद)	मतवाला	२ फरवरी १९२४	३८५
ज्येष्ठ	,,	१९ अप्रैल १९२४	६१३
(म०रवीन्द्रनाथ के वैशाख से)	,,	~~१९-अप्रैल-१९२४~~	
कहाँ है देश (म०रवीन्द्रनाथ-निरुद्देश यात्रा)	,,	३ मई १९२४	६५३
नाचे उस पर श्यामा (विवेकानन्द : नाचुकताहति श्यामा)	,,	२८ जून १९२४	८५३
श्यामा-प्रार्थना (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भाव से)	,,	१७ मई १९२४	७०१
चुम्बन	,,	६ अक्तूबर १९२३	६१
संहार के प्रति	,,	८ दिसम्बर १९२३	१८९
दिव्य प्रकाश	,,	२२ दिसम्बर१९२३ (अनामिका प्रकाश शीर्षक-से साम्य)	३७
प्रलाप	,,	१९ जनवरी १९२४	३३७
अनुताप	,,	२ फरवरी १९२४	३९१
यहीं	,,	१६ फरवरी १९२४	४३३

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
वीणा वादिनी	मतवाला	२३ फरवरी १६२४	४५६
प्रिया रे	,,	२६ मार्च १६२४	५५३
प्रगल्भ प्रेम	,,	५ अप्रैल १६२४	५७३
गा अपने संगीत	,,	१२ अप्रैल १६२४ (अनामिका उद्बोधन)	५६४
दिल्ली	,,	५ जुलाई १६२४	८६७
गाता हूं गीत तुम्हें ही सुनाने को। (विवेकानन्द की गाई गीत सुनाते तोमाय का अनुवाद)	समन्वय	माघ सं० १६८०	२८-३४
नाचे उस पर श्यामा (विवेकानन्द नाचे ताहते श्यामा का अनुवाद)	,,	आषाढ़,सं० १६८१	२६४-२६८
सखा के प्रति (स्वा० विवेकानन्द के सखार-के प्रति का अनुवाद)	,,	चैत्र सं० १६८३	१०६-१११
सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति	सरस्वती	जनवरी १६३६	१
उक्ति (कुछ न हुआ न हो)	,,	नवम्बर १६३७	४५०
रेखा	सुधा	अप्रैल १६२८	२५५
दान	,,	जून १६३५	४३६
कविता के प्रति	,,	मार्च १६३८	१०७
होली : हारी नहीं देख आंखें परी नागरी की	,,	अप्रैल १६३८ (अनामिका अपराजिता शीर्षक	२२४
समझ नहीं सके तुम हारे हुए झुके तभी नयन	,,	जुलाई १६३८ (अ० नासमझी शीर्षक)	४७७
मित्र के प्रति	माधुरी	सितम्बर १६३५	२८३

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
बादल गरजो घेर घेर घोर गगन	माधुरी	अगस्त १९३७ (अ० उत्साह शीर्षक)	१
हिन्दी के सुमनों के प्रति	,,	अक्तूबर १९३७	४२३
मरण दृश्य(कहा जो न कहो)	,,	फरवरी १९३८	१
(उक्ति) जला है जीवन यह आतप में	,,	जुलाई १९३८	६५३
बहुत दिनों बाद खुला आसमान।	वीणा	फरवरी १९३८	२६४

गीतिका

धीरे धीरे बह री	चांद	जून १९३४	११८
सार्थक करो प्राण	,,	अक्तूबर १९३५	५९५
नयनों का नयनों से बंधन	,,	अप्रैल १९३६	६१३
कैसी बजी बीन	,,	सितम्बर १९३६	४२५
सोचती अपलक आप खड़ी	सुधा	अक्तूबर १९२९	३२५
छोड़ दो जीवन यों न मलो	,,	दिसम्बर १९२९	४९७
युगों की कलियां नवल खुलीं	,,	फरवरी १९३०	१
मेरे प्राणों में आओ	,,	अप्रैल १९३०	२६५
कहां उन नयनों की मुस्कान कल्पना के कानन की रानी	,,	अप्रैल १९३०	३१२
पास हीरे हीरे की खान	,,	मई १९३०	३९७
नयनों में हेर प्रिय	,,	जून १९३०	४९३
स्पर्श से लाज लगी	,,	जुलाई १९३०	६६४
कौन शुभ्र किरण वसना	,,	अगस्त १९३०	४० ९१
स्नेह की सरिता के तट पर	,,	नवम्बर १९३०	४३८
मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा	,,	दिसम्बर १९३०	६७७
नर जीवन के स्वार्थ सकल	,,	जनवरी १९३१	७२५
विश्व नभ पलकों से आलोक	,,	जनवरी १९३२	७९३
देख देती वह छवि सब दिन	,,	सितम्बर १९३३	१९३

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
पावन करो नयन	चांद	जनवरी १९३४	८४३
रे कुछ न हुआ तो क्या	,,	मार्च १९३४	९७
अनगित आ गए शरण में जन जननि।	,,	मई १९३४	२५७
जागो मधुर स्मरण मानसि मन	,,	जुलाई १९३४	५८५
तुम्हारे सुंदरि कर सुन्दर	,,	अगस्त १९३४	१
क्यों री यह डाल वसन	माधुरी	फाल्गुन सं० १९८८	१६१
बातें हों किसकी सुन्दर	,,	ज्येष्ठ १९८९	६१९
प्राण धन को स्मरण करते		मार्च १९३५	१३७
अमरण वरण भर मरण गान		अगस्त १९३५	१
फूली मेरी शेफाली	~~अक्तूबर~~	अक्तूबर १९३६	३६९
लाज लगे जो जाओ तुम	~~जनवरी १९३७~~	जनवरी १९३७	७४१
दे मैं करूं वरण	वीणा	जून १९३६	२३
रही आज मन में वह शोभा जो देखी थी वन में।	,,	सितम्बर १९३६	८४१
हंस			
बहती निराधार	~~ब~~ हंस	अक्तूबर १९३६	६२
हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले।	,,	जुलाई १९३६	१
निशि दिन तन धूलि में मलिन मलिन घन गर्जन से भर दो वन	सरस्वती	नवम्बर १९३५	४३१
बुझे तृष्णा का विषयानल	,,	जनवरी १९३६	९१
अस्ताचल रवि जल छल छल	,,	फरवरी १९३६	१४५
घोर शिशिर हुआ जग अस्थिर	,,	अप्रैल १९३६	३३७
मैं न रहूंगा गृह के भीतर	,,	नवम्बर १९३६	४१७
सकल गुणों की खान प्राण तुम	,,	१९००–१९५९ हीरक जयंती अंक	२–१०३
निशि दिन तन धूलि में मलिन			

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
'अणिमा'			
तुम (बाबू रजनीसेन के एक गीत का अनुवाद)	समन्वय	चैत्र संवत् १९८०	१०७
युग प्रवर्तिका श्रीमती-महादेवी के प्रति	संगम	२३ मार्च १९५२	८
आदरणीय प्रसाद के प्रति	माधुरी	दिसम्बर १९४०	६५६
मन के तिनके नहीं जले अब	,,	जून १९४२ (अणिमा अज्ञात शीर्षक)	४६१
दलित जन पर करो करुणा	,,	नवम्बर १९३९	४७९
तुम्हें चाहता है वह सुन्दर	सुधा	नवम्बर १९३९	४१४
भगवान बुद्ध के प्रति	,,	जुलाई १९४०	५४५
धूलि में तुम मुझे भर दो	,,	नवम्बर १९४०	४४३
बादल छाए	,,	अगस्त १९४२	३४
मैं बैठा था पथ पर	सरस्वती	जनवरी १९४१	१९
बेला			
आरे गंगा के किनारे	हंस	दिसम्बर १९४४	१८२
भीख मांगता है अब राह पर	,,	दिसम्बर १९४४	१११
चढ़ी हैं आंखें जहां की उतार किनारा वह हमसे किए जा रहे हैं	,,	दिसम्बर १९४५	१४५
पड़े थे नींद में उनको प्रभाकर ने जगाया।	,,	अक्तूबर १९४५ से सितम्बर १९४६	२३६
उनके बाग में बहार देखता	वीणा	जुलाई १९४४	२२५
लू के झोंकों झुलसे हुए थे	कादम्बिनी	दिसम्बर १९६१	३१

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
नौ पौ			
पांचक	हंस	जनवरी-फरवरी १६४४	३५१
कैलाश में शरत	,,	अप्रैल १६४६	४५३
युवक जनों की है जान	,,	मई १६४६	५३३
अर्चना			
समझा जीवन की विजया हो	संगम	२६ मार्च १६५०	५
किरणों की परियां मुसका दीं तुम्हारी छांह है जल है	,,	१४ मई १६५०	५
मां अपने आलोक निखारो	,,	११ जून १६५०	५
गीत गाए हैं मधु स्वर	,,	२ जुलाई १६५०	५
बीन वरण के वरण घन गगन गगन है गान तुम्हारा	,,	३ सितम्बर १६५०	१
आराधना			
गगन वीणा बजी	,,	२५ सितम्बर १६४६	५
कभी तुम्हारे जीते हारे	,,	११ नवम्बर १६५१	२
पद्मावती चरण पाकर ही	नई धारा	अक्टूबर १६५२	१
भवन भुवन हो गया	,,	अप्रैल १६५३	१
नहीं घर घर गेह अब तक	,,	अक्टूबर १६५३	१
नहीं रहते प्राणों में प्राण	सरस्वती	फरवरी १६५३	८५
गर्वोक्ति (हारता है मेरा मन विश्व के समर में)	,,	नवम्बर १६६१	२६६
दुःख भी सुख का बंधु बना	कल्पना	जनवरी १६५३	१
खेत जोत कर घर आए हैं	,,	अक्तूबर १६५३	८०८

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
गीत गुंज			
वरद हुई शारदा जी हमारी	कल्पना	मार्च १६५४	६
जी में न जगो जो विकल प्याम	,,	दिसम्बर १६५४	२१

'निराला' के कहानी-संग्रह तथा उनकी विविध पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री

लिली			
पद्मा और लिली	सुधा	फरवरी १६३०	४३
प्रेमिका- परिचय	,,	जुलाई १६३३	५२६
आवारा (श्यामा कहानी का भिन्न नाम)	,,	अगस्त १६३३	३
कमला	सरस्वती	सरस्वती १६००-१६५६ हीरक जयंती अंक	२६१
चतुरी चमार			
न्याय	सुधा	१६३३	३३६
राजा साहब को ठेंगा दिखाया	,,	जुलाई १६३४	५१४
देवी	,,	फरवरी १६३४	७
सफलता	,,	अक्तुबर १६३४	२००
भक्त और भगवान	,,	दिसम्बर १६३४	४०२
सुकुल की बीबी			
क्या देखा	मतवाला	२७ अक्तुबर १६२३	
कला की रूपरेखा	माधुरी	नवम्बर १६३६	५२६
गजानन्द शास्त्रिणी	,,	जनवरी १६३८	७६६

`निराला` के निबन्ध संग्रह तथा उनकी विभिन्न पत्रों में प्रकाशित सामग्री

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
प्रबन्ध पद्म			
एक बात	सुधा	नवम्बर १९३२	४३५
मुसलमान और हिन्दुओं कवियों में विचार साम्य	,,	नवम्बर १९३९	३७८
पंत जी और पल्लव	माधुरी	भाद्रपद ,मार्गशीर्ष सं०१९८४	२७१-६८३
साहित्य का फूल अपने ही वृंत पर	,,	पौष सं० १९८८	७१४
प्रबन्ध प्रतिमा			
विद्यापति और चंडीदास	सुधा	अगस्त १९२८	९६
कविवर श्री चंडीदास	,,	अप्रैल १९२८	३०५
कला के विरह में जोशी बन्धु	,,	दिसम्बर १९२८	६९२
बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार वर्णन	माधुरी	अगस्त सितम्बर १९२८	७४
कवि गोविंददास की कुछ कविता	,,	दिसम्बर १९२८	७३९
साहित्यिक सन्निपात या	,,	माघ, फाल्गुन १९३२	४६,२०२
वर्तमान धर्म		आषाढ़ १९३३	७३७
मेरे गीत और कला	,,	मार्च,जून,जुलाई १९३६	६९४
नाटक समस्या	सरस्वती	१९००-१९५९ हीरक जयंती अंक	६६१
चाबुक			
चरित्रहीन	मतवाला	२४ मई १९२४	
बहता हुआ फूल	,,	२८ जून १९२४	

कविता	पत्रिका	कालक्रम	पृष्ठ
कविवर बिहारी कवीन्द्र रवीन्द्र	मतवाला	२४ मई १६२४	७३१
वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति	माधुरी	मार्गशीर्ष १६२६	८३६

नोट:- `चयन` तथा `संग्रह` नामक निबन्ध-संग्रहों की विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का उल्लेख प्रस्तुत निबन्ध-संग्रहों के संकलनकर्ता ने प्रत्येक निबन्ध के अन्त में कर दिया है, अतएव यहां पर उनका विवरण स्थगित किया जाता है ।

सहायक - ग्रन्थ - सूची

--०--

परिशिष्ट -- २

मौलिक ग्रन्थ-सूची

मूल ग्रन्थ

काव्य :	परिमल	१९६३,	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
	गीतिका	१९६१	भारती भंडार, इलाहाबाद
	अनामिका	१९६३	भारती भंडार, इलाहाबाद
	तुलसीदास	१९५७	भारती भंडार, इलाहाबाद
	कुकुरमुत्ता	१९४२	युग मन्दिर, उन्नाव
	अणिमा	१९४३	युग मन्दिर, उन्नाव
	बेला	१९६२	निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग
	नये पत्ते	१९६२	निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग
	अर्चना	१९६२	निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग
	आराधना	१९६१	साहित्यकार संसद, प्रयाग
	गीत गुंज	१९५४	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस
	अपरा	१९५६	

गद्य : उपन्यास और व्यंग्य चित्र

अप्सरा	१९६०	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
अलका	१९६१	गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ
निरुपमा	(?)	
प्रभावती	१८८३ शकाब्द	, किताब महल, इलाहाबाद
कुल्ली भाट	१९५३	गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ
बिल्लेसुर बकरिहा,	१९४५	किताब महल, इलाहाबाद
चोटी की पकड़	१९५८	इलाहाबाद
काले कारनामे	सं०२००७,	कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग

कहानी-संग्रह

लिली   सं० १६६०   गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ
चतुरी चमार   १६५३   इलाहाबाद
सुकुल की बीबी   १६४१   (?)

प्रबन्ध और निबन्ध

रवीन्द्र कविता कानन १६५४, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,ज्ञानवापी,बनारस
प्रबन्ध पद्म   १६३४   गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
प्रबन्ध प्रतिमा   १६४०   लीडर प्रेस, इलाहाबाद
चाबुक   (?)   कला मंदिर, इलाहाबाद
चयन   सं० २०१४ कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स,ज्ञानवापी, बनारस
संग्रह   १६६३   निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग

जीवनी

भक्त ध्रुव   १६२६   द पायुलर ट्रेडिंग कम्पनी, कलकत्ता
भक्त प्रह्लाद   १६२६   ,,   ,,
भीष्म   १६२६   ,,   ,,
महाराणा   १६२७   ,,   ,,

भाषा- शिक्षा

हिन्दी-बंगला शिक्षा   १६२८

अनुवाद तथा रुपान्तर

महाभारत सं० १६६६, गंगा पुस्तक माला,कार्यालय, लखनऊ
श्रीरामकृष्ण वचनामृत , द्वितीय संस्करण, १६४७,श्रीरामकृष्ण आश्रम,नागपुर
रामायण   १६४८ श्री राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी
भारत में विवेकानन्द   १६४८   श्री रामकृष्ण आश्रम , नागपुर
कृष्णकान्त का विल १६४०   इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

रजनी १९४० इंडियन प्रेस, इलाहाबाद

सहायक ग्रन्थ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० २०००वि काशी ।

शिवपूजन रचनावली , चतुर्थ खण्ड, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् , पटना

डा० पुत्तूलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, १९५७, लखनऊ

रामधारी सिंह दिनकर: संस्कृति के चार अध्याय, १९६५ दिल्ली

शंकर दत्तात्रेय जावडेकर : आधुनिक भारत, १९५३, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

रजनी पामदत्त : भारत वर्तमान और भावी , १९५६, पीपुल्स पब्लिशिंगहाउस नई दिल्ली ।

विवेकानन्द : साहित्य जन्म शती अंक अष्टम खंड : अद्वैत आश्रम

,, ,, ,, द्वितीय खंड ,,

श्री कन्हैयालाल : कांग्रेस के प्रस्ताव, १९११, नवयुग प्रकाशन मंदिर , बनारस

डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, १९५७

लक्ष्मीनारायण सुधांशु : जीवन के तत्व और काव्य सिद्धांत, युगान्तर साहित्य मंदिर भागलपुर ।

लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान सं० २०१४, भारती प्रेस, इलाहाबाद

नामवर सिंह : आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां,१९६२,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

डा० निर्मला जैन : आधुनिक हिन्दी काव्य में रूप विधायें , १९६३, हिन्दी अनुसंधान प्रकाशन, दिल्ली ।

डा० शम्भुनाथ पाण्डेय : आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका, १९६४, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।

डा० ओंकारनाथ शर्मा : हिन्दी निबन्ध का विकास , १९६४, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर ।

डा० लक्ष्मीनारायणलाल : हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास

पत्र-पत्रिकाएं

समन्वय, मतवाला, आलोचना (जनवरी, १९५२)

सरोज पत्रिका(जून १९२८), त्रिपथगा (निराला संस्मरण अंक खंड २,मार्च १९६२)

लहर -- (१९६२ निराला अंक)

जनभारती -- (सं० 2020 निराला अंक भाग २)

नई धारा -- सुधा, चांद, माधुरी, सरस्वती, विशालभारत, हंस, वीणा, अवन्तिका, प्रभा, संगम, कल्पना, कादम्बिनी, युगवाणी, आजकल, सम्मेलन पत्रिका, नया-साहित्य (निराला अंक) , हिन्दुस्तान (महाकवि निराला श्रद्धांजलि अंक १९ ११ फरवरी, १९६२, धर्मयुग (बसंत अंक) ११ फरवरी १९६२, ज्ञानोदय ।

अंग्रेजी के ग्रन्थ

K.M.Panikkar : The Foundation of New India: 1963 London.

S.C.Bose . The Indian Struggle : 1948, Calcutta.

J.L.Nehru : Discovery of India : 1946. The Signet Press, Cal.

The Complete works of Swami Vivekananda: Vol. III 1946,Cal.

" " : Vol. IV. 1956

Humayun Kabir :The Indian Heritage, 1955, Bombay.

Dr. Tara Chand : The History of the Freedom movement in India, Vol. I, 1961, Delhi.

Vera Anstely: The Economic Development of India, 1936.

Sir Percival Griffiths: Modern India : 1957, London.

Swami Nikhilananda : The Gospel of Sri Ram Krishna, 1947, Madras.

The Cultural Heritage of India, Vol. IV, 1956.